MAEC-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सार्वजनिक अर्थशास्त्र

पूर्व पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. बी.एस. शर्मा

पूर्व कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक / समन्वयक

डॉ. एल.एन. गुप्ता, संयोजक

आचार्य एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य निदेशक, विकास अध्ययन संस्थान (आई.डी.एस.) जयपुर	**प्रोफेसर डी.डी. नरूला** मानद वरिष्ठ अध्येता विकास अध्ययन संस्थान जयपुर
डॉ. श्याम नाथ फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़. नई दिल्ली	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. प्रमोद वर्मा प्रोफेसर,इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट अहमदाबाद	**श्री आर.पी. शर्मा** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अमिताभ कुन्डु निदेशक, गुजरात इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट रिसर्च, गोटा, अहमदाबाद	**डॉ. जे.के. शर्मा** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रोफेसर ए.के. सिंह गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज लखनऊ	

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (तत्कालीन अध्यक्ष) सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग ने 16.8.1996 तक इस पाठ्यक्रम का संयोजन किया।

पाठ्यक्रम संशोधन अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. एल.आर. गुर्जर

निदेशक अकादमिक

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक

डॉ. जे.के. शर्मा

आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. फरीदा शाह, आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय , उदयपुर	**डॉ एन. के. दशोरा,** अर्थशास्त्र विभाग, राजीव गाँधी जनजाति विश्वविद्यालय, उदयपुर
डॉ. धीरेश कुलश्रेष्ठ सह - आचार्य हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़	**डॉ.हेमा मंगलानी,** सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. सुरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	

सम्पादन एवं पाठ लेखन

संपादक

प्रो. एस सारूप्रिया

अर्थशास्त्र विभाग,

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद

पाठ लेखन

डॉ. इनु जैन सहायक आचार्य, महिला महाविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**डॉ.(श्रीमती) एल.ए. रेड्डी** प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग कला संकाय, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा
श्री जे.के. शर्मा सहायक आचार्य अर्थशास्त्र विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**राधिका दास** सेवानिवृत्त प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग जबलपुर विश्वविद्यालय
श्रीमती पुष्पा गुप्ता वरिष्ठ व्याख्याता अर्थशास्त्र राजकीय स्वायत्तशासी महाविद्यालय, कोटा	**श्री आर.पी. शर्मा** सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
श्री पी.के. चौबे आचार्य अर्थशास्त्र विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर म. प्र.	**तपस कुमार सेन** एन.आई.पी.ए.पी., नई दिल्ली

डॉ. अनिल कुमार जैन सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**डॉ. एम.के. घड़ोलिया (भाषा सम्पादन)** सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. रंजना सह आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	**डॉ. एच.एल. भाटिया** अर्थशास्त्र विभाग, श्री राम वाणिज्य महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
कान्ता जैन (अनुवाद) अजमेर	**डॉ. निर्भय सिंह (अनुवाद)** भरतपुर
डॉ. उम्मेद सिंह, (इकाई 6,7,8) सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	**मुकेश मीणा,** (इकाई 9,11,12) सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.अशोक शर्मा कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर** निदेशक, अकादमिक **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**डॉ अरविंद पारीक** निदेशक, सामग्री उत्पादन और वितरण **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**

पुनःउत्पादन : मई 2017 ISBN NO- 13/978-81-8496-366-3

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAEC-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

सार्वजनिक अर्थशास्त्र

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
खण्ड-I: लोक अर्थशास्त्र एवं लोक चयन		
इकाई - 1	विभिन्न राजकोषीय प्रणालियों में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण	1-19
इकाई - 2	लोक अर्थशास्त्र के उद्देश्य व अंग	20-42
इकाई - 3	सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त	43-64
इकाई - 4	बाह्याताएं एवं मिश्रित वस्तुएं	63-78
इकाई - 5	लोक चयन	79-93
खण्ड-2 : सार्वजनिक एवं निजी वस्तुएँ		
इकाई - 6	सार्वजनिक वस्तुएँ बनाम निजी वस्तुएँ	94-99
इकाई - 7	सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का निजी प्रावधानों द्वारा उपलब्ध करना	100-110
इकाई - 8	सार्वजनिक वस्तुओं का नाश कुर्नो समाधान, लिंडाल और सैम्युलसन का सिद्धांत	111-120
इकाई - 9	क्लब वस्तुएँ	121-128
खण्ड-3 : सार्वजनिक व्यय		
इकाई - 10	सार्वजनिक व्यय	128-138
इकाई- 11	पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना	139-150
इकाई - 12	लेवाथन हाईपोथीसिस एंव निक्सनेन मॉडल, समता और दक्षता में विनिमय	151-162
इकाई -13	भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन	163-175
इकाई -14	सार्वजनिक व्यय मूल्यांकन एवं बजटीय रूप	176-187
इकाई -15	सार्वजनिक व्यय मूल्यांकन एवं बजटीय रूप	188-213
खण्ड-4 : करारोपण एवं सार्वजनिक वित्त		
इकाई -16	करारोपण में न्याय	214-231
इकाई -17	आवंटन कुशलता	232-255
इकाई -18	करापात एवं कर विवर्तन	256-283
इकाई -19	राजकोषीय आपात	284-298
इकाई -20	भारतीय सार्वजनिक वित्त- I	299-312
इकाई -21	भारतीय सार्वजनिक वित्त- II	313-333

खण्ड-4 : सार्वजनिक ऋण एवं		
इकाई -22	सार्वजनिक ऋण का अर्थशास्त्र	334-344
इकाई -23	सार्वजनिक ऋण संस्थापित सिद्धान्त, क्रियात्मक एवं क्षतिपूरक वित्त	345-354
इकाई -24	आन्तरिक व बाह्य सार्वजनिक ऋणों के मुद्दे	355-367
इकाई -25	विकास के लिए राजकोषीय नीति : साधन गतिशीलता-विकास, वितरण तथा मूल्यों पर प्रभाव	368-394
इकाई -26	भारत में बजटीय घाटे की नीति	395-412

प्रस्तावना

सार्वजनिक अथवा लोक अर्थशारत्र का अध्ययन आरंभ करने के पूर्व इसकी विषय सामग्री के व्यापक एवं समग्र स्वरूप का अवलोकन तथा विषद विवेचन परमावश्यक है। विषय का समग्र स्वरूप यही एक शोधगम्य सर्वेक्षण के रूप मे इसीलिये प्रस्तुत किया गया है कि सार्वजनिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं कार्य प्रणाली पर इन सैद्धान्तिक विकास तथा विचारों का प्रभाव सुस्पष्ट हो सके। आधुनिक सार्वजनिक अर्थशास्त्र पर इसका व्यापक एवं निर्णायक प्रभाव पड़ा है। सार्वजनिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को मूलत: आर्थिक सिद्धान्त के विकास एवं इसकी मुख्य धारा से सम्बद्ध करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इस सम्बन्ध में प्राय: एक अपरिपक्व एवं अपूर्ण परिकल्पना की जाती रही है जो सार्वजनिक अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के अपूर्ण एवं विकृत स्परूप की झलक देती है। यह उस परिरिथति में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जब हम सार्वजनिक वित्त के विषय में विद्यार्थी की प्रतिबद्धता को यह प्रचारित एवं प्रसारित करते हुए देखते है कि यह उपयुक्त एवं अनुपयुक्त है। उत्तम एवं हीन है, प्रगतिशील एवं प्रतिगामी है। (वर्तमान में हम सार्वजनिक अर्थशास्त्र एवं सार्वजनिक वित्त का प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में कर रहे हैं।) द्वितीय चरण में हम सार्वजनिक वित्त के परम्परागत विशिष्ट क्षेत्र में आर्थिक घटकों का यथा "साधन आवंटन तथा आय वितरण" (व्यष्टिगत सार्वजनिक वित्त) राजकोषीय स्थिरीकरण एवं राजकोषीय नीति को आर्थिक विकास हेतु (समष्टि मूलत सार्वजनिक वित्त) विवेचन एवं अध्ययन करते है। व्यापक रूप से इस समस्त अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थियों को सार्वजनिक वित्त में आर्थिक विश्लेषण की प्रवृति से अवगत कराने का प्रयास है।

युद्धात्तर-युग में आर्थिक सिद्धान्त के सभी महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्तमावस्था सूत्र की परिभाषा तथा व्यापक व्यवहारिकता से ही सम्बन्धित है और समस्त संसाधन-उपयोग कार्यविधि तथा समस्त आर्थिक प्रयास आर्थिक क्षमता को विकसित करने हेतु ही संकेन्द्रित रहे हैं। प्राय: नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र के नाम से पुकारा जाता है, साथ ही यह पैरेटो उत्तमावस्था के नाम से भी प्रसिद्ध है। आधूनिक सार्वजनिक अर्थशास्त्र का अधिकांश सैद्धान्तिक पक्ष सार्वजनिक क्षेत्र में अर्थव्यवस्था के संसाधन उपयोग तथा सार्वजनिक क्षेत्र में पैरेटो उत्तमावरथा सिद्धान्त की व्यावहारिकता से ही सम्बन्धित है। विषय सामग्री का समस्त सारांश अब इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है। निजी अर्थव्यवरथा अथवा निजी क्षैत्र में बाजार का रच संचालन संस्थागत प्रक्रिया के माध्यम से ही उत्तमावस्था प्राप्त कर सकेगा। इसी से उत्तमावस्था सुनिश्चित भी होगी। वास्तविकता तो यह है कि व्यवहार में इसका खरा न उतरना हमारे मार्ग में कोई अवरोध-कारक नहीं है। यह भी वास्तविकता है कि इसका सत्य सिद्ध न होना इस तर्क संवर्द्धन में बाधक नहीं है। क्योंकि हम प्राय: वास्तव में भावात्मक सिद्धांत में ही कार्यरत है। सार्वजनिक सिद्धान्त के सिद्धान्त वेत्ता भी प्राय: यही प्रकट करने से सम्बन्धित रहे थे कि पेरेटो उत्तमावस्था तथा संसाधन उपयोग का सामंजस्य सार्वजनिक क्षेत्र में हम किस प्रकार सुनिश्चित कर सकते हैं। (सार्वजनिक क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक वस्तु पढें) जबकि स्वसंचालित बाजार प्रक्रिया का अभाव है, बाजार टूटन की अवस्था में है।

यह विश्लेषणात्मक प्रक्रिया-बोध अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह भली प्रकार कहा जा सकता है कि एक ही तीर से हम दो शिकार करने में समर्थ हैं। एक ओर तो सार्वजनिक अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का आर्थिक सिद्धान्त की मुख्यधारा में समामेलन सम्भव है तथा दूसरी ओर आपको एक विशिष्ट अथवा

पृथक विश्लेषणात्मक ढाँचे की सार्वजनिक संसाधनों के आवंटन हेतु कोई आवश्यकता नहीं होती है, जैसा कि निजी अथवा बाजार निर्धारित संसाधन आवंटन में प्रत्याशित होता है। यह तर्क अथवा औचित्य दोनों ही अवरथाओं में समान रूप से सार्थक है। यही सब कुछ तो इसे सार्वजनिक वित्त के स्थान पर ***'सार्वजनिक अर्थशास्त्र'*** के नामकरण संस्कार के औचित्य को और अधिक न्याय-संगत् सिद्ध करता है। हमारा मुख्य केन्द्र- बिन्दु, राज्य के उत्तम, हीन अथवा सुदृढ़ वित्तीय प्रबन्ध से नहीं है अपितु मुख्य बिन्दु तो यह है कि राज्य किस प्रकार आय प्राप्त करता है तथा उसे किस प्रकार व्यय करता है। (दुर्भाग्यवश, यद्यपि अधिकांश समीक्षाऐं राजकीय वित्त से सम्बन्धित है उसी प्ररिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन भी हुआ परन्तु गलती से उसे सार्वजनिक वित्त का अध्ययन मान लिया गया) यह सभी कुछ क्षेत्रीय साधन आवंटन की क्षमता भी है।

सार्वजनिक वित्त के अध्ययन तथा अन्वेषण के क्षेत्र में जिस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने श्रेयस्कर है वह मसग्रेव की कार्य प्रणाली में सूचीबद्ध है।

1. जब किसी को विभिन्न बजट नीतियों की गुणवत्ता का मूल्यांकन करना हो तो किन सिद्धान्तों को आधार बनाया जाये? (प्रयुक्त किया जाये)
2. व्यय परिवर्तन तथा कर अदि जैसे राजकोषीय उपायों की निजी-क्षेत्र में क्या प्रतिक्रिया होती है?
3. वह कौन से सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक आयाम हैं जिन्होंने वर्तमान राजकोषीय संस्थान का यह स्वरूप निर्धारण किया है? और जिसके द्वारा समकालीन राजकोषीय नीति निर्धारित होती है।

इस प्रकार बजट प्रक्रिया तथा बाजार प्रक्रिया में आवश्यक रूप से पर्याप्त समानता है और यह दूसरा परिणाम जो लगभग साथ-साथ ही प्राप्त होता है वह है- सार्वजनिक वित्त के अध्ययन का पूर्ववर्ती परम्परागत राजनैतिक अर्थव्यवस्था के स्वरूप से मूलभूत पलायन। यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस परंपरा के अन्तर्गत राज्य की आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण समग्र रूप से राज्य के निदेशक तत्व के आधार पर ही होता था *(सिद्धांन्तों से भ्रमित न किया जाये)* जैसे कार्यक्षमता, समानता तथा न्याय जो कि कभी भी स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं थे और जिनकी व्याख्या भी समय के प्रभावशील सामाजिक दर्शन पर ही निर्भर करती थी। परिवर्तित घटना चक्र के साथ फिर भी किसी न किसी प्रकार कठोर सिद्धान्त अथवा शर्ते जो गणितीय प्रयोग के लिए सम्भाव्य हैं- द्वारा संभव है कि राज्य के हस्तक्षेप के प्रभाव को सामान्य साम्य अथवा आशिक साम्य द्वारा मूल्यांकित किया जा सकता है। (कराधान, व्यवस्था उधार आदि)।

आरम्भ से ही यह परामर्श देना आवश्यक है कि सार्वजनिक वित्त के आधुनिक सिद्धान्तों के अध्ययन हेतु पैरेटो उत्तमावरथा के ज्ञान की पृष्ठभूमि परमावश्यक है। (इस संदर्भ में एफ.एम. बैटोर का लेख "The Simple Analytics of Welfare Maximization" America Economic Review, 1957,99. 22-59 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण संदर्भ लेख सिद्ध होगा।)

वास्तव में उपर्युक्त विषद विवेचन का अधिकांश भाग ज्ञान के जिस पुन्त से संबंधित है उसे आवंटन शाखा कह कर पुकारते है। *नवकल्याणवादी अर्थशास्त्र* के प्रचण्ड प्रभाव में जब तक साधन आवंटन का नमूना पैरेटो सिद्धान्त से अभिभूत है, जिसका आशय है, प्रदत्त संसाधन आवंटन जब तक लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कि किसी को हानि न हो। उसे कम उपयोगी स्तर तक धकेले

बिना वास्तव में ऐसी अवस्था में वहाँ काई तार्किक आवश्यकता नहीं है आय के वितरण पर विचार करने की अथवा सामाजिक न्याय की जिसे सार्वजनिक वित्त में एक स्वतंत्र घटक अथवा कार्य-सूची घटक माना जाये। आय वितरण से सम्बन्धित परिचर्चा इष्टतमकरण अभ्यास पर आधारित है जहाँ आय को शुद्ध रूप से एक मात्र उपयोगिता संतुष्टि के रूप में लिया गया है। इस प्रकार पैरेटो नमूने के प्रयोग का एक खेद-जनक परिणाम सार्वजनिक वित्त के सिद्धान्त में एक सापेक्ष अवनति रहा है- "आय वितरण" जिसका परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के विचारों में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है- लेकिन फिर भी सन् 1971 ई. को राल्स बी. के (न्याय-सिद्धान्त के पदार्पण) Theory of Justice मुख्य धारा में सामाजिक न्याय प्रदान करने हेतु कुछ प्रयास किए गये हैं। परन्तु इस प्रकार के प्रयास अभी भी परीक्षण प्रकृति के ही है और अभी विषय की पाठ्य पुस्तक का प्रमुख अंग बनना 1 मसग्रेव आर.ए. तथा मसग्रेव पी.वी. – Public Finance Theory and Practice, 1985 उपर्युका दो शाखाऐं आवंटन तथा आय वितरण प्राय: व्यष्टिगत सार्वजनिक वित्त के नाम से पुकारे जाते है जैसा कि स्पष्ट भी होता है जहाँ कि विश्लेषणात्मक ढाँचा कतिपय आदर्श, तथ्य, सिद्धान्त एवं वास्तविकताओं पर टिका है -यह अर्थशास्त्र के अध्ययन की एक आदर्श (पहुँच) प्रक्रिया है। व्यष्टिपर अर्थशास्त्र से समष्टिपरक सार्वजनिक वित्त की ओर परिवर्तन करना सर्वदा सरल नहीं है क्योंकि इस प्रकार की अनेक अन्य धाराऐं भी प्रचलित हैं। समय-समय पर एक विद्यार्थी की यह दूरदर्शिता होगी कि इन दो अंशों को विशिष्ट अस्तित्व के रूप में मनन करें और साथ ही इनके एकीकरण तथा समन्वय हेतु भी प्रयत्नशील रहे। (अर्थशास्त्रियों को अभी समष्टिपरक अर्थशास्त्र के व्यष्टिमूलक तथ्यों का अन्वेषण करना है) समष्टिपरक सार्वजनिक वित्त अथवा स्थिरीकरण शाखा के अन्तर्गत हमारा सम्बन्ध राज्य की समग्र आय के उपभोग, समग्र व्यय, बजट घाटा, सार्वजनिक ऋण इत्यादि से है जिनका उपयोग समष्टिपरक आर्थिक उद्देश्यों की भूमिका हेतु किया जाता है जैसे आर्थिक स्थिरता, पूर्ण रोजगार, आर्थिक विकास आदि। और इसी आशय से राजकोषीय नीति शब्द का सामान्य रूप से प्राय: प्रयोग किया गया हैं। आर्थिक नीति के उद्देश्यों के विकास हेतु, कीन्स के अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में बहुत ही दृढ़ता एवं विश्वासपूर्वक समस्त बजट तंत्र को एक क्रियाशील यंत्र-रचना की भांति प्रयुक्त करने के औचित्य पर बल दिया है। अब राजकोषीय नीति किसी भी अवस्था में तटस्थ, निक्रिय और पूर्णतया हस्तक्षेप विहीन हो मूल-दर्शी नहीं रह सकती। अमरीकी अर्थशास्त्री एपी. लर्नर तथा एएच. हेन्सेन ने कार्यशील-वित्त और क्षतिपूरक वित्त जैसी शब्दावली की संरचना की जिनसे कीन्स द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने हेतु ही ध्वनि प्रतिध्वनित होती है और कीन्स के प्रयासों का केन्द्र बिन्दु स्पष्ट होता है। किसी भी राजकोषीय माध्यम का स्तर उसकी विषय-सामग्री और उपकरण उनकी प्रभावशीलता के आधार पर ही निर्धारित होने चाहिये ताकि अपेक्षित उद्देश्यों अथवा नीतिगत लक्ष्यों को सहज रूप से प्राप्त किया जा सके। (कराधान,सार्वजनिक ऋण,सार्वजनिक व्यय अथवा राजकीय बचतें आदि विषय-सामग्री के स्वरूप है) भले ही आज यह समस्त उपकरण बहुत ही साधारण प्रतिध्वनित होते हो परन्तु यह सभी कुछ परम्परावादी रूढि प्रधान सार्वजनिक वित्त अथवा वित्त के मूल सिद्धान्तों से मौलिक रूप में आमूल चूल पलायन है। इसके अतिरिक्त कीन्स के मौलिक विचारों को ही आगे विकसित किया गया है।

ऐसे विकासों की प्रक्रिया में संतुलित बजट गुणांक एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसे हेवाल्मो गैल्डिग प्रमेय के नाम से भी पुकारा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक संतुलित बजट को सदृढ़ वित्त

के प्रणेताओं ने भी एक पवित्र आधार माना हैं। इस प्रकार एक संतुलित बजट का अर्थव्यवस्था पर एक शुद्ध विस्तारमूलक प्रभाव पडेगा। इस सिद्धान्त ने राजकोषीय नीति के समष्टिमूलक समायोजनों को बहुत ही लचीला स्वरूप प्रदान किया है।

मूलरूप में समष्टिमूलक सार्वजनिक वित्त आवश्यकरूप से कीन्स की इन विशेषताओं को ही आत्मसात किये हुए है। साथ ही इसकी वह निर्बलताऐं भी उभर कर आती है। जब यह भारत जैसे विकासोन्मुख देशों की समस्याओं का विश्लेषण करता है।

एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करने की प्रवृति पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है और विकासोन्मुख देशों की वास्तविकताओं तथा तदनुसार आवश्यकताओं पर आधारित सिद्धान्त तथा व्यवहार के अध्ययन में बहुत सुधार की आवश्यकता है। सन् 1988 के विश्व बैंक के प्रतिवेदन को जिस प्रकार व्यक्त किया गया है वह एक ओर सार्वजनिक वित्त और विकास के सम्बन्ध के विकृत स्वरूप को प्रकट करते हैं। साथ ही दूसरी ओर सार्वजनिक वित्त आर्थिक नीतियों के खोखलेपन को उजागर करते हैं।

सार्वजनिक वित्त विकास के मार्ग का सव्रूप निर्धारण करता है। एक ओर तो यह समग्र साधन उपयोग और वित्तीय स्वरूप की मौद्रिक नीति तथा विनिमय दर नीति, भुगतान शेष के बहु आयामी प्रभाव, विदेशी ऋण के जमाव तथा मुद्रा प्रसार की दर, व्याज एवं विनिमय आदि का स्वरूप निर्धारण करता है। साथ ही दूसरी ओर, सार्वजनिक व्यय, कर, उपभोक्ता व्यय तथा ऋण, उत्पादन तथा उपभोक्ता व्यवहार को भी प्रभावित करता है। यह अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति तथा आय के वितरण को भी प्रभावित करता है। प्रतिकूल भुगतान शेष अभिशाप, और विदेशी ऋण जटिल समस्याऐं दूरदर्शिता हीन राजकोषीय नीति के कारण ही उत्पन्न होते हैं। इन सबका हल सर्वदा ही प्राय: सार्वजनिक व्यय में कटौती और अतिरिक्त आय साधन जुटाने के मिश्रण के रूप में प्रकट होता है। राजकोषीय नीति के माध्यम से प्रयुक्त असावधान मितव्ययता दीर्घकालीन भयंकर अवसाद की स्थिति भी पैदा कर सकता है और इस प्रकार कैसे भी निर्धनों पर वो अनुपात असह्य भार डाला जा सकता है। इसी कारण, सार्वजनिक वित्त के मूलभूत तत्व अथवा उपकरणों (अवयवों) का उतना ही महत्व है जितना कि समष्टिपरक आर्थिक सन्तुलन हेतु सार्वजनिक-व्यय के आवंटन का।

जैसे-जैसे आप सम्बन्धित इकाइयों में अध्ययनरत होंगे वैसे-वैसे समकालीन सार्वजनिक वित्त के स्वरूप में जिज्ञासामय अर्थपूर्ण प्रेरणामूलक प्रवृत्ति आभासित होगी। यदि आपने विषय सामग्री के पूर्ण स्वरूप को केन्द्र बिन्दु मानकर अध्ययन किया तो आपके प्रयास भी भली प्रकार पुरस्कृत होंगे।

संदर्भगन्ध

Houghton R.W.(ed) Public Finance, 1973

Myrdal, G. The Political Elements in the Development of Economic Theory, Chapter 7, 1953/1971

Musgrave R.A. & Musgrave P.B. Public Finance in Theory and Practice 1985/1989

Herbert Stein, “Fiscal Policy: Overview” in International Encyclopedia in Social Sciences, Vol. 5, 1968/1972

Peacock,A and Shaw, G.K. The Economic Theory of Fiscal Policy 1976.

World Bank, World Development Report 1988.

प्रथम इकाई में विभिन्न राजकोषीय प्रणालियों में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र अथवा राज्य की बढती भूमिका की विरतृत व्याख्या प्रस्तुत करना है। जिस प्रकार निजी क्षेत्र संसाधन आवंटन में अधिकतम लाभ प्राप्त करता है उसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र भी सीमित संसाधनों का विभिन्न उपयोगों में इस प्रकार आवंटन करता है कि अधिकतम सामजिक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस इकाई में राज्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के कारणों का विवेचन करने के बाद विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में राज्य की भूमिका की चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 2 में सार्वजनिक अथवा लोक अर्थशास्त्र के उद्देश्य व अंग की चर्चा की गई है। लोक अर्थशास्त्र का उद्देश्य सरकार की आय, व्यय एवं बजट नीति का विस्तृत अध्ययन करना एवं राजकोषीय नीति का पूर्ण रोजगार एवं रथायित्व के लिए प्रयोग के बारे में ज्ञान प्राप्त करना है। बजट नीति के तीन प्रमुख अंग-आवटन,पुर्नवितरण व स्थिरीकरण है। इस इकाई के खण्ड 24 में बजट उसकी संरचना व अवधारणा की चर्चा की गई है।

इकाई तीन में सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त विषय पर चर्चा की गई है। इस इकाई में पेरेटो अनुकूलतम की धारणा को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त आंशिक संतुलन की स्थिति में निजी एवं सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण एवं कुशल साधन आवंटन के सामान्य संफ्टन माडल का परीक्षण किया गया है।

ईकाई संख्या 4 में बाह्यताएं एवं मिश्रित वस्तुओं की चर्चा की गई है। इसमें गुणाधारित वस्तुओं की कीमतें एवं उपयोगिता की अन्त: पररपर तुलना की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

अन्तिम इकाई में लोक चयन सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई संख्या 6 एवं 7 में सार्वजनिक व्यय एवं इसकी वृद्धि सम्बन्ध में प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं सार्वजनिक व्यय के मूल्यांकन की कसौटियों का वर्णन किया गया है। जबकि इसके बाद की दो इकाइयों में सार्वजनिक उपक्रमों की चर्चा की गई है।

सार्वजनिक व्यय की विभिन्न आधारों पर परिभाषित किया जाता है। जैसे केन्द्र एवं स्थानीय सरकारों का व्यय, सरकारों का व्यय एवं राष्ट्रीय बीमा कोष से व्यय अथवा सार्वजनिक निकायों का व्यय इसके साथ ही सार्वजनिक व्यय का निम्नांकित आधारों पर विश्लेषण किया जाता सकता है (i) व्यय करने वाली संस्था केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, स्थानीय निकाय (ii) चालू राजस्व व्यय वस्तुओं एवं सेवाओं पर व्यय, हस्तान्तरण भुगतान, पूँजीगत व्यय विनियोग (iii) विभिन्न मदों पर व्यय-रक्षा, कृषि, सामाजिक सेवाएं उद्योग आदि।

सार्वजनिक ऋण के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रारम्मिक, परम्परावादियों ने "स्वतत्रं छोडो'' (Laissez-faire) के सिद्धान्त का समर्थन किया जो राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप पर आधारित है। इस सिद्धान्त के समर्थक अर्थशास्त्री सरकारों को फिजूलखर्च करने वाली मानते हैं क्योंकि ये दूसरों का रूपया व्यय करते हैं। अत: सरकार को अपने खर्चे एवं करारोपण की राशि को न्यूनतम रखना चाहिए। इसके बाद व्यक्तिगत चयन सिद्धान्त (Individual Choice Theory) में सार्वजनिक क्षेत्र में लिए जाने वाले

सामूहिक निर्णयों पर बल दिया गया। अर्थशास्त्री फरेरा ने (1850) में व्यक्तिगत चयन अथवा इच्छा को सामूहिक चयन का आधार मानते हुये इस सिद्धान्त का समर्थन किया इसका अभिप्राय यह है कि सरकारी हस्तक्षेप एवं सार्वजनिक व्यय व्यक्तिगत रूचियों अथवा प्राथमिकताओं का सामूहिक रूप है । सार्वजनिक व्यय के क्षेत्र में एक अन्य सिद्धान्त अधिकारवादी धारणा है इसमें यह मान्यता ली गई कि निर्णय सत्ताधारी दल के द्वारा लिए जाते हैं। सार्वजनिक व्यय आवश्यक है इस धारणा को स्वीकार करते हुये अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय के अनुकूलतम स्तर की जानने के लिए अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए। अथशास्त्री इमेलसेक्स (Emal sax) ने सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर सार्वजनिक वित्त का सिद्धान्त प्रतिपादित किया इस सिद्धान्त के साथ मुख्य रूप से स्टनले जेवन्स (Stanley Jevons) जो कि एक अंग्रेज अर्थशास्त्री है एवं कार्ल मेजन्र (Karl Menger) जो कि एक आरिद्रयन अर्थशास्त्री है, के नाम जुडे । फ्रांस के लियो वालरा (Leo Walras) तथा जर्मनी के हरमेन गोसन (Herman Gossen) ने इसे स्वतंत्र रूप से विकसित किया। यह सिद्धान्त सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जिस प्रकार अधिक वस्तुओं का उपयोग उत्तरोत्तर घटती हुई सीमान्त उपयोगिता देता है, उसी प्रकार मुद्रा की बढती मात्रा के साथ भी उत्तरोत्तर उपयोगिता घटती जाती है परन्तु अधिक मुद्रा के साथ अधिक आर्थिक कल्याण जुडा है।

यह सिद्धान्त राज्य के द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं एव सेवाओं के उपयोग से प्राप्त संतुष्टि एवं करों के रूप में चुकाई गई राशि के लाभ की तुलना करता है। इसके लिए न केवल व्यक्तिगत संतुष्टि एवं त्याग की जानकारी आवश्यक है बल्कि समष्टिगत संतुष्टि एवं त्याग की जानकारी भी आवश्यक है। इस प्रकार का कोई तरीका अभी खोजा नहीं जा सका है अत: इस सिद्धान्त का केवल शैक्षणिक महत्व है। सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त व्यक्तियों के व्यवहार पर कुछ रोशनी डालता है । हम चाहे प्रत्येक सार्वजनिक व्यय की उपयोगिता एवं प्रत्येक कर के त्याग की तुलना न करे परन्तु करारोपण के समग्र भार एवं सार्वजनिक व्यय के समग्र कल्याणकारी प्रभावों की जानकारी हमें रहती है एवं एक सीमा के बाद हम अधिक कर अधिक व्यय पसन्द नहीं करते हैं।

एक अनुकूलतम व्यय का स्तर वह है कि जहां व्यय से व्यक्तियों को प्राप्त समग्र उपयोगिता करों से किए गए समग्र त्याग के बराबर हो। परन्तु सिद्धान्त एवं व्यवहार में काफी अन्तर है। किसी देश में सार्वजनिक व्यय का स्तर राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से प्रभावित होता है।

सार्वजनिक व्यय के बारे में एक अन्य सिद्धान्त वोट सिद्धान्त (The Ballot box theory) है। एक प्रजातान्त्रिक देश में सरकार बनाने का अधिकार जनता के हाथों में होता है। जनता की इच्छा उनके द्वारा दिए गये वोट से स्पष्ट होती है। सरकार बहुमत की इच्छाओं का प्रतीक है। जो राजनीति दल विजयी होता है उसे जनता की इच्छाओं को पूरा करने का बहुमत प्राप्त होता है। परन्तु चुनाव किसी एक मुद्दे पर नहीं होता अत: वोट सिद्धान्त को स्वीकार करने में कठिनाई है।

प्रो. एडाऊन्स, जो जेम्स बुकानन (J.M.Buchanan) एवं जी टुलाक (G.Tullock) आदि अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय का सकारात्मक सिद्धान्त (The Positive Theory of government expenditure) प्रतिपादित किया है । इसे सत्ता में बने रहने का सिद्धान्त (Clinging to power theory) के रूप में भी देखा जाता है । एक प्रजातान्त्रिक देश में सरकारें अपना जीवनकाल बढाना चाहती है जबकि जनता अथवा वोट अपने कल्याण को अधिकतम करना चाहते है। सार्वजनिक व्यय

उन्हीं मदों पर किया जाएगा जिन्हें वोटर अधिक पसन्द करते हैं अन्य मदों पर करारोपण करके साधन संग्रह किया जाता है।

सार्वजनिक व्यय पिछले दशकों में तेजी से बढा है इस सम्बन्ध में एडोल्थ वैगनर (Adolf Wagner) जो कि एक जर्मन अर्थशास्त्री है विश्व के प्रमुख देशों के सार्वजनिक व्यय के अध्ययन के बाद एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे वैगनर सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त प्रो.ए.टी. पीकाक (A.T.Peacock) तथा जे वाइजमैन (J.Wiseman) ने एक अन्य सिद्धान्त विचलन सिद्धान्त (Displacement Theory) के नाम से प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने यह रचीकार किया कि सार्वजनिक व्यय किसी संकट के समय झटके के साथ बढ़ता है परन्तु संकट समाप्ति के बाद वह अपने मूल स्तर पर पुन: नहीं लौट सकता। परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय सीढीनुमा रूप से बढता है। अच्छे सार्वजनिक व्यय के निर्णयों में यह आवश्यक होता है कि सापेक्षिक प्रयोजनाओं की जानकारी हो। एवं उन्हीं प्रायोजनाओं पर अधिक व्यय किया जाय जो अधिक लाभकारी हो। प्रायोजनाओं के चयन में निर्णायक नियम भिन्न-भिन्न होते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता हैं कि बजट लोचशील है या निश्चित है। क्या प्रायोजनाएं विभाज्य है अथवा अविभाज्य। इस सम्बन्ध में लाभ-लागत के आधार पर प्रायोजनाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

इकाईसंख्या 8 एवं 9 में सार्वजनिक उपक्रमों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। प्रारम्भ में सार्वजनिक उपक्रमों का अर्थ एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक उपक्रमों की भूमिका की चर्चा की गई है। इसके बाद सार्वजनिक क्षेत्र में प्रोजेक्ट का चुनाव करने सम्बन्धी विभिन्न कसौटीयों का वर्णन किया गया है। यथा पूँजी आवर्त कसौटी, सामाजिक सीमान्त उत्पादिता, कसौटी, पुनर्निवेश कसौटी, काल श्रेणी की कसौटी एवं लागत लाभ कसौटी प्रमुख है।

सार्वजनिक उपक्रमों की कीमत नीति की चर्चा इकाई संख्या 9 में की गई है। इसमें औसत लागत सिद्धान्त, शून्य लाभ-शून्य हानि सिद्धान्तलागत जमा कीमत सिद्धान्त,प्रतिबन्धित कीमत सिद्धान्त, लाभ प्रेरित कीमत सिद्धान्त, लागत से कम कीमत सिद्धान्त विभेदात्मक कीमत सिद्धान्त, आयात कीमत समता सिद्धान्त एवं प्रतियोगी कीमत सिद्धान्त की चर्चा की गई है। प्रतिबन्धित कीमत सिद्धान्त का अनुसरण देश हित को ध्यान में रखकर सरकारें करती है।

वास्तव में सरकार को ऐसी विवेकपूर्ण नीति अपनानी चाहिए जिससे आधिक्य के सृजन के साथ देश निर्यातोन्मुख एवं स्वावलम्बी हो।

ईकाई संख्या 10 में विभिन्न सार्वजनिक व्यय का वर्णन किया गया है। 'कर' किसी नागरिक द्वारा राज्य सरकार को किया गया अनिवार्य अंशदान है इसके बदले में किसी प्रत्यक्ष लाभ की गारन्टी नहीं दी जाती। करों के रूप में प्राप्त राजस्व जनकल्याण के सामान्य कार्यों एवं प्रशासनिक खर्चो को पूरा करने के लिए व्यय किया जाता है। सरकार जनता पर करों का कितना बोझ डाले इस बारे में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। यह भी सही है कि प्रशासन के समस्त खर्चो का बोझ जनता पर नहीं डाला जा सकता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कौटिल्य के विचारों से राजा को जनता से कर उसी प्रकार इकट्ठा करना चाहिए जैसे मधुमक्खी फूलों से शहद इकट्ठा करती है। अर्थात कर चुकाते समय नागरिकों को परेशानी न हो। करारोपण मनमाने तरीके से नही होना चाहिए। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एड स्मिथ ने एक अच्छी कर प्रणाली के लिए चार सिद्धान्तों का सुझाव दिया है वे है: (1.) समानता का सिद्धान्त (2.) निश्चितता का सिद्धान्त

(3) सुविधा का सिद्धान्त एवं (4.) मितव्ययता का सिद्धान्त । इराके अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने समय-समय पर करारोपण के अलग-अलग सिद्धान्तों का विवेचन किया है इन सभी सिद्धान्तों की चर्चा इस इकाई में की गई है।

इसके पश्चात् इस इकाई में करों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गई है, इसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर, अनुपाती, प्रगतिशील, प्रतिगामी एवं अधोगमी कर, विशिष्ट एवं मूल्यानुसार कर, एकल एवं बहुल कर आदि प्रमुख है। इन सभी प्रकार के गुणों एवं दोषों की चर्चा भी इस इकाई में की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर के अर्थ, इसकी विशेषताओं एवं एक विकासशील अर्थव्यवस्था में कर प्रणाली के लक्ष्यों को समझ सकेंगे।

इकाई संख्या 11 में पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना का विस्तार से विवेचना किया गया है। करारोपण वैज्ञानिक आधारों पर किया जाना चाहिए जिससे विभिन्न समूहों द्वारा किया गया त्याग बराबर हो। करारोपण में न्याय के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये है (i) वित्तीय सिद्धान्त, (ii) लाभ का सिद्धान्त, (iii) करदान योग्यता का सिद्धान्त। प्रस्तुत इकाई में इन विभिन्न सिद्धान्तों का विरतृत विवेचन किया गया है। यद्यपि इनमें कौन सा सिद्धान्त श्रेष्ठ है इस बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता फिर भी विद्वानों की इस बात पर सहमति है कि करदान योग्यता के अनुसार ही कर निर्धारित होना चाहिए एवं इसे व्यय करते समय "अधिकतम कल्याण" के लक्ष्य को प्राप्त करने पर बल दिया जाना चाहिए।

अर्थशास्त्र साधनों के मितव्ययतापूर्ण उपयोग का विज्ञान है। यह तभी सम्भव है जब साधन आवंटन श्रेष्ठ हो किसी अर्थव्यवस्था में साधन-आवंटन कुशलतापूर्वक किस प्रकार किया जाता है इस बारे में अध्ययन इकाई संख्या 12 की लेवाथन हाईपोथीसिस एंव निक्सनेन मॉडल, समता और दक्षता में विनिमय है। सर्वप्रथम एक ऐसी अर्थव्यवस्था में रेखाचित्र के आधार पर साधन आवंटन की व्याख्या की गई है जिसमें एक ही व्यक्ति एवं उत्पादन इकाई है। इसे सरलतम रूप से समझने के उद्देश्य से दो अदाओं एवं दो प्रदाओं की मान्यता ली गयी है। इस इकाई में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पेरेटो की कसौटी की व्याख्या की गई है। साधन आवंटन की वह रिथति कुशलतम होती है जिसमें एक व्यकि की संतुष्टि में ह्रास किये 'बिना किसी अन्य व्यक्ति की संतुष्टि में अभिवृद्धि न की जा सके। इस इकाई में विभिन्न बाजार स्थितियों का साधन आवंटन पर प्रभाव की चर्चा करने के बाद अन्त में करों के प्रभावों की व्याख्या भी की गई है।

इकाई संख्या 13 में भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकनके बारे में चर्चा की गई है। क्या कर उसी व्यक्ति द्वारा चुकाया जा रहा है जिस पर लगाया गया है' अथवा क्या वह कर की राशि को अन्य व्यक्तियों से वसूल कर रहा है? अर्थात क्या वह कर विवर्तित (Shift) कर सकता है? एक अच्छे वित्त मंत्री के लिए इन प्रश्नों का सही-सही उत्तर पाना जरूरी है। राजस्व के दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष मोद्रिक भार को ही करापात (Incidence of Tax) करते है। जो व्यक्ति कर का भुगतान करता है उस पर कर का दबाव अथवा कराधान (Impact) पडता है। करापात कर का अन्तिम भार है। कराघात (Impact) कर का प्रारम्मिक भार है। इस अन्तर को समझ लेने के बाद कर विवर्तन के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। करापात का सामान्य एवं आंशिक संतुलनकी दशा में अलग-अलग किया गया है। प्रस्तुत इकाई में करापात एवं कर विवर्तन के सिद्धान्तों जैसे सकेन्द्रण सिद्धान्त, प्रसरण सिद्धान्त एवं आधुनिक

सिद्धान्त की चर्चा की गई है। इकाई के अन्त में उन तत्वों की विवेचना भी की गई है जिन पर कर भार अथवा कर विवर्तन निर्भर होता है।

इस खण्ड की अन्तिम इकाई भी इसी विषय से मिलती जुलती है। इसमें राजकोषीय आपात की चर्चा की गई है। सरकार का व्यय अधिक होने के परिणामस्वरूप उसे अपने व्ययों की आपूर्ति अन्य स्त्रोतों से करनी पडती है। राजकोषीय आपात को सूक्ष्म आपात एवं वृहद आपात के रूप में अलग-अलग देखा गया है। व्यक्तिगत आय परिवर्तन उत्पन्न करने वाले आपात 'सूक्ष्म आपात कहते है। सूक्ष्म आपात कई दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करते है। इसके परिणाम स्वरूप आय उत्पादन एवं रोजगार के स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यापक अथवा 'वृहद आपात' कहते है। आपात के वैकल्पिक विचारों का विवेचन भी इस इकाई में किया गया है। इकाई के अन्त में 'व्यय आपात' की चर्चा भी की गई है। इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विभिन्न राजकोषीय उपायों के दूरगामी परिणामों का विवेचन करने में सक्षम हो जाएंगे।

भारतीय कर ढाँचा इसके क्रमिक विकास एंव इसकी प्रकृति एवं प्रवृति का परिचय प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान कर ढांचा मुख्य रूप से अंग्रेजों की ही देन है तथा इसका विशेष श्रेय भारत सरकार के 1935 के अधिनियम को है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सार्वजनिक व्यय में हुई आशातीत वृद्धि के कारण करों का महत्व और भी बढ़ गया। साधन गतिशीलता के अन्य माध्यमों की अपेक्षा करों में कम लागत आने के कारण इनका सर्वाधिक महत्व है। करों के माध्यम से बचतों को प्रोसाहित करने का भी प्रयास किया जाता है। साधन आवंटन के क्षेत्र में भी करों का विशेष महत्व है। भारत में प्रति व्यक्ति कर आय न्यून होने के साथ ही अल्प मुद्रीकरण, लेखों का अभाव, कर उत्तरदायित्व के सोच के अभाव एवं दोषपूर्ण कर प्रशासन के कारण वचन अत्यधिक है।

भारत में करों के ढांचे में चार लक्षण विशेष रूप से दृष्टि गोचर होते हैं इनमें प्रत्यक्ष करों के अंशदान में निरन्तर गिरावट, कर आय में कृषि का नगण्य अंशदान, चुंगी का महत्व तथा राज्य एवं केन्द्र शासित राज्यों में अंश में धीमी वृद्धि महत्वपूर्ण है। बड़े करों में व्यक्तिगत आयकर आशानुकूल सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। परन्तु आर्थिक सुधारों के युग में करों की सीमान्त दरों में कमी एवं कर प्रक्रिया के सरलीकरण से प्रत्यक्ष करों में आयकर का हिस्सा बढ रहा है। राजस्व के क्षेत्र में निगम कर की उपलब्धियां भी दोषपूर्ण है। उत्सदन शुल्क एवं सीमा शुल्कों में भी सरलीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है।

राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए विक्रय कर की भूमिका राजस्व के क्षेत्र में सराहनीय रही है। बहुत सी राज्य सरकारें, करों के क्षेत्र में आपसी प्रतिस्पर्धा करती है इसका निराकरण आवश्यक है।

इकाई संख्या 21 में भारतीय सार्वजनिक वित्त की चर्चा की गई है। सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण एवं सार्वजनिक ऋण के अन्य मुद्दे भी इस इकाई में उठाए गए है। सार्वजनिक ऋण समग्र संसाधन आवंटन, मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों से प्रभावित होकर देश के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सार्वजनिक ऋण की बढ़ती देनदारियां अब चिन्ता का विषय है, परन्तु सार्वजनिक ऋण को निजी ऋण के समान नहीं मानना चाहिए। क्योंकि जहाँ सरकार के पास ऋण चुकाने की असीमित शक्ति है, निजी क्षेत्र की शक्ति सीमित है।

इकाई सख्या 22 में निजी आय कर - कर योग्य आय, कर आधार, कर मुक्त आय तथा अन्य कर छूटे की चर्चा की गई है। सार्वजनिक ऋण के संस्थापित सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अपने चालू खर्चा की पूर्ति के लिए संसाधन करारोपण के द्वारा एकत्रित करने चाहिए। पूंजीगत परियोजनाओं के लिए संसाधन ऋणों द्वारा जुटाए जा सकते है। संस्थापित अर्थशास्त्रियों अथवा परम्परावादियों का विश्वास बाजार अर्थव्यवस्था में था वे सरकारी हस्तक्षेप की अवांछनीय मानते थे। क्रियात्मक वित्त के समर्थक अर्थशास्त्री राजकोषीय नीति का समर्थन अर्थव्यवस्था में स्थायित्व बनाए रखने के लिए करते हैं।

इकाई संख्या 23 में सार्वजनिक ऋण का अर्थशास्त्र पर चर्चा की गई है। इनमें आन्तरिक एवं बाहय ऋण भार, सार्वजनिक ऋण भार एवं भावी संतति तथा सार्वजनिक ऋण शोधन पद्धतियों मुख्य है।

इकाई 24 सार्वजनिक ऋण संस्थापित सिद्धान्त, क्रियात्मक एवं क्षतिपूरक क्ति की चर्चा की गई है। विकसित एवं विकासशील देशों की समस्याएं भिन्न-भिन्न हैं। विकासशील देशों की समस्या संसाधनों की कमी, आय एवं धन के वितरण में विषमता एवं स्फीतिकारक दबाव है। जबकि विकसित देशों की समस्या आर्थिक स्थायित्व है। सरकारें राजकोषीय नीति को एक सक्रिय व प्रभावी यंत्र के रूप में प्रयोग करे। इस इकाई में राजकोषीय नीति तथा साधन गीतिशीलता की चर्चा भी की गई है। राजकोषीय नीति देश में आर्थिक विकास की दर को भी प्रभावित करती हैं। नीति निर्माताओं को अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन विकास लक्ष्यों में उचित सामजंस्य रखना चाहिए।

इकाई संख्या 25 में आन्तरिक व बाह्य सार्वजनिक ऋणों के मुद्दे का वर्णन है। इसमें योजना के वस्तुगत लक्ष्य एवं वित्तीय लक्ष्यों एवं इनमें आवश्यक सामंजरय का चर्चा की गई है। इस इकाई में आयोजना एवं आयोजन भिन्न व्यय के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है। भारतीय योजनाओं की वित्त व्यवस्था के बारे में चिन्ताजनक पहलू राजस्व खाते से ऋणात्मक्र प्राप्तियां है एवं सार्वजनिक च्छणों पर निर्भरता आवश्यकता से अधिक है। विदेशी ऋणों पर हमारी निर्भरता बढती जा रही है यह चिन्ताजनक है। सरकार को वित्त पोषण अपने प्रयासों में आयोजना भिन्न मदों पर व्यय में बचत के साथ-साथ सार्वजनिक उद्यमों से लाभ प्राप्त कर संसाधन जुटाने चाहिए।

इस खण्ड की अन्तिम इकाई संख्या 26 में विकास के लिए राजकोषीय नीति : साधन गतिशीलता-विकास, वितरण तथा मूल्यों पर प्रभाव की चर्चा की गई है। इस इकाई में सर्वप्रथम बजटीय घाटे के अर्थ से आपका परिचय कराया जाएगा। इस इकाई में सार्वजनिक ऋण की विभिन्न अवधारणाओं को विरत्तार से समझाया गया है। इसके बाद भारत में घाटे का माप पर चर्चा की गई है। इस इकाई में आपको राजस्व घाटा, पूंजीगत घाटा, बजटीय घाटा एवं राजकोषीय घाटा आदि अवधारणाओं से परिचित कराया गया है। अन्त में भारत में बजटीय घाटे की मुख्य प्रवृतियों की चर्चा की गई है।

इस प्रकार इस अन्तिम खण्ड में भारत में राजस्व की ज्वलंत समस्याओं से आपका परिचय कराया गया है। एवं योजनाओं की वित्त व्यवस्थाओं में सार्वजनिक ऋण की बढती भूमिका एवं बढते घाटे के सैद्धान्तिक पहलुओं की जानकारी दी गई है ताकि इनके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओ पर आप वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर सकें।

इकाई 1

विभिन्न राजकोषीय प्रणालियों में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण

Analysis of State's Economic Actions in Various Fiscal Systems

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 राज्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के कारण

1.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में राज्य की आर्थिक भूमिका

1.3.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था

1.3.2 सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में संसाधन आवंटन

1.3.3 राज्य की आर्थिक भूमिका

1.3.4 केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1.7 अभ्यासों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

सार्वजनिक अर्थशास्त्र की इस प्रथम इकाई का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र अथवा राज्य की बढ़ती आर्थिक भूमिका की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करना है। वर्तमान युग में विवाद का विषय सार्वजनिक क्षेत्र अथवा निजी क्षेत्र नहीं है। यह तो सर्वविदित ही है कि निजी क्षेत्र अर्थव्यवस्था में उपलब्ध सीमित संसाधनों का विभिन्न वैकल्पिक उपयोगों में इस प्रकार आवंटन करना है कि प्राप्त लाभ अधिकतम हों सके। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए भी उपलब्ध संसाधन सीमित हैं एवं आवश्यकताएं अनन्त हैं। इन संसाधनों का आवंटन इस प्रकार होना चाहिए कि सामाजिक कल्याण अधिकतम हों सके। अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र को साधन आवंटन में निजी क्षेत्र की कुशलता एवं लाभदायकता प्राप्त करनी चाहिये। विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में सार्वजनिक क्षेत्र अपने इस दायित्व

का कहाँ तक निर्वाह कर पाता है यही जानने के लिए यहाँ हम इन विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में संसाधन आवंटन एवं राज्य की भूमिका की चर्चा करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

(i) यह जान सकेंगे कि विभिन्न राजकोषीय (आर्थिक) प्रणालियों में सार्वजनिक क्षेत्र की क्या भूमिका है?

(ii) समझ सकेंगे कि इन कार्यों में वर्तमान समय में क्या परिवर्तन आ रहे हैं? एवम

(iii) राज्य की क्रियाओं में वृद्धि के लिए उत्तरदायी तत्वों का विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में विश्लेषण कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था में मुख्य समस्या सीमितता की है। किसी भी समाज के पास उत्पादन के संसाधन सीमित होते हैं और आवश्यक्ताएं अनन्त होती हैं। संसाधन वैकल्पिक प्रयोग वाले होने हैं जिन्हें विभिन्न प्रयोगों में लाकर उत्पादन किया जा सकता है। आवश्यकताओं में भी चयन करना पड़ता है कि कौन-कौन सी आवश्यकताएं अति आवश्यक है। प्राथमिकता के आधार पर उनका उत्पादन व पूर्ति करने के लिए संसाधनों का चयन करना पड़ता है। आर्थिक उत्पादन कितनी मात्रा में एवं कैसी स्थिति में किया जाए इसके लिए आर्थिक प्रणाली को उत्पादन प्रणाली में आवश्यक रूप से सामंजस्य पैदा करना पड़ता है। एक आर्थिक व्यवस्था उत्पादन के तरीकों को तय करती है जिससे मांग पूरी की जा सके। संस्थागत तरीकों से वितरण क्रिया को सुचारू रूप से सम्पन्न किया जाता है।

आधुनिक समाज में वितरण के निर्णय दो संस्थाओं - बाजार (निजी क्षेत्र) एवं सरकार (सार्वजनिक क्षेत्र) द्वारा लिये जाते हैं। इन दोनों ही संस्थाओं के अलग-अलग गुण एवं विशेषताएं है।

बाजार व्यवस्था में उत्पादकों को उद्योगों का संचालन करने की, उद्योग में प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतंत्रता होती है। सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है। निजी क्षेत्र के उद्योगों में निवेश करने का मुख्य लक्ष्य शीघ्र एवं अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। जबकि सरकार द्वारा निवेश करने का उद्देश्य केवल मात्र लाभ प्राप्त करना नहीं होता है, बल्कि जनता को सुविधाएं प्रदान करना होता है। रक्षा एवं आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराना भी होता है जैसे परिवहन के साधनों का विकास, रक्षा के उपकरणों का विकास, भारी व मूल उद्योगों का विकास, सिंचाई व बाँध निर्माण आदि।

बाजार अथवा पूँजीवादी व्यवस्था में किसी वस्तु के उत्पादन की मात्रा उसकी कीमत द्वारा निर्धारित की जाती है। वस्तु की मांग अधिक होने पर उसकी कीमत व पूर्ति अधिक होगी और मांग कम होने पर उसकी कीमत पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सार्वजनिक व्यवस्था में वस्तु के उत्पादन की मात्रा मांग एवं के सामान्य नियम द्वारा तय नहीं होकर जनता के लिए उसकी उपयोगिता द्वारा निश्चित की जाती है, चाहे उसके उत्पादन में सरकार को हानि ही क्यों न उठानी पड़े।

बाजार तथा पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में उत्पादन साधनों का आवंटन एवं उत्पादित वस्तुओं के वितरण का कार्य कीमत प्रणाली द्वारा सम्पन्न किया जाता है। उन्हीं उपभोक्ताओं को

वस्तुएं उपलब्ध करायी जाती हैं जो कीमत चुका सकें। यदि उपभोक्ता कीमत चुकाने में असमर्थ है तो वह उस वस्तु विशेष के उपभोग से वंचित रह जाएगा। उदाहरणार्थ उपभोक्ता अपनी पसंद का टेलिविजन कीमत चुकाकर बाजार से खरीद सकता है अथवा वह अपनी मन-पसंद का स्कूटर, कार या अन्य कोई वस्तु खरीद सकता है। ऐसी आवश्यकताओं को जिन्हें कीमत चुकाकर संतुष्ट किया जा सकता है हम अर्थशास्त्र की भाषा में व्यक्तिगत आवश्यकताएं कहते हैं। समस्त व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति उपभोक्ताओं के पास उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर होती है। यदि उपभोक्ता के पास वस्तु विशेष के लिए संसाधन उपलब्ध नहीं हैं तो वह उस वस्तु के उपभोग से वंचित रहेगा।

कुछ आवश्यकताएं ऐसी होती है जिन्हें उपभोक्ता कीमत न चुकाने के बावजूद भी संतुष्ट कर सकता है अथवा उन्हें उन वस्तुओं के उपभोग से वंचित नहीं रखा जा सकता। ऐसी आवश्यकताओं को व्यक्तिगत आवश्यकताओं से अलग करने के लिए सार्वजनिक आवश्यकताओं का नाम दिया गया है। इन आवश्यकताओं में मुफ्त में सवारी का आनन्द लेने वाले अथवा फ्री-राइडर की समस्या रहती है। एक उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये सरकार देश की सुरक्षा के लिए व्यय करती है तो इसका लाभ सभी नागरिकों को मिलता है एवं इसके लिए सरकार उपभोक्ताओं से कीमतें वसूल नही कर सकती। इस प्रकार कोई एक उपभोक्ता चाहे वह सुरक्षा के लिए कीमत चुकाए अथवा नहीं उसे सुरक्षा के लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता अर्थात् वह फ्री-राइडर है। इसलिए उन सभी आवश्यकताओं में जिनमें इस तरह के मुफ्त की सवारी का आनन्द लेने वालों की समस्या रहती है कीमत प्रणाली लागू नहीं की जा सकती एवं इनकी पूर्ति सार्वजनिक बजट के माध्यम से करारोपण द्वारा साधन जुटाकर की जाती है। इन आवश्यकताओं को सार्वजनिक आवश्यकताएं कहा जाता है।

कुछ सार्वजनिक आवश्यकताएं ऐसी होती हैं जिनमें उपभोक्ताओं से उपभोग के आधार पर कुछ कीमत वसूल की जा सकती है। ऐसी आवश्यकताओं को मसग्रेव ने गुण-आवश्यकताओं **(merit-wants)** के नाम से संबोधित किया है। इन आवश्यकताओं के लिए सरकार बजट में से अनुदान देती है लेकिन मुफ्त में सवारी का आनन्द नहीं लेने देती और कुछ शुल्क अथवा कीमत वसूल करके इन्हें उपलब्ध कराती है जैसे विश्व-विद्यालयी शिक्षा, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था, विद्युत एवं जल आपूर्ति इत्यादि।

सारांश रूप में हमने आवश्यकताओं को तीन वर्गो में विभाजित किया है- व्यक्तिगत आवश्यकताएं, सार्वजनिक आवश्यकताएं एवं गुण आवश्यकताएं एवम विभाजन का आधार कीमत प्रणाली की क्रियाशीलता अथवा फ्री-राइडर की समस्या का नियंत्रण है।

बोध प्रश्न- 1

1. आवश्यकताओं के विभिन्न प्रकार कौन से है?
2. व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं सार्वजनिक आवश्यकताओं में अन्तर का आधार क्या है?

1.2: राज्य की आर्थिक-क्रियाओं में वृद्धि के कारण:

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि सार्वजनिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए राज्य का हस्तक्षेप अनिवार्य है। पिछली कुछ दशाब्दियों से राज्य के आर्थिक क्रिया-कलापों में लगातार वृद्धि हो रही है। इस संबंध में दो प्रमुख सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किए गये है पहला वैगनर का राज्य के किया कलापों में वृद्धि के नियम एवं दूसरा सिद्धान्त वाइजमैन एवं पीकोक द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों सिद्धान्तों का विस्मृत विवेचन आप इकाई संख्या 6 में करेगें। इस इकाई में इन सिद्धान्तों से आपका संक्षेप में परिचय कराया जाएगा। इससे हम उन परिस्थितियों की चर्चा करेंगे जिनके परिणामस्वरूप राज्य के आर्थिक हस्तक्षेप को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया जाने लगा। आज विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं में राज्य का हस्तक्षेप निरंतर बढ़ रहा है।

परंपरावादी अर्थशास्त्रियों जिनमें एडम-स्मिथ प्रमुख है के मत में राज्य अथवा सरकार को आर्थिक क्षेत्र में न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिये। उन्होंने अपने प्रमुख ग्रन्थ "द वैल्थ ऑफ नैशन्स" में जो सन् 1776 में प्रकाशित हुआ था, राज्य के हस्तक्षेप के लिए कुछ प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख किया। एडम-स्मिथ के मन में सरकार का कार्य बाह्य सुरक्षा एवं आन्तरिक कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना होना चाहिये, इसके अतिरिक्त मूलभूत सार्वजनिक सुविधाओं की करना भी राज्य का उत्तरदायित्व माना गया है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने सरकार के लिए मुख्य रूप से कुशलतम साधन आबंटन का कार्य छोड़ा। जिन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र साधन आवंटन नही करना चाहता हो एवं जो क्षेत्र अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही महत्व के हों उन्हे छोडकर सरकार को अन्य क्षेत्रों में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

परंपरावादियों की इस धारणा का मुख्य कारण बाजार तंत्र की स्वचालित शक्ति में उनका अटूट विश्वास होना था। प्रमुख परंपरावादी अर्थशास्त्री जे. बी. से के बाजार नियम में विश्वास के कारण इनका मत था कि बाजार में अतिरेक मांग अथवा अतिरेक पूर्ति अधिक समय तक नही रह सकती। अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार के बिन्दु पर संतुलन स्तर में रहती है। कीमत एवं मजदूरी की लोचशीलता की शक्तियों द्वारा अल्पकालिक असाम्य को पुन: संतुलन बिन्दु की ओर धकेल दिया जाता है।

केन्ज ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "दी जनरल थियरी" में परंपरावादी अर्थशास्त्रियों द्वारा ली गयी पूर्ण रोजगार की मान्यता को चुनौती दी। केन्ज ने 1930 में विश्व व्यापी आर्थिक मंदी में संस्थापक सिद्धान्तों की अव्यावहारिकता को अनुभव किया। केन्ज के मत में अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार से नीचे के स्तर पर भी संतुलन में हो सकती है। उसनें परंपरावादी अर्थशास्त्रियों की कीमत, मजदूरी लोचशीलता की मान्यता को चुनौती दी एवं यह स्पष्ट किया कि कीमत एवं मजदूरियां स्थिर होती हैं अत : यह अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के संतुलन स्तर की ओर नहीं धकेल सकती। इसलिए केन्ज ने सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता को उचित ठहराते हुए परंपरावादी अहस्त्क्षेपवादी (**Laissez faire**) की आलोचना की। केन्ज ने प्रभावपूर्ण मांग उत्पन्न करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप की अनिवार्यता सिद्ध की एवं इसके लिए सरकारी व्यय में वृद्धि को उचित

ठहराया। सरकार निवेश व्यय एवं उपभोग व्यय द्वारा आय एवं उपभोग में वृद्धि करके निजी न्विेश को प्रेरित कर सकती हैं। इससे आय में गुणक वृद्धि द्वारा रोजगार के स्तर में वृद्धि होनी है। यही केन्ज का "समुद्दीपन सिद्धान्त" (**Theory of Pump Priming**) है।

आधुनिक राज्य का स्वरूप एक कल्याणकारी राज्य का है। नागरिकों को आधारभूत सुविधाएं प्रदान करनें का उत्तरदायित्व राज्य ने स्वीकार किया है। ऐसी सेवाएं जो कीमत तंत्र के माध्यम से नहीं दी जा सकती राज्य द्वारा प्रदान की जाती है। अत सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती जा रही है।

सार्वजनिक व्यय के सन्दर्भ में प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री एडाल्फ बेगनर ने राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं के नियम को प्रतिपादित किया। बेगनर के अनुसार आर्थिक विकास के कारण समाज में असुरक्षा, जटिलता एवं अपराधिक मामलों में भी वृद्धि होती है अत : सरकार को आन्तरिक शांति व सुरक्षा पर व्यय बढ़ाना पड़ता है। इसके साथ ही सरकार द्वारा किए जाने वाले कल्याणकारी कार्यो में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है और: इन पर सार्वजनिक व्यय लगातार बढ़ता रहता है। बेगनर के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए पीकाक व वाइजमेन ने भी सार्वजनिक व्यय के बारे में अपने दृष्टिकोण बताये हैं। वाइजमेन एवं पीकाक द्वारा ब्रिटेन में 1890 - 1955 के काल के सार्वजनिक व्यय वृद्धि के अध्ययन द्वारा अपना मन प्रस्तुत किया। इनकी धारणा है कि सार्वजनिक व्यय के बारे में निर्णय राजनैतिक आधार पर लिए जाते हैं। इनका मत था कि समाज में अचानक कोई ऐसी गंभीर समस्या पैदा हो जाये जिसका समाधान करने के लिए अतिरिक्त सार्वजनिक आय की आवश्यकता होती है। इसके लिए सरकार जनता के साथ स्थिति की समीक्षा करके करों की दरों में वृद्धि करके सार्वजनिक आय और सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करती है। असामान्य स्थितियों में पुराने आय और व्यय स्तर से उठकर अधिक करारोपण स्तर पर आने को वाइजमैन एवं पीकाक ने विस्थापन प्रभाव (**Displacement Effect)** कहा हें, और स्थिति सामान्य होने पर भी करारोपण का यही स्तर बना रहता है।

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण हम यह कह सकते हैं कि सरकारी क्षेत्र का विस्तार आधुनिक समय की मुख्य प्रवृत्तियों में से एक है। राज्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के लिए मुख्य कारण निम्न है-

आधुनिक राज्य का स्वरूप एक कल्याणकारी राज्य का है। राज्य नागरिकों को न्यूनतम सुविधाएं प्रदान करना अपना उत्तरदायित्व समझता है। राज्य आन्तरिक शांति, न्याय एवं सुरक्षा के साथ-साथ शिक्षा, चिकित्सा, संचार एवं परिवहन, विधुत एवं जल आपूर्ति, सामाजिक सुरक्षा, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि, बेरोजगारी, व्यापारिक उच्चावचन आदि अनेक आर्थिक पहलुओं के प्रति सजग है एवं इसका कार्यक्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है।

आर्थिक विकास के लिए आधारभूत संरचना का विकास करना बहुत आवश्यक होता हें जैसे परिवहन व्यवस्था का विकास करना इसमें सड़कें, रेलें व बन्दरगाह का निर्माण आदि सभी सम्मिलित किए जाते हैं, संचार व्यवस्था, विधुत की पूर्ति, सिंचाई की सुविधाएं आदि का विकास

करके अर्थव्यवस्था के विकास को गति प्रदान की जाती है। इसके साथ जन शक्ति की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए उचित शिक्षा प्रणाली का विकास, स्वास्थ्य सुविधाएं एवं उचित आवासीय सुविधाओं का विकास करके आर्थिक विकास में वृद्धि की जाती है। यह कार्य निजी उद्यमी नहीं कर सकते इनको राज्य ही सुचारू रूप से संपन्न कर सकता है।

अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए औद्योगिकरण बहुत महत्वपूर्ण है। औद्योगिक विकास के लिए राज्य को एक ओर तो भारी उद्योगों के विकास के लिए विनियोग करना पड़ता हें। और दूसरी ओर बसने वाले औद्योगिक शहरों में आवश्यक सुविधाओं का विकास करना पड़ता है। जैसे सुरक्षा की व्यवस्था, यातायात नियंत्रण, रोशनी को व्यवस्था, जल व्यवस्था, चिकित्सालयों की व्यवस्था, सफाई आदि की व्यवस्था करना भी राज्य की ही जिम्मेदारी होती है। यह आर्थिक विकास के साथ-साथ बढती ही जाती है।

राज्य की आर्थिक गतिविधियों के बढ़ने के साथ ही पहले से राज्य द्वारा स्थापित उद्योगों को क्रियाशील रखने के लिए उन पर भी लगातार व्यय करना पड़ता है। आर्थिक विकास के साथ-साथ ऐसे उपक्रमों की संख्या बढ़ती जाती है और राज्य को आर्थिक क्रियाओं में निरंतर लिप्त रहना पड़ता है। विकासशील देशों में आर्थिक विकास, राज्य हस्तक्षेप नहीं होने सें असंतुलित रहा है। कुछ क्षेत्रों में विकास हुआ और कुछ क्षेत्रों में नहीं हुआ। आधारभूत सेवाओं में भी आवश्यकता के अनुसार विकास नहीं हों पाया। अत : इन अर्थव्यवस्थाओं में संतुलित आर्थिक विकास करना राज्य का महत्वपूर्ण कार्य हो गया।

राज्य का महत्वपूर्ण कार्य है आय एवं धन के वितरण की विषमता को दूर करना, यह पूँजीवादी प्रणाली का एक विशेष लक्षण है। इससे आर्थिक विकास में कई प्रकार की समस्याएं आती हैं जिनका अध्ययन हम इसी इकाई में कर चुके हैं। अत आर्थिक स्थिरता, विकास, रोजगार में वृद्धि आदि के लिए राज्य इस विषमता को दूर करने के लिए विपिन प्रयत्न करता है।

विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि एक समस्या है। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर विकास दर से काफी अधिक है। जनसंख्या वृद्धि से समस्यायें कई प्रकार की उत्पन्न होनी हैं जैसे मुख्य समस्याएं हैं भरण-पोषण की, जीवन स्तर सुधारने की, रोजगार की। इन समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है कि देश: का आर्थिक विकास तीव्र गति से हो और यह कार्य राज्य के द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकना है। जनसंख्या में बच्चों की संख्या अधिक है तो राज्य को शिक्षा पर व्यय करना पड़ेगा। श्रमिक अधिक होने पर रोजगार के साधनों का-विकास करना पड़ेगा। इनके साथ ही साथ स्वास्थ्य सेवाओं का भी विकास अधिक करना पड़ेगा, आवासीय व्यवस्था पर भी अधिक ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा। उपर्युक्त सभी कार्य सरकार ही कर सकती है।

राज्य देश के सभी नागरिकों को ऐसी सुविधाएं देने का प्रयत्न करना है जिसमे वे जीवन-यापन कर सकें जैसे वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, असहाय व अपंग व्यक्तियों को रहने की सुविधा, कमजोर एवं गरीबों को नि : शुल्क शिक्षा आदि। ये सुविधाएं प्रदान करना भी राज्य का महत्वपूर्ण कार्य है। देश की बाहरी शक्तियों से सुरक्षा करना भी राज्य की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है।

आधुनिक युद्ध प्रणाली के विकास के लिए देश के सम्पूर्ण आर्थिक साधनों के उपयोगों में परिवर्तन करना पड़ता है।

बोध प्रश्न- 2

1. आर्थिक क्रियाओं में राज्य के हस्तक्षेप के बारे में केन्ज के विचार बताइये?
2. राज्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के क्या कारण हैं? संक्षेप में बताइये।

1.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में राज्य की आर्थिक भूमिका (Economic Role of the State in different Economic System):

राज्य समाज के आर्थिक जीवन मे प्राचीन समय से ही भाग लेता रहा है। प्रारम्भ मे इसके कार्य सीमित थे लेकिन धीरे-धीरे इनमें वृद्धि होने लगी। परंपरावादी अर्थशास्त्रियों की आर्थिक नीतियों एवं उनके परिणाम के बारे में और आर्थिक क्रियाओं में राज्य के सक्रिय योगदान की आवश्यकता क्यों पड़ी, इनका अध्ययन इस इकाई में हम कर चुके हैं।

विश्व के देशों की आर्थिक प्रणालियों को दो भागों : पूँजीवादी प्रणाली एवं समाजवादी प्रणाली मे बाँटा जा सकता है। दोनों ही व्यवस्थाओं मे राज्य का महत्व होता है। आधुनिक पूँजीवाद मिश्रित आर्थिक प्रणाली है। समाजवादी प्रणाली में भी नये आर्थिक परिवर्तनों के कारण मिश्रित प्रणाली की व्यवस्था का प्रारम्भ हों रहा है। देश के तीव्र गति से आर्थिक विकास के लिए एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए राज्य द्वारा विभिन्न नीतियों के द्वारा संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन, वितरण एवं आर्थिक स्थिरीकरण का कार्य किया जाता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जार्ज स्टेनियर के अनुसार "आर्थिक जीवन का कोई भी कोना सरकार के हाथ से मुक्त नहीं है। सरकारी नियम सभी आर्थिक क्रियाओं का मूल सहभागी और अधिकतर आर्थिक क्रियाओं का चाल सहभागी भी है।"

1.3.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy): मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवादी एवम समाजवादी आर्थिक प्रणालियों का समन्वित रूप है। इस प्रणाली में दोनों की अच्छाइयों को सम्मिलित किया गया है।

इस व्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार के उद्यम होते हैं। एक निश्चित योजना के आधार पर उद्योगों का विभाजन अलग-अलग क्षेत्रों में किया जाता है। कुछ अति महत्वपूर्ण उद्योग, सार्वजनिक हित के उद्यम एवं ऐसे उद्योग जिनमें पूँजी की अधिक आवश्यकता हो, लाभ कम हो एवं निजी उद्यमी भाग नही लेना चाहें वे सरकार के अधीन रहते हैं। एवं अन्य उद्योग निजी उद्यमियों के अधीन होते हैं। निजी उद्यमियों को भी सरकार द्वारा आर्थिक सहायता एवं प्रोत्साहन देकर विकास करनें के लिए प्रेरित किया जाता है। इनको भी सरकार द्वारा लागू किए गये नियमों एवं कानूनों के तहत कार्य करना पड़ता है।

अर्थव्यवस्था के आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध सरकार के अधीन होता है, इस क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र कहा जाता है। महत्वपूर्ण कल्याणकारी योजनाएं जिनके द्वारा जनता को सुविधाएं प्रदान की जाती हैं एवं अन्य ऐसे उपक्रम जिनका संचालन अधिक पूँजी की आवश्यकता, कम लाभ, निवेश का समय अधिक आदि के कारण निजी उद्यमी नहीं कर सकते, सरकार द्वारा संचालित किए जाते हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों की व्यवस्था के तीन रूप हैं :

(i) विभागीय उपक्रम (Departmental Undertakings):- इस प्रकार के उपक्रम पूर्णतया सरकार के अधीन होते हैं। इनका संचालन राजकीय विभाग के रूप मे किया जाता है।

(ii) सरकारी कम्पनी (Government Companies): - यह संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी होती है। वित्तीय व्यवस्था सरकार एवं अंशधारियों द्वारा की जाती है। सरकार संयुक्त पूंजी कम्पनी का निर्माण कर इसके सभी हिस्से अपने नाम से रखती है। इस पर सरकार का नियन्त्रण होता है।

(iii) सार्वजनिक निगम (Public Corporation): - उद्योगों की व्यवस्था जनसेवा की भावना के आधार पर एक सार्वजनिक निगम द्वारा की जाती है। इन पर सरकार को पूर्ण स्वामित्व होता है। इनकी व्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप कम होता है, ये अपने दैनिक क्रिया-कलापों के लिए प्राय : स्वतंत्र होते हैं।

1.3.2 सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में संसाधन आवंटन :- अनुकूलतम (**optimal**) और उप इष्टतम(**Sub-optimal**) अन्तर्क्षेत्रिय आवंटन- एक आर्थिक प्रणाली में संसाधन आवंटन निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच मिश्रित रूप से निर्धारित होते हैं। किसी भी एक समय में दो क्षेत्रों के बीच वास्तविक आवंटन विभाजन भी विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त अनुकूलतम आवंटन का अस्तित्व भी सम्भव होता है, इसे सामाजिक संतुलन भी कहते हैं। यह व्यक्तियों की प्रभावपूर्ण मांग और प्रतिमान को वरीयता देता है। संसाधनों का वास्तविक आवंटन और अनुकूलतम आवंटन का बिन्दु समान हो भी सकता है और नहीं भी। यदि ये दोनों (अनुकूलतम और वास्तविक आवंटन) समान नहीं है तो यह कहा जा सकता है कि अन्तर्क्षेत्रिय संसाधन आवंटन उप इष्टतम(**Sub-optimal**) है, तब सामाजिक असंतुलन विद्यमान रहता है।

चित्र 1.1 में अनुकूलतम और उप इष्टतम(**Sub-optimal**) अन्तक्षेत्रिय संसाधन आवंटन के बीच सम्बन्ध दर्शाया गया है।

चित्र 1.1

इस चित्र में कुल राष्ट्रीय उत्पादन का प्रतिशत के रूप में निजी क्षेत्र उत्पादन क्षितिज-अक्ष पर एवं सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादन उदग्र-अक्ष पर मापा गया है 1 यह माना गया है कि A बिन्दु राष्ट्रीय उत्पादन का निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बीच अनुकूलतम वितरण प्रदर्शित कर रहा है, इसमें निजी क्षेत्र 75 प्रतिशत एवं सार्वजनिक क्षेत्र 25 प्रतिशत आवंटित साधनों पर नियंत्रण रखते हैं। एक धारणा सम्बन्धी अनुभूति में यह सामाजिक संतुलन का बिन्दु यह निर्दिष्ट करता है कि लोगों में आय, संपत्ति एवं राजनीतिक मत शक्ति के वितरण द्वारा समाज के लोगों की निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं की वास्तविक पसंद को प्रभावी बनाया गया है।

यदि A बिन्दु अनुकूलतम संसाधन आवंटन का प्रतिनिधित्व करता है और दोनों क्षेत्रों में वास्तविक संसाधन आवंटन भी बिन्दु A पर ही है तब वास्तविक एवम अनुकूलतम अन्तक्षेत्रिय संसाधन आवंटन बिन्दु समान हैं और सामाजिक संतुलन बना रहता है। समाज के व्यक्तियों द्वारा निर्धारित अधिमान प्रतिमानों में निजी एवम् सार्वजनिक उत्पादन के बीच किसी भी तरह के पुनर्वितरण द्रारा कल्याण में कोई वृद्धि नहीं की जा सकती। बिन्दु A अनुकूलतम आवंटन का प्रतिनिधित्व करता है और अगर बिन्दु B या बिन्दु C वास्तविक आवंटन को बताती है तब उप इष्टतम(sub-optimal) आवंटन या सामाजिक असंतुलन विद्यमान रहता है। अगर सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना है तो इस अवसर पर दोनों क्षेत्रों के बीच संसाधनों का पुनर्वितरण आवश्यक है। बिन्दु A एवं B के मध्य असंतुलन की दूरी संसाधनों के निजी क्षेत्र में कम आवंटन तथा सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक आवंटन को प्रदर्शित करती है, आवंटन का दोनों क्षेत्रों में समानुपात क्रमश : XX^1 एवं YY^1 है। बिन्दु A एवं C के बीच असंतुलन की दूरी संसाधनों के निजी क्षेत्र में अधिक तथा सार्वजनिक क्षेत्र में कम आवंटन प्रदर्शित करती है और इनका समानुपात क्रमश XX^2 तथा YY^2 प्रदर्शित करती है। अन्तक्षेत्रीय संसाधन-आवंटन में अनुकूलतम बिन्दु का निर्धारण उपयुक्त वर्णित सरल विधि के अतिरिक्त अन्य उदासीनता वक्रों की विधि के आधार पर तर्क संगत ढंग से भी कियाजा सकता है।

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में संसाधनों के अनुकूलतम आवंटन की उदासीनता

वक्र विधि :- उदासीनता उपागम द्वारा अन्तर्क्षेत्रिय संसाधन आवंटन का तार्किक अनुमान लगाया जा सकता है । चित्र 1.2, 1.3 एवं 1.4 में उदासीनता विधि द्वारा अन्तर्क्षेत्रिय आवंटन समझाया गया है । प्रत्येक चित्र में निजी क्षेत्र उत्पादन को क्षैतिज अक्ष पर और सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादन को उदग्र अक्ष पर मापा गया है । उत्पादन मौद्रिक मूल्य या भौतिक इकाई में मापा जा सकता है।

सामाजिक उत्पादन सम्भावना वक्र- चित्र 1.2 में समाज का उत्पादन सम्भावना वक्र P समाज में सीमित उत्पादन के साधनों की सहायता से सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं के उत्पादन के रूपान्तरण की सीमान्त दर में सम्बन्ध प्रदर्शित करता है । यह एक दिए हुए समय में पूर्ण रोजगार की अवस्था में सीमित संसाधनों की सहायता से सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं के उत्पादन के विभिन्न संयोजनों को प्रदर्शित करता है।

चित्र 1.2

चित्र में उत्पादन सम्भावना वक्र की ऊँची स्थिति समाज के उत्पादन संसाधनों की उच्च उत्पादन क्षमता के कारण समाज की उत्पादन क्षमता को प्रभावशाली प्रदर्शित करती है । B बिन्दु पर समाज के सभी संसाधन निजी क्षेत्र के द्वारा एवं A बिन्दु पर समाज के सभी संसाधन सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा नियत किये गये हैं।

समाज का उत्पादन सम्भावना वक्र मूल बिन्दु के प्रति अवतल है जो यह तथ्य प्रदर्शित करता है कि सीमित संसाधन सार्वजनिक वस्तुओं और निजी वस्तुओं के उत्पादन में समान कुशलता से प्रतिस्थापित नहीं किए जा सकते । चित्र 1.2 में P वक्र के ऊपरी भाग में संसाधनों के a से b तक पुनर्वितरण करने पर पाते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के कम त्याग (zz^1) के बदले में निजी क्षेत्र में उत्पादन की वृद्धि अधिक (ww^1) होती है । यह सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के कारण है । इसी प्रकार P वक्र के नीचे के हिस्से में c से d तक संसाधन पुनर्वितरण करने पर निजी क्षेत्र के कम त्याग (xx^1) के बदले में सार्वजनिक क्षेत्र के उत्पादन में अधिक वृद्धि (yy^1) होती है।

संसाधनों के पुनर्वितरण से निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन में असमानता होने के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं (i) वास्तविक निवेश की कम कीमत पर उत्पादन की प्रत्येक इकाई, एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र की तुलना में कुछ उपयोगी वस्तुएं अधिक कुशलता से उत्पादित करता है। (ii) एक क्षेत्र के द्वारा अधिक वस्तुएं उत्पादित करने पर कीमत में वृद्धि होने की प्रकृति पायी जाती है, क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम कार्य करने लगता है। कीमत वृद्धि के नियम निजी क्षेत्र उत्पादन के विश्लेषण में सामान्यतया अनुपयुक्त होते हैं और सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादन में भी ये तर्क संगत लागू होते हैं।

चित्र 1.3

सामाजिक उदासीनता वक्र- चित्र 1.3 में प्रत्येक उदासीनता वक्र S^1, S^2, S^3 एवं S^4 दिए हुए उपयोगिता या संतुष्टि स्तर पर समाज द्वारा निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग के बीच प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की सूचक हैं। प्रत्येक वक्र निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जो कि स्थिर स्तर पर समाज का कल्याण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक उदासीनता वक्र की उच्च स्थिति अधिकतम सामाजिक कल्याण को प्रदर्शित करती है, क्योंकि अधिकतम कुल उत्पादन का उपभोग हो चुका होता है।

सामाजिक उदासीनता वक्रों के परिवार में सरलता के लिए चित्र 1.3 में केवल चार ही दिखाए गये हैं। ये समाज के प्रत्येक व्यक्ति की निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं की कुल वरीयता को व्यक्त करते हैं, जो निजी क्षेत्र में आय और धन के वितरण एवं सार्वजनिक क्षेत्र में राजनीतिक प्रतिनिधित्व द्वारा प्रभावित की जाती है। सामाजिक उदासीनता वक्रों की बनावट एवं आकार समाज के व्यक्तिगत सदस्यों की निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं को प्रभावी मांग का प्रतिनिधित्व करती है जो कि समाज में आय, संपत्ति एवं राजनैतिक मतों के वितरण द्वारा प्रभावित होती है।

सामाजिक उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होतें हैं। प्रत्येक वक्र साथ-साथ दिए हुए सामाजिक कल्याण के स्तर पर निजी एवं सार्वजनिक वस्तु ह्रासमान के बीच ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के तथ्य को प्रकट करते हैं। उदासीनता वक्र S^1 में यह प्रदर्शित किया गया है कि समाज अतिरिक्त निजी वस्तुओं की मात्रा प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की मात्रा

त्यागने को तैयार हें। वह वक्र के निम्नतम छोर की तरफ की मात्रा से उच्चतर छोर की ओर काफी अधिक है। अर्थात यह कहा जा सकता है कि S^1 वक्र के उच्चतर छोर की तरफ समाज निजी वस्तुओं की थोड़ी मात्रा के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की आनुपातिक से अधिक मात्रा का त्याग करने को तैयार है। और S^1 के निम्नतम छोर की तरफ स्थिति इसके विपरीत है। उदाहरणार्थ **a** से **b** की तरफ चलने पर निजी वस्तुओं की थोड़ी मात्रा WW^1 के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की बहुत अधिक मात्रा ZZ^1 का त्याग करना पड़ता है। विपरीत तथा वक्र के निम्नतम छोर की तरफ समाज अधिकतर निजी वस्तुओं का उपयोग करता है। यह निजी वस्तुओं की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की आनुपातिक से कम मात्रा का त्याग करने को तैयार होता है। S^1 वक्र पर **c** से **d** की तरफ गति करने पर निजी वस्तु की अधिक मात्रा (XX^1) प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक वस्तु की कम मात्रा (YY^1) का त्याग करता है। समाज कल्याण का वैसा ही कुल स्तर बनाए रखता है।

निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं के उपयोग के बीच ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर कल्याण का स्थिर: स्तर मुहैया कराता है, इसके निम्न कारण हैं (i) अधिक दुर्लभ वस्तु की प्रतिस्थापन कीमत अन्य वस्तुओं के मुकाबले बढ़ जाती है। सीमान्त उपयोगिता अन्य वस्तुओं के वनिस्पत बढ जाती है जो कि अभी बहुत मात्रा में है। उदाहरण के लिए चित्र 1.3 में सामाजिक उदासीनता वक्र के निम्नतम छोर की तरफ सार्वजनिक वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता अधिक है, इसलिए समाज निजी वस्तुओं की अधिक मात्रा का त्याग इसकी तुलना में कम उपलब्ध सार्वजनिक वस्तुओं की कम मात्रा के लिए करने को तैयार है। सामाजिक उदासीनता वक्र के उच्चतर छोर की तरफ स्थिति इसके विपरीत है। (ii) वक्र के उच्चतर छोर के पास सरकारी आवंटन प्रभावी बन जाने से राजनैतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्रवाह में महत्वपूर्ण ह्रास हो जाता है। इस स्थान पर समाज कम निजी वस्तुओं की मात्रा प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक वस्तुओं की आनुपातिक से अधिक मात्रा का त्याग करने को तैयार हो जाते हैं, इसके परिणामस्वरूप अगर अतिरिक्त राजनैतिक एवम आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके। वक्र के निम्नतम छोर की तरफ इस तथ्य के द्वारा स्पष्ट किया जाता है कि बाजार आवंटन की मात्रा का प्रतिशत अधिक बढ़ जाने पर अवांछनीय अराजकता की स्थिति पैदा कर सकता है जहाँ पर आधारभूत नियम एवं कानून सफल नहीं हो सकते। समाज इस उद्देश्य से कि सरकार नियम एवं कानून की व्यवस्था बनाये रखेगी निजी वस्तुओं की आनुपातिक से अधिक मात्रा देने को तैयार होती हैं।

अन्तर्क्षेत्रिय आवंटन का अनुकूलतम बिन्दु चित्र 1.4 में चित्र 1.2 व 1.3 के प्रासंगिक अंशों को मिलाया गया है। अत : समाज का संभावित उत्पादन इसके संसाधन एवं तकनीक द्वारा निर्धारित किया जाता हुए। सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं के लिए संसाधन एवं तकनीक को सामाजिक अधिमानों सहित संतुलन में लाया जाता है जो कि आय, संपत्ति व राजनैतिक मतों के आवंटन द्वारा प्रभावशाली बनाये जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप चित्र 1.4 में बिन्दु **a** पर अंतर्क्षेत्रीय संसाधन आवंटन अनुकूलतम स्थापित किए जाते हैं जहाँ पर उत्पादन सम्भावना वक्र **P** सामाजिक

उदासीनता वक्र **S^3** का स्पर्श करता है। यहाँ पर **OY** सार्वजनिक क्षेत्र उत्पादन एवं **OX** निजी क्षेत्र उत्पादन मुहैया कराता है। इस बिन्दु पर सामाजिक कल्याण अधिकतम है।

a= अनुकूलतम **(optimal)** अन्तक्षेत्रिय आवंटन का बिन्दु

b, c, d= उप इष्टतम**(sub-optimal)** अन्तक्षेर्त्रिय आवंटन के बिन्दु

चित्र 1.4

यह ध्यान से देखना है कि उत्पादन सम्भावना दक्ष **P** और सामाजिक उदासीनता वक्र **S^3** संतुलन बिन्दु पर समान ढाल रखते है। इसका अर्थ है कि निजी व सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर समाज द्वारा इन वस्तुओं के उपयोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के बराबर होती है। प्रभावी सामाजिक अधिमान आर्थिक वस्तुओं के लिए बिन्दु **a** पर समाज की उत्पादन सामर्थ्य और आर्थिक वस्तुओं के लिए प्रभावी सामाजिक अधिमान में संतुलन बनाए रखता है। इस प्रकार आर्थिक वस्तुओं के उपयोग से समाज के लिए अधिकतम कल्याण उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त इस बिन्दु की स्पर्शिता से शेष सामाजिक उत्पादन सम्भावना वक्र **P** परेटो अनुकूलतम की शर्तें भी निरूपित करता है। संसाधनों का प्रत्येक पुनर्वितरण किसी अन्य के कल्याण में कमी किए बगैर एक व्यक्ति को अधिक अच्छी परिस्थितियाँ प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि अनुकूलतम अन्तक्षेर्त्रिय संसाधन आवंटन बिन्दु अलग होगा। प्रत्येक अलग से सामाजिक आय, धन और राजनैतिक मत वितरण के लिए **S** वक्र का ढाल प्रत्येक वितरण की अवस्था के साथ बढ़ लेगा अगर वितरण की अवस्था उदासीनता वक्र **S^3** के प्रभावशाली बनाती है तो समाज अधिमानित वितरण की अवस्था के अनुरूप होगा। जैसे बिन्दु **a** पर समाज द्वारा अनुकूलतम वितरण और अनुकूलतम अन्तर्क्षेत्रिय संसाधन आवंटन दोनों लाभ प्राप्त किए जाते हैं!

ऐसा संभव हैं कि समाज में संसाधनों का वास्तविक अन्तर्क्षेत्रिय विभाजन अनुकूलतम बिन्दु पर नहीं भी हो सकता है अनुकूलतम वितरण सें वास्तविक वितरण में विचलन संस्थानिक त्रुटि का परिणाम हो सकता है जैसे कि आकस्मिक कठिनाई प्रकटकर्ता अधिमान, सार्वजनिक वस्तुओं के लिए राजनैतिक प्रकिया, निजी वस्तुओं के उत्पादन एवं आवंटन में अपूर्ण बाजार संरचना विकृति आदि वास्तविक अन्तर्क्षेत्रीय संसाधन आवंटन का बिन्दु उत्पादन संभावना वक्र **P** के साथ कहा भी

हो या **P** के अन्दर मूल बिन्दु की तरफ किसी भी बिन्दु पर हो। चित्र 1.4 में b, c एवं d बिन्दु वास्तविक आवंटन के चयनित उदाहरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अनुकूलतम आवंटन से विचलित हैं! प्रत्येक बिन्दु उप इष्टतम(**Sub-optimal**) अन्तर्क्षेत्रिय संसाधन आवंटन या सामाजिक असंतुलन की स्थिति को व्यक्त करते है। ये आर्थिक वस्तुओं के लिए प्रभावशाली सहयोगी अधिमानों की सरकारी और बाजार संस्थाओं में यथार्थता प्रकट नहीं करती जिसके द्वारा आवंटन निर्णय लिए जाते है। बिन्दु b पर सार्वजनिक क्षेत्र को संसाधनों का अधिक आवंटन किया गया है और बिन्दु c पर निजी क्षेत्र को अधिक आवंटन किया गया है। ये तमाम आवंटन बिन्दु अनुकूलतम स्थिरीकरण की शर्त पूर्ण संसाधन रोजगार को उपस्थित करते हैं। उत्पादन संभावना वक्र P के दोनों बिन्दुओं पर एवं शेष पर भी, इसकी संपूर्ण लम्बाई पर रोजगार को प्रदर्शित करते हैं। b और c बिन्दुओं पर उप इष्टतम(**sub-optimal**) अन्तर्क्षेत्रीय संसाधन आवंटन इसलिए है क्योंकि उदासीनता वक्र S^2 उदासीनता वक्र S^3 के बजाए सामाजिक कल्याण के निम्न स्तर की पूर्ति करता है। जबकि बिन्दु b एवं c पूर्ण संसाधन उपयोगिता को दर्शाते हैं लेकिन वे कुशल संसाधन उपयोगिता को नहीं दर्शाते। यह भी अवलोकन करना चाहिए कि अनुकूलतम अन्तर्क्षेत्रिय आवंटन के लिए अनुकूलतम स्थिरीकरण आवश्यक है लेकिन पर्याप्त नही। अनुकूलतम बिन्दु a आवंटन संभावना वक्र पर आवश्यक है, लेकिन वास्तविक आवंटन भी वक्र पर उप इष्टतम(**sub-optimal**) बिन्दु b और c भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक उदासीनता वक्र S^1 पर बिन्दु d पर आवंटन होता है तो समाज में सामाजिक असंतुलन एवं उत्पादन संसाधनों की बेरोजगारी दोनों पाए जाते हैं क्योंकि उत्पादन उत्पादन सम्भावना वक्र के भीतर की और हो रहा है।

1.3.3 राज्य की आर्थिक भूमिका – राज्य आर्थिक क्रियाओं का प्रत्यक्ष सहभागी बनने के साथ-साथ, देश के आर्थिक विकास को उचित गति एवं दिशा प्रदान करनें के लिए व्यक्तियों एवं संस्थाओं को ऋण एवम् अनुदान, यांत्रिक सलाह, विभिन्न व्यवसायों के संबंध में सूचना एवं उद्योग-धंधों को संरक्षण भी प्रदान करता है।

राज्य आर्थिक जीवन को नियमित एवम नियंत्रित करता है। उत्पादकों एवं विक्रेताओं को नियंत्रित करके उपभोक्ताओं को अच्छी वस्तुएं उचित कीमत पर प्रदान करता है। मजदूरों को शोषण से बचाने के लिए एवं आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, इनके लिए नियम बनाता हें। आर्थिक साधनों के उपयोग पर प्रतिबंध, बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियों की व्यवस्था तथा हानिकारक वस्तुओं के उपयोग पर नियंत्रण आदि कर सकती है। राज्य कानून बनाकर इन सभी नियमन एवं नियंत्रण संबंधी कार्यों को उचित तरीके से पूर्ण करने का प्रयास करना है। और उल्लंघन करने वाला को उचित दण्ड दिया जाता है।

देश में आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्थानिक ढाँचे आदि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। देश की जनसंख्या के लिए शिक्षा की सुविधाओं का विकास करके पिछड़ापन एवम अशिक्षा दूर करने के साथ उनमें यांत्रिक व व्यावसायिक विशेषज्ञता का विकास किया जाता है। शिक्षा के द्वारा कृषि क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र एवं प्रशासनिक क्षेत्र में निपुण करके इनका पूरे समाज में विस्तार किया जाना है। सार्वजनिक स्वास्थ्य

सेवाओं का विकास करके सम्पूर्ण जनसंख्या की कार्यकुशलता का स्तर ऊँचा किया जाता हैं। और श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ाने में सफाई, स्वच्छ पीने का पानी, स्वच्छ खाद्य पदार्थों की उपलब्धता एवं बीमारियों की रोकथाम आदि का काफी योगदान रहता है।

राज्य द्वारा राजकोषीय नीति का प्रयोग विकसित एवं विकासशील देशों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता हुए। विकसित देशों में आय का स्तर ऊँचा होता है इसलिए प्रमुख उद्देश्य आर्थिक-स्थिरता और पूर्ण रोजगार को बनाये रखना होता है। इसके लिए राजकोषीय नीति को इस प्रकार प्रयोग में लाया जाता है कि उपभोग प्रकृति उन स्तर पर बनी रहे। विकासशील देशों में मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए पूंजी निर्माण की दर बढ़ाना है। इसके लिए उत्पादन के साधनों का उचित वितरण आय और धन को असमानता को दूर करना, मूल्य नियंत्रण एवं सामूहिक बचत में वृद्धि के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग जाता है।

विकासशील देशों में कर-नीति के द्रारा उत्पादन के साधनों की सार्वजनिक क्षेत्र में वृद्धि के साथ-साथ निजी विनियोग को भी प्रोत्साहित किया जाता है। सरकार प्रगतिशील आयकर, संपत्ति कर, मृत्यु कर, कमजोर वर्ग को आर्थिक सहायता, नि : शुल्क शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा आर्थिक विषमता को दूर करने का प्रयास करती है। करारोपण द्वारा उपभोग प्रकृति पर अंकुश लगाकर लोगों की बचत को प्रोत्साहित करनें का प्रयास करती है और इसे सार्वजनिक ऋण द्वारा प्राप्त करके विनियोग करती है। राज्य देश में उपभोग वस्तुओं की मात्रा को आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित करने के लिए मूल्य-नीति का सहारा लेता है। किसी वस्तु के मूल्य में निरंतर कमी होती रहने पर न्यूनतम कीमत तय करके सरकार स्वयं खरीद लेती है। उत्पादन को नियंत्रित करके पूर्ति घटा सकती हें। मूल्य में वृद्धि होने पर कृत्रिम वृद्धि द्वारा मूल्य नियंत्रित करने का प्रयास करती है।

राज्य मौद्रिक नीति के द्वारा विकसित देशों में आर्थिक स्थिरता एवं उचित संतुलन बनाये रहने का प्रयास करता है जबकि विकासशील देशों में आर्थिक विकास की गति को तेज करने का प्रयास किया जाता है।

विकासशील देशों में साख विस्तार एवं साख नियंत्रण की नीतियों के द्वारा अर्थव्यवस्था में कीमतों में स्थिरता, विदेशी विनिमय में स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाने का प्रयास किया जाता है। बचन को बढ़ाने का प्रयास जाता है और इसे एकत्रित करनें के लिए संस्थाओं की स्थापना की जाती है। राज्य ब्याज की दरों में परिवर्तन करके निजी विनियोग को भी प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार राज्य मौद्रिक नीति के द्वारा आर्थिक विकास को प्रभावित कर सकता

1.3.4 केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था (Central Planned Economy) :- आर्थिक नियोजन द्वारा एक निश्चित समय में देश में उपलब्ध संसाधनों का निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए नियंत्रित उपयोग किया जाता है। डिकिन्सन के अनुसार "आर्थिक नियोजन का आशय है एक केन्द्रीय अधिकारी द्वारा सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था की वृहत जाँच के बाद महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णयों को करना क्या और कितना उत्पादन होना चाहिए, उत्पादन कैसे, कब और कितना किया जाए तथा किसके बीच इसका वितरण होना चाहिए।"

केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक कार्य निश्चित योजना के अनुसार किए जाते है। केन्द्रीय योजना समिति सम्पूर्ण आर्थिक कार्यो का निर्णय करनी है। कितनी मात्रा में किन-किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए एवं कौन से संसाधन प्रयोग में लाये जाएं एवं इनका वितरण कैसे किया जाए, कहाँ किया जाए आदि। इस अर्थव्यवस्था में निजी संपत्ति का प्रावधान नहीं होता देश की सम्पूर्ण संपत्ति एवं उत्पत्ति के साधनों पर समाज का सामूहिक स्वामित्व होता है। उत्पादन सम्पूर्ण समाज के लाभ के उद्देश्य से किया जाता है। इसमें निश्चित की गयी कीमत पर वस्तुएं एवं सेवाएं बेचा जाती हे अत: निजी लाभ की भावना नहीं होती। इस प्रकार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएं सामाजिक कल्याण की भावना से संचालित की जाती है। इसमें बेरोजगारी एवं आर्थिक असमानता का अभाव पाया जाता है, और आर्थिक शोषण की संभावना भी नही होती है। इस व्यवस्था की मुख्य विशेषता व्यापार चक्रों का नही पाया जाना और आर्थिक स्थिरता की उपस्थिति है।

केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएं राज्य के हाथों में केन्द्रित होती हैं। बाजार की व्यवस्था का सर्वथा अभाव पाया जाता है। इस व्यवस्था में उत्पादन, विनिमय तथा वितरण के सभी प्रमुख साधनों पर सरकार का स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है।

अर्थव्यवस्था में उत्पादन का कार्य पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार किया जाता है। केन्द्रीय योजना अधिकारी सभी निर्णय लेता है। योजना के आधार पर ही आवश्यक वस्तुओं का एवम उनकी मात्रा का उत्पादन किया जाता है अर्थात कौन सी वस्तु कितनी मात्रा में उत्पादित की जाए यह योजना के अनुसार तय किया जाता है। विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में उत्पादन के साधनों का वितरण भी योजना अधिकारी द्वारा पूर्व निश्चित योजना के अनुसार किया जाता है। इसमें इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाता है कि उत्पादन के साधन का अधिकतम उपयोग करते हुए अधिक से अधिक उत्पादन किया जाए। इस व्यवस्था में योग्यता के अनुसार श्रमिक को कार्य दिया जायेगा इससे बेरोजगारी नहीं पायी जाती हैं।

केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में पूँजी संचय भी सरकार के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। बैंकिंग एवं बीमा की व्यवस्था, यातायात एवं संवाद वाहन के साधनों की व्यवस्था, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि सभी, पर सरकार का स्वामित्व होता है। अत विनिमय एवं विवरण के साधनों पर भी सरकार का नियंत्रण होता है। इस व्यवस्था में आर्थिक असमानता का नितान्त अभाव पाया जाता है। एकाधिकार एवं निजी लाभ की अनुपस्थिति, आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं की उचित कीमत पर उपलब्धता एवं आर्थिक व सामाजिक शोषण न होने के कारण सामाजिक कल्याण की भावना विद्यमान रहती है।

उत्पादन क्षमता एवं मांग के स्तर में संतुलन बनाये रखने के कारण अर्थव्यवस्था उच्च रोजगार स्तर एवं कीमत स्थिरता के साथ बिना विघ्न बाधा के विकास करती रहने के फलस्वरूप आर्थिक स्थिरता बनी रहती है।

केन्द्रीय नियोजित सोवियत अर्थव्यवस्था की स्थिति देखने सें इसकी कुछ कमजोरियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यह व्यवस्था अपनायी गयी थी वे पूरे नहीं हो

सके और अनेक आर्थिक समस्याएं जैसे दैनिक उपयोग की वस्तुओं का अभाव, उत्पादन में कमी, बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार आदि बढ़ने लगी। इनके कारण देश में सामाजिक असन्तोष भी बढ़ रहा है। देश के बजट का घाटा एवं विदेशी ऋण भी बढा। इन समस्याओं के समाधान के लिए तात्कालिक राष्ट्रपति मिखाईल गोर्बाच्योव ने सोवियत अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने के उद्देश्य से नई नीतियों ग्लासनोस्त (खुला पत्र) एवं पेरेस्त्रोडका (पुनर्रचना) की घोषणा की। पेरेस्त्रोइका का सम्बन्ध आर्थिक नीतियों में परिवर्तन से है। इसके अनुसार नागरिकों को निजी सम्पत्ति का अधिकार, अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता, धन कमाने का अधिकार, आवश्यकता के अनुसार बाजार से एवं विदेशों से वस्तुएं प्राप्त करने का अधिकार आदि स्वतंत्रताएं दी गयी हैं। स्वतंत्र बाजार प्रणाली की तरह उत्पादन के क्षेत्र में भी उत्पादकों को अनेक स्वतंत्रताएं प्रदान की गयी हैं जैसे उद्यमी अपनी इच्छा के अनुसार उद्योगों का संचालन कर सकते हैं, वस्तुओं का उत्पादन कर सकते हैं, प्रतियोगिता के आधार पर कीमत निर्धारित कर सकते हैं एवं उनकी बिक्री कर सकते हैं। सरकार एक योजना के तहत सार्वजनिक उद्योगों का निजीकरण करने एवं शीघ्र ही इसे कार्यान्वित करने का प्रयास भी किये गए।

इन परिवर्तनों के कारण सोवियत अर्थव्यवस्था समाजवादी आर्थिक व्यवस्था से मिश्रित आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हो गया।

बोध प्रश्न 3

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक भूमिका संक्षेप में बताइये।
2. केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रणाली का वर्णन कीजिये।

1.4 सारांश

विश्व में दो प्रकार की आर्थिक प्रणालियाँ-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एवं केन्द्रीय नियोजित (समाजवादी) अर्थव्यवस्था विद्यमान हैं वर्तमान समय में सभी आर्थिक प्रणालियाँ व्यापक रूप में मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में हैं, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र साथ-साथ विद्यमान हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी निजी क्षेत्र को विकसित किया जा रहा है। किसी भी देश के आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले। सामाजिक कल्याण के लिए एवं लोगों को मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए राज्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। राज्य का आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप निरन्तर बढ़ता जा रहा है और बहुत से ऐसे कारण इसके लिए जिम्मेदार हैं जिनकी पूर्ति निजी क्षेत्र नहीं कर सकता। इस प्रकार सभी आर्थिक प्रणालियों में सार्वजनिक क्षेत्र निरन्तर बढ़ रहा है। मिश्रित अर्थव्यवस्था मैं सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों विध्यमान होते हैं और राज्य द्वारा बनाये गये नियम एवं कानून द्वारा नियंत्रित एवं नियमित होते है। सरकार निजी क्षेत्र को भी कई प्रकार की सुविधाएँ एवं सहायता प्रदान करती है जिससे इसको भी विकसित होने का एवं आर्थिक विकास में योगदान देने का अवसर प्राप्त होता है। सरकार मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति के द्वारा उत्पादन में वृद्धि, रोजगार के स्तर में वृद्धि, आर्थिक स्थिरता एवं आय व धन की असमानता को दूर करके आर्थिक विकास को तीव्रता

प्रदान करने का प्रयास करती है। केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन, विनिमय एवं वितरण पर संपूर्ण रूप से सरकार का अधिकार होता है। इस व्यवस्था में आवश्यकतानुसार उत्पादन एवं वितरण किया जाता है और योग्यता के अनुसार लोगों को कार्य प्रदान किया जाता है। इसमें बेरोजगारी नहीं पायी जाती है और आर्थिक असमानता व शोषण का नितान्त अभाव होता है। सभी को आवश्यकतानुसार वस्तुएं व सेवाऐं उपलब्ध होने से सामाजिक कल्याण अधिकतम होना है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी अब निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

1.5 शब्दावली

सार्वजनिक क्षेत्र (Public sector) - अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र जिसका प्रबन्ध तथा नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता हें। इन सरकार का स्वामित्व होता है।

निजी क्षेत्र (Private sector) - अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र जिसका-प्रबन्ध एवं नियंत्रण स्वतंत्र रूप से उद्यमी एवं अंशधारी करते हैं, यह उन्हीं की संपत्ति होता है।

व्यक्तिगत आवश्यकताएं (Individual wants) - वे आवश्यकताएं जिन्हें कीमत-प्रणाली के माध्यम से संतुष्ट किया जा सकता है। कीमत अदा न करने पर उपभोक्ता को संतुष्टि से वंचित रहना पड़ेगा।

सार्वजनिक आवश्यकताएं (Public wants) - वे आवश्यकताएं जिनकी संतुष्टि सभी को समान रूप से प्राप्त होती है, चाहे भुगतान करें या नही। अत: कीमत-प्रणाली द्वारा इनकी पूर्ति नहीं की जा सकती सार्वजनिक बजट के माध्यम से ही इनकी संतुष्टि की जा सकती है।

गुण आवश्यकताएं (Mcrit wants) - वे आवश्यकताएं जिनकी संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत रुचि के साथ-साथ राजकीय निर्देश को भी महत्व दिया जाना है। इनकी संतुष्टि बजट के साथ-साथ कीमत द्वारा भी सम्भव है।

अबंध नीति (Laissez faire) - अर्थव्यवस्था को ऐसी प्रणाली, जो पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो, किसी भी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप न हो। इसमें निजी उद्यम को पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

सामाजिक सुरक्षा (Social security) - सामाजिक सुरक्षा का आशय उस सुरक्षा से है जिसके द्वारा कोई समाज एक पद्धति युक्त तरीके से अपने सदस्यों को बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, दुर्घटना तथा मृत्यु आदि जोखिमों में से बचाता हैं।

आधारभूत संरचना (Basic structure) - औद्योगिक, कृषि तथा आर्थिक विकास के अन्य क्षेत्रों में सहायक सेनाओं तथा सुविधाओं की मूल संरचना को आधारभूत संरचना कहते है। इसमें परिवहन, संचार, बिजली की पूर्ति, पानी आदि के साथ सामाजिक सुविधाएं जैसे स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सुविधाएं भी इनमें सम्मिलित होती है।

1.6 उपयोगी पुस्तकें

1. Bernard P. Herber – Modern Public Finance, 1988, All India Traveller Bookseller, Delhi – 110051.
2. Hugh Daton – Principles of Public Finance, Allied Publishers Pvt. Ltd, 1985.
3. आर.एल. गोयल – विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988-89
4. मीना गुप्ता – केन्द्रीय अर्थशास्त्र, 1977, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

1.7 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. व्यक्तिगत आवश्यकताएं, सार्वजनिक आवश्यकताएं एवं गुण आवश्यकताएं।
2. व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए कीमत अदा करनी पड़ती है, जबकि सार्वजनिक आवश्यकताएं मुफ्त में संतुष्ट की जा सकती हैं।

बोध प्रश्न 2

1. केन्ज ने आर्थिक क्रियाओं में राज्य का सक्रिय योगदान आवश्यक बनाया। इसका मानना था कि सरकारी व्यय में वृद्धि द्वारा निजी निवेश को प्रेरित किया जा सकता है और इससे प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि की जा सकती है। इससे, अर्थव्यवस्था में रोजगार एवं उत्पादन में वृद्धि होती है।
2. 1.2 राज्य की आर्थिक-क्रियाओं में वृद्धि के कारण, देखिए।

बोध प्रश्न 3

1. 1.1.3.1 देखिए
2. देखिए

इकाई 2
लोक अर्थशास्त्र के उद्देश्य व अंग
Objectives and Branchs of Public Economics

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लोक वित्त के उद्देश्य

2.3 बजट नीति के तीन मुख्य अंग

- 2.3.1 आवंटन शाखा
- 2.3.2 पुनर्वितरण व न्याय से सम्बन्धित सामाजिक लक्ष्य (वितरण)
- 2.3.3 स्थिरीकरण शाखा.

2.4 बजट- उसकी संरचना व अवधारणाएं

- 2.4.1 वैधानिक व कानूनी बजट (Executive and legislative Budgets)
- 2.4.2 बहुपक्षीय व एकरूप बजट (Multiple and Unified Budgets)
- 2.4.3 लौकिक व नकद बजट (Conventional and cash Budgets)
- 2.4.4 राजस्व व पूँजी बजट (Revenue and capital Budgets)

2.5 राजकीय आय के स्रोत

- 2.5.1 कराधान
- 2.5.2 व्यय
- 2.5.3 ऋण

2.6 वित्तीय प्रवाह व वास्तविक अर्थव्यवस्था के बीच सम्बन्ध

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.10 बोध प्रश्न व अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

प्रथम इकाई में आपने सरकार की भूमिका में किस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है, इस बारे में अध्ययन किया था। इस इकाई में राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य, आय के विभिन्न स्रोतों, बजट कैसे बनाये जाते हैं तथा बजट नीति के मुख्य अंगों के बारे में अध्ययन किया जायेगा। अन्त में हम वित्तीय प्रवाह व उसका वास्तविक अर्थव्यवस्था के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है इत्यादि बातों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.1 प्रस्तावना

लोक वित्त, अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण भाग है। पिछली शताब्दी की अपेक्षा वर्तमान शताब्दी में राज्य का कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि अब अधिकांश राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक कार्य उसी के द्वारा किये जाते हैं। किन्तु ये सभी कार्य बिना वित्त के सम्भव नहीं हैं। राजस्व (लोक वित्त) के अन्तर्गत राज्य की आय, व्यय तथा ऋण सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कियो जाता है। वास्तव में राजस्व अंग्रेजी भाषा के शब्द **Public Finance** का शब्दार्थ नहीं है। इसका सही अर्थ तो जनता का वित्त होता किन्तु जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था "राज्य" होती है इसलिए हम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था "राज्य" को वित्तीय व्यवस्था का अध्ययन राजस्व के अन्तर्गत करते हैं। श्रीमती हिक्स के शब्दों में "राजस्व में हम राजकीय अर्थशास्त्र के केवल उस भाग से सम्बन्धित हैं जिसमें राज्य द्वारा एकत्र धन और उसके उपयोग का अध्ययन किया जाता है।" प्रोफेसर फिण्डले शिराज के अनुसार "संक्षेप में, राजस्व उन सिद्धान्तों का अध्ययन है, जिनके अनुसार सार्वजनिक अधिकारी व्यय करते हैं तथा अपनी आय एकत्रित करते हैं।"

जबकि डा० डाल्टन का कथन है कि "यह सार्वजनिक सत्ताओं के आय और व्यय से सम्बन्धित है और इनके पारस्परिक समन्वय से भी। राजस्व के सिद्धान्त सामान्य हैं जो इन मामलों के विषय में प्रतिपादित किये जा सकते हैं। "राजस्व के सम्पूर्ण क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न विषयों का अध्ययन किया जाता है:

(i) राजकीय व्यय- राज्य तो किन-किन मदों पर कितना-कितना व्यय करना आवश्यक है, यह व्यय किन सिद्धान्तों के अनुसार किया जाये, इससे सम्बन्धित क्या कठिनाइयाँ हैं इत्यादि बातों का अध्ययन इस भाग में किया जाता है।

(ii) राजकीय आय- इस भाग में हम यह अध्ययन करते हैं कि राज्य अपनी आय किन-किन स्रोतों से प्राप्त करता है, करों का क्या महत्व है? कराधान के क्या सिद्धान्त हैं? करो के क्या प्रभाव होते हैं ? इत्यादि।

(iii) राजकीय ऋण- वैसे तो राजकीय ऋण भी राजकीय आय का एक स्रोत है किन्तु इसका: अध्ययन बिलकुल अलग रूप से किया जाता है। इसका कारण यह है कि राजकीय आय के जो वास्तविक स्रोत होते हैं, उनसे प्राप्त किये हुए धन को लौटाने का प्रश्न नही उठता परन्तु राज्य ऋण द्वारा जो धन प्राप्त करता है वह तो आय नहीं ऋण है,

जिसका भुगतान राज्य को करना ही होगा। इस भाग के अन्तर्गत हम यह अध्ययन करते हैं कि राज्य किन सिद्धान्तों के आधार पर ऋण प्राप्त करता है, ऋण क्यों लिये जाते हैं, किस प्रकार से लिये जाते हैं, इनके क्या प्रभाव होते हैं और इन ऋणों का भुगतान किस प्रकार किया जाता है, इत्यादि।

(iv) वित्तीय प्रबन्ध- राज्य की ओर से सरकार वित्तीय क्रियाओं का प्रबन्ध किस प्रकार करती है, बजट किस प्रकार बनाया जता है, बजट बनाने के क्या उद्देश्य होते हैं, घाटे के बजट और आधिक्य के बजट का क्या महत्व है? इत्यादि बातों की जानकारी इस भाग में दी जाती है।

(v) राजकोषीय नीति- आजकल सरकार की राजकोषीय नीति का महत्व, राजस्व के एक भाग के रूप में लगभग सभी आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। 1930 की महान मंदी के पश्चात राजकोषीय नीति के अध्ययन की महत्ता आरम्भ हुई। ऐसी नीति देश में उत्पादन सम्बन्धी क्रियाओं को नियमित करती है, वितरण को न्यायपूर्ण बनाने की ओर प्रयत्न करती है, मूल्यों को स्थिर बनाये रखने की चेष्टा करती है और देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न करने के लक्ष्य को पूरा करती है।

2.2 लोक वित्त के उद्देश्य

(1) पूर्ण रोजगार या रोजगार के अवसरों में वृद्धि- लोकवित्त का एक परम्परागत उद्देश्य अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना व कायम रखना है। बेरोजगारी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग को कम किया जाये तथा कीमतों को नियन्त्रण में रखते हुए बचत व विनियोग में वृद्धि की जाये। इसके लिए राज्य को आर्थिक व सामाजिक उपरिव्यय पर खर्च करना होगा, सार्वजनिक उद्यमों में अधिक विनियोग करना होगा तथा निजी उद्यमियों को करों में छूट या कमी, सस्ती दर पर ऋण एवं आर्थिक सहायता द्वारा प्रोत्साहित करना होगा ताकि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सके एवं दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो।

लेकिन तीव्र गति से आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब रोजगार व आय में वृद्धि की दर जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक हो। अत: राजकोषीय नीति को परिवार नियोजन पर महत्व देते हुए अधिक सामाजिक सुविधायें प्रदान करनी होंगी।

(2) मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण- लोक वित्त का दूसरा प्रमुख उद्देश्य कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति को नियमित करना है। विकासशील देशों में वास्तविक साधनों की मांग और पूर्ति के मध्य असन्तुलन पाया जाता है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने से वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है किन्तु कुछ संरचनात्मक जड़ताओं व रूकावटों के कारण पूर्ति तुलनात्मक रूप से बेलोच बनी रहती है। परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है। मांग को नियन्त्रित करने के लिए प्रत्यक्ष करों (**Direct taxes**) को वर्द्धमान दर से लगाया जा सकता है। दूसरी ओर सरकार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का नियोजित

ढंग से विकास कर सकती है, विभिन्न प्रकार से आर्थिक सहायता दे सकती है, आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के लिए संरक्षण प्रदान कर सकती है ताकि पूर्ति में वृद्धि की जा सके।

(3) विनियोग की दर में शुद्धि- लोक वित्त निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों में विनियोग की दर में वृद्धि करने में सहायक होता है । बचत के अनुपात में वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित छ : उपाय अपनाये जा सकते हैं (1) प्रत्यक्ष भौतिक नियन्त्रण, (2) विद्यमान करों की दर में वृद्धि, (3) नये करों को लगाना, (4) सार्वजनिक उद्यमों के लाभ, (5) सार्वजनिक ऋण, (6) हीनार्थ प्रबन्धन । इसके अतिरिक्त घरेलू बचतों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता ली जा सकती है ताकि विनियोग बढ़ाया जा सके।

(4) सामाजिक दृष्टि से अनुकूलतम विनियोग में वृद्धि लोकवित्त सामाजिक दृष्टि से वांछित विनियोग को प्रोत्साहित करता है। यातायात, संचार के साधनों, जल व शक्ति के विकास के लिए, भू-संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य व तकनीक प्रशिक्षण पर किया जाने वाला विनियोग बाजार में विस्तार करता है, उत्पादकता में वृद्धि करता है तथा लागत को कम करने में सहायक होता है। इससे निजी विनियोग भी प्रोत्साहित होता है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय अस्थायित्व के समय आर्थिक स्थायित्व कायम करना- अन्तर्राष्ट्रीय अस्थायित्व की स्थिति में आर्थिक स्थायित्व कायम करने के लिए राजकोषीय नीति की महत्वपूर्ण भूमिका है। विश्व में तेजी के समय विभिन्न प्रकार के आयात व निर्यात प्रशुल्क लगाये जा सकते हैं। इसी प्रकार विश्व में कीमतों में कमी के दौरान देश के निर्यात उपार्जनों में कमी होने के कारण निर्यात क्षेत्र पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है । ऐसी स्थिति में सरकार विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक दृष्टि से उपयोगी कार्यक्रम, हीनार्थ प्रबन्धन के माध्यम से शुरू कर सकती है जिससे देश में कीमतों में कमी की प्रवृत्ति को रोका जा सके।

(6) राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण- राजकोषीय नीति द्वारा देश की राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण किया जा सकता है ताकि देश में धन और आय की असमानताओं को कम किया जा सके। इसके लिए राज्य विभिन्न प्रकार के आय, सम्पत्ति, व्यय एवं मृत्यु कर लगा सकती है जिससे अमीरों के पास विद्यमान धन में कमी हो सके और इसको गरीबों में बांट कर उनके जीवन स्तर में सुधार हो सके।

2.3 बजट नीति के तीन मुख्य अंग

प्रो० मसग्रेव ने अपनी पुस्तक "लोक वित्त के सिद्धान्त" में काल्पनिक राजकोषीय विभाग की तीन शाखाओं का उल्लेख किया है। इनको क्रमश : बँटवारे (आवंटन), वितरण तथा स्थायित्व की शाखाएँ कहा है। आवंटन की शाखा का उद्देश्य साधनों के बंटवारे में समंजस स्थापित करना है। लागत कौन बर्दाश्त करेगा, वांछनीय उद्देश्यों की सफलता के लिए आय तथा व्यय सम्बन्धी क्या

नीतियों होनी चाहिए इत्यादि बातों के बारे में निर्णय इस शाखा द्वारा लिये जाते हैं। वितरण शाखा में वांछनीय अथवा उपयुक्त वितरण नीति के लिए क्या कदम उठाने चाहिए जिससे लोक अर्थव्यवस्था में आय तथा व्यय का वितरण उपयुक्त हो सके आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। स्थायित्व शाखा में यह निर्णय आवश्यक है कि मूल्य स्तर के स्थायित्व तथा पूर्ण रोजगार के लिए क्या प्रयास होने चाहिए।

बजट नीति के ये तीन मुख्य उद्देश्य औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में तथा विकासशील देशों में भी महत्वपूर्ण हैं। यदि अर्थव्यवस्था में विभिन्न कार्यो के लिए साधनों का बंटवारा उचित है तो उसका प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर अच्छा पड़ेगा। यदि देश में धन तथा आय का वितरण सुव्यवस्थित है तो राज्य की आय अधिकतम होगी तथा देश में उत्पादन बढ़ेगा। अगर देश में आर्थिक स्थायित्व होगा तब अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी, जन साधारण के जीवन स्तर में उन्नति होगी तथा आर्थिक कल्याण की वृद्धि होगी। राजकोषीय विभाग की प्रत्येक शाखा का कार्य सुचारू रूप से होना चाहिए तभी अर्थव्यवस्था उन्नतिशील हो सकेगी तथा सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

2.3.1 आवंटन शाखा- आवंटन शाखा में मुख्य समस्या यह निर्धारित करने की है कि अनुकूलतम रूप से सरकार द्वारा सामाजिक वस्तुओं, जिनके लिए बाजार उपलब्ध नहीं है, जैसे सुरक्षा, बाढ़ नियन्त्रण प्रोजेक्ट, प्रधान सड़क निर्माण इत्यादि कार्य के लिए कितने साधन आवंटित किये जायें एवं कर का कौन सा सिद्धान्त होना चाहिए जिसके द्वारा विभिन्न व्यक्तियों में अनुकूलतम ढंग से इन वस्तुओं की लागतों का वितरण हो सके। प्रजातान्त्रिक अर्थव्यवस्था में जहाँ उपभोक्ता की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया जाता है वहां सामाजिक वस्तुओं का अनुकूलतम ढंग सें आवंटन करने एवं करों का भाग निर्धारित करने के लिए सरकार को किसी भी प्रकार से व्यक्तियों की वास्तविक अभिरूचि के बारे में ज्ञान होना चाहिए। वास्तव में कोई ऐसा सरल व दोष रहित तरीका नहीं है जिसके द्वारा व्यक्तियों की अभिरूचि के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके क्योंकि सामाजिक वस्तुएं उन व्यक्तियों द्वारा भी उपयोग में लाई जा सकती हैं जो उनके लिए कीमत नहीं देते। जब उपभोक्ताओं की अभिरुचियों के बारे में सही जानकारी नहीं होगी तो कर का एक उचित सिद्धान्त भी निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए समय-समय पर प्रयत्न किये गये हैं परन्तु इनमें सीमित सफलता ही मिल पाई है। एक उपाय सरकारी व्यय व कर के क्षेत्र में लाभ **(benefit)** के सिद्धान्त को अपनाना है जबकि दूसरे सिद्धान्त में योग्यता **(ability)** पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रो० पीगू व डाल्टन के अनुसार सरकारी व्यय से प्राप्त सामाजिक लाभ व करो से प्राप्त सामाजिक लागत की समानता स्थापित की जानी चाहिए। प्रो० मसग्रेव ने बताया है कि केवल वोट की राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा ही उपभोक्ताओं की वास्तविक अभिरुचि के बारे में जान सकते हैं। मान लीजिए समुदाय में A, B एवं C तीन व्यक्ति हैं जिनको बड़े बजट (I) मध्यम बजट (II) एवं लघु बजट (III) के बारे में अपनी अभिरूचियाँ बतानी हैं जो इस प्रकार हैं-

A का रुचि अधिमान $I > II > III$

B का रुचि अधिमान $II > III > I$

C का रुचि अधिमान $III > I > II$

जहाँ पर > का तात्पर्य है "अधिक अच्छा"। इस स्थिति में I जीत जायेगा अगर वह II एवं III के विजेता के साथ विवाद करें; II जीत जायेगा अगर वह I एवं III के विजेता सें विवाद करे एवं III जीत जायेगा अगर वह I एवं II के विजेता से विवाद करे। किन्तु यहाँ भी यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि दीर्घ, मध्यम व लघु बजट में से कौन सा बजट समुदाय द्वारा सबसे अधिक पसन्द किया जा रहा है। प्रो० मसग्रेव का कहना है कि यहाँ पर वोट प्रक्रिया द्वारा सही सामाजिक अभिरूचि ज्ञात की जा सकती है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि अगर इन व्यक्तियों में से किसी एक को दूसरे के व्यवहार के बारे में पहले से ही ज्ञात हो जाये तो वह अपने अभिरूचि अधिमान को बदल कर परिणाम को प्रभावित कर सकता है। जैसे A अपना रूचि अधिमान $II > I > III$ के रूप में व्यक्त कर (जबकि उसका वास्तविक रूचि अधिमान $I > II > III$ है >II को बता सकता है।

किन्तु एक बार सही अभिरूचि अधिमान ज्ञान हों जाने पर आबंटन शाखा मे अनुकूलतम बजट का निर्धारण आसान हो जाता है। सरकार सामाजिक वस्तुएं उतनी ही प्रदान करेगी जहां पर व्यक्तियों की सामाजिक वस्तुओं के लिए समग्र मांग समग्र पूर्ति के बराबर हों। इसी प्रकार से एक व्यक्ति की सामाजिक वस्तुओं के लिए जितनी अधिक अभिरूचि होगी उसका कर दायित्व उतना ही अधिक होगा।

2.3.2 पुनर्वितरण व न्याय से सम्बन्धित सामाजिक लक्ष्य (वितरण शाखा) :

वितरण शाखा में बजट का मुख्य कार्य सरकार के आय-व्यय कार्यक्रम को इस प्रकार से प्रयोग में लाना है ताकि आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में "आदर्श" वितरण को प्राप्त किया जा सके। एक प्रजातान्त्रिक अर्थव्यवस्था में आदर्श वितरण से तात्पर्य मनुष्य मात्र के बीच समानता से है। किन्तु समानता को भी कई रूपों में परिभाषित किया जा सकता है जैसे आय की समानता, कल्याण की समानता, अवसर की समानता आदि। समानता के ये विभिन्न अर्थ लेने पर उनसे सम्बन्धित नीतियां भी भिन्न होगी। उदाहरण के तौर पर, आय की समानता व कल्याण की समानता में एक ही बजट नीति का उस समय प्रयोग हो पायेगा जब एक दी हुई आय की मात्रा से सभी व्यक्ति समान मात्रा में कल्याण प्राप्त करें जबकि व्यवहार में देखा यह गया है कि सभी व्यक्तियों को एक ही आय स्तर के समान कल्याण नहीं प्राप्त होता है अगर सबके द्वारा प्राप्त कल्याण को समान करना है तो आय की असमानता क्रो जन्म मिलेगा और इसी को और अधिक संशोधित करना होगा अगर हमारा उद्देश्य अवसर की समानता प्राप्त करना है।

किन्तु अन्तत : व्यक्तिगत उपयोगिताओं की तुलना करने. के, लिए कोई ऐसा वैज्ञानिक उपाय नहीं है जिसके द्वारा तीनों प्रकार की समानतायें स्थापित की जा सकें। इसलिए वितरण शाखा में बजट नीति द्वारा आय की समानता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है।

2.3.3 स्थिरीकरण शाखा : स्थिरीकरण शाखा में बजट द्वारा बिना मुद्रास्फीति या

अवस्फीति की प्रवृत्ति के, पूर्ण रोजगार का स्तर कायम रखने की कोशिश की जाती है। अगर निजी विनियोग, उपभोग एवं विदेशी निवेश पूर्ण रोजगार कायम करने के लिए अपर्याप्त हैं तो

सरकार को स्वयं अपना खर्च बढ़ाना चाहिए अथवा करों में कमी या स्थानान्तरण भुगतानों द्वारा निजी व्यक्तियों को व्यय में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके विपरीत नीतियों का अनुपालन किया जाना चाहिए अगर देश में मुद्रा स्फीति की स्थिति है एवं निजी व्यक्तियों का खर्च ज्यादा है। इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप देश की उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होगी।

उप-बजटों का एकीकरण

प्रत्येक उप-बजट अलग सें इस आधार पर निर्धारित किया जाता है कि अन्य दो उप-बजटों का अनुकूलतम ढंग से पहले ही निर्धारण हो गया है तथा वे दिये हुए हैं। तब इन तीनों उप-बजटों को एक विस्तृत बजट बनाने के लिए जोड़ा जाता है जो सरकार के द्वारा प्राप्त की जाने वाली राजस्व व सरकार के द्वारा किये जानें वाले खर्चे का ब्यौरा प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा 'अनुकूलतम बजट" का निर्माण किया जाता है जो प्रो० मसग्रेव के प्रयासों पर आधारित है-

प्राचल

Y	=	पूर्ण रोजगार स्तर पर आय
I	=	निजी विनियोग
u_a	=	आवंटन शाखा द्वारा प्रदान की गई सामाजिक वस्तुओं की लागत
u_p	=	निजी वस्तुओं को प्राप्त करने की लागत
m	=	निजी क्रेताओं को बेचने सें प्राप्त आय का भाग, X की ओर जाने वाला
v	=	सरकार को बेचने से प्राप्त आय का भाग, X की ओर जाने वाला
j	=	न्याय पूर्ण वितरण की स्थिति में उपलब्ध आय का भाग, की ओर जाने वाला

चर

E	=	साधन उपार्जन (साधनों के द्वारा प्राप्त आय)
C	=	निजी उपभोग
G	=	आवंटन शाखा मैं वस्तुओं व सेवाओं पर किया जाने वाला सरकारी खर्च
T	=	कर भुगतान (+) या स्थानान्तरण प्राप्तियाँ (-)

B	=	बजट सन्तुलन, आधिक्य (+) एवं घाटे का (-)
Pp	=	निजी वस्तुओं के लिए दी गई कीमत
$P^x a$	=	आवंटन शाखा द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं के बदले में X द्वारा दी जाने वाली कीमत
$P^z a$	=	आवंटन शाखा द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं के बदले में Z द्वारा दी जाने वाली कीमत

ऊपर लिखे गये (**Super Scripts**) X व Z से तात्पर्य X एवं Z व्यक्तियों से है एवं नीचे लिखे गये (Subscripts) a एवं s से तात्पर्य क्रमश : आवंटन, वितरण व स्थिरीकरण शाखाओं द्वारा किये जानो वाले सौदों से है। नीचे लिखे गये (**subscripts**) n का प्रयोग शुद्ध बजट में किये जाने वाले सौदों से है।

1. **आवंटन शाखा में बजट-** आवंटन शाखा में बजट को निम्न शर्तों को पूरा करना चाहिए-

$$G = T_a^x + T_a^z$$

$$T_a^x = T_a^x \left[(E^x - T_d{}^x - T^x{}_s), \frac{P_a^x}{Pp} \right] (1) \qquad (2)$$

$$T_a^x = T_a^x (E^z - T_d{}^z - T^z{}_s), \frac{P_a^z}{Pp} \qquad (3)$$

$$\frac{P_a^x}{Pp} = \frac{P_a^x}{Pp} \left[u_a, u_p, \frac{T_a^x}{T_a^z} \right] \qquad (4)$$

$$\frac{P_a^z}{Pp} = \frac{P_a^z}{Pp} \left[u_a, u_p, \frac{T_a^z}{T_a^x} \right] \qquad (5)$$

इन पाँचों समीकरणों का क्रमानुसार महत्व इस प्रकार है-

1. इस मान्यता के आधार पर कि समुदाय में दो ही व्यक्ति हैं- आवंटन शाखा मे बजट सन्तुलित होना चाहिए जिससे सरकार द्वारा इस शाखा में किया गया खर्च X एवं Z व्यक्तियों से प्राप्त कर राजस्व के बराबर हो।
2. Z के द्वारा आवंटन शाखा में दिया गया कर X की शुद्ध आय एवं X के द्वारा निजी वस्तुओं के स्थान पर सामाजिक वस्तुओं को दिये गये तुलनात्मक महत्व के मूल्यांकन पर आधारित है।

3. में ही दी हुई बात Z व्यक्ति के सम्बन्ध में लागू होती है।

4. आवंटन शाखा में सामाजिक वस्तुओं एवं निजी वस्तुओं की कीमतों, का अनुपात (X व्यक्ति के सम्बन्ध में) इन वस्तुओं को प्राप्त करने की कीमत एवं X तथा Z व्यक्तियों द्वारा आवंटन शाखा में दिये गये करों के भुगतान के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

5. 4 के अनुसार Z व्यक्ति के सम्बन्ध में लागू होती है।

2.3.2 वितरण शाखा में बजट- वितरण शाखा में बजट को निम्न शर्तों को पूरा करना चाहिए-

$$E^* = m(c+I)+VG \qquad (6)$$

$$E^Z = Y - E^* \qquad (7)$$

$$E^X - T_d^x = j(E^* + E^z) \qquad (8)$$

$$T_d^x = -T_d^z \qquad (9)$$

इन चारों समीकरणों का महत्व क्रमानुसार इस प्रकार है-

1. X की कुल आय निजी व्यक्तियों को तथा सरकार को वस्तुएं बेचने से प्राप्त आय के बराबर है।
2. Z की आय पूर्ण रोजगार स्तर पर राष्ट्रीय आय में से X की आय घटाने से प्राप्त होती है।
3. वितरण शाखा में X की शुद्ध आय कुल आय का एक उचित अनुपात होनी चाहिए।
4. वितरण शाखा में बजट सन्तुलित होना चाहिए जिससे Z के द्वारा स्थानान्तरण प्राप्तियाँ (अर्थात् ऋणात्मक कर भुगतान) X के द्वारा वितरण शाखा मैं दिये गये कर के बराबर हो।

2.3.2 स्थिरीकरण शाखा में बजट- स्थिरीकरण शाखा के लिए निम्न शर्तों का पूरा होना जरूरी है-

$$Y = G + C + I \qquad (10)$$

$$C = C^X + C^Z \qquad (11)$$

$$C^x = C^x\left[(E^x - T_s^x - T_a^x), \frac{P_a^x}{Pp}\right] \qquad (12)$$

$$C^Z = C^Z\left[(E^z - T_s^x - T_s^z), \frac{P_a^z}{Pp}\right] \quad (13)$$

$$T_s^x = j(T_s^x + T_s^z) \quad (14)$$

इन समीकरणों का अर्थ है

1. पूर्ण रोजगार स्तर पर राष्ट्रीय आय सरकारी व्यय, उपभोग व विनियोग के जोड़ के बराबर है।
2. कुल निजी उपभोग X व Z व्यक्तियों के उपभोग के बराबर है।
3. X का उपभोग निर्भर करता है उपलब्ध आय व सामाजिक तथा निजी वस्तुओं की तुलनात्मक कीमतों पर। किन्तु उपलब्ध आय स्वयं X की कुल आय में से वितरण शाखा तथा स्थिरीकरण शाखा को दिये गये करों को घटाने से प्राप्त होती है (आवंटन शाखा मैं दिये गये करो को छोड़कर)
4. 3 में दी हुई बातें Z व्यक्ति के सम्बन्ध में।
5. X के द्वारा स्थिरीकरण शाखा में दिया हुआ कर वितरण शाखा में निर्धारित किये हुए न्यायपूर्ण कर दायित्व पर निर्भर करता है। इस प्रकार से बजट की तीनों शाखाओं में कुल मिलाकर 14 समीकरण हैं और 21 अज्ञात (unknown) राशियाँ हैं जैसे

$$G, T_a^x, T_a^z, \frac{P_a^{x,}}{Pp^x}, \frac{P_a^x}{Pp^z} E^x, E^z, T_d^x, T_a^z, C, C^x, C^z, T_s^x, T_s^z, Y, I, U_a$$

$$'^u \; p'm, v.j$$

इनमें से अंतिम सात (y से लेकर j) को बाहर से दिया हुआ मानतें हैं अत : अब 14 समीकरण हैं एवं 14 समीकरण हैं एवं 14 अज्ञात राशियाँ हैं। हम निम्न प्रकार से तीनों बजटों का एकीकरण कर सकते हैं—

$$1.\ T_a^x + T_d^x + T_s^x = T_n^x$$

$$2.\ T_a^z + T_d^z + T_s^z = T_n^z$$

$$3. T_n^x + T_n^z = \sum T$$

प्रथम समीकरण में शुद्ध (**Net**) बजट में X के कर दायित्व को जानने के लिए तीनों शाखाओं में X के कर दायित्व को जोड़ा गया है। द्वितीय समीकरण में यही प्रक्रिया Z व्यक्ति के सम्बन्ध में दोहरायी गई है। कुल कर प्राप्तियाँ ज्ञात करने के लिए तीसरे समीकरण में दोनों व्यक्तियों X तथा Z शुद्ध बजट में कर दायित्वों को जोड़ा गया है।

कुल बजट में आधिक्य, सन्तुलन अथवा घाटा इस आधार पर होगा कि अर्थात् (करों से कुल प्राप्तियां) सरकारी व्यय के बराबर है, अधिक है या कम है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि कुल बजट में किसी भी प्रकार के असन्तुलन से तात्पर्य होगा कि स्थिरीकरण शाखा में बजट असन्तुलित है। क्योंकि हम लोगों ने आवंटन व वितरण शाखा मे बजट को सन्तुलित माना है।

2.4 बजट-उसकी संरचना व अवधारणाएँ

बजट शब्द फ्रैंच शब्द **'bougette' से** लिया गया है जिसका अर्थ है छोटा थैला या बैग' इससे तात्पर्य उस बैग से लिया जाता है जिसमें वित्तीय प्रस्ताव होते हैं। यह एक वित्तीय योजना है जिसमें आने वाले वर्ष. (मुख्यतया एक वर्ष) के लिए प्राप्तियों एवं विभिन्न मदों पर होने वाले खर्च के बारे में बताया जाता है। सामान्यतया एक बजट में बीते हुए वर्ष के वित्तीय खातों के बारे में, चालू वर्ष के बजट व संशोधित अनुमानों के बारे में तथा आने वाले वर्ष के बजट अनुमानों के बारे में बताया जाता है। इसके अतिरिक्त आने वाले वर्ष के अनुमानों को दो भागों मैं बाँटा जाता है- पहला भाग वह है जो इस मान्यता पर आधारित होता है कि चालू वर्ष के कर व उनकी दरें तथा व्यय नीति प्रचलन में रहेगी तथा दूसरा भाग वह है जो सम्बन्धित परिवर्तनों पर आधारित है। इस प्रकार से बजट सरकार की राजकोषीय नीतियों व वित्तीय योजनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है। बजट में कभी-कभी कुछ विशेष खर्चो के लिए कुछ धन रख दिया जाता है जैसे ऋणों पर दिये जाने वाले व्याज का भुगतान, वेतन, पैन्शन इत्यादि। बजट को विभिन्न भागों में भी पेश किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर भारतवर्ष में रेल वित्त केन्द्रीय सरकार के वित्त का ही एक हिस्सा है किन्तु रेल बजट केन्द्रीय बजट के साथ न पेश किया जा कर अलग से पेश किया जाता है। यद्यपि रेलों से प्राप्त धन व खर्चो को भारत सरकार के बजट में शामिल किया जाता है। इसी प्रकार से, बजट को विभिन्न स्तरों की सरकार में बाँटा जा सकता है। जैसे भारतवर्ष में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें एवं स्थानीय सरकारें अपने बजट बनाती हैं, पास करती हैं व उनको व्यवहार में लागू करवाती हैं। वास्तव में कुछ अन्त: सरकारी सौदे भी हो सकते हैं और इनको भी कानूनी तथा अन्य प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए किसी भी स्तर की सरकार के बजट में शामिल किया जा सकता है। राजकोषीय नीति का शुद्ध प्रभाव इन सभी स्तरों को सरकार के संयुक्त बजट पर निर्भर करता है।

एक अच्छा बजट वही है जो कुछ शर्तों को पूरा करे एवं कुछ सिद्धान्तों के अनुसार बनाया गया हो। इसी प्रकार का एक सिद्धान्त है कि बजट का सम्बन्ध पिछले वर्ष में सरकार के कार्यक्रमो व राजकोषीय नीति की सफलता से हो। यह इस बात के लिए आधार प्रदान करेगा कि पिछले वर्ष क्या करना था, क्या प्राप्त किया जा चुका है एवं भविष्य में क्या प्राप्त करना है तथा किन दिशाओं में।

बजट प्रावधानों में देश की चालू आर्थिक स्थिति तथा कोषागार **(Treasury)** की स्थिति के बारे में विवरण दिया जाना चाहिए। इससे बजट प्रावधानों का महत्व बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक सम्भव हो बजट प्रावधान स्पष्ट होने चाहिए। प्रावधान विस्तृत भी होने चाहिए ताकि आने वाले वर्ष में बजट को किस प्रकार कार्य करना है, इस सम्बन्ध में सही निर्णय लिया जा सके। परिणामस्वरूप, विस्तृत बजट प्रावधानों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्राप्तियों तथा खर्च के

बारे में विवरण होना चाहिए। बजट के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करने वाले कुछ कथनों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

अगर बजट का आर्थिक व कार्य सम्बन्धी वर्गीकरण किया जाये तो यह और अधिक स्पष्ट तरीके से अर्थव्यवस्था में इसकी (बजट की) भूमिका को बतायेगा। भारतवर्ष में भारत सरकार के वार्षिक वित्तीय कथन **(statement)** को **Budget statement** कहा जाता है। भारतीय संविधान की धारा 112 में कहा गया है कि "एक वार्षिक वित्तीय कथन" लोक सभा एवं राज्यसभा के सामने पेश किया जायेगा जबकि धारा 202 के अनुसार इसी प्रकार का कथन प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा राज्य विधानमण्डल के सामने पेश किया जायेगा। केन्द्र व राज्य सरकारों के बजट में प्राप्तियों व भुगतानों के बारे मैं बताया जाता है।

अवधारणाएँ

2.4.1 वैधानिक व कानूनी बजट- एक वैधानिक बजट वह है जो सरकार की वैधानिक इकाई (शाखा) द्वारा बनाया जाता है। यह बजट भी सामान्यतया कानून द्वारा स्वीकृत किया जाता है परन्तु मुख्य कार्य वैधानिक संस्था के हाथ में होता है। कानूनी बजट वह है जो कानूनी संस्था या उसकी कमेटियों (सहायक संस्थाओ) द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बनाकर स्वीकृत किया जाता है। यह माना जाता है कि वैधानिक बजट कानूनी बजट से अधिक अच्छा है क्योंकि वैधानिक संस्था के पास सम्भावित प्राप्तियाँ व खर्चो का अनुमान लगाने के लिए अधिक साधन उपलब्ध हैं। दूसरा, बजट को व्यवहार में लागू करवाने का कार्य वैधानिक संस्था का ही है। तीसरी बात यह है कि अगर बजट वैधानिक संस्था द्वारा बनाया गया है और उसमें कुछ कमियाँ अथवा दो रह गये हैं तो वैधानिक संस्था को प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

2.4.2 बहुपक्षीय व एकरूप बजट- संयुक्त राज्य अमेरिका में बजट को विभिन्न भागों में विभाजित करने की प्रथा थी और प्रत्येक भाग को अलग से पेश किया जाता था ताकि सरकार के विशिष्ट कार्यों के बारे में मूल्यांकन किया जा सके। किन्तु अब यह महसूस किया जाने लगा है कि बजट एकरूप होना चाहिए ताकि बजट के कुल प्रभावों को एक साथ देखा जा सके। इस प्रकार बहुपक्षीय बजट में सरकार के राजकोषीय कार्यों को विभक्त कर दिया जाता है जबकि एकरूप बजट में एक साथ पेश किया जाता है।

2.4.3 लौकिक व नकद बजट- संयुक्त राज्य अमेरिका में लौकिक (या प्रशासनिक) एवं नकद बजट के बीच भेद किया जाता है। इन दोनों बजटों में मुख्य अन्तर यह है कि लौकिक बजट में वृद्धिशील आधार पर आय एवं व्यय को दिखाया जाता है एवं कोषों के उन प्रवाहों को निकाल दिया जाता है जो सरकार से सम्बन्धित नहीं होते। किन्तु इस बजट में दो मुख्य कमियाँ रह जाती हैं। प्रथम, इसमें आय और व्यय को वृद्धिशील आधार पर दिखाया जाता है किन्तु वास्तविक रूप से भुगतान व प्राप्तियों में अन्तर पाया जाता है और सरकारी क्रियाओं की सही जानकारी नहीं मिल पाती। दूसरे, नकद प्राप्तियाँ एवं भुगतान, जो यद्यपि सरकार से सम्बन्धित नहीं है, भी कोषों के प्रवाह को प्रभावित कर सकते हैं।

इसके विपरीत नकद बजट में वास्तविक भुगतान आधार पर सभी प्रकार के कोषों के प्रवाह, उन कोषों को भी शामिल करके जो सरकार से सम्बन्धित नहीं हैं, को दर्शाया जाता है। को प्रकार लौकिक बजट से नकद बजट अधिक विस्तृत है और वास्तविकता का सही प्रतिनिधित्व करता

2.4.4 राजस्व व पूँजी बजट- बहुत से देशों में बजट को राजस्व (चालू) व पूँजी खातों के रूप में बांटा जाता है। राजस्व खाते में उन मदों को शामिल किया जाता है जो आवर्तक (Recurring) स्वभाव वाले होते हैं जबकि पूँजी खाते में उन मदों को सम्मिलित किया जाता है जो पूँजी परिसम्पत्तियों से सम्बन्धित होतें हैं एवं उपार्जन वाले स्वभाव के होते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि चालू खर्च उपभोग से सम्बन्धित होते हैं जबकि पूँजी परिसम्पत्तियों को प्राप्त करना उपभोग नही है। ये उपभोग उसी परिस्थिति मैं कहलायेगा जबकि ये पूँजी परिसम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं या उनका मूल्य हास होता है।

भारतीय संविधान के अनुसार भारतवर्ष मैं खाते और चालू खाते (राजस्व) में भेद किया जाता है। राजस्व बजट में सभी प्रकार की राजस्व प्राप्तियों-- कर व गैर- कर तथा इन प्राप्तियों में से किये जाने वाले खर्च को दिखाया जाता है। गैर-कर प्राप्तियों में नोटों को छापने से प्राप्त होने वाली आय, ब्याज से प्राप्त धनराशि, अंशदान, पुलिस, जेल एवं सार्वजनिक सेवायें प्रदान करने से प्राप्त होने वाली आय, शिक्षा, स्वास्थ्य, निवास, आकाशवाणी एवं अन्य सामाजिक सेवाओं से प्राप्त आय एवं कृषि, उद्योग, यातायात और संचार जैसी आर्थिक सेवाओं से प्राप्त आय को सम्मिलित किया जाता है। दूसरी ओर पूँजी बजट में बाजार ऋण, रिजर्व बैंक से लिया गया ऋण, विदेशी सरकार एवं संस्थाओं सें लिये गये ऋण इत्यादि को शामिल किया जाता है। पूंजीगत व्यय में भूमि, मकान, मशीन एवं औजार पर किया गया व्यय, शेयर एवं प्रतिज्ञा पत्रों में विनियोग, राज्य सरकारों एवं अन्य संस्थाओं को दिया गया ऋण सम्मिलित किया जाता है।

भारत मैं "योजना बजट " भी पेश किया जाता है जिसमें केन्द्रीय योजना में शामिल किये गयें प्रोजेक्ट, कार्यक्रमों व योजनाओं के लिए बजट प्रावधानों के बारे में बताया जाता है।

2.5 राजकीय आय के स्रोत

राज्य अपनी आय निम्न स्रोतों से प्राप्त करता है-

(1) कर (Tex) - कर राज्य की आय का मुख्य सोत है। प्रो० सैलिगमैन के अनुसार, "कर एक व्यक्ति का, सरकार के लिए अनिवार्य अंशदान है, उन खर्चो को पूरा करने के लिए जो सबके सामान्य हित में किये जाते हैं, जिसका संकेत विशेष लाभों की प्राप्ति की ओर नही होता।" फिलिप्स ई० टेलर ने भी ऐसा ही कहा है कि "वे अनिवार्य भुगतान जो सरकार को, बिना करदाता को किसी प्रत्यक्ष लाभ की आशा के किये जाते हैं, कर हैं।" इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में कर का भुगतान अवश्य करना होगा। साथ ही कर का उपयोग ऐसे कार्यों के लिए किया जाता है जिससे राज्य के सभी नागरिकों को लाभ हो। न तो करदाता को किसी प्रत्यक्ष लाभ की आशा ही करनी चाहिए और न सरकार ही किसी करदाता को विशेष लाभ प्रदान करने का प्रयत्न कर सकती है।

(2) राजकीय उद्यम (Public Enterprises) - आधुनिक राज्य उद्योगों के संचालन एवं सम्पत्ति के उपयोग से भी काफी आय प्राप्त करते हैं। यह ध्यान रहे कि उद्योगों के संचालन में राज्य का उद्देश्य आवश्यक रूप से आय प्राप्त करना नही होता। राज्य अनेक कारणों सें उद्योगों का संचालन करता है। कुछ उद्योग तो राज्य इसलिए चलाता है कि यदि वे निजी व्यक्तियों द्वारा चलाये जायें तो उनमें उपभोक्ताओं के शोषण का भय रहता है जैसे जनोपयोगी सेवाएँ-- यातायात, पानी, बिजली, डाक, तार आदि की व्यवस्था। कुछ उद्योग राज्य इसलिए चलाना है क्योंकि निजी व्यक्ति उनको चलाना नहीं चाहते या उनमें सामर्थ्य नही होती जैसे रेलों की व्यवस्था। कुछ उद्योग राष्ट्रीय महत्व के होते हैं जैसे युद्ध सम्बन्धी उद्योग। यह आवश्यक होता है कि ऐसें उद्योगों का राज्य संचालन करे। कुछ उद्योग राज्य केवल उपभोग को नियमित करने के उद्देश्य से चलाना है जैसे अफीम, गाँजा इत्यादि। उद्देश्य चाहे जो भी हो राज्य को इस स्रोत से काफी आय प्राप्त होती है क्योंकि नागरिक इन वस्तुओं तथा सेवाओं को मूल्य चुकाकर प्राप्त करते हैं।

(3) प्रशासन सम्बन्धी आय- खास, विशेष निर्धारण (Special assessment), जुर्माना व दण्ड आदि स्रोतों से सरकार को जो आय प्राप्त होती है वह प्रशासन सम्बन्धी आय कहलाती है।

(अ)फीस- जब किसी व्यक्ति से, सरकार द्वारा प्राप्त होने वाले किसी विशेष लाभ के बदले, पूरी अथवा आशिक लागत ले ली जाती है तो इस प्रकार के अनिवार्य भुगतान को फीस कहते हैं। प्लैहन के अनुसार "फीस धन के रूप में वह अनिवार्य अंशदान है जो कि किसी व्यक्ति को, चाहे वह प्राकृतिक हो या मिलकर बनाया गया हो, राजकीय अधिकारी की आज्ञा से सरकार के किसी कार्य में लगे खर्चे के किसी अंश या कुल का भुगतान करने के लिए देना पड़ता है; यह जहाँ सामान्य लाभ पहुँचाता है वहाँ एक विशेष लाभ भी पहुँचाता है।"

(ब) लाइसेन्स फीस- कुछ लेखकों ने फीस और लाइसेन्स फीस में भेद किया है क्योंकि लाइसेन्स फीस में नियमन एवं नियन्त्रण का अंश भी किया होता है। समाज-हित में कुछ सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए केवल कुछ ही व्यक्तियों को अधिकार दिया जाता है और लाइसेन्स द्वारा इन व्यक्तियों की क्रियाओं को नियमित किया जाता है जैसे मादक पेयों एवं वस्तुओं के विक्रय के लिए या बन्दूक प्रयोग करने के लिए लाइसेन्स दिये जाते हैं और लाइसेन्स फीस ली जाती है।

(स) विशेष निर्धारण- जब किसी राजकीय अधिकारी की क्रियाओं के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की सम्पत्ति की कीमत बढ़ जाये तो ऐसी वृद्धि को अनोपार्जित वृद्धि (unearned increament) कहेंगे। यदि राजकीय अधिकारी इस वृद्धि पर कर लगा दे तो उसे विशेष निर्धारण कहेंगे। सैलिंगमैन ने विशेष निर्धारण की परिभाषा इस प्रकार दी है "यह एक अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्ति हुए विशेष लाभों के अनुपात में लिया जाता है ताकि जनहित में सम्पत्ति पर विशेष सुधार करने की लागतें पूरी हो जायें।" उदाहरणार्थ, यदि किसी शहर में नगरपालिका कोई नयी सड़क बना दे या पार्क बना दे तब व्यक्तियों को इससे विशेष लाभ प्राप्त होगा, जिसके

लिए नगरपालिका विशेष निर्धारण करेगी। यद्यपि विशेष निर्धारण में मनमानेपन का काफी अंश है परन्तु आजकल इस विधि का विशेष महत्व है तथा इसी को अनेक प्रकार के नवीन स्थानीय सुधारों का श्रेय प्राप्त है।

(द) जुर्माना एवं सम्पत्ति को जब्त कर लेना- जब देश के नागरिक, सरकार द्वारा बनाये हुए नियमों को तोड़ते हैं या उनका उल्लंघन करते हैं तो सरकार उन पर जुर्माना लगाती है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति बिना उत्तराधिकार के या बिना वसीयतनामा लिखे मर जाता है तब ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति सरकार जल कर लेती है। सरकार, इस अधिकार के अन्तर्गत अन्य प्रकार की सार्वजनिक सम्पत्ति की भी जिसका कोई भी वारिस या देखभाल करने वाला न हो, जब्त कर लेती है। यह आय का कत ही मामूली- सा साधन है।

(4) उपहार एवं अनुदान (Gifts and Grants) - सरकार को कुछ आय उपहारों तथा अनुदानों से भी प्राप्त हो जाती है। ये उपहार उदार हृदय, देश भक्त या सरकार से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों द्वारा कुछ विशेष कार्यो के लिए दिये जाते हैं- जैसे युद्ध संचालन, अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए, स्कूल खोलने के लिए, अस्पताल बनवाने के लिए, इत्यादि। ये उपहार स्वेच्छा से दिये जाते हैं और व्यक्तियों पर किसी प्रकार का दबाव नही होता।

अनुदान, एक सरकार को दूसरी सरकार से प्राप्त आर्थिक सहायता होती है। देश की मुख्य सरकार द्वारा अधीन या द्वितीय सरकार को भी अनुदान दिये जाते हैं। इनका महत्व संघीय संविधान वाले देशों में अधिक है। अधिकांश देशों में यह स्थानीय-सरकारों की आय का एक महत्वपूर्ण सोत है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में ऐसे अनुदानों का विशेष महत्व है। आजकल उन्नत देश अल्पविकसित या अविकसित देशों को अनुदानों के रूप में आर्थिक सहायता देते हैं।

एडम्स ने राजकीय आय को निम्न चार्ट के अनुसार विभाजित किया है।

2.5.1. कराधान (Taxation)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कर राज्य की आय का मुख्य- साधन है तथा एक व्यक्ति द्वारा सरकार को दिया जाने वाला अनिवार्य अंशदान है। प्राचीन काल मैं कर मुख्यतया धन एकत्र करने के उद्देश्य से लगाये जाते थे। परन्तु आधुनिक काल में कराधान की रीतियाँ अधिक वैज्ञानिक हो गयी हैं। सरकार कर-विशेष लगाने से पहले उसके आर्थिक और नैतिक प्रभावों का अध्ययन करती है, तत्पश्चात् कर लगाने का निश्चय करती है। करों द्वारा लाभों, उपभोग, आयतों और निर्यातों को नियन्त्रित किया जाता है। आजकल सरकार का किसी भी कर को लगाने में आय-प्राप्ति के अतिरिक्त यह भी उद्देश्य रहता है कि देश में आय की असमानताएं दूर हो जायें। एक वर्गीकरण के अनुसार करों को दो प्रकार का बताया गया है- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। एक दूसरे वर्गीकरण के अनुसार कर चार प्रकार के होते हैं : समानुपातिक (Proportional), प्रगतिशील (progressive), प्रतिगामी (Regressive) और अधोगामी (Degressive)। प्रो० मिल के अनुसार "प्रत्यक्ष कर उसी व्यक्ति से वसूल किया जाता है जिससे यह आशा की जाती है कि वही उसका भुगतान करे। अप्रत्यक्ष कर वे कर हैं जो किसी व्यक्ति से इस आशा से प्राप्त किये जाते हैं कि वह दूसरे व्यक्ति से वसूल करके क्षतिपूर्ति कर लेगा।" इस दृष्टिकोण से आय-कर तथा सम्पत्ति कर प्रत्यक्ष कर होंगे और बिक्री-कर तथा सीमा-कर अप्रत्यक्ष।

करों का दूसरा वर्गीकरण मुख्य रूप से करों की दर और करदाताओं की आर्थिक स्थिति के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित है। समानुपातिक कर वह है जिसकी दर सारे करदाताओं के लिए समान हो जैसे 100 रु की आय वाले व्यक्ति पर भी 5.0 प्रतिशत की दर से कर लगाया गया है और 10,000 रुपये की आय पर भी वही दर है। आय बढ़ने के साथ-साथ जब कर की दर भी बढ़ती जाती है, तब ऐसे कर को प्रगतिशील कहते हैं। जैसे 3000 से 5000 रुपये तक 1 प्रतिशत, 5000 से 10,000 रुपये तक 5 प्रतिशत, 10,000 से 20, 000 रुपये तक 10 प्रतिशत इत्यादि। प्रतिगामी कर प्रगतिशील का ठीक विपरीत है। इसके अनुसार अधिक आय वाले व्यक्तियों पर कर की दर कम होती है और कम आय वालों पर अधिक। आधुनिक समय में इन करों का विशेष महत्व नहीं है क्योंकि एक तो इनमें न्यायशीलता नहीं है, दूसरे ये मितव्ययी नहीं हैं और उत्पादक भी नही हैं।

अधोगामी कर आय के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता है परन्तु कर की दर कम होती जाती है। एक निश्चित सीमा तक यह कर प्रगतिशील रहता है उसके बाद आनुपातिक हो जाता है। किसी भी कर प्रणाली को न्यायसंगत होने के लिए यह आवश्यक है कि कर-भार का वितरण प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता के अनुसार हो परन्तु अकेले कर-भार के समान वितरण पर ही कर प्रणाली की न्यायशीलता निर्भर नहीं करती वरन् कराधान के भावी तथा वर्तमान आर्थिक प्रभावों पर भी।

साधारण रूप में कराधान से व्यक्तियों के काम करनें तथा बचत करने की योग्यता कम हो जाती है। अत : निर्धन व्यक्तियों पर कर-भार कम से कम होना चाहिए, और उन वस्तुओं पर जिनका उपयोग निर्धनों द्वारा किया जाता है, कम से कम कर लगाना चाहिए ताकि उनके उपभोग का स्तर कम न हो और उनकी कार्यक्षमता, स्वास्थ्य और काम करने की योग्यता पर बुरा प्रभाव न पड़े। कराधान से वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाने के कारण व्यक्ति को अपने उपभोग पर पहले की

अपेक्षा अधिक खर्च करना पड़ता है जिससे बचत की मात्रा कम होने लगती है। कर की पूर्व आशा मात्र से ही व्यक्तियों के काम करने तथा बचाने की इच्छा भी कम होने लगती है। किन्तु व्यक्तियों के बचत करने तथा काम करने की इच्छा को किस सीमा तक कराधान हतोत्साहित या प्रोत्साहित करेगा यह करदाता की मानसिक प्रतिक्रियाओं और लागू किये गये कर की प्रकृति पर निर्भर करेगा। यह अवश्य है कि कराधान से व्यक्तियों के कार्य करने तथा बचाने की शक्ति और इच्छा, दोनों ही कम होंगी परन्तु इनकी क्षतिपूर्ति सरकार द्वारा उत्पादित पूंजीगत वस्तुओं सें हो जाती है क्योंकि समाज की सामूहिक उत्पादन शक्ति में वृद्धि होती है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और अन्त में व्यक्तियों के बचाने और काम करने की शक्ति और योग्यता दोनों ही में वृद्धि हो जाती है। इसी कारण आर्थिक नियोजन काल मैं इस नीति का अधिक महत्व होता है।

25.2 राजकीय व्यय (Public Expenditure) : पिछली शताब्दी के अन्त तक राजकीय व्यय की ओर बड़ी उदासीनता से देखा जाता था और अर्थशास्त्री लगभग उसी प्रकार के राजकीय व्यय को बुरा समझते थे। किन्तु जैसे-जैसे सरकार के कार्यो में वृद्धि होती जा रही है राजकीय व्यय के महत्व में भी वृद्धि हो रही है। राजकीय व्यय में वृद्धि के कई कारण हैं जैसे सुरक्षा सम्बन्धी भारी व्यय, जनसंख्या की वृद्धि, अत्यधिक नगरीकरण, देश के कृषि तथा औद्यौगिक विकास- सम्बन्धी व्यय, व्यक्तियों के कल्याण की ओर राज्य का बढ़ता हुआ ध्यान, रोजगार की स्थिति को बनाये रखना और बेकारी को दूर करना इत्यादि। इसके अतिरिक्त राज्य उन क्रियाओं को भी सम्पन्न करने लगा है जो, व्यक्तियों द्वारा नहीं की जा सकती। कुछ ऐसे भी कार्य होतें हैं जो राज्य व्यक्तियों की अपेक्षा अच्छी प्रकार कर सकता है।

राज्य द्वारा किया गया व्यय व्यक्तियों के कार्य करने की शक्ति की कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। प्रथम, इस व्यय सें अनेक व्यक्तियों को आय प्राप्त होती है और उनकी क्रय शक्ति बढ़ती है। पेंशन, भत्ते, बेकारी व बीमारी लाभ, वस्तुओं और सेवाओं पर किया गया व्यय-सब ही व्यक्तियों की क्रय-शक्ति में वृद्धि करते हैं। व्यक्तियों में उपभोग स्तर को ऊँचा करने की सामर्थ्य आती है, उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और दीर्घकाल में उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरे, निर्धन व्यक्तियों को निशुल्क शिक्षा, औषधिक सहायता, सस्ते और कम किराये वाले मकान प्रदान करके राज्य उनकी कार्यक्षमता को बढ़ा सकता है। तीसरे, राज्य अपने व्यय द्वारा कुछ ऐसी सुविधायें जैसे रेलों और सड़कों को उन्नत बनाना, सिंचाई के साधनों में वृद्धि, जलविद्युत शक्ति का विकास आदि प्रदान कर सकता है जिनमें व्यक्तियों को अपनी उत्पादक क्रियाओं को सम्पन्न करने में सहायता मिले और अधिकाधिक व्यक्तियों में उत्पत्ति करने की रुचि उत्पन्न हे। राजकीय व्यय से व्यक्तियों के कार्य करने तथा बचत करने की इच्छा भी प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त राज्य स्वयं व्यय करके व्यक्तियों की उत्पादन शक्ति को बढ़ा सकता है। वह उन कार्यों को करता है जिन्हें व्यक्ति अपने व्यक्तिगत रूप में साधनों की कमी के कारण नहीं कर सकते हैं-जैसे सिंचाई योजनाओं को कार्यान्वित करना, रक्षा-सम्बन्धी व्यय करना, न्यायालयों पर व्यय इत्यादि। राजकीय व्यय व्यक्तियों में इस बात के लिए रुचि उत्पन्न कर सकता है कि वे अपने धन के व्यय के ढंग को बदल दें। जैसे जल-विधुत शक्ति के विकास से व्यक्तियों में यह रुचि उत्पन्न हो सकती है कि वे. अपना रुपया अन्य प्रकार से

खर्च न करके उद्योगों में व्यय करें। एक पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्था में राजकीय व्यय का प्रयोग मुद्रा-प्रसार को नियन्त्रित करने के लिए भी किया जा सकता है। मुद्रा प्रसार की स्थिति में सरकार अपने व्यय को कम करके जगतों में वृद्धि को रोक सकती है एवं मुद्रा संकुचन की स्थिति में व्यय मैं वृद्धि कर सकती है। इस प्रकार के क्षतिपूरक व्यय द्वारा मन्दी काल मैं उत्पादन, रोजगार तथा आय के स्तरों को ऊँचा उठाया जा सकता है और व्यापार-चक्रों में उत्पन्न होने वाली बेकारी तथा राष्ट्रीय आय की गिरावट को नियन्त्रित किया जा सकता है। सरकारी व्यय से अपेक्षित परिणाम तभी मिल पायेंगे जब व्यय सन्तुलित ढंग से किया जायेगा। अत: आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रकार का अपव्यय रोका जाये ताकि व्यय से पूर्ण उपयोगिता प्राप्त हो।

2.5.3 राजकीय ऋण (Public Debt) : राजकीय ऋण राजा द्वारा प्राप्त किये गये ऋण होते हैं। विगत वर्षों में यह राजकीय वित्त-व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। कभी-कभी राज्य को अपनी आय से अधिक खर्च करना पड़ता है और अगर ऐसी परिस्थिति मैं ऋण नही लिया गया तो देश का अस्तित्व जोखिम में पड़ सकता है जैसे युद्ध काल में या आर्थिक नियोजन काल में। अत: ऋण को राज्य की आय का अन्तिम सोत कहा जा सकता है।

सरकार, जो राशि ऋण द्वारा किसी वर्ष मैं प्राप्त करनी है वह उसकी उस वर्ष की आय का एक भाग होती है। यह आय स्थायी नही होती, क्योंकि इसको कुछ समय बाद लौटाना पड़ता है। यद्यपि कुछ ऋण ऐसे होते हैं जिन्हें लौटाना नहीं पड़ता, केवल उन पर ब्याज ही देना होता है किन्तु ऐसे ऋणों को भी आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता, क्योकि इनको भी ब्याज के रूप में लौटाना ही होता है।

राजकीय ऋण देश के भीतर भी प्राप्त किये जा सके हैं और विदेशों सें भी। जौ ऋण देश के भीतर प्राप्त किये जाते हैं उन्हें आन्तरिक ऋण कहते हैं और जो विदेशों सें प्राप्त किये जाते हैं, उन्हें बाह्य ऋण कहते हैं। राजकीय ऋण वर्तमान तथा भविष्य दोनों ही में देश की उत्पादन शक्ति को प्रभावित करते हैं क्योंकि ये ऋण व्यक्तियों के कार्य करने, बचत करने और विनियोग की योग्यता एवं इच्छा को प्रभावित करते हैं और साधनों का विभिन्न उपयोगों में वितरण करते है। व्यापारिक मन्दी मैं जब चारों और निराशा और उदासीनता का वातावरण छा जाता है, व्यापार की प्रक्रिया धीमी हो जाती है, मूल्य, उत्पादन और उपभोग स्तर गिर जाता है और बेकारी बढ़ती जाती है तथा साख संस्थाओं की स्थिति खराब हो जाती है उस समय सरकार ऋण प्राप्त करके स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती है और ऐसें कार्यक्रमों पर खर्च करती है जैसे रेलों, नहरों, सड़कों, नये-नये कारखानों आदि में जिससे अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है और व्यक्तियों के पास धन पहुँचने से उनकी क्रय शक्ति बढ़ जाती है ,मूल्य बढ़ने लगते हैं और व्यापारिक जगत में फिर से स्फूर्ति आ जाती है। न केवल मन्दी काल में वरन मुद्रास्फीति काल में भी राजकीय ऋण का बहुत अधिक महत्व है। मुद्रास्फीति में सरकार व्यक्तियों से ऋण लेती है ताकि देश में चलन में मुद्रा कम हो जाये एवं कीमत स्तर नीचा रखा जा सके।

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि राजकीय ऋण व्यवस्था का संचालन बड़ी सतर्कता से किया जाना चाहिए, अनावश्यक ऋण नहीं लिये जाने चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो

ऋण को केवल उत्पादन कार्यो में ही लगाया जाये। भारत में ऋण असीमित मात्रा में लिये जाने के कारण Debt trap की स्थिति आ गई है जबकि भारतवर्ष को. अपने पुराने ऋणों व व्याज को चुकाने के लिए नये ऋण लेने पड़ रहे हैं।

2.6 वित्तीय प्रवाह व वास्तविक अर्थव्यवस्था के बीच सम्बन्ध

:- अगर हम अर्थव्यवस्था में उपभोग, विनियोग, सरकार व विदेशी क्षेत्र को शामिल करें तो वित्तीय प्रवाह इस प्रकार से दर्शाया जा सकता है-

चित्र2.1

इस चित्र से स्पष्ट है कि घरेलू व व्यावसायिक क्षेत्र सेकर सरकार को प्राप्त होते हैं। सरकार करों से प्राप्त आय का विनियोग करती है और इसके लिए फर्मों से वस्तुएँ तथा घरेलू क्षेत्र से उत्पादन के साधन खरीदती है। इस प्रकार वित्तीय प्रवाह में कर रिसाव (Leakage) है तो सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओं की खरीद आय को पुन: प्रसारित (Inject) करना है।

अगर सरकार की खरीद शुद्ध करों से प्राप्त आय से अधिक होती है तो सरकार के बजट में घाटा होगा। सरकार इस घाटे की पूर्ति पूँजी बाजार से उधार लेकर करती है किन्तु वास्तव में ये कोष घरेलू क्षेत्र की बचतों द्वारा ही प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर, अगर शुद्ध करों से प्राप्त आय सरकार की खरीद से ज्यादा होगी तो बजट में आधिक्य होगा। इस स्थिति में सरकार राजकीय कणों में कमी करेगी एवं पूँजी बाजार में कोषों की पूर्ति बढ़ा देगी जो फर्मों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। समीकरण के रूप में व्यक्त करने पर

$$Y = C + I + G \qquad (1)$$

करों को शामिल करने पर

$$Y = C + S + T \qquad (2)$$

जहाँ S का अर्थ है बचत एवं T का अर्थ है कराधान। समीकरण (1) व (2) को बराबर करने पर

$$C + I + G = + S + T$$

$$I + G = S + T$$

विदेशी क्षेत्र शामिल करने पर एवं विनियोग को दो भागों घरेलू विनियोग (I_d) एवं विदेशी विनियोग (I_f) में विभाजित करने पर हम प्राप्त करते हैं-

$$I_d + I_f + G = S + T$$

लेकिन

$$I_f = X - M$$

जहाँ X = निर्यात एवं M = आयात

$$I_d + (X-M) + G = S + T$$

$$I_d + (X-M) = S + (T-G)$$

यह समीकरण वित्तीय प्रवाह मैं आय व व्यय के बीच सन्तुलन को बताती है।

वित्तीय प्रवाह का वास्तविक अर्थव्यवस्था से गहरा सम्बन्ध है। यह बताता है कि अर्थव्यवस्था प्रभावी ढंग से कार्य कर रही है अथवा नहीं और क्या इसके सुचारु रुप से कार्य करने में कुछ बाधाएँ है? इसी वित्तीय प्रवाह द्वारा असन्तुलन की समस्याओं के बारे में तथा उनके सुधार के उपायों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। राष्ट्रीय आय के सन्तुलन में होने के लिए यह आवश्यक है कि इच्छित बचत व कर (S+T) इच्छित विनियोग व सरकारी व्यय (I+G) के बराबर हो। अगर S + T यदि I + G से अधिक है (जो अर्थव्यवस्था से Leakage (रिसाव) को व्यक्त करना है) तो सरकार को राजकोषीय उपाय अपना कर करों में कमी करनी चाहिए तथा स्वयं अधिक खर्च करना चाहिए। इसके विपरीत I + G के S + T से अधिक होने पर सरकार को बचत व करो में वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार वित्तीय प्रवाह से क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2.7 सारांश

लोक वित्त अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसमें हम उन सिद्धान्तों का अध्ययन करते है जिनके अनुसार राजकीय पदाधिकारियों के कोषों का एकत्रीकरण एवं व्यय होता है। इसके अन्तर्गत हम राजकीय व्यय, राजकीय आय, राजकीय ऋण, वित्तीय प्रबन्ध व राजकोषीय नीति के महत्व के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं।

लोक वित्त के उद्देश्य मुख्यतया पूर्ण रोजगार के अवसर प्रदान करना, मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण वित्तयोग- दर में वृद्धि, सामाजिक दृष्टि से अनुकूतनम विनियोग में वृद्धि, आर्थिक स्थायित्व कायम करना तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि एवं पुनर्वितरण इत्यादि है।

राजकोषीय नीति में बजट की महत्वपूर्ण भूमिका है । प्रो० मसग्रेव ने इसकी तीन मुख्य शाखाओं. आवंटन, वितरण व स्थायित्व शाखाओं का उल्लेख किया है । इन तीनों ही शाखाओं में सन्तुलन होने पर ही बजट अनुकूलतम हो सकता है । बजट के, सम्बन्ध में कई अवधारणाएँ प्रचलित हैं- वैधानिक व कानूनी बजट, बहुपक्षीय व एक रूप बजट, लौकिक व नकद बजट, राजस्व व पूँजी बजट ।

राजकीय आय के बहुत से सोते हैं जैसे कर, राजकीय उद्यमों से प्राप्त आय, फीस, लाइसेन्स फीस, विशेष निर्धारण, जुर्माना एवं सम्पत्ति को जल कर लेना, उपहार व अनुदान आदि। इनमें से कर राज्य की आय का मुख्य साधन है। यह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दो प्रकार का हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह समानुपातिक, प्रगतिशील, प्रतिगामी अथवा अधोगामी होता है। कर व्यक्तियों की योग्यता व लाभ के अनुसार लगाया जाना चाहिए। आय बढ़ने के साथ-साथ सरकारी व्यय में भी वृद्धि हो रही है। इससे व्यक्तियों के कार्य करने व बचत करने की इच्छा में वृद्धि होती है तथा उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है। किन्तु सरकारी व्यय से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए व्यय सन्तुलित ढंग से किया जाना चाहिए।

विगत वर्षों में सरकारी व्यय में आय की अपेक्षा तेजी से वृद्धि हुई है अत सरकार को ऋण लेने की आवश्यकता होती है। ऋण आन्तरिक व बाह्य दो प्रकार के होते-हैं। ऋण व्यक्तियों के कार्य करने, बचत करने और विनियोग की योग्यता एवं इच्छा को प्रभावित करते हैं।

वित्तीय प्रवाह का अर्थव्यवस्था से गहरा सम्बन्ध है। इससे क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के, महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2.8 शब्दावली

राजस्व (Public Finance)- राजकीय अर्थशास्त्र का वह भाग जिसमें राज्य द्वारा एकत्र धन और उसके उपयोग का अध्ययन किया जाता है, राजस्व कहलाता है।

आवंटन शाखा (Allocation Branch)- वह शाखा जिसमें साधनों के बंटवारे मैं समंजन स्थापित किया जात्रा है।

वितरण शाखा (Distribution Branch)- वह शाखा जिसमें आय और व्यय के वितरण को उपयुक्त बनाया जाता है।

स्थायित्व शाखा (Stabilization)- वह शाखा जिसमें मूल्य स्तर में स्थायित्व कायम रखने का प्रयास किया जाता है।

बजट (Budget)- वह वित्तीय योजना जिसमें आने वाले वर्ष (मुख्यतया एक वर्ष) के लिए प्राप्तियाँ एवं विभिन्न मदों पर होने वाले खर्च के बारे में बताया जाता है।

कर (Tax)-एक व्यक्ति का सरकार को दिया जानो वाला वह अनिवार्य अंशदान है जिसका संकेत विशेष लाभों की प्राप्ति की ओर नहीं होता किन्तु उन खर्चो को पूरा करने के लिए दिया जाता है जो सामान्य हित में किये जाते हैं।

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- B. Mishra, Economics of Public Finance, The Macmillan Company of India Ltd., Delhi.
- H.L Bhatia, Public Finance, Vikas Publishing House, Delhi.
- John F.Due, Government Finance; An Economic Analysis, Homewood, Illinois, USA.
- Philip E.Taylor, The Economics of Public Finance, Oxford & IPH Publishing Co., New Delhi.
- R.A. Musgrave and Peggy B. Musgrave, Public Finance in Theory and Practice, Mc GrawHill Book Company, London.
- Richard A. Musgrave, The Theory of Public Finance, Mc Graw Hill Book Company, London.
- Subrata Ganguly, Public Finance; A Normative Approach, Navabharat Publishers, Calcutta.
- के०के० शर्मा, आर० के० गौतम, लोक वित्त, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली तिलक नारायण हजेला, राजस्व के सिद्धान्त, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, दिल्ली

2.10 बोध प्रश्न व अभ्यासों के उत्तर

अपना उत्तर लिखने के लिए प्रश्नों के आगे छोड़ी गयी खाली जगह का प्रयोग करें। अपने उत्तरी का इकाई के अन्त में दिए गये उतरो से मिलान करें।

1. राजकीय आय के स्रोतों की व्याख्या कीजिए। इनमें से कौन सा सोन सबसे महत्वपूर्ण है।
2. बजट क्या है? इसके सम्बन्ध में प्रचलित अवधारणाओं के विषय मैं लिखिए।
3. कर तथा विशेष निर्धारण मैं क्या अन्तर है? समझाइए।
4. वित्तीय प्रवाह एवं वास्तविक अर्थव्यवस्था के मध्य सम्बन्ध बताइए।
5. बजट की विभिन्न शाखाओं के मध्य किस प्रकार सन्तुलन स्थापित किया जाता है?
6. राजकीय व्यय में वृद्धि के क्या कारण है?
7. राजकीय ऋण के महत्व के विषय में व्याख्या कीजिए।

अभ्यासों के उत्तर

1. आय के सोत है- कर, राजकीय उद्यम से प्राप्त आय, फीस, लाइसेन्स फीस, विशेष निर्धारण, जुर्माना, उपहार एवं अनुदान इत्यादि। इनमें कर सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

2. बजट एक वित्तीय योजना है जिसमें एक वर्ष मैं होने वाले आय व्यय का ब्यौरा होता है । यह कई प्रकार का हो सकता है- (1) वैधानिक व कानूनी बजट (2) बहुपक्षीय व एकरूप बजट, (3) लौकिक व नकद बजट, (4) राजस्व व पूँजी बजट
3. कर का सम्बन्ध विशेष लाभों की प्राप्ति से नहीं होता जबकि विशेष निर्धारण प्राप्त हुए विशेष लाभों के अनुपात में लिया जाता है। दोनों ही अनिवार्य अंशदान हैं।
4. 2.6 मैं की हुई व्याख्या के आधार पर लिखिए।
5. 2.3 में की गई सम्पूर्ण व्याख्या एवं अन्त मैं आवंटन, वितरण तथा स्थिरीकरण शाखा में बजट क़े मध्य सन्तुलन।
6. राजकीय व्यय में वृद्धि के कारण हैं-- सुरक्षा सम्बन्धी भारी व्यय, जनसंख्या में वृद्धि, नगरीकरण, कृषि और औद्योगिक विकास पर व्यय, व्यक्तियों के कल्याण के लिए किये जाने वाले खर्च तथा शिक्षा चिकित्सा इत्यादि पर होने वाले व्यय।
7. राजकीय ऋण वर्तमान तथा भविष्य दोनों में ही देश की उत्पादन शक्ति को प्रभावित करते हैं। व्यक्तियों के कार्य करने, बचत करने तथा विनियोग की योग्यता एवं इच्छा को प्रभावित करते हैं। विशेष रूप से मन्दी के समय लोगों को रोजगार दिलाने व क्रय शक्ति बढ़ाने में सहायक है।

--

इकाई 3

सामाजिक वस्तुओं का सिद्धान्त
Principle of Social Good

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 वस्तुओं का वर्गीकरण तथा विशेषताएं

3.2.1 बाजार की असफलता और विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं की उपलब्धता

3.2.2 कुशल साधन आवंटन तथा बाजार संतुलन

3.2.3 पेरिटो उत्तमता और बाजार संतुलन में कुशलता

3.3 आंशिक संतुलन की स्थिति में निजी तथा विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण

3.3.1 निजी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण

3.3.2 विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण

3.4 कुशल साधन आवंटन के सामान्य संतुलन मॉडल

3.5 विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का सामान्य मॉडल

3.6 सारांश

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि आपने पहले देखा होगा कि लोक अर्थशास्त्र मैं सरकार द्वारा क्रियान्वित की गई आर्थिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण परिणाम तथा सामाजिक उद्देश्यों के साथ उनके संबंध का वर्णन होता है। इससे सरकार की राजकोषीय, मौद्रिक तथा नियामक नीतियों का क्रमबद्ध अध्ययन होता है। साथ ही सार्वजनिक उद्यमों की कार्यप्रणाली तथा 'उपयोगिताएं, सम्पत्ति के अधिकारों का अर्थशास्त्र, कर प्रशासन तथा लाभ आदि शामिल होते है।

इकाई- 3 में हम Public Household के आवंटन कार्य के अन्तर्गत आने वाली सामाजिक वस्तुओं के सिद्धांत का अध्ययन करेंगे। यह निम्न खंडों में बांटा गया है। खंड 3.2 में वस्तुओं का वर्गीकरण और विशेषताएं बताई गई है। खंड 3.2.1 में सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था में बाजार की असफलता से संबंधित है। जबकि खंड 3.2.2 में बताया गया है कि बाजार संतुलन

द्वारा निजी वस्तुओं के लिए साधनों का कुशल आवंटन कैसे प्राप्त किया जा सकता है। खंड 3.2.3 में पेरिटो उत्तमता (Pareto optimality) और बाजार संतुलन की कुशलता को समझाया गया है।

खंड 3.3 में आशिक संतुलन की स्थिति में निजी और सामाजिक वस्तुओं के मूल्य निर्धारण पर प्रकाश डाला गया है और इसे 3.3.1 तथा 3.3.2 में बांटा गया है। 3.3.1 में पहली प्रकार की तथा 3.3.2 में दूसरी प्रकार की वस्तुओं के मूल्य निर्धारण को लिया गया है। इसमें सेम्यूलसन तथा लिन्दाल मॉडल को भी शामिल किया गया है।

खंड 3.4 में कुशल साधन आवंटन के सामान्य संतुलन मॉडल का परीक्षण किया गया है। 3.4.1 में कुशलता की अवधारणा, 3.4.2 में निजी वस्तुओं का मॉडल, कुशलता के नियम तथा निजी वस्तुओं के लिए कुशल समाधान का चुनाव, तथा 3.4.4 में अनुकूलतम के चुनाव को शामिल किया गया है।

खंड 3.5 में सामाजिक वस्तुओं के सामान्य मॉडल का वर्णन है। इसमें 3.5.1 के अन्तर्गत कुशलता के नियमों का पुन: परीक्षण किया गया है। 3.5.2 मैं कुशल समाधान का चुनाव, 3.5.3 में अनुकूलतम का चुनाव तथा 3.5.4 के अन्तर्गत वोट तक विस्तार Extention to voting को शामिल किया गया है। खंड 3.6 में सामाजिक वस्तुओं के सिद्धांत का सारांश दिया गया

3.2 वस्तुओं का वर्गीकरण तथा विशेषताएं :

सामान्य तौर पर देखा जाता है कि उपभोक्ता की टोकरी में विभिन्न प्रकार की वस्तुएं होती हैं, जिनकी विशेषताएं अलग-अलग होती हैं तथा उपभोक्ताओं के लिए उनकी व्यवस्था का तरीका भी अलग-अलग होता है। इसमें निजी वस्तुओं जैसे निजी यार्ड (yard) या सामाजिक वस्तुएं जैसे सार्वजनिक पार्क आदि आ सकते है। पहले प्रकार की वस्तुओं की व्यवस्था निजी रूप से तथा दूसरी प्रकार की वस्तुऐं सरकार द्वारा उपलब्ध फ्राई जाती हैं। कुछ वस्तुएं जैसे मकान आदि निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों द्वारा उपलब्ध कराई जा सकती है। इसलिए निजी तथा सामाजिक वस्तुओं में साधनों के कुशल आवंटन को समझाने के लिए उनकी विशेषताओं को समझना तथा उनमें अंतर करना जरूरी हो जाता है।

निजी वस्तु, जो सामाजिक वस्तु के अंतिम सिर के रूप में होती है, बाजार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इसकी निम्न विशेषताएं होती हैं–

इसका मूल्य बाजार में निर्धारित होता है तथा निजी रूप से प्राप्त की जा सकती है। इसके उपभोग में स्पर्धा होती है तथा इसके लाभ मूल्यों द्वारा प्राप्त किये जाते है अर्थात् मूल्य चुकाने वालों को लाभ मिलता है। उदाहरण के लिए "ए" द्वारा प्राप्त किये गये सेव से उपभोग' का लाभ "ए" को मिलेगा जिसने उसका मूल्य चुकाया है, उसी सेव के उपभोग का लाभ "बी" द्वारा नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि उसने उसके लिए कूच नही दिया। कुछ भी हो सामाजिक वस्तु को उसकी निम्न विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया जाता है -

1. **अपवर्जन न किये जाने योग्य (Non-Excludability) :** अपवर्जन सिद्धांत जो निजी वस्तुओं के संबंध में लागू होता है सामाजिक वस्तुओं पर लागू नहीं होता। इसका अर्थ है कि उपभोग का लाभ उन्हीं उपभोक्ताओं को मिलता है जो, उसकी कीमत देते हैं, अर्थात् जो उसके लिए भुगतान नहीं करते वे उस वस्तु के उपभोग के लाभों से वंचित रहते है। स्पष्टत: जब सामाजिक वस्तुओं के संदर्भ में वह लागू नहीं होता है तो इसका अर्थ है कि इन वस्तुओं के लाभ कोई भी उठा सकता है चाहे वह इनके लिए भुगतान करे या नहीं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा सेवा के लाभ सभी निवासियों को प्राप्त होते है चाहे उन्होंने कर के रूप में कुछ दिया हो या नहीं।

2. **इनके उपभोग में स्पर्धा नही होती (Non-rivaltry in consumption) :-** सामाजिक वस्तुओं के उपभोग में स्पर्धा नही हीती अर्थात् यदि एक व्यक्ति इन वस्तुओं के उपभोग का लाभ उठाता है ता दूसरे लोग भी किसी अन्य के लाभों को कम किये बगैर समान रूप से उसके लाभ उठा सकते है जैसे कि गलियों में रोशनी, पुल तथा सड़को आदि का लाभ।

3. **बजट द्वारा व्यवस्था : -** सामाजिक वस्तुएं वह वस्तुएं होती है जिनकी व्यवस्था बजट द्वारा की जाने की आवश्यकता होती है। बाजार द्वारा इनकी व्यवस्था नहीं की जा सकती। बजट द्वारा व्यवस्था का यह अर्थ नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र इनका उत्पादन करता है। सुरक्षा सेवाएं विशुद्ध सामाजिक वस्तु का स्पष्ट प्रमाण है, परंतु सुरक्षांश के लिए खरीदी गई कई वस्तुएं निजी क्षेत्र में उत्पादित की जाती हैं। सामाजिक वस्तुओं की बजट द्वारा व्यवस्था की जाने का अर्थ है कि इनका प्रत्यक्ष रूप से मूल्य निर्धारण नहीं किया जाता, बल्कि उन पर किया गया व्यय, करों द्वारा वसूल किया जाता है।

4. **सामाजिक वस्तुओं पर किसी का स्वामित्व नही होता :-** इन वस्तुओं पर किसी व्यक्ति को स्वामित्व का अधिकार नहीं होता जैसे गली की रोशनी पर किसी का स्वामित्व नहीं होता परन्तु अपने घर में लगी ट्यूब लाईट पर सभी अधिकार जता सकते हैं।

5. **बाह्यतायें (Externalites) : -** सामाजिक वस्तुओं की विशेषता है कि उनके उत्पादन / उपभोग में बाह्यता का अस्तित्व होता है। बाह्यता (Externality) लाभ / लागतों के spill over प्रभावों की ओर संकेत करती है अर्थात् सामाजिक वस्तुओं के लाभ/ लागतों का प्रभाव सभी पर पड़ता है, क्योंकि यह एक व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करते हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा तथा मदिरा आदि।

6. **निशुल्क (Free-Ridership) और सामूहिक उपभोग** :- कुछ वस्तुएं तथा सेवाएं जो सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए संयुक्त/सामूहिक रूप से उपभोग की जाती हैं वह सामाजिक वस्तुओं की द्योतक हैं तथा सभी ग्राहकों को समान मात्रा में उपलब्ध कराई जाती है। उनके लाभ/लागतें विभिन्न ग्राहकों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उनकी व्यवस्था के लिए लागतों में उनके द्वारा किया गया अंशदान का उनके लाभ/लागतों की मात्रा से कोई संबंध नहीं होता। यदि उपभोक्ताओं की संख्या बहुत अधिक हो तो उन्हें ऐसी

वस्तुओं के लिए अपने अधिमान (Preferences) व्यक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता तब व्यक्तिगत उपभोक्ता के लिए यही हित में होता है कि लागत में अपना अंशदान न दें और सामाजिक वस्तु का लाभ उठाएं । इसे ही सेवा का नि : शल्क (Free-Ridership) उपभोग कहा जाता

7. **सामाजिक वस्तुओं की सीमान्त लागत तथा मूल्य निर्धारण** : सामूहिक उपभोग की प्रकृति वाली सामाजिक वस्तुओं की कुल लागत सामान्यत : स्थिर होती है क्योंकि यह सभी उपभोक्ताओं की समान मात्रा मे उपलब्ध कराई जाती है, जैसे किसी विशेष क्षेत्र में सड़क की लम्बाई । इसलिए ऐसी सेवा के उपभोक्ताओं की संख्या में परिवर्तन से, जैसे सड़क के लिए सड़क निर्माण की कुल लागत में कोई परिवर्तन नहीं आता । इसलिए ऐसी सामाजिक वस्तुओं की सीमान्त लागत शून्य मानी जाती है।

संक्षेप में ऐसी सभी वस्तुएं जिनका सामूहिक/संयुक्त रूप से उपभोग किया जाता है तथा सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है, सामाजिक वस्तुएं कहलाती है । इनमें यह विशेषताएं हैं।

1. अपवर्तन न किया जा सकना (Non-Excludability),
2. 2. बाह्यता (Externality)
3. 3. नि :शुल्क उपभोग (Free-Ridership)
4. 4. उपभोग में स्पर्धा न होना (Non-Rivalry)
5. 5. कोई निजी स्वामित्व नहीं तथा
6. 6. सीमान्त लागत शून्य होना।

कुछ भी हो यह ध्यान देने की बात है कि सभी ऐसी वस्तुएं जिनका सामूहिक रूप से उपभोग किया जाता है आवश्यक रूप से सामाजिक वस्तुएं नहीं होती । उदाहरण के लिए सर्कस या नाटक का शौक क्योंकि यह निजी रूप से उपलब्ध कराई जाती है परंतु लाभ प्राप्त करने के लिए टिकिट खरीदना जरूरी है।

इसी प्रकार कई सामाजिक वस्तुओं में बाह्यता निहित होती है क्योंकि इनके उपभोग में स्पर्धा नहीं होती । जैसे एक पुल जब उस पर भीड़ न हो । इसका उपयोग करनें वालों से पथ कर/ टोल टेक्स लिया जाना संभव है । तो भी पुल कर इसका उपयुक्त मूल्य नहीं है । क्योंकि जब तक उस पर भीड़ न हो पुल कर इसका उपभोग घटाएगा, जिसकी सीमांत लागत शून्य है । यहां यद्यपि बाह्यता संभव है परंतु कुशल नहीं है । इसलिए इसे बजट द्वारा उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता कुछ दूसरी स्थितियों में वस्तुओं के उपभोग में स्पर्धा हो सकती है । इसलिए बाह्यता कुशल हो सकती है । जैसे भाग-दौड़ के समय में भीड़ भरी सड़क जो उपलब्ध जगह के उपयोग में स्पर्धा पैदा करती है । यदि इसका उपयोग सबसे ऊंचा मूल्य देने वालों के लिए कर दिया जाए तो इसमें बाह्यता लाई जा सकती है । अर्थात् जो ऊँचा मूल्य देंगे वही प्रयोग कर सकेंगे दूसरे नहीं । तथापि यहां बाह्यता बहुत ही महंगी होगी, इसलिए इसे लागू नहीं किया जा सकता । ऐसा देखा गया है कि कुछ निजी रूप से

उपलब्ध कराई गई वस्तुओं के उत्पादन या उपभोग में ही बाहयता की समस्या प्रबल रहती है और यदि संख्या बहुत ज्यादा हो तो बजट प्रक्रिया की आवश्यकता होनी है। ताकि अधिमान व्यक्त किये जा सकें। ऐसी वस्तुएं कुछ सीमा तक बाहरी लाभ/ लागतें उत्पन्न करती हैं तथा यह भी बजट द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं। बाजार में कर आर्थिक सहायता की बजट प्रक्रिया द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है ताकि उनकी व्यवस्था सामाजिक दृष्टि से अनुकूलतम आवश्यकता के अनुसार सुनिश्चित की जा सके। उदाहरण के लिए शिक्षा, प्रदूषण, पोलियो अथवा चेचक के बचाव के लिए टीका लगाना इत्यादि। ऐसी वस्तुओं में से जो बाहरी लाभ प्राप्त करती है उन्हें (merit) गुण आधारित वस्तुएं कहा जाता है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा जबकि जिनसे बाहरी लागतें उत्पन्न होती हैं उन्हें सामाजिक रूप से बुरी वस्तुएं (demerit good) कहते हैं। जैसे मदिरा, हानिकारक मादक पदार्थ आदि।

3.2.1 बाजार की असफलता और विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं की उपलब्धता : बाजार

संयंत्र निजी वस्तुओं की व्यवस्था करते हुए साधनों का कुशल रूप से प्रयोग कर पाता है। परंतु विशुद्ध सामाजिक वस्तुएं उपलब्ध कराने में यह असफल हो जाता है। इसका कारण उन वस्तुओं की बाह्यता (Externality) अपवर्जन न किया जा सकना (Non-Excludability) तथा गैर संस्पर्धी (Non-Rivalry) होना आदि विशेषताएं हैं। मिश्रित वस्तुओं के संबंध मैं भी कस्आर्थिक सहायता की बजट प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। क्योंकि उनमें बाह्यता होती है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य, रक्षा आदि सेवाएं गुणोत्कृष्ट (meritorious) समझी जाती है तथा उन्हें बजट से आर्थिक सहायता दी जाती है ताकि अधिक मात्रा का उपभोग किया जा सके। इसके विपरीत मदिरा तथा हानिकारक मादक पदार्थों पर भारी कर लगाए जाते हैं ताकि उनका उपभोग तथा उन द्वारा उत्पन्न बाहरी लागतें कम की जाएं। इस प्रकार बजट प्रक्रिया बाजार के अनुपूरक के रूप में काम करती हैं।

3.2.2 कुशल साधन आवंटन तथा बाजार संतुलन- बाजार संयंत्र जो विनिमय, संपत्ति के स्वामित्व तथा चुनाव की स्वतंत्रता आदि पर आधारित है निजी वस्तुओं की व्यवस्था करने के लिए सबसे उपयुक्त है। उपभोक्ता सम्पूर्ण प्रभुता संपन्न होता है तथा मूल्यों द्वारा उत्पादकों का मार्ग दर्शन करता है, अपवर्जन सिद्धांत लागू करनें का परिणाम साधनों का कुशल आवंटन होना है। बाजार उस महान कार्य का स्थल समझा जाता है जहां उपभोक्ता वस्तु के लिए बोली लगाते हैं तथा उत्पादक सबसे अधिक बोली देने वाले को सामान बेचता है। वस्तुओं की मांग से उपभोक्ताओं की प्राथमिकताएं तथा पूर्ति से लागत की दशाओं का पता चलता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उपभोक्ताओं द्वारा अधिक चाही जाने वाली वस्तुएं तथा सेवाएं अति कम मूल्य पर उत्पादित की जाती हैं। अपनी संतुष्टि को अधिकतम करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दर MRSxy को उनके मूल्य अनुपात $P_{X=} / P_Y$ के बराबर करते हैं। विक्रेता सीमान्त लागत को सीमान्त आगम के बराबर करके अधिकतम लाभ कमाते हैं। प्रतियोगी बाजार में औसत आगम और वस्तु के मूल्य में समानता स्थापित की जाती है। इस प्रकार साधनों के प्रयोग में कुशलता तभी प्राप्त की जाती है जब मांग और पूर्ति बराबर हो जाते हैं।

3.2.3 पेरिटो उत्तमता और बाजार संतुलन मे कुशलता– इटली के एक अर्थशास्त्री विलफ्रेडो पेरिटो ने कुशलता का एक संकीर्ण विचार प्रस्तुत किया है जिसे पेरिटो कुशलता (Pareto Efficiency) के नाम से जाना जाता है। इसमें कुशलता के मापदंड का बहुत सामान्य कथन दिया गया है जिसे निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है -

यदि कोई दी हुई आर्थिक व्यवस्था कुशल हो तो कोई पुनर्व्यवस्था किसी दूसरे की स्थिति को खराब किये बिना पहले की स्थिति में सुधार नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में किसी आर्थिक व्यवस्था को कुशल तब कहा जाएगा यदि किसी दूसरे के कल्याण मैं कमी किये बिना कम से कम एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि की जाए इस प्रकार यह "किसी को लाभ, पर किसी एक को भी हानि नहीं" का सिद्धांत है और बाजार संयंत्र द्वारा निजी वस्तुओं के लिए साधनों के आवंटन में इस कुशलता को प्राप्त किया जाता है। यह किस प्रकार प्राप्त किया जाता है नीचे समझाया गया है -

3.3 आशिक संतुलन की स्थिति मे निजी तथा विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण:-

इस भाग में कुशल साधन आवंटन की समस्या का परीक्षण किया गया है अर्थात् साधनों का इस प्रकार आवंटन करना कि उपभोक्ताओं द्वारा अधिक चाही गयी वस्तुओं का कम से कम लागत पर उत्पादन किया जाए। सबसे पहले हम आशिक संतुलन की स्थिति में निजी वस्तुओं और उनके मूल्य निर्धारण की समस्या को लेते हैं।

3.3.1 निजी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण- अर्थशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि वस्तु का मूल्य उसकी मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। नीचे चित्र-एक में बताया गया है कि निजी वस्तुओं के लिए किस प्रकार साधनों का कुशल आवंटन प्राप्त किया जा सकता है : -

चित्र 3.1 निजी वस्तु का मूल्य निर्धारण

चित्र 3.1 में निजी वस्तु X के प्रसिद्ध बाजार को लिया गया है DA और DB क्रमश: A ए और B व्यक्तियों के लिए मांग वक्र हैं। ऐसी मान्यता है कि वस्तु X के लिए दो ही उपभोक्ता हैं अत : AD और DB का क्षैतिज योग करके X के लिए बाजार मांग वक्र प्राप्त किया गया है। इसे

DBMED – A + B द्वारा दिखाया गया है (बाजार मांग वक्र प्राप्त करने के लिए A ए० और B बी० द्वारा खरीदी गई वस्तुओं का जोड़ करके रेखांकित किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न फर्मों के सीमान्त आगम, सीमान्त लागत, औसत आगम और मूल्य के संतुलन बिन्दुओं पर सीमान्त लागत वक्रों के क्षैतिज जोड़ द्वारा बाजार की पूर्ति रेखा प्राप्त की गई है। मांग रेखा पर प्रत्येक बिंदु उपभोक्ता के संतुलन को बनाता है। क्योंकि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर बराबर है मूल्य अनुपात।

$$MRSxy = \frac{Px}{Py}$$

बाजार मांग वक्र तथा पूर्ति वक्र "अन्य बातें समान रहें की मान्यता पर आधारित हैं"। बाजार मांग तथा वक्रों का संतुलन बिन्दु E पर है जिस पर बाजार में वस्तु की संतुलन कीमत OP तथा मात्रा OQ का निर्धारण होता है। OQ में से A, OF मात्रा का उपभोग करता है। B के लिए OG मात्रा बच जाती है और इस प्रकार OF + OB = OQ यह ध्यान देने योग्य बात है कि A और B अलग-अलग मात्राओं का उपभोग करते हैं परंतु समान मूल्य OP प्रति इकाई देते हैं OP मूल्य पर जब A, OF मात्रा का उपभोग करता है उसका सीमांत लाभ। एक ही मांग रेखा के नीचे की तरफ लम्बवत दूरी RF = OP अर्थात् X की सीमांत लागत और मूल्य बराबर है। इसी प्रकार B के लिए OG मात्रा पर उसका सीमांत लाभ KG = OP अर्थात X वस्तु की सीमांत लागत और मूल्य बराबर हैं। यह भी ध्यान देना जरूरी है कि सीमान्त लागत तथा मूल्य में समानता बाजार की संतुलन मात्रा पर भी प्राप्त किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि जब बाजार द्वारा निजी वस्तु उपलब्ध कराई जाती है तो साधनों का कुशल आवंटन होता है। यदि OQ से कम मात्रा उपलब्ध कराई जाएगी तो सीमांत लाभ सीमांत लागत से अधिक होगा क्योंकि OQ मात्रा के बाई और बाजार मांग रेखा बाजार पूर्ति रेखा के ऊपर है। इसलिए जब तक उत्पादन को उस बिन्दु तक बढ़ाया जाएगा जिस पर सीमांत लाभ और सीमांत लागत बराबर होते हैं, विशुद्ध लाभ प्राप्त होता रहेगा। यदि उत्पादन OQ मात्रा से अधिक हो जाता है सीमांत लाभ सीमांत लागत से कम हो जाएगा जिससे कल्याणकमी हों जाएगी। इस प्रकार उत्पादन घटाकर OQ स्तर पर लाना पड़ेगा जहां सीमांत लाम तथा सीमांत लागत बराबर हैं। इस प्रकार संतुलन की स्थिति मैं बाजार द्वारा निजी वस्तुओं की व्यवस्था में कुशलता सुनिश्चित

3.3.2 विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण- सेम्युअलसन मॉडल- यह मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है- सामाजिक वस्तु S के केवल दो ही उपभोक्ता A और B हैं और दोनों को वस्तु की समान मात्रा उपलब्ध है चित्र 3.3 में सामाजिक वस्तु के लिए A और B के मांग वक्र क्रमश: DA तथा DB द्वारा दोनों की प्राथमिकताएं व्यक्त की गई हैं। परंतु यह मान्यता अवास्तविक हैं, क्योंकि यह सामाजिक वस्तु की "प्राथमिकता न व्यक्त करने की" विशेषता के विरुद्ध है। इसलिए इन मांग वक्रों को (Pseudo Demand Curve) कूट मांग वक्र कहते हैं। SS बाजार पूर्ति रेखा है। संतुलन मूल्य तथा मात्रा का निर्धारण करने के लिए पहले बाजार मांग वक्र निकालना होगा जो कि AD तथा DB वक्रों के लम्बवत जोड़ द्वारा प्राप्त किया जाएगा।

चित्र 3.2 सामाजिक वस्तुओं का मूल्य निर्धारण

चित्र 3.2 Pricing of Social Good

इस प्रकार DAPB END सामाजिक वस्तुओं के लिए बाजार मांग वक्र प्राप्त किया गया है जो S की किसी दी हुई मात्रा के लिए RA तथा B दोनों द्वारा दी गई कीमतों के जोड़ को दर्शाता है। इस प्रकार मांग वक्र निकालना बौवन के विश्लेषण पर आधारित है जौ उसकी पुस्तक "Towards Social Economy" में दिया गया है। बाजार मांग तथा प्रतिरेखाओं के साम्य बिन्दु E पर संतुलन स्थापित है जहां मूल्य प्रति इकाई OP तथा मात्रा OQ है। यदि A और B दोनों ही समान मात्रा OQ का उपभोग करते हैं, A प्रति इकाई ON मूल्य देता है जो उसके सीमांत लाभ ZQ के बराबर है। तथा B प्रति इकाई OL मूल्य देता हैं जो उसके सीमांत लाभ WQ के बराबर है। दोनों द्वारा दिये गये मूल्यों का जोड़ ON + OL बाजार मूल्य OP प्रति इकाई के बराबर हो जाता है। बाजार संतुलन के बिन्दु पर भी सीमान्त लाभ EQ तथा मूल्य OP बराबर हो जाते हैं। इस प्रकार कुशलता सुनिश्चित होती है। OQ से कम मात्रा पर लाभ लागत से अधिक है अत : उत्पादन बढ़ाने से कल्याण में वृद्धि होगी। OQ से अधिक मात्रा पर लाभ से लागतें अधिक हैं इससे कल्याण में कमी होगी। अत उत्पादन घटाना पड़ेगा। संक्षेप मैं यद्यपि सामाजिक तथा निजी वस्तुओं के मॉडल समान हैं परंतु उनके परिणाम अलग-अलग हैं। निजी वस्तुओं के लिए उपभोक्ता भिन्न -भिन्न मात्राओं के लिए समान मूल्य देते हैं जबकि सामाजिक वस्तुओं की समान मात्रा के लिए भिन्न-भिन्न कूच दिया जाता है। कुछ भी हो सामाजिक वस्तुओं का विश्लेषण (**Pseudo Demand Curve)** द्वारा S के लिए प्राथमिकता व्यक्त करने की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। अत: यह वास्तव में सत्य नहीं है। कर-व्यय संबंधी निर्णयों के लिए यदि वोट का राजनैतिक तरीका अपनाया जाए तो सामाजिक वस्तुओं की लागतें निकालने के लिए राजकोषीय साधनों की व्यवस्था जरूरी है। मतदाता उन समाधानों के पक्ष में वोट देना चाहेंगे जो उनके स्वयं की प्राथमिकताओं के अधिक नजदीक होते। इससे अनुकूलतम बजट के चुनाव को और भी अधिक समर्थन प्राप्त होता है और सामाजिक वस्तुओं के लिए अधिमान व्यक्त करने की यही एक अकेली तकनीक उपलब्ध है।

लिंडहाल का स्वैच्छिक विनिमय दृष्टिकोण (Lindohl's Voluntary Exchange Approach) : - स्वीडन के अर्थशास्त्री एरिक लिन्ढाल ने 19वी शताब्दी के अर्थशास्त्रियों पेन्टालियोनी सैक्स, और विक्सैल आदि के विचारों को सरकार की कर-व्यय नीति के संबंध मैं

"स्वैच्छिक विनिमय दृष्टिकोण' द्वारा व्यक्त किया है। इसके दो पहलू हैं। 1. न्यायपूर्ण वितरण प्राप्त करने के लिए सामाजिक राजनैतिक समस्या। 2. सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था की विशुद्ध राजकोषीय समस्या जबकि वितरण को अप्रभावित रखा गया है। हम सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था को लेंगे जिसके लिए हमें एक साथ कुछ निर्णय लेने होंगे अर्थात कुल सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक करो की मात्रा का निर्धारण करना। सामाजिक आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रदान की जाने वाली वस्तुओं पर कुल व्यय का आवंटन एवं विभिन्न व्यक्तियों के मध्य करों का वितरण करना। माना कि केवल दो व्यक्ति A और B एक ही सामाजिक वस्तु S का उपभोग करते हैं A और B दोनों संयुक्त रूप से S की लागत देतें हैं। क्योंकि इसके उपभोग से दोनों को लाभ मिलता है यदि A अधिक देता है तो B कम देगा और यदि A कम देता है तो B अधिक देगा। क्योकि लिन्डहाल का मॉडल बाँवन मॉडल पर आधारित है अत: इन दोनों को चित्र 3.3 तथा 3.4 द्वारा समझाया गया है।

चित्र 3.3 बाँवन मॉडल

चित्र 3.3 Bowen Model

चित्र 3.4 लिंडाल मॉडल

चित्र 3.4 Lindahl Model

चित्र 3.3 में वस्तु की मात्रा क्षैतिज अक्ष (X अक्ष) पर तथा मूल्य लम्बवत अक्ष (Y अक्ष) पर मापा गया है। A और B व्यक्तियों के मांग वक्रों को क्रमश: aa तथा bb द्वारा दिखाया गया है। बाजार मांग रेखा DmDm aa तथा bb के लम्बवत जोड़ द्वारा प्राप्त की गई है। क्योंकि दोनों व्यक्ति S की बराबर मात्रा का उपभोग करते हैं DmDm, S की विभिन्न मात्राओं की संयुक्त प्रति इकाई मूल्य को बताता है। बाजार पूर्ति रेखा क्षैतिज (Horizontal) सरल रेखा है जिसे SS द्वारा दिखाया गया है और इसके पीछे यह मान्यता है कि उत्पादन स्थिर लागतों के अन्तर्गत हो रहा है। बाजार मांग और पूर्ति वक्रों के संतुलन बिंदु E (ई) पर साम्य की स्थिति प्राप्त होती है जिस पर मात्रा OQ तथा A और B द्वारा दिया गया संयुक्त प्रति इकाई मूल्य OS है। चित्र 3.3 से स्पष्ट है कि A प्रति इकाई OV मूल्य देता है जो उसके सीमान्त लाभ WQ के बराबर है तथा B प्रति इकाई OK देता है जो उसके सीमान्त लाभ RQ के बराबर है इसके अतिरिक्त OV OK = OS, इस प्रकार उनके अंशदान पूरी बाजार कीमत के बराबर हैं। बाजार के संतुलन बिन्दु पर भी संयुक्त मूल्य OS = OQ (दोनों द्वारा प्राप्त किया गया सीमांत लाभ) OQ से कम मात्रा के लिए उदाहरण के लिए OQ, पर प्रस्तावित संयुक्त मूल्य Q_1G^1 बाजार मूल्य Q_1G से अधिक है इसलिए S का उत्पादन बढ़ाया जाएगा जिससे कल्याण में वृद्धि होगी। यदि OQ से अधिक पूर्ति की जाती है उदाहरण के लिए OQ तो संयुक्त लाभ तथा दिया जाने वाला मूल्य $K^{11}O_2$ बाजार मूल्य E^1O_2,से कम होगा जिससे कल्याण में कमी होगी। अत: उत्पादन को उस बिन्दु तक कम करना होगा जब तक यह OQ मात्रा तक न पहुंच जाए। इस प्रकार अकेला OQ संतुलन उत्पादन है जिस पर व्यक्तियों को सीमांत लाभ उनके द्वारा दिये गये अंशदान के बराबर हो जाता है और उनके सीमांत लाभों का जोड़ उनके द्वारा दिये गये संयुक्त अंशदान के बराबर हो जाता है, इस प्रकार यह कुशल समाधान है।

लिन्डहाल का मॉडल जो बाँवन मॉडल चित्र 3.3 पर आधारित है चित्र 3.4 में दिया गया है। S की मात्रा नाम X अक्ष पर दिया गया है। बायें लम्बवत अक्ष पर सामाजिक वस्तु की कुल लागत का A द्वारा दिया जाने वाला प्रतिशत अंशदान मापा गया है दायीं और लम्बवत अक्ष पर उल्टा पैमाना लेकर सामाजिक वस्तु की कुल लागत का B द्वारा दिया जाने वाला प्रतिशत अंशदान

मापा गया है। इस प्रकार चित्र 3.4' में B का प्रतिशत अंशदान शून्य से 100 प्रतिशत बढ़ता है जैसे-जैसे हम Z से 100 प्रतिशत की तरफ जाते हैं। परंतु S की मात्रा B के लिए भी मूल बिन्दु से ही मापी गयी है। चित्र 3.3 के अनुसार संतुलन कीमत OS,S वस्तु के बाजार मूल्य का पूरा अथवा 100 प्रतिशत अंशदान को बताती है। इसलिए चित्र 3.3 के SS वक्र को चित्र 3.4 में बढ़ाया गया है। यह WZ रेखा है जो X अक्ष के समानान्तर है। मूल बिन्दु O पर A का अंशदान शून्य प्रतिशत है और Z तक वह 100 प्रतिशत बढ़ता है। B का अंशदान Z बिन्दु पर शून्य प्रतिशत है और X पर 100 प्रतिशत बढ़ता है। चित्र 3.4 पर जैसे-जैसे हम O से X की तरफ जाते हैं A और B दोनों व्यक्तियों के लिए S वस्तु की मात्रा शून्य से बढ़ती जाती है। अब चित्र, नं० 3.3 के A और B के मांग वक्रों को 3.4 में अनुक्रत (Trauscube) करते हैं। क्योंकि A,om मात्रा पर OS मूल्य देता है। (चित्र 3.3)OM = wa मात्र पर उसका अंशदान 100 प्रतिशत (चित्र 3.4)OJ मात्रा के लिए A का अंशदान मूल्य का 1/2 भाग है (चित्र 3.3) इसलिए हम चित्र 3.4 मात्रा पर एक बिन्दु E^1 प्राप्त करते हैं। (OJ=OT) (इस प्रकार हम सभी ऐसी मात्राएं तथा A के अंशदान बिन्दु प्राप्त कर लेते हैं और उन्हें जोड़कर चित्र 3.4 में A की मांग रेखा aa^1 प्राप्त करते हैं। B के अंशदान के लिए उल्टा पैमाना लेते हुए चित्र 3.4 में बिन्दु b प्राप्त किया जाता है। यह वह मात्रा है जिसके लिए B पूरा अंशदान देता है (चित्र 3.31 में OL बराबर है चित्र 3.4 में OB)

B,OZ के लिए 1/2 मूल्य देता है (3.3) इस तरह 50 प्रतिशत मूल्य पर F बिन्दु तथा मात्रा OZ^1 (चित्र 3.3 के OZ के बराबर) प्राप्त की जाती है। इस प्रकार इसी क्रिया को दोहराते हुए और बिन्दुओं को मिलाने पर चित्र 3.4 में B की मांग रेखा. bb^1 प्राप्त हों जाती है। वह मात्रा जिसके लिए A पूरा मूल्य चुकाता है। (OM=wa), B द्वारा निशुल्क प्राप्त की जाती है, क्योंकि उसे कुछ नहीं देना पड़ता है। इसी प्रकार B,ob मात्रा के लिए 100 प्रतिशत देता है जो A को निशुल्क प्राप्त होती है। दूसरी सभी मात्राओं के लिए दोनों द्वारा दिया जाने वाला अंशदान कुल कीमत के बराबर हो जाना चाहिए। यदि A की मांग रेखा को B के लिए पूर्ति अनुसूची कहा जा सकता है। इसी प्रकार B की मांग रेखा को A के लिए पूर्ति अनुसूची कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए होता है कि A द्वारा प्रस्तावित मूल्य तथा B के मांग मूल्य का जोड़ कुल बाजार मूल्य के बराबर होना चाहिए ताकि संतुलन प्राप्त किया जा सके।

चित्र 3.4 में aa^1 तथा bb^1, E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं इसलिए OQ मात्रा पर संतुलन स्थापित होगा और बाजार मूल्य PQ=OW होगा (चित्र 3.3 के यह OS के बराबर है) A,EQ प्रतिशत अंशदान देता है और B,PE% इस तरह EQ+PE=PQ% जो 100 प्रतिशत के बराबर है। OQ से कम किसी भी मात्रा के लिए जैसे ON पर A, NG प्रतिशत देता है तथा B, RH प्रतिशत देता है। इस प्रकार दोनों द्वारा दिया गया संयुक्त अंशदान कुल लागत से HG प्रतिशत अधिक हो जाता है। अधिक उत्पादन के लिए जैसे OL पर A, WL प्रतिशत तथा B, VK प्रतिशत देता है और दोनों द्वारा दिया गया अंशदान पूरे बाजार मूल्य से KW प्रतिशत कम पड़ता है। इस प्रकार OQ सबसे कुशल समाधान है।

लिन्डहाल ने व्याख्या की है कि A और B में विनिमय द्वारा इस प्रकार संतुलन प्राप्त किया जा सकता है। चित्र 3.4 में ON मात्रा पर यदि A,GN2% (प्रतिशत) देता हैं तो B को RG प्रतिशत देना पड़ेगा ताकि पूरी कीमत निकल आए, परंतु वह RH प्रतिशत देने को तैयार है, इसलिए यदि A,GN प्रतिशत से थोड़ा कम देवे जैसे G^1N^1 तो B को R^6 प्रतिशत देना पड़ेगा जो RH प्रतिशत से कम होगा। दोनों को अधिक मात्रा मिलेगी। NT अधिक और दोनों को जो वह देना चाहते हैं उससे कम देना पड़ेगा (A,TT^1 प्रतिशत देगा तथा BVT^1 प्रतिशत)। इस प्रकार ऐसे विनिमय से दोनों को लाभ होगा जिससे उत्पादन को OQ तक बढ़ाया जाएगा। इस प्रकार कुशलता प्राप्त की जाती है तथा लिन्डहाल के मॉडल मैं लाभ सिद्धांत को लागू किया गया है, क्योंकि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए सीमान्त लाभ सीमान्त लागत के बराबर हो जाते हैं तथा कुल कल्याण अधिकतम हो जाता है। लिन्ढाल का दावा है कि यह मॉडल समानता की कसौटी पर खरा उतरता है तथा योग्यता सिद्धांत को लागू किया गया है, परंतु इसकी आलोचना की गई है क्योकि इनमें पुनर्वितरण की नीतियों की और संकेत होता है जबकि इस मॉडल में आय का वितरण दिया हुआ मान लिया जाता है। भेदात्मक मूल्य दी हुई वितरण व्यवस्था का परिणाम है। इसका अर्थ इनमें सुधार करना नहीं है। यह भी याद रखना चाहिए कि यदि अधिक सामाजिक वस्तुएं तथा उपभोक्ताओं को शामिल कर लिया जाए तो भी मॉडल सही बैठता है। इसके लिए मूल्य निर्धारण की वोट की राजनैतिक प्रक्रिया की आवश्यकता होगी।

3.4 कुशल साधन आवंटन के सामान्य संतुलन मॉडल-

इस भाग में निजी और सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग मैं पारस्परिक निर्भरता के तत्व को लिया जाएगा। चित्र 3.3 में आंशिक संतुलन मैं इसकी कल्पना की गई थी। अत: कुशलता की पुन: परिभाषा देना जरूरी हो गया।

1. **कुशलता की अवधारणा-** कुशल प्रबन्ध मैं क्योंकि कुशलता के पेरिटो कुशलता के रूप में परिभाषित किया गया है इसलिए उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन करने से अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के आकार मे परिवर्तन द्वारा किसी को हानि पहुंचाए बिना दूसरे को लाभ नहीं पहुंचाया जा सकता।
2. **निजी वस्तु मॉडल-** सामाजिक वस्तुओं के मॉडल को अच्छी तरह समझने के लिए हम पहले निजी वस्तुओं के मॉडल को लेते हैं। हम मानकर चलते हैं कि दोनों मॉडल्स में सर्वज्ञा नियोजक साधनों की उपलब्धता तकनीक तथा उपभोक्ता के अधिमान आदि से संबंधित जानकारी रखता है। वह वितरण की विभिन्न स्थितियां दी हुई होने पर कुशलता के निम्नलिखित नियमों का पालन करते हुए साधनों के कुशल आवंटन का कार्य करता है।
3. **कुशलता के नियम तथा कुशल समाधान का चुनाव-** सरलता के लिए हम मानकर चलते हैं कि केवल दो उपभोक्ता A और B हैं और अर्थव्यवस्था में केवल दो निजी वस्तुएं X और Y का उत्पादन होता है।

कुशलता के नियम-

1. नियोजक अर्थव्यवस्था के सभी साधनों का प्रयोग करते हुए उत्तम तकनीक अपनाता है। यदि उत्पादन की एक X वस्तु की 100 इकाइयाँ और Y वस्तु की 50 इकाइयों का उत्पादन करती है जबकि दूसरी विधि X वस्तु की 100 इकाइयां तथा Y की 150 इकाईयों का उत्पादन करती है तब उत्पादन के लिए दूसरा तरीका प्रयोग में लाया जाएगा।
2. X और Y के उपभोग मैं उनकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRSxy) A- और B दोनों के लिए बराबर होनी चाहिए। यदि (MRSxy,A के लिए 3 तथा B के लिए 4 हो तब A के लिए Y का उपभोग बढ़ाना अच्छा होगा तथा B के लिए X वस्तु का, ताकि (MRSxy) सीमान्त प्रतिस्थापन दर दोनों के लिए बराबर हो जाए (यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि यदि X का उपभोग बढ़ता जाता है तथा Y का उपभोग कम होता जाता है तो सीमान्त प्रतिस्थापन दर घटती जाती है अर्थात X तथा Y दोनों पर ही उपयोगिता ह्रास नियम लागू होता है।
3. अंत में MRSxy तथा MRTxy (X औरY के उत्पादन में सीमान्त स्थान्तरण दर,$\Delta y/\Delta x$) समान होनी चाहिए। यदि MRSxy=2/3 तथा MRTxy=1/3 तब X का उत्पादन बढ़ाना तथा Y का घटाना चाहिए ताकि MRSxy=MRTxy हो। कुशलता के लिए इन तीनों शर्तों का साथ-साथ पूरा होना जरूरी है।

कुशल समाधान का चुनाव :- नीचे चित्र 3.5 में निजी वस्तुओं के लिए विभिन्न कुशल समाधानों की स्थितियां निश्चित की जाकर उनमें से सबसे कुशल समाधान का चुनाव करने में सहायता मिलती है।

चित्र 3.5 निजी वस्तुओं का कुशल उत्पादन

चित्र 3.5 Efficient out put of Private Goods

चित्र 3.5 में Y वस्तु की मात्रा को खड़ी रेखा पर तथा X वस्तु की मात्रा को पड़ी हुई रेखा पर मापा गया है। उत्पादन सम्भावना वक्र EF पूर्ण रोजगार के साथ X और Y के उत्पादन के विभिन्न संयोगों को बताता है। यदि सभी साधनों को केवल X के उत्पादन में लगा दिया जाए तब X की अधिकतम मात्रा OF का उत्पादन किया जा सकता है और यदि सभी साधनों को केवल वस्तु

का उत्पादन करने में उपयोग किया जाए तोY की अधिकतम मात्रा OE का उत्पादन किया जा सकता है। यदि वक्र EF पर E से F अथवा F से E की तरफ जाए, तो X की किसी दी हुई मात्रा के लिए Y की अधिकतम मात्रा को जाना जा सकता है। इससे उपरोक्त दी गई शर्त नं० 1 पूरी हो जाती है, क्योंकि X (1 अथवा Y) की दी हुई मात्रा कोY (1 अथवा X) की अधिकतम मात्रा के साथ अनुपूरित किया जाता है।

इसके बाद हमें यह निर्णय करना होगा कि EF वक्र पर इस प्रकार किसी संयोग को दो उपभोक्ताओं A तथा B में बांटना है। हम जानबूझकर EF वक्र पर कोई बिन्दु P लेते हैं जिसके अनुसार X की OM मात्रा तथा Y की ON मात्रा का उत्पादन होता है। यह समझाने के लिए कि A और B उपभोक्ता X और Y की कितनी मात्रा का उपभोग करते हैं हम चतुष्कोणीय रेखा चित्र (Box Diagram) ONPM पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इसमें A और B की रुचियों तथा प्राथमिकताओं को भी लिया गया है ताकि उनके द्वारा X और Y के उपभोग की मात्राओं का निर्धारण किया जा सके। इसके लिए Box Diagram में A और B के तटस्थता मान चित्रों को बनाना होगा। O को मूल बिन्दु मानकर A के तटस्थता रेखाओं को खींचा गया है इस प्रकार a_1,a_2,a_3,a_4, और a_s आदि A की तटस्थ रेखाएं हैं जो उसकी X औरY के लिए प्राथमिकताएं बताते हैं। एक विशेष तटस्थता रेखा जैसे a_3, X और Y के उन विभिन्न संयोगों को बताती है जो A को कुछ संतुष्टि (a_3) प्रदान करती हैं। यह रेखा नीचे की ओर झुकी हुई है जिसका अर्थ है कि जैसे 2X की अधिक मात्रा का उपभोग किया जाएगा Y की कम मात्रा का उपभोग करना पड़ेगा ताकि समान संतुष्टि प्राप्त हो। जैसे-जैसे हम उत्तर पूर्व की ओर चलते हैं, प्रत्येक ऊंचा तटस्थता वक्र अधिक संतुष्टि को बताता है जबकि दक्षिण पश्चिम अथवा मूल बिन्दु की ओर चलन कम संतुष्टि को बताता है। फिर हम P को मूल बिन्दु मानकर B के लिए तटस्थता रेखाएं खींचते हैं। B के लिए X की मात्रा बाई ओर PN की तरफ तथा Y की मात्रा PM के साथ नीचे की ओर मापी गई है। विभिन्न तटस्थता वक्र b_1,b_2,b_3,b_4,b_5 आदि x और y के प्रति B की प्राथमिकताओं को बताते हैं। प्रत्येक ऊंचा तटस्थता वक्र (O की तरफ चलन) अधिक संतुष्टि के स्तर को बताता है और प्रत्येक नीचे स्तर का वक्र P की तरफ का चलन) B के लिए संतुष्टि के लिए नीचे स्तर को बताता है। तब हम उन सभी बिन्दुओं को ज्ञात करते हैं जो कार्य क्षमता के दूसरे नियम को संतुष्ट करते हैं अर्थात जहां A और B के लिए Y के लिए X की सीमान्त प्रतिस्थापन दर बराबर है। 'R,C,G,H,J' आदि बिन्दु वह बिन्दु हैं जिन पर दोनों तटस्थता वक्र अर्थात a^1s और b^1s एक दूसरे को स्पर्श करते है। क्योंकि किसी तटस्थता वक्र के एक बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा इसके ढाल यानि MRSxy को मापती है, इसलिए दोनों तटस्थता वक्रों पर ऐसे सभी स्पर्श बिन्दु A और B के लिए MRSxy को मापते हैं जिससे A के लिए MRSxy, B की MRSxy के बराबर, हो जाती है। इन सभी स्पर्श बिन्दुओं को जोड़ने से हमें 'OGCGHJP' वक्र प्राप्त होता है जिसे प्रसंविदा वक्र अथवा सम्पर्क वक्र कहते हैं। इस प्रकार प्रसंविदा वक्र (Contract Curve) वह है जो दो तटस्थता रेखाओं के सभी स्पर्श बिन्दुओं को जोड़ने से प्राप्त होता है तथा A और B के लिए MRSxy बराबर हो जाती है, इसके बाद यह सिद्ध करना होगा कि पैरिटो कुशलता समाधान (Pareto Efficient Solution) इस प्रसंविदा वक्र

(Contract Curve) के किसी बिन्दु पर होगा। इसके लिए चित्र 3.5 में D को प्रारम्भिक बिन्दु चुना जा सकता है। इस बिन्दु पर A का तटस्थता वक्र a3, B के तटस्थता वक्र b_2 को काटता है। D से G की ओर चलन से A उसी तटस्थता रेखा a_3 पर रहता है, जबकि B ऊँचे तटस्थता वक्र b_3 पर पहुंच जाता है और इस प्रकार A को हानि पहुंचाए बिना अधिक संतुष्टि प्राप्त करता है। इसी प्रकार यदि हम D से H की ओर चले, B उसी तटस्थता रेखा b_2 पर रहता है जबकि A ऊँचे तटस्थता वक्र a_4 पर पहुंच जाता है। इस प्रकार B को हानि पहुंचाए बिना A अधिक संतुष्टि प्राप्त करता है। स्पष्ट है कि D से G अथवा H की ओर से बिना किसी दूसरे को हानि पहुंचाए किसी एक को लाभ पहुंचता है अत: उसे बिन्दु D की अपेक्षा अधिक कुशल समझा जाता है। GH के बीच किसी बिन्दु की तरफ चलन से दोनों को लाभ मिलेगा। अत: D की तुलना में अधिक कुशल होगा इस प्रकार OP (Contract Curve) सम्पर्क वक्र पर सभी बिन्दु कुशल समाधान के सूचक हैं तथा इन पर A और B के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर समान होगी इस प्रकार कुशलता का दूसरा नियम भी पूरा हो जाता है। तो भी प्रसंविदा वक्र OP पर कई बिन्दु हैं जिनसे कुशल समाधान प्राप्त होता है। हमारा अगला काम इन बिन्दुओं में से सबसे उत्तम बिन्दु का चुनाव करना है। इस बिन्दु को प्राप्त करने के लिए हमें कुशलता की तीसरी शर्त को पूरा करना होगा अर्थात MRSxy=MRTxy इसके लिए हम उत्पादन संभावना वक्र के P बिन्दु पर ST स्पर्श रेखा खींचते हैं। P बिन्दु पर स्पर्श रेखा ST का ढाल MRSxy को मापता है। फिर हम H बिन्दु पर स्पर्श रेखा WZ इस प्रकार खींचते हैं कि WZ, ST स्पर्श रेखा के समानान्तर हो। क्योंकि समानान्तर रेखाओं के ढाल बराबर होते हैं इसलिए WZ तथा ST के ढाल भी समान होंगे। बिन्दु H पर स्पर्श रेखा WZ का ढाल A और B के लिए सीमान्त प्रतिस्थापन दर को मापता है जबकि P बिन्दु पर ST का ढाल सीमान्त रूपान्तरण दर को मापता है। स्पष्ट है कि H बिन्दु पर कुशलता की तीसरी शर्त भी पूरी हो जाती है। (सम्पर्क वक्र पर एक से अधिक ऐसे बिन्दु हो सकते हैं जिन पर खींची गई स्पर्श रेखा ST के समान्तर हो।) X वस्तु की OM मात्रा में से OU, A को तथा UM, B को मिलती है। इसी प्रकार Y की VD मात्रा में से (ON=VU) UH, A को तथा HV,B को मिलती है। इस प्रकार पूरा X और Y दोनों उपभोक्ता A और B में बांटा जाता है। इस प्रकार EF पर P बिन्दु के अनुरूप H बिन्दु कुशलतम समाधान है।

4. अनुकूलतम का चुनाव :- जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि EF वक्र पर P बिन्दु के अनुरूप H बिन्दु सबसे उत्तम समाधान है तो भी अर्थव्यवस्था EF पर K से L तक किसी भी बिन्दु को चुन सकती है। EF पर ऐसे प्रत्येक बिन्दु के अनुरूप कई कुशल समाधान होंगे जो पेरिटो उत्तम या कुशलतम कहलाते हैं।

इस प्रकार नियोजक को इन समान रूप से कुशल विकल्पों में से केवल एक को चुनना है। प्रत्येक कुशल समाधान जैसे चित्र 3.5 में बिन्दु H, A और B के कल्याण की स्थितियों को दर्शाता है, इससे पता चलता है कि A, उपयोगिता के स्तर a_4 पर तथा B, b_2 पर है। इसलिए EF पर किसी बिन्दु के चुनाव के लिए वितरण के विषयों पर निर्णय करना होगा जो पेरिटो उत्तमता की शर्त के समाधान के क्षेत्र से बाहर हैं। क्योंकि इसमें A और B के कल्याण के स्तरों में Trade off होगा, अनुकूलता के चुनाव के लिए हमें Utility Frontier को ज्ञात करना होगा जो कि नीचे चित्र 3.6 में

दर्शाया गया है। फिर हम चित्र 3.6 में चित्र 3.5 की भांति EF वक्र के P बिन्दु के अनुरूप सभी उत्तम समाधान जैसे 'H' को रेकार्ड करते हैं। फिर A और B के उपयोगिता स्तरों को भी रेकार्ड करते हैं। उदाहरण के लिए बिन्दु H,A के उपयोगिता सूचकांक a_4 को बताता है जो इस चित्र में A_1 द्वारा दिखाया गया है तथा B का उपयोगिता सूचकांक b_2,B द्वारा दिखाया गया है। चित्र 3.6 में बिन्दु M,N,B,W आदि चित्र 3.5 के EF वक्र पर विभिन्न बिन्दुओं के अनुरूप कुशल समाधान के बिन्दु हैं। इन बिन्दुओं को मिलाने से हमें CD के रूप में Utility Frontier निकालते हैं जो A को प्राप्त प्रत्येक उपयोगिता स्तर के साथ B को अधिकतम संभव प्राप्य उपयोगिता स्तर को बताता है।जैसे-जैसे हम वक्र EF पर K बिन्दु की ओर जाते हैं, A का तटस्थता मान चित्र वही रहता है परन्तु B के लिए मूल बिन्दु K पर खिसक जाता है। इस प्रकार इसका तटस्थता मान चित्र भी उसके अनुसार खिसक जाता है यही स्थिति दूसरे बिन्दुओं के साथ भी होती है।

चित्र 3.6 अनुकूलतम चुनाव

चित्र 3.6 The Optimum Choice

इस प्रकार Utility Frontier CD पर प्रत्येक बिन्दु A और B उपभोक्ताओं में बांटी गयी निजी वस्तुओं X और Y में साधनों के प्रयोग को दिखाता है, जैसे-जैसे हम Utility Frontier पर MHND पर होते हुए C से D तक चलते हैं, A की उपयोगिता कम होती जाती है और B की बढ़ती जाती है। इसी प्रकार D से C तक चलन में A के कल्याण में वृद्धि होती है और B के कल्याण मै कमी आती जाती है। स्पष्ट है कि चाहे CD पर प्रत्येक बिन्दु पेरिटो कुशल है! Pareto Efficient परंतु यह वितरण की उत्तम व्यवस्था प्राप्त कराने में असफल रहता है, जिससे किसी एक को लाभ तथा दूसरे को हानि होती है। इस प्रकार उपयोगिता फ्रंटीयर पर बिन्दुओं में चुनाव के लिए A को लाभ B को हानि अथवा B को लाभ A को हानि होने से व्यापार को बन्द करने की आवश्यकता है। अत: A और B के उपयोगिता स्तरों को सापेक्षित मूल्य देने संबंधी निर्णय समाज द्वारा किया जाएगा। इसलिए चित्र 3.6 में सामाजिक तटस्थता रेखाएं S_1,S_2,S_3,S_4,S_5 आदि बनाते हैं। जो सामाजिक कल्याण फलनों से निकाले गये हैं। इनमें से प्रत्येक वक्र A और B द्वारा प्राप्त किये गये विभिन्न उपयोगिता स्तरों को बताता है जो समाज के दृष्टिकोण से समान रूप से अच्छे हैं। अत: किसी एक सामाजिक वक्र पर चलन का अर्थ है कि A (या B) की उपयोगिता में वृद्धि अथवा

B (या A) की उपयोगिता में कमी से निरस्त हो जाएगी और सामाजिक कल्याण स्थिर रहेगा। ऊंचे वक्र समाज को प्राप्त अधिक उपयोगिता तथा नीचे वक्र कम उपयोगिता को बताते हैं।

अब अनुकूलतम का चुनाव करने के लिए हमें चित्र 3.6 में वह बिन्दु ढूंढना होगा जो न केवल पेरिटो कुशल को बल्कि उससे समाज का अधिकतम कल्याण भी होना चाहिए। चित्र 3.6 में यह N बिन्दु पर होगा जहां सामाजिक तटस्थता रेखा S_4 उपयोगिता फ्रंटीयर को स्पर्श करती है। चित्र 3.6 से पता चलता है कि CD पर सभी बिन्दु कुशल है परंतु R और F बिन्दु अकुशल हैं क्योंकि यह CD के अन्दर स्थित हैं। K और Z अप्राप्य हैं चाहे समाज के दृष्टिकोण से यह वांछनीय है। बिन्दु R और F पर साधनों का पूरा उपयोग नही हो रहा और बिन्दु K और Z को प्राप्त करने के लिए समाज के पास साधनों की कमी है। चित्र 3.6 से यह भी पता चलता है कि बिन्दु M,H,W आदि Utility Frontier पर स्थित है इसलिए कुशल है। तो भी यह सभी बिन्दु S_4 पर N बिन्दु की तुलना में नीचे स्तर के सामाजिक तटस्थता रेखा पर स्थित हैं। इसलिए यह बिन्दु Bliss Point कहलाता है और यह उत्तम चुनाव का बिन्दु है जिससे पेरिटो कुशलता तथा उचित वितरण व्यवस्था के साथ अधिकतम सामाजिक कल्याण होगा। इस प्रकार यदि हम M बिन्दु पर ही तो R की तरफ जाने में चाहे अधिक सामाजिक कल्याण होता है परन्तु यह अकुशल चुनाव होगा, K इसलिए नही चुना जाएगा, इसलिए चलन H की ओर तथा फिर N की ओर होगा। चाहे इसमें A को हानि तथा B को लाभ होगा परन्तु इससे समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकेगा। यदि N से आगे चलन हो तो चाहे इससे B को लाभ होगा परन्तु सामाजिक कल्याण में कमी होगी। अत: इसे अस्वीकार किया जाएगा। इसलिए अकेला N ही अनुकूलतम चुनाव का बिन्दु है। बिन्दु N एक साथ कुशल उत्पादन संयोग तथा उपभोक्ताओं में इसके वितरण का निर्धारण करता है।

3.5 विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का सामान्य मॉडल-

निजी वस्तुओं को अनुकूलतम तरीके से उपलब्ध कराने के लिए बाजार संयंत्र सबसे उपयुक्त है, क्योंकि यह उपरोक्त वर्णित सभी शर्तों को पूरा करता है। परंतु सामाजिक वस्तुओं को भी मिलाने से कुशलता के नियमों में परिवर्तन हो जाता है और उन्हें प्रोफेसर सेम्यूलसन द्वारा विकसित किये गये मॉडल द्वारा समझाया जाता है। माना कि अर्थव्यवस्था में एक निजी वस्तु Y और एक सामाजिक वस्तु S का उत्पादन किया जाता है केवल दो उपभोक्ता A और B हैं।

1. कुशलता के नियमों का पुन: परीक्षण- उत्तम तकनीक के प्रयोग द्वारा तथा साधनों के पूर्ण रोजगार के संबंध में कोई परिवर्तन नहीं है। कुछ भी हो सामाजिक वस्तुओं को भी मिलाने से HRXsy,A और B के लिए बराबर नहीं होती, क्योकि सामाजिक वस्तु S की मात्रा दोनों के लिए बराबर होती है चाहे उनकी प्राथमिकताएं कुछ भी हों। अत: कुशलता के लिए जरूरी है कि A के लिए MRSxy+B के लिए MRSxy=MRTsy है। निजी वस्तुओं की भांति यहां भी उन्हीं तरीकों से हम नीचे दिये गये चित्र 3.7 से सभी कुशल समाधान ज्ञात कर सकते है।

2. कुशल समाधानों का चुनाव- नीचे चित्र 3.7 में तीन चित्र दिये गये हैं। सबसे ऊपर वाला पूरी अर्थव्यवस्था से संबंधित है और EF वक्र निजी वस्तु Y तथा सामाजिक वस्तु S के

विभिन्न संयोगों के लिए उत्पादन संभावना वक्र हैं। तीनों चित्रों में निजी वस्तुओं को लम्बवत अक्ष तथा सामाजिक वस्तुओं को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। बीच के चित्र में तटस्थता मान चित्र द्वारा एक ही प्राथमिकताओं को दिखाया गया है, जबकि सबसे नीचे वाला चित्र B की Y और S के लिए प्राथमिकताओं को बताता है। तीनों चित्रों में एक सा पैमाना माना गया है। नतोदर (Concave) उत्पादन संभावना वक्र का अर्थ है कि S और Y का उत्पादन बढ़ती हुई लागत की दशाओं के अन्तर्गत हो रहा है। S की उपभोग की गई मात्रा अर्थव्यवस्था के लिए तथा उपभोक्ताओं A और B द्वारा बराबर है। Y की कुल मात्रा A और B में बांटी जाती है तथा पूरी तरह समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि अर्थव्यवस्था उत्पादन संभावना वक्र EF पर R बिन्दु का चुनाव करती है तो Y की RL मात्रा तथा S की OL मात्रा का उत्पादन होता है। इस प्रकार A और B दोनो S की OL मात्रा का उपभोग करते हैं इसलिए $OL=OL_2=OL_1$ तो भी Y की RL मात्रा में से यदि हम A के लिए a_2 उपयोगिता स्तर को लें, तब, A,Y की R_1L_1 मात्रा का उपभोग करता है और $RL-R_1L_1$,B के लिए बच जाता है जो R_2,L_2 के बराबर है। (सबसे नीचे का चित्र) बीच के चित्र में A के लिए कोई उपयोगिता का स्तर चुनने पर हम अर्थव्यवस्था के लिए S और Y के सभी संयोगों को प्राप्त कर सकते हैं। ऊपर की तरह A के संयोगों को घटा कर सबसे नीचे वाले चित्र में B को प्राप्त होने वाले संयोगों को ज्ञात कर सकते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है यदि हम A के लिए a_2 उपयोगिता स्तर पर R_1 से P_1 की ओर चलन करते हैं तो हमें सबसे ऊपर वाले चित्र में EF वक्र पर P बिन्दु प्राप्त होता है। इसके अनुसार Y की PM मात्रा तथा S की OM मात्रा का उत्पादन होता है। इस प्रकार A,S की OM_1 मात्रा प्राप्त करता है और OM_2 मात्रा B, के लिए बच जाती है।

चित्र 3.7 सामान्य संतुलन में सामाजिक तथा निजी वस्तु

चित्र 3.7 Social And Private Good in General Equilibrium

और Y की P_1M_1 मात्रा A को प्राप्त होती है। बाकी $PM-P_1M_1=P_2M_2$ है B को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार हम बीच के चित्र मे बिन्दु Q_1,S_1 आदि की तरफ चलन करते हैं और सबसे नीचे के चित्र में बिन्दु Q_2,S_2 आदि ज्ञात करते हैं। S_2,Q_2,P_2R_2 बिन्दुओं को मिलाने से हमें $NR_2P_2Q_2S_2$ वक्र प्राप्त होता है जो B को उपभोग के लिए प्राप्त होने वाले S और Y के संयोगों की दर्शाता है। इस प्रकार A को a_2 उपयोगिता स्तर प्राप्त हो जाता है। अधिकतम कल्याण के लिए हमें $NR_2P_2Q_2S_2$ वक्र पर कोई बिन्दु इस प्रकार चुनना होगा कि B का कल्याण अधिकतम हो। ऐसा इसलिए है क्योकि A का कल्याण समान रहता है। इन बिन्दुओं के अनुरूप वह a_2 उपयोगिता स्तर पर है। सबसे नीचे के चित्र में Q_2 बिन्दु पर कल्याण अधिकतम 'होता है, क्योकि इस बिन्दु पर B को अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होती है। क्योंकि तटस्थता वक्र b_3, $NR_2P_2Q_2$ को Q_2 पर स्पर्श करता है (Tangeut) इसलिए यदि को उपयोगिता स्तर पर रखना हो तो यह अधिकतम संभव उपयोगिता है जो B प्राप्त कर सकता हैं।

इससे अर्थव्यवस्था सबसे ऊपर वाले चित्र में Q बिन्दु पर रहती है जिसके अनुसार Y की QN मात्रा तथा S की ON मात्रा उत्पादन होता है। इसमें से Y की Q_1N_1 मात्रा A को तथा $Q_2N_2(QN-Q_1N_1)$ B को मिलती है। सामाजिक वस्तु की समान मात्रा $ON_1=ON_2=ON$ दोनों A और B द्वारा उपभोग की जाती है। Q_2 बिन्दु पर कुशलता की ऊपर दी गई शर्तें पूरी हो जाती है, क्योंकि A और B के लिए MRSxy का जोड़ MRTxy बराबर हो जाता है। Q पर MRTsy= $\frac{QW}{WS}\frac{Q_1}{W_1}\frac{W_1}{S_1}+\frac{Q_2}{W_2}\frac{W_2}{S_2}$ और यह ($\Delta Y/\Delta S$) के बराबर है (अर्थात् A के लिए MRSxy+B के लिए MRSxy) यह NQ_2J वक्र को निकालने के तरीके से स्पष्ट है। ($W_1S_1=W,S,+W_2S_2$ जबकि $QW=Q_1W_1+O_2W_2$) अत: Q सबसे कुशल समाधान है।

यह याद रखने की बात है कि Q_2, वक्र EF पर Q के तथा A के लिए a_2 उपयोगिता स्तर के अनुरूप है। हम A के लिए विभिन्न उपयोगिता स्तर के अनुरूप इस प्रकार की कई कुशल समाधान प्राप्त कर सकते हैं जैसे a_1,a_2,a_3 आदि और निजी वस्तुओं की तरह कई कुशल समाधान प्राप्त कर सकते हैं और Utility Frontier खींचा जा सकता है।

3. **अनुकूलतम का चुनाव :-** कुशल समाधानों से चित्र 3.6 में दिखाए गये उपयोगिता फ्रंटीयर को प्राप्त कर सकते हैं। सामाजिक तटस्थता वक्रों को शामिल करके हम N जैसे Bliss Points ढूंढ सकते हैं जौ हमें निजी तथा सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन के कुशल संयोगों को बताएंगे तथा वितरण की समानता के लिए विस्तृत विचारणीय तथ्य प्राप्त होंगे।

4. **वोट तक विस्तार-** सेम्यूलसन द्वारा विकसित उपरोक्त मॉडल, बॉवन मॉडल पर आधारित हैं। इसमें यह मान्यता थी कि नियोजक सब कुछ जानता है तथा उपभोक्ताओं द्वारा अपने अधिमान व्यक्त किये गये हैं। कुछ भी हो यह मान्यताएं अवास्तविक हैं तथा सामाजिक वस्तुओं के लिए प्राथमिकताओं को व्यक्त करने के लिए वोट की राजनैतिक प्रक्रिया की आवश्यकता है।

3.6 सारांश-

इकाई तीन में हमने निजी वस्तुओं तथा विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं का परीक्षण तथा उनमें . अंतर स्पष्ट किया। सामाजिक वस्तुएं बजट द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं। उनमें स्पर्द्धा नहीं होती, उनमें बाह्यता होती है तथा अपवर्जन न होने के कारण उनका मूल्य निर्धारण नहीं किया जा सकता क्योकि सभी लोग उन्हें बराबर मात्रा मैं उपभोग करते हैं। निजी वस्तुओं का अपवर्जन होने के कारण मूल्य निर्धारण किया जा सकता है। उनके उपभोग में स्पर्धा होती है। उनका मूल्य निर्धारण किया जा सकता है और उनको बाजार द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

निजी वस्तुओं के साधन आवंटन में बाजार द्वारा कुशलता प्राप्त की जाती है। जबकि सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था के लिए उनमें बाह्यताओं (Externalities) के कारण बजट तथा वोट की राजनैतिक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। निजी वस्तुओं के संबंध में कुशलता के लिए सीमान्त लाभ, सीमान्त लागत के बराबर होना चाहिए अथवा प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा निजी वस्तु के लिए किये गये भुगतान के बराबर सामाजिक वस्तु के संबंध में संयुक्त सीमान्त लाभ बराबर है उपभोक्ताओं द्वारा दिया गया कुल अंशदान। इसे सेम्यूलसन तथा लिन्डहाल मॉडल्स द्वारा समझाया गया है।

सामान्य संतुलन के स्तर पर कुशलता को समझाने के लिए पेरिटो कुशलता (Pareto Efficiency) की धारणा का प्रयोग किया गया। इसके लिए निजी वस्तुओं के प्रत्येक उपभोक्ता के लिए MRSxy और MRTxy मैं समानता होनी चाहिए जबकि सामाजिक वस्तुओं के संबंध में संयुक्त MRSxy, MRTsy के बराबर होनी चाहिए।

फिर पेरिटो कुशलता तथा पेरिटो उत्तमता मैं अंतर करने के लिए अनुकूलतम चुनाव की धारण को, जिससे सामाजिक कल्याण अधिकतम होता है, शामिल किया गया है। दूसरी धारणा सभी प्रकार के उत्पादन के उपयुक्त वितरण की ओर संकेत करती है। जिससे किसी एक को लाभ तथा दूसरे को हानि होती है। यहां जिन सामाजिक वस्तुओं मॉडलस का वर्णन किया गया है उनमें उपभोक्ताओं की संख्या अधिक है, इसलिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- A B Atkinson and J.E. Stiglitz, Lectures on Public Economics.
- J.R. Aronson, Public Finance
- R.A. Musgrave and P.B. Musgrave, Public Finance in Theory and Practice, MC-Graw Hill Book Co. London.
- R.A. Musgrave, The Theory of Public Finance.

इकाई 4

बाह्यताएं एवं मिश्रित वस्तुएं
Externalities and Mixed goods

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 बाह्यताएं एवं मिश्रित वस्तुएं

4.3 गुणाधारित वस्तुएं - कुशल मूल्य निर्धारण

4.4 अवगुणाधारित वस्तुएं - कुशल मूल्य निर्धारण

4.5 छोटे वर्ग में सौदा करना

4.6 सामाजिक कल्याण फलन

4.7 कुशलता एवम् उत्तमता

4.8 सारांश

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

इकाई तीन में अंतिम सिरे की निजी और सामाजिक वस्तुओं का परीक्षण किया गया है। इससे दोनों स्थितियों के लिए आर्थिक दृष्टि से कुशल उत्पादन प्राप्त हुआ है। परंतु वास्तव में हमारे सम्मुख बहुत सी ऐसी वस्तुएं आती हैं जिनमें निजी और सामाजिक दोनों प्रकार की वस्तुओं की विशेषताएं पायी जाती हैं। चूंकि निजी उत्पादन और उपभोग की क्रियाएं बाह्यताएं उत्पन्न करती हैं तो इन वस्तुओं के संबंध में वैसी ही समस्याएं उत्पन्न होती हैं जो इन दोनो प्रकार की वस्तुओं के संबंध में होती हैं। इससे विशुद्ध निजी तथा सामाजिक वस्तु का एक साथ ही विश्लेषण करने की आवश्यकता अनुभव होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुछ वस्तुओं के लिए, जिन्हें निजी वस्तुओं की श्रेणी में रखा गया है, सार्वजनिक क्षेत्र की क्यों आवश्यकता होती है। ऐसी वस्तुओं और सेवाओं का मिश्रित वस्तुओं के वर्ग में वर्णन किया गया है।

इस इकाई के निम्न भाग में, खंड 4.2 में हम बाह्यता की संकल्पना तथा मिश्रित वस्तुओं, का अध्ययन करेंगे। खंड 4.3 मैं गुणाधारित वस्तुओं के लिए कुशल मूल्य निर्धारण मॉडल लिया गया है। उसी को (demerit goods) अवगुणाधारित वस्तुओं के लिए खंड 4.4 मे वर्णन किया गया है। चूंकि इन दोनों खंडों, में बड़ी संख्या के लिए कुशल समाधान लिया गया है, खंड 4.5 में छोटे ग्रुप में सौदा करने में कुशल मूल्य निर्धारण को समझाया गया है। खंड 4.6 में उपयोगिता की अन्त: परस्पर तुलना की समस्या पर विचार किया गया है और खंड 4.7 में सामाजिक कल्याण फलन की

आवश्यकता का वर्णन किया गया है। अंत में खंड 4.8 में कुशलता तथा उत्तमता का वर्णन किया गया है तथा इकाई 4 का सारांश दिया गया है।

4.2 बाह्यताएं तथा मिश्रित वस्तुएं-

कुछ निजी तथा सामाजिक वस्तुएं एवं सेवाएं ऐसी होती है जिनके उपभोग अथवा उत्पादन द्वारा बाहरी लाभ अथवा लागतें (बाहरी मितव्ययताएं अथवा अमितव्ययताऐं प्राप्त होती है) इसलिए निजी वस्तुओं के संबंध में भी प्रतियोगी संतुलन में मात्रा संबंधी निर्णय आवश्यक रूप से पेरिटो कुशल नहीं होते। इसलिए कर और अनुदान के माध्यम से बाजार में सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि इन वस्तुओं में निजी और सामाजिक दोनों प्रकार की वस्तुओं की विशेषताएं पायी जाती हैं इसलिए इन्हें मिश्रित वस्तुएं कहा जाता है। वे वस्तुएं जिनसे बाहरी लाभ उत्पन्न होते हैं तथा जिन्हें श्रेष्ठ माना जाता है। वह गुणाधारित वस्तुएं कहलाती हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा आदि। जिन वस्तुओं से बाहरी लागतें उत्पन्न होती हैं वह सामाजिक रूप से बुरी वस्तुएं कहलाती हैं जैसे मादक वस्तु तथा प्रदूषण आदि। बाहयता की धारणा उस स्थिति की और संकेत करती है जब व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु के उपभोग अथवा उत्पादन में जितना वह समझता है उससे अधिक लागत / लाभ उत्पन्न होता हो। मिश्रित वस्तुओं के संबंध में बाहयता के पक्ष में दिये गये तर्क इकाई तीन में विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं के संबंधमें दिये गये तर्कों से भिन्न हैं, क्योंकि मूल्यांकन द्वारा विशुद्ध व्यक्तिगत दृष्टिकोण को सरकार द्वारा अस्वीकार किया गया है, क्योंकि इनका सामाजिक आधार पर मूल्यांकन किया जाता है, अत: गुणाधारित वस्तुओं की अनुदान तथा अवगुण-धारित वस्तुओं पर टैक्स लगाया जाता है। इस प्रकार सरकारी हस्तक्षेप जरूरी हों जाता है। मिश्रित वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग में केवल आंतरिक लागतें लाभों पर ही विचार किया जाता है। इसलिए बाजार में जो मूल्य दिया जाता है वह व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले केवल प्रत्यक्ष लागतों / लाभों को दर्शाता है। परंतु यह क्रियाएं आंतरिक लागतें / लाभों के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष लागतें / लाभ उत्पन्न करती हैं जो समाज के दूसरे लोगों द्वारा सहन की जाती है। यह बाहरी लागतें अथवा लाभ बाजार मूल्यों में शामिल नहीं की जाती। इसलिए गुणाधारित वस्तुओं की पूर्ति कम तथा सामाजिक रूप से बुरी वस्तुओं की पूर्ति अधिक हो जाती है। इस प्रकार बाजार संतुलन में अकुशलता आ जाती है। जब बजट प्रक्रिया में कर-आर्थिक सहायता से सुधार किया जाता है। संक्षेप में जब निजी विनिमय से उन लोगों पर प्रभाव पड़ता है जो प्रत्यक्ष रूप से सौदों में लगे हुए नहीं है तब बाह्यताएं उत्पन्न होती हैं। नीचे भाग 4.3 और 4.4 में स्पष्ट विश्लेषण दिया गया है कि किस प्रकार merit और demerit वस्तुओं के लिए प्रतियोगिता की स्थिति में करों और आर्थिक सहायता से सुधार करके साधनों का पेरिटो कुशल आवंटन प्राप्त किया जा सकता है।

4.3 गुणाधारित वस्तुएं-कुशल मूल्य निर्धारण- (Merit goods-Efficient Pricing) : जैसा कि ऊपर बताया गया है कि जिन वस्तुओं से बाहरी लाभ प्राप्त होते हैं उन्हें समाज के दृष्टिकोण से गुणाधारित (merit) वस्तुएं कहा जाता है। चाहे यह निजी रूप से उपलब्ध कराई जाती है परंतु सरकार भी इनकी पूर्ति करती है। और इनके उपभोग को प्रोत्साहन देती

है। उदाहरण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रक्षा किसी बीमारी से बचाव के लिए टीके लगाना आदि। स्पष्ट है कि इससे उपभोक्ताओं के अधिमानों में सरकारी हस्तक्षेप हो जाता है। चूंकि शिक्षा अथवा टीके से केवल उन्हीं लोगों को लाभ नहीं मिलता जो शिक्षा प्राप्त करते हैं अथवा टीका लगाते हैं, परन्तु शिक्षित लोगों के साथ रहने तथा किसी बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों की संख्या में कमी से पूरे समाज को भी लाभ मिलता है। इससे उपभोक्ताओं की पसंद मे सरकारी हस्तक्षेप को समर्थन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रजातंत्र में सरकार को अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए वह ऐसे हस्तक्षेप (जैसे गरीबों को सस्ती दर पर भोजन उपलब्ध कराना) करती है। अंत में वर्तमान अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता के अधिमान विज्ञापन द्वारा प्रभावित होने की संभावना है जिससे पूरी सूचना नहीं मिलती। इसे सरकारी हस्तक्षेप द्वारा सुधारा जा सकता है। इन सभी तत्वों से पता चलता है कि merit वस्तुओं के संबंध में सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। merit वस्तुओं की ऐसी धारणा को उस विश्लेषण द्वारा समझाने की आवश्यकता है जिससे कुशल आवंटन अंत में व्यक्तिगत पसंद से संबंधित होता है। इसे निम्न चित्र 4.1 की सहायता से समझाया गया है। चित्र 4.1 में Dm वक्र X वस्तु के लिए बाजार मांग वक्र है (व्यक्तिगत मांग रेखाओं के क्षैतिज जोड़ द्वारा प्राप्त) जबकि SS बाजार पूर्ति रेखा है। क्योंकि X वस्तु से बाहरी लाभ उत्पन्न होते हैं हम उन्हें पूरक मांग वक्र Dx द्वारा दिखाते हैं।

चित्र 4.1 बाहरी लाभ तो सरकार द्वारा आर्थिक सहायता-

चित्र 4.1

(यह Psendo मांग वक्र है क्योकि इससे बाहरी लाभ पता चलते हैं) जो X के उपभोग से प्राप्त बाहरी लाभों को बताते हैं। Dx वक्र बाहरी लाभ के लिए व्यक्तिगत मांग रेखाओं के लम्बवत जोड़ द्वारा प्राप्त किया गया है, क्योंकि यह दी हुई मात्रा के लिए समाज को प्राप्त होने वाले कुल बाहरी लाभ को दर्शाता है। (Dx वक्र के नीचे की ओर झुकाव का अर्थ है कि जैसे 2x, की अधिक मात्रा का उपभोग किया जाता है बाहरी लाभ की मात्रा कम होती जाती है। इस प्रकार Dm बाजार मांग वक्र से X वस्तु के उपभोक्ताओं को प्राप्त होने वाले आंतरिक लाभों का पता चलता है जबकि Dx

समाज को X वस्तु की विभिन्न मात्राओं के उपभोग सें मिलने वाले बाहरी लाभ को दिखाता है। आंतरिक और बाहरी लाभों का जोड़ सामाजिक लाभों को बताता है। इसलिए हमें Dm तथा Dx वक्रों के लम्बवत जोड़ द्वारा Ds वक्र प्राप्त होता है। यह वस्तु के उपभोग से सामाजिक लाभों को दिखाता है। इस प्रकार Ds में आंतरिक और बाहरी लाभ, दोनों ही तत्व शामिल हैं।

चित्र 4.1 से स्पष्ट है कि यदि X वस्तु बाजार द्वारा उपलब्ध कराई जाती है तो बाजार मांग वक्र (Dm) तथा पूर्ति वक्र (SS) के कटाव का बिन्दु E पर साम्य होगा इस पर प्रति इकाई मूल्य OP तथा मात्रा OQ होगी। बाहरी लाभ प्राप्त होने के कारण Dm वक्र खिसक कर Ds की स्थिति में आ जाएगा और नया संतुलन Ds और SS के कटाव के बिन्दु F पर स्थापित होगा। इस प्रकार X की मात्रा बढ़कर OQs तथा मूल्य OK प्रति इकाई हो जाता है। तो भी उपभोक्ता OK मूल्य (मूल्य में PK वृद्धि) नहीं देता क्योंकि उत्पादन को OK से OQs तक बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा Ds तथा Dm के अंतर के बराबर अर्थात चित्र 4.1 में OQs मात्रा पर FR प्रति इकाई अनुदान देना चाहिए। उपभोक्ता ON (RQS) प्रति इकाई मूल्य देंगे, जबकि सरकार FR प्रति इकाई आर्थिक सहायता देगी। कुल आर्थिक सहायता की राशि NKFR होगी। तथा बजट द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। इस प्रकार बाहरी लाभ, आर्थिक सहायता द्वारा सभी को प्राप्त कराए जाएंगे। इकाई 3 में एक सिरे की विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं को लिया गया है। वह सभी बाहरी लाभों को व्यक्त करती है। इसलिए Ds, Dx के बराबर हो जाता है। सरकारी सहायता (Subsidy) 100 प्रतिशत है इसका अर्थ है कि वस्तु का पूरा मूल्य बजट दिया जाना है जैसे सुरक्षा। दूसरे सिरे पर विशुद्ध निजी वस्तुओं को लिया गया है। जब Dx नही रहता तो FR शून्य के बराबर हो जाता है। इन दोनों अंतिम सिरे की स्थितियों के बीच merit वस्तुएं आनी हैं जिनकी वित्त व्यवस्था निजी भुगतानों तथा सरकारी सहायता द्वारा की जाती है। इस प्रकार आर्थिक सहायता (Subsidy) शून्य से 100 प्रतिशत हो जाती है।

यहां दिया गया विश्लेषण बाहरी लाभों के मूल्यांकन तथा सरकारी आर्थिक सहायता के निर्धारण का warrant है। बाहरी लाभों का माप स्पष्ट रूप से प्राथमिकता व्यक्त करने की वही समस्या उत्पन्न करता है जब संख्या अधिक होती है। जैसा कि विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं के संबंध में होता है। अत: इनके समाधान के लिए वोट की राजनीतिक प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। कुछ और भी विषय है जिनका यहां विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता है।

गुणाधारित (merit) अथवा सामाजिक वस्तुओं का लाभ सीमित होता है तथा उन लोगों सें संबंधित होता है जिन्हें यह प्राप्त होता है इससे स्थानीय वित्त की समस्या उत्पन्न होनी है। गली के प्रकाश के लाभ का क्षेत्रफल किसी विशेष locality की गली होती है जबकि राष्ट्रीय सुरक्षा पूरे राष्ट्र के लिए होती है। 1992 तक यूरोपियन देशों के लिए साझा बाजार (कॉमन मार्केट) की स्थापना में बहुत से देश इसके अन्तर्गत आतें हैं। स्थानीय रूप से उपलब्ध कराई गयी मिश्रित अथवा सामाजिक वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होने के कारण उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा के गुण में कमी आती है। उदाहरण के लिए किसी क्लास में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने सें प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा प्राप्त किये गये निर्देशों के गुणों में कमी आ जाएगी। वस्तुओं के लिए आर्थिक सहायता

द्वारा बाहरी लाभों को सभी को प्राप्त कराने की विधि समझाने के बाद हम भाग 4.4 में नीचे (demerit) वस्तुओं का वर्णन करेंगे।

4.4 अवगुणाधारित वस्तुएं (Demerit goods) कुशल मूल्य निर्धारण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है demerit वस्तुएं अथवा सामाजिक रूप से बुरी वस्तुएं वह हैं जिनसे समाज को बाहरी लागतें सहनी पड़ती हैं। विभिन्न उपभोग तथा उत्पादन की आर्थिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए मनोरंजन के लिए कार में यात्रा करने सें धुंआ निकलता है। इसी प्रकार एक निर्माण इकाई से धुआं निकलता है तथा दुर्गंध फैलती है। यह दोनों ही वायु को गंदा करती हैं, तथा उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। वायु, पानी तथा ध्वनि प्रदूषण के ऐसे कई उदाहरण हैं जो उन लोगों के स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचाते हैं जो इन क्रियाओं में लगे हुए नहीं हैं। स्वास्थ्य खराब होने से दवाइयाँ और डाक्टरों पर अधिक खर्च होता है, इसलिए यह अप्रत्यक्ष लागतें होती हैं जो समाज को इनसे सहनी पड़ती हैं। यह लागतें बाहरी लागतें कहलाती हैं, जिन्हें उत्पादक / उपभोक्ता लागतों की गणना करते हुए शामिल नहीं करनें हैं, इसलिए इन क्रियाओं के लिए ली गई कीमतें बहुत नीची होती है, क्योंकि इनमें बाहरी लागतें शामिल नही होती। स्पष्ट हैं कि वस्तु की पूर्ति अधिक होती है। क्योंकि इनमें बाहरी लागतें समाज के लिए वास्तविक लागतें होती है अत: इन्हें मूल्य मे शामिल करना जरूरी है, इससे ऐसी वस्तुओं की कीमत बढ़ जाएगी और परिणामस्वरूप उनकी पूर्ति सामाजिक दृष्टि से कुशल स्तर तक कम हो जाएगी। क्योंकि बाजार मूल्य में बाहरी लागतें नहीं होती। इसलिए जब इनमे लगे व्यक्तियों की संख्या अधिक हो जाती है तो बजट संयंत्र की जरूरत होती है। बाहरी लागतें आंतरिक लागतों में जोड़ी जाती हैं, जिससे सामाजिक लागतें प्राप्त होती हैं। बाहरी लागतें जिस सीमा तक उत्पन्न होती है उससे ही उत्पादन पर प्रति इकाई कर की मात्रा का निर्धारण होती है नीचे चित्र 4.2 में कर लगाने हुए demerit वस्तुओं के कुशल मूल्य निर्धारण को समझाया गया है। ताकि बाहरी लागतों को भी आंतरिक लागतों में मिला दिया जाए।

ऊपर demerit वस्तुओं की स्थिति से Z वस्तु के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। जिसके उत्पादन से प्रदूषण होता है और बाहरी लागतें पैदा होती हैं। चित्र 4.2 मैं DPm बाजार मांग रेखा है। व्यक्तिगत मांग वक्रों के जोड़ सें प्राप्त जबकि Sm बाजार पूर्ति रेखा है। (विभिन्न फर्मो के सीमांत लागत वक्रों के क्षैतिज जोड़ द्वारा प्राप्त) DDm तथा SSm के कटाव के बिन्दु E पर संतुलन स्थापित होता है, इस पर OP प्रति इकाई मूल्य पर OK मात्रा की पूर्ति की जाती है जबकि सरकार का उसमें कोई हस्तक्षेप नही है।

चित्र 4.2 बाह्य लागतें तथा कर (External Cost and Taxes)

चित्र 4.2 External cost and Taxes

Z के उत्पादन में बाहरी लागतें पैदा होती हैं जो SSm में नहीं जोड़ी गई है। इन्हें Sx वक्र द्वारा दिखाया गया है, यह ध्यान देना चाहिए कि Z के उत्पादन में लगी प्रत्येक कुछ बाहरी लागतों उत्पन्न करती हैं इसलिए प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म के पूर्ति वक्र के साथ बाहरी लागतों के लिए पूरक पूर्ति वक्र जोड़ा गया है। हम उत्पादन की विभिन्न मात्राओं के उत्पादन होने पर कुल बाहरी लागतें जानना चाहते है। इसको प्राप्त करने के लिए हम Z का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों की बाहरी लागतें दिखाने वाले पूरक पूर्ति वक्रों का लम्बवत जोड़ करते हैं इससे हमें चित्र 4.2 में Sx वक्र प्राप्त होता है जो कि ऊपर की ओर चढ़ना हुआ वक्र है, जिससे स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे Z की अधिक मात्रा का उत्पादन किया जाता है बाहरी लागतें बढ़ती जाती है।

इसके बाद इन बाहरी लागतों को आंतरिक लागतों में जोड़ना होगा ताकि Z की विभिन्न मात्राओं का उत्पादन करने की सामाजिक लागतें प्राप्त की जा सके, इसलिए हम Sm तता Sx वक्रों का लम्बवत जोड़ करते हैं, जिससे Ss वक्र प्राप्त होता हें। जैसे उत्पादन की मात्रा OM पर आंतरिक लागतें LM है। इनमें GM बाहरी लागतों को जोड़ने पर FM सामाजिक लागतें प्राप्त होती हैं, (LF=GM) DDm तथा SSm में वक्रों के कटाव बिन्दु F पर नया संतुलन स्थापित होता है जिस पर उत्पादन की मात्रा OM पहले से कम तथा प्रति इकाई मूल्य OR पहले से अधिक हें। उपभोक्ताओं द्वारा प्रति इकाई OR मूल्य दिया जाएगा जबकि उत्पादकों को प्रति इकाई OW मूल्य मिलेगा इसलिए WR सरकार द्वारा Z के प्रति इकाई उत्पादन पर लगाया गया कर है। कुल कर की राशि WRFL जो सरकारी कोष में जाती है। मूल्य प्रति इकाई PR बढ़ता है और उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों ही कर का अंशदान देते हैं। ध्यान देने की बात है कि बिन्दु पर Z से समाज को सीमान्त लाभ FM प्राप्त होता है तो सीमान्त लागत FM के बराबर हैं। इस प्रकार अब Z की मात्रा कम कर दी जाए और मूल्य को बढ़ा दिया जाएगा तो कुशल परिणाम प्राप्त होता है। इस प्रकार कर की भूमिका भी पहले बताये गयें सरकारी सहायता के समान हो जाती है।

तो भी यह ध्यान देना चाहिए कि कर लगाने से बाहरी लागतें पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाती बल्कि सामाजिक रूप से कुशल स्तर तक नीचे आ जाती हैं अर्थात जहां सीमांत लागतें मुक्त समाज के लिए सीमान्त लाभों के बराबर हो जाता हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पुराने संतुलन उत्पादन पर बाहरी लागतें HK थीं और कर लगने के बाद OM उत्पादन पर GM हो जाती है।

चित्र 4.2 में हमारी मान्यता थी कि उत्पादन तथा प्रदूषण (बाहरी लागतों) में स्थिर संबंध है। दोनों एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं। फिर भी विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करके बाहरी लागतें कम की जा सकती हैं। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाएगी। ऐसी तरीका से आंतरिक लागतें बढ़ेगी, क्योंकि बाहरी लागतों को भी लिया गया है। इसलिए उत्पादन उस बिन्दु तक करते रहना पड़ेगा जब तक निजी सीमान्त लागतें (जिसमें दोनों प्रकार की लागतें शामिल हैं) उनसे प्राप्त सीमान्त सामाजिक लाभ के बराबर न हो जाएं अत. यह चुनाव करना होगा कि कर लगाया जाए अथवा उत्पादकों द्वारा प्रदूषण कम करने की विधियां अपनाने की इजाजत दी जाए।

अंत में वास्तविक लागतों की अभिव्यक्ति की समस्या उत्पन्न करती है क्योंकि लोग ऊंची क्षतिपूर्ति की मांगें करेंगे जिन्हें स्वीकार नही किया जाएगा। वास्तविक बाहरी लागतों. का निर्धारण करने के लिए फिर राजनैतिक प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ेगी इसलिए जब संख्या अधिक हो तो बाहरी लागतों को भी कर द्वारा आंतरिक लागतें बना दिया जाता है।

4.5 छोटे वर्ग में सौदा करना-

यद्यपि बाह्यता की समस्या प्राथमिक रूप से विशुद्ध सामाजिक या मिश्रित वस्तुओं के संदर्भ में पैदा होती है जिनमें अधिक संख्या में लोग लगे हुए होते हैं, तथापि कुछ महत्वपूर्ण स्थितियां ऐसी होती हैं जिनके अन्तर्गत छोटे वर्ग की शर्तें लागू होती हैं। उदाहरण के लिए जब बगीचे में छिड़काव किया जाता है तो पड़ौसियों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार स्थानीय संकाय जैसे नगर पालिकाएं कचरा नष्ट करने के लिए एक सार्वजनिक प्लांट बना सकती हैं। इससे भी अधिक विस्तृत स्तर पर विभिन्न देश किसी भी सामान्य उद्देश्य के लिए आपस में मिलकर योजना बना सकते हैं, जैसे 1992 तक यूरोपियन देशों के लिए साझे बाजार की स्थापना भी इसी दिशा में एक प्रयास है। क्योंकि इसमें लगे आर्थिक एजेन्ट्स की संख्या बहुत कम है स्वैच्छिक विनिमय द्वारा साधनों का कुशल आवंटन होता है, अर्थात बाह्यताओं के, विद्यमान होने पर भी छोटे, समूह में सौदा करने से साधनों का कुशल आवंटन प्राप्त किया जाता है। आर०एच०कोसा द्वारा अपने लेख (The Problem Social costs) में विकसित की गई कोस प्रमेय में (Coase theorem)(Journal of Law and Economics, Oct. 1960) इस समस्या पर बहुत ही बढ़िया वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि किसी प्रकार बाजार के समायोजन बाहरी लागतें/लाभों को सौदेबाजी द्वारा आंतरिक लागतें/लाभों के समान बना पाएंगे तथा इसमें बजट संबंधी या नियामक तरीका का क्यों प्रयोग नहीं किया जाना जबकि बड़ी संख्या के संदर्भ मैं वह आवश्यक होता है। नीचे चित्र 4.3 में छोटे वर्ग के लिए कुशल साधन आवंटन का मॉडल प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र J.M. Buchana द्वारा उसकी पुस्तक 'The Demand and Supply of Public Goods' में दिये गये चित्र पर आधारित है।

चित्र 4.3 छोटे वर्ग की स्थिति में बाह्य लाभ

चित्र 4.3 External benefits in the Small Group Case

चित्र 4.3 में सामाजिक वस्तुओं की मात्रा X अक्ष पर तथा इसका मूल्य Y अक्ष पर मापा गया है। दो उपभोक्ता A और B हैं सामाजिक वस्तुओं के लिए उनके मांग वक्र क्रमश : DAJ और DBB हैं। DA+BD बाजार मांग वक्र है जो पहले की तरह DA तथा DB वक्रों के लम्बवत जोड़ द्वारा प्राप्त किया गया है। PS सामाजिक वस्तुओं के लिए बाजार पूर्ति रेखा है जो X अक्ष के समानान्तर सरल रेखा खींचा गयी है, जिसका अर्थ है कि सामाजिक वस्तु का उत्पादन स्थिर लागतों के अन्तर्गत हों रहा है। जैसा कि पहले देखा गया है कि यदि उपभोक्ताओं कीं संख्या अधिक है तो कुशल समाधान DA+BD तथा PS वक्रों के कटाव के बिन्दु पर प्राप्त होगा तथा संतुलन की स्थिति में सामाजिक वस्तु की OQ मात्रा का उत्पादन होगा तथा प्रति इकाई मूल्य OP निर्धारित होगा। तो भी अब हम छोटी संख्याओं के बीच स्वैच्छिक विनिमय अथवा सौदेबाजी दृष्टिकोण का वर्णन करेंगें जैसे A और B में जिससे कुशल समाधान प्राप्त होगा। छोटे वर्ग में सौदे के लिए निम्न प्रकार से वर्णन किया जाता है : - माना कि प्रारम्भ में A और B अपनी स्वयं की पूर्ति खरीदते हैं। एक दूसरे के लिए चिन्ता नहीं करनें ऐसा' इसलिए होना है क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि बाह्यताएं विद्यमान हैं, इसलिए A, OQa मात्रा तथा B, OQB खरीदता है। प्रत्येक पूरा बाजार मूल्य OP प्रति इकाई देता है। क्योंकि इस प्रकार सीमान्त लाभ सीमान्त लागत के बराबर हो जाता है अथवा उस मूल्य के बराबर जो प्रत्येक देता है। बाद में वे अनुभव करते हैं कि इन वस्तुओं के उपभोग से दो तरफा Spill over प्रभाव उत्पन्न होते हैं। हम यह मान लेते है कि इस वस्तु से बाहरी लाभ प्राप्त होते हैं इससे स्पष्ट है कि जब A, सामाजिक वस्तु का उपभोग करता है- इसके लाभ B को प्राप्त होते हैं और B के उपभोग द्वारा A को लाभ प्राप्त होते हैं। चित्र 4.3 से स्पष्ट है कि B द्वारा OQb मात्रा का उपभोग करने सें उसे GQB सीमान्त लाभ प्राप्त होते हैं। (इसलिए वह पूरा मूल्य देता है) जबकि A को इस उत्पादन पर केवल LQb, सीमान्त लाभ मिलता है। क्योंकि बाजार मूल्य जो दिया जाना चाहिए वह OP=GQb

है, A, सामाजिक वस्तु का उपभोग बंद करना पसंद करेगा, क्योंकि OQB मात्रा पर उसका सीमान्त लाभ LQb,, मूल्य GQb, से कम है। इस प्रकार शुरू में हम उस स्थिति पर विचार करते हैं जिसमें अकेला B व्यक्ति OQb मात्रा को OP प्रति इकाई मूल्य पर खरीदना है और A को इससे निशुल्क लाभ प्राप्त होता है वह कुछ नही खरीदता। क्योंकि B द्वारा उपभोग के लाभों में spill over प्रभाव होना है इसलिए B के क्रय करने से A को भी लाभ मिल जाता है।

यदि कोई सौदा नहीं होना, तब यह स्थिति होगी। कुछ भी हो A और B दोनों यह महसूस करते हैं कि उनके लिए सौदा करना लाभकारी होगा। क्योंकि इससे अधिक मात्रा का उपभोग किया जा सकता है, जिससे कल्याण में वृद्धि होगी। इसलिए दोनों ही सामाजिक वस्तु की अधिक मात्रा का अधिक उपभोग करना चाहेंगे जहां तक A का संबंध है वह अतिरिक्त मात्रा उस मूल्य पर खरीदने को तैयार होगा जो उसके मांग वक्र DAJ के LJ भाग पर दिखाई गयी हें। ऐसा इसलिए है क्योंकि जो मूल्य वह देने को तैयार है, वह अतिरिक्त मात्रा द्वारा प्राप्त सीमान्त लाभ के बराबर हो जाता है। स्पष्ट हें कि B को बाकी अंशदान देना पड़ेगा ताकि पूरा बाजार मूल्य दिया जाए । इसी प्रकार B के मांग वक्र का CD भाग OQb, से अतिरिक्त मात्रा के सीमान्त लाभ को बताना है। अत: अतिरिक्त मात्रा के लिए उसके द्वारा प्रस्तावित मूल्य का सूचक है। उसका प्रस्तावित मूल्य दिया हुआ होने पर A को मूल्य का शेष भाग देना पड़ेगा। वह अतिरिक्त मात्रा जिस पर A और B दोनों द्वारा प्रस्तावित मूल्यों का जोड़ पूरे बाजार मूल्य के बराबर हो जाता है उस पर कुशल समाधान निर्धारित किया जाएगा। इसे समझने के लिए B के मांग वक्र पर GD भाग पर विचार करते हैं। क्योंकि B, OQb मात्रा के लिए पूरा मूल्य चुकाना है, A को कुछ भी देने की जरूरत नहीं है। Qbv अतिरिक्त मात्रा के लिए, B, HV मूल्य देने को तैयार है, इसलिए A को UH देना चाहिए अर्थात् बाजार मूल्य, UV (अर्थात OP) और B के प्रस्तावित मूल्य VH के अंतर के बराबर है। इसे V मात्रा पर UH द्वारा दिखाया गया है । ताकि $UH=H^1V$ । इसी प्रकार Q मात्रा पर B, WQ देता है ताकि A, EW=EQ-WQ देवे। इसलिए बिन्दु N इस प्रकार प्राप्त किया गया है कि EW=NQ है।

इस प्रकार OD मात्रा पर B का सीमान्त लाभ शून्य में है, क्योंकि उसकी मांग रेखा X अक्ष को D बिन्दु पर काटती हें। इसलिए उस द्वारा प्रस्तावित मूल्य सूचक है , तथा A को ZD अर्थात् पूरा मूल्य देना पड़ेगा जिसमे Z बिन्दु प्राप्त होगा। QbH^1NZ को मिलाने से हम GS तथा GD वक्रों में लम्बवत अंतर को दिखाते हैं। इस प्रकार प्राप्त किया गया QbZ वक्र A की सामाजिक वस्तुओं की अतिरिक्त मात्रा के लिए अनुसूचित होगा। क्योकि वक्र QbZ., A द्वारा उपभोग की जाने वाली अतिरिक्त मात्रा के लिए दिये जाने वाले मूल्य के विभिन्न संयोगों को बनाता है, इसलिए यह A के लिए पूर्ति रेखा होगी। संतुलन उस बिन्दु पर होगा जिस पर आज की अतिरिक्त मात्रा के लिए मांग वक्र LJ उसकी पूर्ति रेखा QbZ को काटता है। इस प्रकार साम्य उत्पादन OQ है (LJ तथा ObZ का कटाव का बिन्दु N है) तथा मूल्य प्रति इकाई OP है। B, OQb मात्रा के लिए पूरा मूल्य OP देता है जबकि QbQ अतिरिक्त मात्रा के लिए दोनों द्वारा अंशदान दिया जाएगा A प्रति इकाई NQ देता है उसके द्वारा दिया गया अंशदान उसके सीमान्त लाभ और B, WQ प्रति इकाई मूल्य बराबर हें सीमान्त लाभ देता है ताकि NQ+WQ=EQ=OP क्योंकि EW=NG।

ध्यान देने की बात है कि A और B सीमान्त लाभ को सीमान्त लागत के बराबर करते है, जो अतिरिक्त इकाइयों के मूल्य के बराबर है। इस प्रकार सौदेबाजी से बाजार में बाहरी लागतों को आंतरिक करने से साधनों का कुशल आवंटन होता है, इसे इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि A प्रारम्भिक उपभोक्ता है वह OP मूल्य पर OQb मात्रा खरीदता है और B को उससे निशुल्क लाभ प्राप्त होता है। सौदा करने से दोनों को लाभ होगा। इसलिए OQa से अधिक मात्रा खरीदी जाएगी। तो भी बाजार मूल्य में दोनों को अंशदान देना पड़ेगा क्योंकि अब बाजार मूल्य सें कम देना चा हता है। ऐसा इसलिए है कि मांग वक्र के RJ क्षेत्र पर उसका सीमान्त लाभ बाजार मूल्य OP से कम है। इसलिए हम Qa मात्रा पर RS औंर RJ वक्रों में अंतर के सभी बिन्दु प्राप्त करते हैं (जो A द्वारा दिया गया पूरा मूल्य तथा B द्वारा दिया जाने वाला शून्य मूल्य को दिखाता है) तथा T बिन्दु प्राप्त करते हैं (जहां A शून्य मूल्य देता है तथा B को OP प्रति इकाई देना पड़ता है) इस प्रकार QaT, B के लिए पूर्ति वक्र है जो उसकी मांग रेखा को W पर काटती है इससे साम्य मात्रा OQ पर स्थापित होती है और प्रति इकाई मूल्य OP होना है। अतिरिक्त मात्रा QaQ के लिए A, NQ प्रति इकाई देता है तथा B, WQ इकाई देगा इस प्रकार दोनों का अंशदान पूरे बाजार मूल्य के बराबर हो जाता है तथा कुशलता प्राप्त की जाती है।

कुछ भी हो कुशल साधन आवंटन का उपरोक्त विश्लेषण सौदा करने सें प्राप्त अनेक समाधानों में से एक हो सकता है। इसमें निम्नलिखित कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। प्रथम, प्रारम्भिक स्थिति में B द्वारा OQb मात्रा खरीदी जाती है। यह संभव है कि OQb अतिरिक्त मात्रा के लिए B, A को अधिक मूल्य देने को बाध्य करे जिससे कि A की समस्त उपभोक्ता की बचत। (जो A देने को तैयार है तथा जो वह वास्तव में देता है उसका अंतर) जौ LMN क्षेत्र के बराबर है, समाप्त हो जाती है, इस प्रकार A को प्रति अतिरिक्त इकाई के लिए NQ मूल्य देने की अपेक्षा Qb मात्रा पर LQb तथा V मात्रा पर W'V मूल्य देने को कहा जा सकता है।

दूसरे, यह भी संभावना है कि यदि B सौदेबाजी में तेज है तो वह A को OQb मात्रा के लिए भी कुछ अंशदान देने को जोर डाले। परिणाम यह होगा कि A उस सामाजिक वस्तु का उपभोग करना बंद कर देगा और B को उससे भी अधिक हानि हो सकती है, क्योंकि उसे A से अधिक लाभ प्राप्त होता है (उसकी मांग रेखा A की मांग) रेखा के ऊपर स्थित है।

तीसरे, हो सकता है कि संतुलन की स्थिति OQ पर स्थापित नहीं हो यदि सौदेबाजी सभी या कुछ नहीं के रूप में। उत्पादन का निर्धारण कुशल स्तर से कम मात्रा पर भी हो सकता है, यह इस बात पर निर्भर करेंगा कि सौदा करने वाले की सौदा करने की शक्ति कितनी है। अंत में अभी तक का विश्लेषण लाभों के दो तरफा spilt over, प्रभावों की मान्यता पर आधारित था। ऐसी स्थिति भी संभव हो सकती है कि बाहरी लाभ केवल एक हो दिशा में प्रवाहित हों। इन स्थितियों में यदि A द्वारा किसी वस्तु के उपभोग से B के लिए spill over, प्रभाव उत्पन्न होते हैं जबकि उसी वस्तु के B द्रारा उपभोग से A को कोई बाहरी लाभ प्राप्त नहीं होते तो इस स्थिति में B के लिए यही हितकर होगा कि सौदेबाजी द्वारा A के उपयोग में अंशदान दे दे। इससे B का उपभोग कम होगा तथा A का बढ़ेगा और दोनों को भुगतान कम करना पडेगा। इस प्रकार B से A की ओर उपभोग को परिवर्तन

करने में अर्थात् उस व्यक्ति से जिसके लिए कोई बाहरी लाभ उत्पन्न नहीं होते, उस व्यक्ति की ओर जिसके लिए यह उत्पन्न हुए हैं, सौदेबाजी द्वारा कुशल समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

संक्षेप में छोटी संख्या की स्थिति मेंसौदेबाजी द्रारा कुशल समाधान प्राप्त किया जा सकता है और नहीं भी। जहां आर्थिक क्रिया द्वारा बाहरी लागतें उत्पन्न होती हैं तथा इसके अन्तर्गत छोटा वर्ग होता है वहां सौदेबाजी को अपनाया जा सकता है। इससे बाहरी लागतें भी आंतरिक लागतें हो सकेंगी, जैसा कि कोस प्रमेय (Coase theorem) में वर्णन किया गया। नीचे चित्र 4.4 में छोटे वर्ग में demerit goods द्वारा उत्पन्न बाहरी लागतों को समझाया गया है।

चित्र 4.4 छोटे वर्ग में बाहरी लागतें

चित्र 4.4 External Costs for the Small Group

उदाहरण के लिए हम एक फर्म को लेते हैं जो X वस्तु का निर्माण करती है तथा गंदा धुआं छोड़ती है। इसके आस-पास के क्षेत्र में भू संपत्ति के मूल्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और संपत्ति के मूल्य में कमी भू स्वामी के लिए बाहरी लागतों को प्रदर्शित करता है। तो भी फर्म इन बाहरी लागतों पर विचार नही करती। ऐसा माना जाता है कि इनमें प्रत्यक्ष संबंध होता है, अर्थात् X वस्तु की मात्रा मे वृद्धि के साथ बाहरी लागतें बढ़ती है तथा कमी से घटती है। फर्म का सीमान्त लाभ तथा भू स्वामियों को बाहरी लागतें Y अक्ष पर मापी गयी हैं। जबकि X की मात्रा X अक्ष मापी गयी हैं। क्योंकि फर्म बाहरी लागतों का ध्यान नहीं देती, इसका संतुलन अथवा लाभ अधिकतम करण का उत्पादन OQ_3 पर होगा जहां पर सीमान्त लाभ वक्र PP_1, X- अक्ष को काटता है जो इस बात का सूचक है कि लाभ अधिकतम हो रहे हैं। उत्पादन में किसी भी परिवर्तन से फर्म का कुल लाभ कम हो जाएगा। यदि OQ_E से अधिक उत्पादन किया जाता है तो सीमान्त लाभ ऋणात्मक हो जाता है। जिससे कुल लाभ कम हो जाएंगे। इससे कम उत्पादन पर सीमान्त लाभ धनात्मक है जिसका अर्थ है कि उत्पादन बढ़ाकर कुल लाभ बढ़ाए जा सकते है। इसलिए फर्म OQ_E स्तर तक उत्पादन बढ़ाएगी। CC_1 ऊपर चढ़ता हुआ वक्र है जो भू स्वामियों के लिए बाहरी लागतों को प्रदर्शित करता है जिससे स्पष्ट कि है कि X] की मात्रा तथा इन लागतों में प्रत्यक्ष संबंध है। सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तथा

कुशल परिणाम प्राप्त करने के लिए बाहरी लागतों पर विचार करना चाहिए । इसके लिए आवश्यकता है कि बाहरी लागतों को कम करके सामाजिक लाभ अधिकतम किए जाएं । सामाजिक लाभ उन संयुक्त लाभों की ओर संकेत करते हैं जो फर्म को लाभों के रूप में तथा भू स्वामियों को भू संपत्ति के मूल्य में वृद्धि के रूप में प्राप्त होते हैं । यह चित्र 4.4 में G बिन्दु पर होगा जहां PP_1 वक्र CC_1 वक्र को काटना है । इस पर X वस्तु की OQ_S मात्रा का उत्पादन होगा जो सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तथा कुशल उत्पादन होगा । G बिन्दु पर सौदेबाजी सें पारस्परिक लाभ बराबरी हो जाते हैं । माना कि उत्पादन QF तक होता है जहां बाहरी लागतें WQF, सीमान्त लाभ ZQF से अधिक है । X के उत्पादन में कमी करने पर बाहरी लागतें कम हो जाएंगी और भू स्वामियों की संपत्ति के मूल्यों में वृद्धि हो जाने से लाभ प्राप्त होगा । अत: भू स्वामी फर्म को WQ_1 से कम देने को तैयार होंगे ताकि उत्पादन कम किया जाए जिससे बाहरी लागतें कम हो जाएं । यदि भू स्वामी ZQ_F से अधिक लेते हैं अर्थात् OQ_F पर सीमान्त लाभ से अधिक, तो फर्म को लाभ मिलेगा । कुशल उत्पादन OQ_S पर होगा जहां यह दोनों राशियां GQ_S के बराबर हो जाती हैं जिससे सामाजिक लाभ अधिकतम हो जाता है ।

अब दूसरी अंतिम स्थिति को लेते हैं जहां फर्म को वैधानिक रूप से OC सें अधिक उत्पादन करने के लिए मना किया गया हो । क्योंकि उससे बाहरी लागतें उत्पन्न होंगी और फर्म प्रदूषण से प्रभावित लोगों को क्षतिपूर्ति नहीं करती । तो भी प्रदूषक तथा उसके शिकार लोगों के बीच सौदेबाजी से यदि अधिक उत्पादन की अनुमति मिल भी जाए तो वस्तु का अधिक उत्पादन हो जाएगा । जब तक PP_1 वक्र CC_1 से ऊपर रहेगा अर्थात् फर्म का सीमान्त लाभ बाहरी लागतों से अधिक होगा, फर्म धुएं से शिकार व्यक्ति को बाहरी लागतों से अधिक क्षतिपूर्ति करके लाभ कमाएगी Q_S उत्पादन तक दोनों दलों को लाभ होगा । इस प्रकार छोटे वर्ग में सौदेबाजी द्वारा Q_S उत्पादन कुशल समाधान होगा तो ही जैसा कि ऊपर देखा गया है उत्पादन का वास्तविक स्तर सौदा करने वालों की शक्ति द्वारा निर्धारित होगा और हो सकता है कि वह कुशल न भी हो ।

यदि संख्या अधिक हो तब सरकार द्वारा X के उत्पादन पर GQ_S इकाई उत्पादन शुल्क लगाया जाना है, इससे PP_1 वक्र TQ_S पर खिसक जाता है, जहां फर्म को Q_S पर अधिकतम लाभ प्राप्त होता है तथा प्रति इकाई GQ_S कर देती है । इस प्रकार कोस प्रमेय (Coase Theorem) छोटे वर्ग की स्थिति में लागू होती है । जब संख्या बड़ी हें तो इसका सामान्यकरण नहीं किया जा सकता ।

4.6 सामाजिक कल्याण फलन-

सामाजिक कल्याण फलन पूर्ण व्यवस्था तक पहुंचने का एक तरीका है जिसमें व्यक्ति द्वारा प्राप्त की गई उपयोगिताओं को महत्व दिया जाता है जो समाज को एक निश्चित कल्याण के स्तर पर बनाए रखना है । इन्हें सामाजिक कल्याण फलन द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । जिसमें सामाजिक कल्याण (W द्वारा प्रदर्शित उपयोगिता स्तरों का (U द्वारा प्रदर्शन) का एक फलन है जो समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्राप्त की गई है । प्रतीकात्मक रूप से $W=f(U_1, U_2, U_3,.....U_n)$ जिसका अर्थ है कि सामाजिक कल्याण समाज में X व्यक्तियों द्वारा प्राप्त की गयी उपयोगिताओं पर

निर्भर करता है। सामाजिक कल्याण फलन में n व्यक्तियों की उपयोगिताओं को दिये गये विभिन्न मूल्यों के लिए w का मूल्य भी वही देना है। सामाजिक कल्याण फलन से सामाजिक तटस्थता Contours खींचने संभव है अर्थात कई सामाजिक तटस्थता रेखाएं खींची जा सकती है जो नीति निर्माताओं को अनुकूलतम कल्याण प्राप्त करने में सहायता करती है।

चूंकि सामाजिक तटस्थता वक्रों का रूप तथा लक्षण इकाई 3 में समझाए गये है, इसलिए यहां बहुत ही संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।सामाजिक तटस्थता वक्र समाज के लिए समान स्तर के कल्याण को प्रदर्शित करते है जबकि विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्राप्त की गई उपयोगिताओं को विभिन्न मूल्य प्रदान किये गये हों। इसलिए जैसे-जैसे हम एक सामाजिक तटस्थता वक्र पर चलते हैं, A के कल्याण में कमी तथा B के कल्याण में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार समाज कल्याण के उसी स्तर पर बना रहता है, ऊँचा वक्र समाज के लिए ऊंचे कल्याण के स्तर कम नीचा वक्र नीचे स्तर को बताता है। चूंकि A और B के उपयोगिता स्तरों के विभिन्न संयोगों से समाज को समान कल्याण प्राप्त होता है, इसलिए समाज किसी विशेष वक्र पर किसी बिन्दु के चुनाव के प्रति तटस्थ रहता हैं।

यह वक्र नीचे की ओर झुके हुए होते हैं तथा मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं। यह एक दूसरे को काटते भी नहीं। संक्षेप में इनका स्वरूप तटस्थता वक्र रेखाओं से मिलता-जुलता होता है।

4.7 कुशलता एवं उत्तमता-

इकाई 3 और इकाई 4 का वर्णन कुशलता तथा उत्तमता की संकल्पनाओं पर पूरी तरह केन्द्रित था। निजी वस्तुओं, विशुद्ध सामाजिक वस्तुओं. तथा मिश्रित वस्तुओं के लिए साधन आवंटन में कुशलता के लिए आवश्यक है कि पेरिटो कुशलता की शर्तों को पूरा किया जाए और आवंटन संबंधी तथा आर्थिक कुशलताएं प्राप्त की जाएं। आवंटन संबंधी कुशलताएं तब प्राप्त की जाती हैं जब किसी को हानि पहुंचाए बिना कुछ वस्तुओं की मात्रा बढाकर अथवा कुछ की घटाकर साधनों का पुन: आवंटन करना संभव नहीं होता। स्पष्ट रूप से यदि साधनों के पुन: आवंटन से किसी एक को लाभ होता है परंतु दूसरे को हानि नहीं होती तो वर्तमान साधन आवंटन अकुशल है तथा पुन: आवंटन कुशल है।

दूसरी ओर आर्थिक कुशलता किसी दिये हुए उत्पादन के लिए न्यूनतम लागत संयोगों को चुनने की ओर संकेत करती है इसे इस प्रकार भी परिभाषित किया जाता है, कि दिये हुए लागत के स्तर पर उत्पादन अधिकतम करना। इस प्रकार पेरिटो कुशलता से आर्थिक कुशलता तथा साधन आवंटन कुशलता दोनों ही प्राप्त की जाती है। दूसरी ओर में उत्तमता में वितरण संबंधी चुनाव करना होता है, जिससे किसी दूसरे की कीमत पर किसी एक को लाभ हो और अकेले पेरिटो कुशलता अनुकूलतम को चुनने में मदद नही कर सकती। इससे सामाजिक कल्याण फलनों तथा सामाजिक तटस्थता रेखाओं का समावेश जरूरी हो जाना है जो, समाज के व्यक्तियों द्वारा अनुभव की गयी उपयोगिता स्तरों को महत्व देते हैं। इससे नीति निर्माताओं को इस अनुकूलतम बिन्दु का चुनाव करने में सहायता मिलती है जहां पेरिटो कुशलता प्राप्त की जाती है। साथ में वितरण भी उपयुक्त

होता है जिससे समाज का अधिकतम कल्याण होता है। (इकाई 3 में चित्र 3.6 देखिये।) कभी-कभी पेरिटो कुशलता को पेरिटो उत्तमता भी कहा जाता है जो मिथ्या है, क्योकि दोनों में अंतर है।

4.8 सारांश-

इकाई 4 में कुछ निजी तथा सामाजिक वस्तुओं के उपभोग और उत्पादन में प्राप्त बाह्यताओं का वर्णन किया गया है। फिर मिश्रित वस्तुओं की विशेषताओं को merit वस्तुओं के बाहरी लाभों तथा demerit वस्तुओं की बाहरी लागतों के रूप में समझाया गया है। फिर बड़ी संख्या के संबंध में merit और demerit वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में आंशिक संतुलन की कुशलता की धारणा को लागू किया गया है। इसके लिए merit वस्तुओं जैसे शिक्षा के लिए बजट द्वारा आर्थिक सहायता की व्यवस्था तथा demerit वस्तुओं जैसे, शराब आदि पर कर की व्यवस्था की आवश्यकता होती है। वह मूल्य जिनमें आर्थिक सहायता कर शामिल होते हुए उनसे सामाजिक लाभ/लागतें प्राप्त होती हैं। उन्हें उपभोक्ताओं के लिए सीमान्त लाभ के बराबर रखा जाता है फिर कोस प्रमेय का प्रयोग करने हुए छोटे वर्ग में सौदेबाजी की स्थितियों पर विचार किया गया है जिससे बाहरी लाभ/लागतों को स्वैच्छिक विनिमय अथवा सौदेबाजी की प्रक्रिया द्वारा आंतरिक लाभ/लागतों के समान (Internalised) कर दिया जाए। इससे एक से अधिक कुशल समाधान प्राप्त होंगे। अथवा कोई भी कुशल समाधान की स्थिति नहीं होगी। अंत में सामाजिक कल्याण फलन का वर्णन किया गया है और सामाजिक तटस्थता वक्रों के रूप को समझाया गया है ताकि अनुकूलतम की धारणा पर प्रकाश डाला जा सके। इससे उत्तमता तथा कुशलता में अंतर स्पष्ट करना आवश्यक हो गया है। उत्तमता का संबंध वितरण से है कुशलता का संबंध पेरिटो कुशलता सें है। पहले में PB की लागत पर A को लाभ होता है जबकि दूसरें में A (अथवा B) को लाभ पर B (अथवा A) को कोई हानि नहीं होती।

4.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- A.B. Atkinson & J.E. Stiglitz- Lecture on Public Economics
- Erik Lindahl "Just Taxation-"A positive solution" , in R.A. Musgrave and Alan Peacock (Eds.), Classics in the Theory of Public Finance.
- H.L. Bhatia : Public Finance, Vikas Publishing House, New Delhi
- J.R. Aronson : Public Finance
- P.A. Samuelson : । Diagrammatic Exposition of a theory of "Review-Expenditures" Review of Economics and Statistics, Nov. 1955
- P.A. Samuelson : "The Pure Theory of Public Expenditure," in Review of Economics and Statistics, Nov, 1954
- R.A. Musgrave – The Theory of Public Finance

- R.A. Musgrave & P.B. Musgrave- Public Finance in Theory and Practice.

इकाई 5

लोक चयन (Public Choice)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 विक्सेल की सामाजिक अधिमान प्रकटीकरण की अवधारणा (The Wicksell approach to Revealing Social Preferences)

5.3 प्रजातांत्रिक मत की राजनीतिक अंत:क्रिया लागतें (The Political Interaction costs of Democratic voting).

5.4 बहुमत द्वारा सामाजिक सम्बन्ध व्यक्त करना (Revealing Social References Through Majority Voting)

5.4.1 ऐरो की असंभवता प्रमेय (Arrow's Impossibility Theorem)

5.4.2 अंक मत पद्धति द्वारा सामाजिक पसंदगियों की अभिव्यक्ति (Revealing Social Preferences through point voting)

5.5 अनिश्चितता की स्थिति में सामाजिक अधिमानों की अभिव्यक्ति (Social Preferences under conditions of Uncertainty)

5.6 अनिश्चितता की दशाओं में सूचनात्मक लागत एवं राजनीतिक परिणाम (Information costs and Political outcomes under uncertainty)

5.7 लोक चयन के अन्य उपागम (Another models of Public choice)

5.8 राजनैतिक संविधान तथा वित्तीय नियम (The Political constitution and Fiscal Rules)

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 सन्दर्भ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि

- किस प्रकार सामाजिक वितरण प्रतिमान प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा तय किए जाते हैं। आप देखेंगे कि राजनीतिक प्रक्रिया, प्रतिमानों की कार्य कुशलता में परिवर्तन करके इनकी वास्तविक वितरण के रूप में कार्यान्वित करती है।

- आप यह जानते हैं कि आवंटन का अन्तिम उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति करना है। इस इकाई में आप इसके लिए संस्थात्मक निर्णय प्रक्रिया की भूमिका का अध्ययन कर सकेंगे।

- आप यह भी देखेंगे कि वरीयताएं कैसे प्रकट एवं लागू की जाती हैं। एक छोटे से समूह द्वारा किस तरह समझौतों एवं मोलभाव द्वारा निर्णय तय किए जाते हैं। एक व्यक्ति का योगदान, व्यक्ति एवं दूसरों के लिए समझौतों में काफी महत्वपूर्ण होता है।

5.1 प्रस्तावना :

मूलत: राजनैतिक निर्णय के अर्थशास्त्र का अध्ययन ही लोक चयन सिद्धान्त की विषय वस्तु होती है। उपभोक्ता निजी उपभोग की वस्तुओं की मांग जिस तरह से बाजार के द्वारा करता है, वही सार्वजनिक वस्तुओं की मांग उसी तरह से प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा करता है। इस खण्ड की पूर्व इकाई में आप यह अध्ययन कर चुके हैं कि बाजार अर्थव्यवस्था की असफलता ने महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप को मान्यता प्रदान की। प्रस्तुत इकाई में आप लोक चयन के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 विक्सेल की सामाजिक अधिमान प्रकटीकरण की अवधारणा (The Wicksell Approach to Revealing Social Preferences) –

स्वीडन के अर्थशास्त्री नटविक्सेल (Knut Wicksell) इस विषय के प्रारम्भिक योगदाता थे, जिन्होंने सार्वजनिक वस्तु वितरण का स्वैच्छिक विनिमय सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

विक्सेल ने दो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं :- (i) पूर्ण सर्वसम्मति सिद्धान्त इसमें 100 प्रतिशत शक्ति (ii) सापेक्ष बहुमत प्रणाली का सिद्धान्त इसमें

(a) दो-तिहाई (2/3) शक्ति

(b) तीन-चौथाई (3/4 या 75 प्रतिशत) शक्ति

(c) पांच-छ: (5/6) शक्ति

बैंचमैन ने साधारण बहुमत का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था; जिसके अनुसार निर्णय 50 प्रतिशत और एक मत के बहुमत से लिए जा सकते हैं। इसमें एकमत कम 50 प्रतिशत अल्पमत वाले नागरिकों को सार्वजनिक वस्तुओं के वितरण को नही चाहते हुए भी उनके लिए कर सहित भुगतान करने. को बाध्य किया जाता है।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए विक्सेल ने लिखा है कि संसाधनों के प्रभावकारी सामाजिक वितरण में राजनीतिक प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। किन्तु अगर समाज द्वारा व्यक्तिगत चयन के आधार पर लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था अपनायी जाती है तो उससे जुड़ी संस्थात्मक समस्याएं भी महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए वरीयता सबके लिए एक, समान मत की विचारधारा पर आधारित है जो कि व्यक्तिगत प्रजातांत्रिक निर्देश चिन्ह है। यह अनुपयुक्त व्यक्त किए जाने पर भी साधारण बहुमत की व्यवस्था के द्वारा प्रभावपूर्ण तरीके से लागू किया जाता. है। जिससे एक मत क्या 50 प्रतिशत अल्पमत को एक मत अधिक 50 प्रतिशत बहुमत के निर्णय को मानने को बाध्य होना पड़ता है। इसमें व्यक्तिगत पसंदगी का कोई महत्व नहीं होता।

साधारण बहुमत व्यवस्था की कमियों को ध्यान में रखते हुए विक्सेल ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया था कि एक प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पूर्ण सर्व सम्मति (100%) की आवश्यकता होनी चाहिए। इस व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति को ऐसी आर्थिक वस्तु का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिसकी उसको आवश्यकता नहीं है। यह व्यवस्था तब तक सुचारू रूप से सम्पन्न होती रहेगी जब तक कि सार्वजनिक वस्तु का उपभोग एक प्रभावशाली भाग सामूहिक रूप से करता रहेगा।

पूर्ण सर्वसम्मति सिद्धान्त की कुछ कमियाँ हैं जैसे इस व्यवस्था में केवल एक मत बहुत महत्वपूर्ण होता है। एक मत विपरीत होकर बजट नीति को रोक सकता है। अगर यह मत पक्ष में विचार रखेगा तो योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित करेगा और स्वीकार करने के लिए भी प्रवृत करेगा। इस प्रकार यह सिद्धान्त निष्क्रिय बजट व्यवस्था को बढ़ावा देता है।

इन समस्याओं के कारण विक्सेल ने सापेक्ष बहुमत प्रणाली की अवधारणा का सुझाव दिया है। इस प्रणाली के अन्तर्गत बजट सापेक्ष सहमति पर स्वीकृत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए दो-तिहाई (2/3), तीन चौथाई (3/4 या 75 प्रतिशत) या पाँच-छः (5/6) शक्ति बहुमत सापेक्ष सर्वसम्मति नियम के तहत बजट नीति को अनुमोदित करने के लिए आवश्यक है। इस सिद्धान्त के तहत बजट नीति को भारी बहुमत से स्वीकृत किया जा सकता है। इस पद्धति का विशेष गुण यह है कि इसमें समय बर्बाद नहीं होता और एक- मत को उसका अधिक महत्व नहीं होने का अहसास होने के कारण प्रोत्साहित नही किया जा सकता। इसमें पूर्व सर्वसहमति नियम की तरह दूसरे का शोषण मात्र एक मत नही कर सकता। जैसे अगर एक प्रस्ताव कुछ व्यक्तिगत लाभ का वादा करता है तो पूर्ण सर्व सम्मति के तहत एक व्यक्ति इसे स्वीकार भी कर सकता है और पूर्णरूप से रोक भी सकता है। सापेक्ष सर्वसम्मति नियम के तहत इसकी अधिक संभावना है कि समाज मैं बहुत अधिक व्यक्ति बिना दाँव-पेc का व्यवहार अपनाए स्वीकार्य संख्या सामूहिक निर्णय लेने की संख्या को स्वीकृति प्रदान करे।

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत भी साधारण बहुमत कल्याणकारी कार्य को रोक सकता है। उदाहरण के लिए तीन-चौथाई स्वीकृति नियम के अन्तर्गत 74 मतों के विपरीत 26 मत बजट निर्णय को नियंत्रित कर सकते है। साथ ही विक्सेल विधायकी द्वारा एक साथ व्यय एवं कर निर्णयों को अनुकूल बनाने को मान्यता देता था। इस प्रकार राजस्व एवं खर्च के मध्य एक सामंजस्यपूर्ण गाँठ

बांधकर अपरिहार्य फल निकालना चाहता था । जबकि एक प्रजातंत्र में सामान्य वैधानिक कार्यप्रणाली पहले सार्वजनिक वस्तुओं की मात्रा एवं इनके व्यय के स्तर को स्थिर करनी है, और तब इन वस्तुओं के लिए वित्त का राजस्व पैकेज (Revenue Package) का चयन करता है । यह समकालीन लाभ कर लागत निर्णय का निवारण करता हैं।

5.3 प्रजातांत्रिक मत की राजनीतिक अंत:क्रिया लागतें-

जेम्स एम. बुकानन और गॉरडन तुलॉक ने अपनी पुस्तक The calculus of constent में राजनीतिक अंत: क्रिया लागतों के बारे में जानकारी दी है । इन्होंने विश्लेषण करके प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा व्यक्तिगत आर्थिक वरीयता को व्यक्त करने की क्रिया में संबंधित आर्थिक निर्गम को सम्मिलित करके जानकारी देकर आगे बढ़ाया है। राजनीतिक अंत:क्रिया लागतें अपनी प्रकृति में दो परत वाले होती है- (i) मतदाता बाह्य लागत और (ii) निर्णय लागत। मतदाता बाह्य लागत से तात्पर्य उस लागत से है जो अल्पमत वाले नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं के वितरण को नहीं चाहते हुए भी उनके लिए कर सहित भुगतान किया जाता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में निर्णय एक निश्चित अनुपात में मतों की स्वीकृति द्वारा लिए जाते हैं। मतदाता इन निर्णयों के विपरीत मत देकर अपनी व्यक्तिगत नापसंदगी भी प्रदर्शित करते हैं; लेकिन बहुमत द्वारा पारित निर्णयों को स्वीकार करना भी आवश्यक होता है।

उपर्युक्त नियम को हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। माना कि 100 मतदाताओं का एक समूह है और एक सामूहिक कार्य की पुष्टि के लिए इन सभी की सहमति आवश्यक नहीं है, केवल एक प्रतिशत मतदाता भी स्वीकृति देकर अनुमोदित कर सकता है। ऐसी स्थिति में 100 में से एक मतदाता शेष 99 मतदाताओं को राजनैतिक निर्णय द्वारा जिसे वे अनुमोदित नही करते स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकता है। यहाँ यह विचारणीय है कि जब वे 99 मतदाता जो निर्णय का विरोध करते हैं; इस तानाशाही शासन के तहत सम्भावित विपरीत मतदाता का बाहरीपन अपने ऊपर लते हैं। समयानुसार मतदाताओं द्वारा राजनैतिक निर्णयों की स्वीकृति का प्रतिशत बढ़ता जाता है और मतदाता बाह्यताएं लगातार गिरती रहती है। अंतत: 100 प्रतिशत मतदाताओं द्वारा अनुमोदन करने पर बाह्य लागत शून्य तक पहुँच जाती है । दूसरे शब्दों में हम यह कही सकते हैं कि एक अकेला मतदाता किसी भी प्रस्तावित निर्णय के निषेधाधिकार का अधिकार सुरक्षित रखता है। वक्र DM चित्र 5.1 में निर्णय लागत की प्रकृति को दर्शाया गया है। निर्णय लागत का तात्पर्य एक समूह की राजनैतिक सहमति तक पहुँचने के लिए की गयी सौदेबाजी की लागत के लिए है। मूलत: यह संसाधन लागतें हैं। प्रत्यक्षत: श्रम, पदार्थ और पूँजी परिव्यय एवं अवसर लागत जैसे समझौते में खर्च किए गये समय की कीमत, ये दोनों ही वास्तविक संसाधन कीमतें हैं। निर्णय लागतें अनुमानित की जाती हैं कि सम्भवत: बढ़े जैसे कि मत समूह एक निर्णय को पास करने की मांग करता है। यहाँ परिस्थिति के तहत अनुमोदन की ऊँची प्रतिशत की अपेक्षा की जाती है। साधारणत: अधिक प्रयास समझौता अर्जित करने की अपेक्षा करता है। सबसे ऊँची लागत 100 प्रतिशत (पूर्ण सर्वसम्मति) के बिन्दु पर अनुमोदन की अनुमानित की जाती है । इस बिन्दु पर योजना के लिए शक्ति सबसे ऊँचे

बिन्दु पर पहुँच जाती है। यह सत्य हो सकता है क्योंकि एक अकेला मतदाता नकारात्मक भूमिका भी निभा सकता है। जो कि प्रत्येक अन्य मतदाता अधिक पसंद करने की अभिव्यक्ति देते हैं। वक्र DM चित्र 5.1 में निर्णय लागत की प्रकृति को दर्शाया गया है।

चित्र 5.1 राजनैतिक अंत: क्रिया लागतें 100%

चित्र 5.1

5.4 बहुमत द्वारा सामाजिक सम्बन्ध व्यक्त करना :

5.4.1 ऐरो की असंभवता प्रमेय :- ऐरो ने लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया में मत व्यवस्था द्वारा सामाजिक निर्णयों के साथ व्यक्तिगत पसंदगी की समस्या को और आगे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हालांकि ऐरो की मान्यता व्यक्तिवाद पर आधारित लोकतांत्रिक मत पद्धति से जुड़ी समस्याओं से सम्बन्धित है जो कि बहुमत के शासन से जुड़ी हुई होती है। जो कि पश्चिमी प्रजातंत्र का मुख्य सहारा है। उसका मानना है कि बहुमत पद्धति के अन्तर्गत व्यक्तिगत आर्थिक पसंदगियों को ध्यान में रखकर सामाजिक लोक कल्याणकारी कार्य किए जाते हैं तो निम्नलिखित शर्तें बीच में अवश्य आएंगी-

I. सामाजिक पसंदगियाँ संक्रमणकारी होनी चाहिए अर्थात् एक ऐसी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें कि एक स्पष्ट विकल्प सामने आए।

II. सामाजिक कल्याण कार्य विकृत नहीं होने चाहिए। वैकल्पिक नीति जो सामर्थ्य दूसरी दृष्टि सें समाज द्वारा पसंद की जा चुकी है अवश्य ही अस्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि कोई भी व्यक्ति उस विकल्प का सम्बन्धित क्रम परिवर्तित कर चुका है।

III. यह चित्र B.P. Herber की पुस्तक Mordern Public Finance के पृष्ठ 55 से लिया गया है।

IV. सामाजिक कल्याण के कार्यो में के क्रम दो विकल्पों के मध्य आवश्यक रूप से क्रम के मामले में स्वतंत्र होते हैं। व्यक्ति द्वारा अन्य विकल्पों में जो दो विकल्पों के मध्य पसंदगी में अप्रासंगिक हैं। किसी भी एक विकल्प का निराकरण करने पर सामाजिक कल्याण कार्य में अन्य विकल्पों के क्रम को अवश्य ही प्रभावित नहीं करेगा।

V. मतदाता सभी वैयक्तिक नीतियों में से स्वतंत्रतापूर्वक चयन कर सकते हैं।

VI. सामाजिक पसंदगियाँ अपने स्वरूप में तानाशाही प्रकृति लिए हुए नहीं होती हैं। वे एक व्यक्ति की वरीयताओं के एकमात्र आधार पर नहीं होती हैं।

तालिका 5.1 एक ऐसी स्थिति पर प्रकाश डालती है जिसमें बहुमत प्रणाली सामूहिक प्रजातांत्रिक निर्णय स्वरूप में उपभोक्ता प्रभुसत्ता को बनाए रखने के लिए आवश्यक शर्तों के निर्धारण का उल्लंघन करती है। शर्त 1 मतप्रणाली विरोधाभास की तरफ अग्रसर करती है। माना कि चार मतदाताओं A, B, C और D को चार बजट नीतियों J, K, L, M में से चयन करना है। इनमें विकल्प है नीति J चार सार्वजनिक विद्यालयों के बनाने के निर्णय का प्रतिनिधित्व करती है। नीति K तीन विद्यालयों, नीति L तीन विद्यालयों और नीति M एक विद्यालय के निर्माण का प्रतिनिधित्व करती है। मतदाता बहुमत (चार में से तीन) के आधार पर नीतियों को वरीयता देते हैं।

तालिका 5 -1(a) के आधार पर परिणाम असंगत है, इनमें से कोई भी विजेता नहीं है। इस परिस्थिति में घटनाक्रम जिसमें मत प्रणाली जो ध्यान में आता है वही निर्णायक परिणाम निश्चित करती है एक सुस्पष्ट तर्क विरुद्ध परिणाम। उदाहरण के लिए हम देखने हैं कि मतदाता A प्रथम वरीयता चार सार्वजनिक विद्यालय। को, B तीन को, C दो को और D एक विद्यालय को देता है। इसमें कोई भी नीति स्पष्ट बहुमत हासिल नहीं कर सकी।

इससे भिन्न अगर मतदाता B और C एक अधिक तर्कयुक्त विधि का व्यवहार करते हैं और दूसरे पसंद के रूप में तीन विद्यालयों को वरीयता देते हैं। असंगत समस्या दूर हों जाती है समाधान तय करने तक पहुँचा जा सकता है। यह संगत परिणाम सारिणी 5-1b में दर्शाया गया है। उदाहरण में मतों का सिलसिला क्रमबद्ध होते हुए भी K स्पष्टत: अविजेता होता है। उपर्युक्त उदाहरण जो कि एक समान आर्थिक वस्तु (सार्वजनिक विद्यालयों) की चार विभिन्न राशियों को लिए हुए है के द्वारा तीन नीति विकल्प भी स्पष्ट होते हैं। हालांकि बजट विचार-विमर्श में जैसे बजट आकार आदि में यह समान परिणाम लिए हुए होंगे। उदाहरण के लिए यदि नीति J बड़े आकार के बजट का प्रतिनिधित्व करती है तो विवेकीय नीति व्यवहार मध्यम नीति K एक विजेता के रूप में अभिव्यक्त होगी। हालांकि यह उदाहरण एक विभिन्नतायुक्त नीति निर्णयों के लिए न्यूनतम उपयोगी नीति जैसे अगर नीति J एक सार्वजनिक विद्यालय का प्रतिनिधित्व करती है, नीति K एक सार्वजनिक पुस्तकालय का, नीति L एक सार्वजनिक अस्पताल (चिकित्सालय) का और नीति M एक अग्निशमन का प्रतिनिधित्व करती है। तथा यह सभी करदाता के लिए समान लागत की चीजें हैं। फिर भी यहां पर मध्यम नीति तभी प्रभावी होगी जबकि मिले जुले मतों के निर्णय से तथा विभिन्न मंचों से जुड़ी होंगी। यद्यपि बहुमत के द्वारा विवेकीय सामूहिक निर्णय के लिए ऐसे की अपेक्षाएं काफी जटिल हैं किन्तु फिर भी उसका विश्लेषण प्रजातांत्रिक राजनीतिक निर्णय की आधारभूत समस्याओं को प्रदर्शित

करता है। हालांकि एक शर्त बहुत अधिक जटिल है। शर्त 3 के अनुसार किसी भी एक वैकल्पिक नीति का बहिष्करण सामाजिक कल्याण कार्य में अन्य वैकल्पिक नीतियों की श्रेणी को प्रभावित नहीं करेगी। यहाँ पर वैकल्पिक नीतियों के मध्य अन्तर्निर्भरता नहीं होती है। अर्थात् मतदाताओं के मध्य वरीयता की आपेक्षिक तीव्रता विभिन्न नीतियों के लिए सुसंगत विचार का आधार नहीं हो सकती। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में चार, तीन, दो और एक विद्यालय के लिए वरीयता की प्रबलता परिणाम को प्रभावित नही कर सकती।

संक्षेप में ऐरो की प्रमेय प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया की कुशलता के विषय मेंनितांत निराशावादी प्रतीत होती है। यह कुछ कमजोरियों की तरफ ध्यान दिलाता है- यह निराशावाद स्तंभ मुख्य रूप से दो बिन्दुओं पर खींचा गया है। विशेषत: (1) दोहरे अधिमान प्रकार्य में अविवेकीय मतदाता को अंकित करना (तालिका 5-1 (a)) और विभिन्न नीति विकल्पों के मध्य मतदाता की पसंदगी को अभिव्यक्त करने के लिए लोक तांत्रिक प्रक्रिया की क्षमता को प्रतिबंधित करने कीमान्यता।

तालिका 5.1 बहुमत मतों के उदाहरण : वैकल्पिक बजट नीतियों के लिए व्यक्तिगत वरीयताएं

5-1 (a) परिणाम असंगत

वैकल्पिक नीति

मतदाता	वरीयता 1	वरीयता 2	वरीयता 3	वरियता 4
A	J	K	L	M
B	K	L	M	J
C	L	M	J	K
D	M	J	K	L

A से D तक मतदाता चारों नीतियों को वरीयता देते हैं, लेकिन स्पष्ट बहुमत किसी नीति को प्राप्त नही है। यह निर्णय असंगत है।

5-1(b) परिणाम संगत

वैकल्पिक नीति

मतदाता	वरीयता 1	वरीयता 2	वरीयता 3	वरियता 4
A	J	K	L	M
B	L	K	M	J
C	M	K	J	L
D	M	J	K	L

मतदाता B और C द्वितीय वरीयता क्रम में K को वरीयता देता है। K नीति को चार में से तीन मतदाता वरीयता प्रदर्शित करते और अत: यह विजेता बनती है। स्पष्ट बहुमत इसी को प्राप्त होता है। यह माध्य नीति K को विजेता बनाती है।

5.4.2 अंक मत पद्धति द्वारा सामाजिक पसंदगियों की अभिव्यक्ति :- पूर्व के विवेचन में प्रजातांत्रिक मत व्यवस्था शर्तों के तहत व्यक्तिगत आर्थिक अधिमान व्यक्त करने के प्रयास में आकस्मिक मिलने वाला कुछ समस्याओं के बारे में स्पष्ट किया गया था। विक्सेल के तुलनात्मक सर्वसम्मति धारणा के आकार में एक प्रत्याशित सुधार के लिए विचार किया गया था। दूसरा उपागम राजनीतिक अंत: क्रिया लागत की समझदारी के द्रारा प्रदान किया गया है। साथ ही सामाजिक लोक कल्याणकारी कार्यो की प्राप्ति हेतु एक अन्य विकल्प अंक मत पद्धति है।

सामान्य मत पद्धति से भिन्न अंक मन पद्धति वैकल्पिक बजटीय नीतियों के मध्य पसंदगी की सापेक्ष प्रबलता पर जोर देती है। उदाहरण के लिए साधारण बहुमत प्रणाली नियम के तहत समूह के 100 मतदाताओं में से 51 मतदाता उस बजट नीति के पक्ष में सहमत हैं और 49 मतदाता सहमत नहीं हैं। यद्यपि 49 मतदाताओं के कल्याण का घाटा बहुमत अर्थात 51 के कल्याण लाभ को अधिक बढ़ा सकता है। साधारण बहुमत नियम विजेताओं और पराजितों के मात्र नम्बर गिनता, है। मतदाताओं की सापेक्ष वरीयता तीव्रता की बजट नीति के लिए उपेक्षा की जाती है। अंक मत प्रणाली द्वारा इस समस्या का समाधान किये जाने का प्रयास किया जाता है।

उदाहरण के लिए पूर्व तालिका 5.1 के अन्तर्गत किए गए विवेचन को जारी रखते हुए हम यह मानें कि तालिका 5.2 में मतदाता A, B, C और D प्रत्येक 100 अंक देते हैं। जिससे वे विशेष रूप से उनकी वरीयताओं की तुलनात्मक तीव्रता चार वैकल्पिक बजट नीतियों J, K, L और M में से किसी भी एक को वितरण के आधार पर वरीयता देते हैं। माना कि वह निम्नलिखित पाया जाता है-

मतदाता A नीति J को 38 अंक, नीति K को 36 अंक, नीति L को 14 अंक और नीति M को 12 अंक देता है। मतदाता B नीति K को 60 अंक, नीति J को 18 अंक, नीति L को 12 अंक और नीति M को 10 अंक देता है। मतदाता C नीति L को 40 अंक, नीति K को 22 अंक, नीति J को 20 अंक और नीति M को 18 अंक देता है। मतदाता D नीति M को 36 अंक, नीति K को 28 अंक, नीति L को 20 अंक और नीति J को 16 अंक देता है। इस प्रकार (सकर्मक) संगत निर्णय में नीति K का चयन किया जा सकता है। अधिमान का अन्तर इसके लिए सुस्पष्ट है। तालिका 5-2 (a) में कुल अंक जैसे दिखाए गये हैं नीति K 146 अंक, नीति J 92 अंक, नीति L 86 अंक और नीति M 76 अंक है।

यद्यपि अंक मत प्रणाली नियम के तहत अकर्मक (असंगत) से दूर रहने का प्रयास किया. जाता है। रोक लगाना यद्यपि अनुपयुक्त घटित हो सकता है। यह तालिका 5-2(b) में दर्शाया गया है। इसमें दिखाया गया है कि चार मतदाता A, B, C और D जैसी वरीयता प्रबलता रखते हैं वह एक ऐसी परिस्थिति पैदा करती है जिसमें प्रत्येक वैकल्पिक नीति के लिए समान 100 अंक हैं।

तालिका 5.2 अंक मत पद्धति (प्रत्येक मतदाता अधिकतम 100 अंक) द्वारा सामाजिक अधिमान प्रकटीकरण

5.2(a) परिणाम - (1) संगत (ii) बराबर नही अत: निर्णित

वैकल्पिक नीति के लिए अंक मूल्यांकित करना

मतदाता	J	K	L	M
A	38	36	14	12
B	18	60	12	10
C	20	22	40	18
D	16	28	20	36
	92	146	86	76

5.2 (b) परिणाम (i) असंगत (ii) अंक बराबर होने से अनिर्णित

वैकल्पिक नीति के लिए अंक मूल्यांकित करना

मतदाता	J	K	L	M
A	28	26	17	29
B	16	38	24	22
C	24	12	34	30
D	32	24	25	19
	100	100	100	100

तालिका 5.2 (a) में वरीयता के आधार पर सभी मतदाताओं ने नीति K का चयन किया है।

बाजार के अर्थ में उपभोक्ता संप्रभुता साधारण बहुमत प्रणाली की अपेक्षा अंक मत प्रणाली में अधिक ध्यान प्रतीत होता है। साथ ही सापेक्ष वरीयता प्रतिमानों के ध्यान के द्वारा अंक पद्धति में वरीयता प्रारूप की तरफ बहुत अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या राजनीतिक प्रक्रिया के संरचनात्मक नहीं होने के कारण अंक मत पद्धति का महत्व बढ़ रहा है। एक अर्थ में अंक मत प्रणाली अमेरिकन समाज में पहले से विद्यमान है। कुछ मतदाता कुछ विभिन्न कारणों से दूसरों के मुकाबले बजट निर्णय पर बहुत अधिक प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं। उनका प्रभाव अधिकांश समय विशेष राजनैतिक विकल्पों के लिए बहुत इच्छा प्रतिबिंबित करता है। किन्तु सरकारी नीति निर्णयों पर घटते-बढ़ते प्रभाव के कारण राजनीतिक मत प्रणाली के प्रभाव का वितरण समाज के सदस्यों के निर्णयों को प्रभावित करता है।

अंक मत प्रणाली की औपचारिक संरचना से कई संस्थात्मक और प्रशासकीय समस्याएं जुडी हुई हैं। साथ ही जोड़-तोड़ की नीति उस व्यवस्था के अन्तर्गत काफी प्रभावी बन जाती है। हालांकि सामाजिक वरीयता को व्यक्त करने में साधारण बहुमत प्रणाली की अपेक्षा अंक मत प्रणाली का झुकाव अधिक है।

इस प्रकार एक विरोधाभास बने रहना प्रतीत होता है। एक तरफ यदि योजना तटस्थ है, अंक मत प्रणाली बेहतर प्रतीत होती है। क्योंकि आवश्यकताओं की सापेक्ष प्रबलता प्रतिबिंबित करती है। दूसरी तरफ यदि योजना के लिए नए अवसर प्रस्तावित करते हैं साधारण बहुमत प्रणाली सबसे अच्छी मत प्रणाली तकनीक होती है। क्योंकि समझौतेवादी बड़े समूहों के समझौतों की लागतें तथा विशेष रूप से यदि बाद का राजनैतिक या राजकोषीय नियमों को सामान्य रूप दिए बगैर किए जाने के कारण यह आदर्श से बहुत दूर है। किसी भी अवस्था में राजनैतिक प्रक्रिया के प्रभावशाली सामाजिक कल्याण के कार्यों की अभिव्यक्ति में बहुमत प्रणाली व्यवस्थाएं जो वर्तमान में बनायी गयी हैं दोषपूर्ण हैं।

5.5 अनिश्चितता की स्थिति में सामाजिक अधिमानों की अभिव्यक्ति

विभिन्न राजनैतिक विकल्पों के लिए सापेक्ष अधिमान तीव्रता के महत्व पर जेम्स सी. कौलमैन द्वारा अधिक महत्व दिया गया है। विशेषकर कौलमैन के द्वारा प्रदत प्रभावी बहुमत प्रणाली के लिए तीसरी शर्त को चुनौती देते हुए अभिव्यक्त किया है कि ऐरो की संभाव्यता प्रमेय केवल उन्हीं सामाजिक पसंद तकनीकों से जुड़ी हुई है जिनमें आवश्यकताओं की सम्बन्धित तीव्रता, नीति रूपान्तरको के बीच अभिव्यक्त नही की गयी हो। दूसरे शब्दों में ऐसे की मान्यताओं के अन्तर्गत नीति विकल्पों का उन्मूलन अन्य विकल्पों के सम्बन्ध में एक विवेकशील व्यक्ति के व्यवहार को परिवर्तित नहीं कर सकता। कोलमैन इस अव्यवहारिक मान्यता से दूर रहते हुए एक ऐसे उपागम का उपयोग करता है जिसमें व्यक्तिगत पसंद और सामाजिक कल्याण की समस्याओं को अनिश्चितताओं की शर्तों के तहत उपयोगिता अधिकतम के सन्दर्भ मे, परिभाषित करता है। बाजार क्षेत्र जिसमें कि एक उपभोक्ता एक आर्थिक वस्तु क्रय कर सकता है या नापसंद कर सकता है से भिन्न राजनीतिक क्षेत्र में एक मतदाता केवल एक नीति के परिणामों पर आशिक नियंत्रण ही रख सकता है। इस प्रकार अनिश्चितता और जोखिम विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र आवंटन समस्या से संबद्ध है।

जब एक नीति पसंद का परिणाम अनिश्चित है तो उससे एक व्यक्तिगत मतदाता की व्यक्तपरकता भी हर संभावित परिणाम से जुड़ी होती है। प्रत्याशित उपयोगिता के संबंध में परिणाम अपूर्ण ज्ञान एवं जोखिम की स्थितियों में एक निर्णय संभावित उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही लिया जाता है। इस तरह से एक मतदाता न केवल वैकल्पिक बजट नीतियों से उपयोगिताओं के क्रम पर ही ध्यान केंद्रित करता है, जैसा कि शर्तों के तहत विवेकशील व्यवहार के अंतर्गत करता है किन्तु साथ ही विभिन्न संभावित परिणामों के मध्य उपयोगिता असमानताओं के अपेक्षित संबंधित आकार को भी देखता है। जैसाकि अनिश्चितता की दशाओं में विवेकशील व्यवहार के लिए आवश्यक है। अनिश्चितता की दशा के अन्तर्गत सामाजिक वरीयता सामूहिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है क्योंकि यह ऊपर से आरोपित नहीं है।

5.6 अनिश्चितता की दशाओं में सूचनात्मक लागत एवं राजनीतिक परिणाम

रैन्डल बार्टलेट के हाल ही के वर्षों के कार्य द्वारा यह बात सामने आयी है कि लोकतांत्रिक समाजों के अन्तर्गत निजी क्षेत्रों के निर्णय को अनिश्चितता की दशाएं काफी हद तक प्रभावी करती हैं। अनिश्चय की स्थिति मत पसंदगी की व्याख्याओं तथा समाज के अंतर्गत विभिन्न वर्गों से संबंधित सरकारी निर्णयों के प्रभावों सहित बहुत सारे रूपों में महत्वपूर्ण है। मिश्रित अर्थव्यवस्था को निम्न चार स्वहित वर्गों द्वारा बनी हुई व्यवस्था के रूप में माना जाता है (A) उपभोक्ता जो कि अधिकतम उपयोगिता की तरफ अग्रसर रहते हैं, (B) निर्वाचित राजनीतिज्ञ जो कि अधिकतम मत प्राप्ति की ओर अग्रसर रहते हैं (C) उत्पादक जो कि अधिकतम लाभ प्राप्ति की ओर अग्रसर रहते हें और (D) नौकरशाह जोकि सरकारी योजनाओं के विस्तार के द्वारा अधिकतम सुरक्षा की तरफ अग्रसर होते हैं। न तो राजनीतिज्ञों के रूप में और न ही नौकरशाह के रूप में सरकार केवल उपभोक्ता एवं उत्पादक के अधिकतम लोक कल्याण के लिए प्रयास करते हैं वरन इससे भिन्न ये सरकार के दोनों अंग अपने स्वयं के निजी हितों की तरफ प्रेरित रहते हैं। दूसरें शब्दों में मिश्रित अर्थव्यवस्था चार विभिन्न अधिकतम लाभ प्राप्त करने वाले वर्गों के द्वारा अभिव्यक्त होनी है। इसमें निजी क्षेत्र के परम्परागत उत्पादक एवं उपभोक्ता वर्ग है तो दूसरी तरफ-लोक क्षेत्र के राजनीतिज्ञ एवं नौकरशाह हैं। स्रोतों का आवंटन तथा अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय इन्हीं चारों निर्माता वर्गों के आपसी विचार विमर्श के परिणामस्वरूप ही लिए जाते हैं।

चूँकि अनिश्चय की स्थिति में सूचना प्राप्त करने की कुछ लागत तय होती है। साथ ही ये चारों निजी हितों से प्रेरित वर्ग अपने आर्थिक हितों के लिए सूचनाएं प्राप्त करते हैं। तथा इन सूचनाओं को सार्वजनिक क्षेत्र की नीति परिणामों को प्रभावित करने का काम करते है। जैसे निजी क्षेत्र के उपभोक्ता एवं उत्पादक न केवल बाजार में अपने हितों को देखता है वरन साथ ही अपने हितों हेतु सरकारी निर्णयों को भी प्रभावित करने है। नौकरशाहों का अपना हित होता है जो कि विभिन्न कार्यक्रमों में अभिव्यक्त होता है और वे अपने हितों के अनुरूप ही सरकारी कर के ढाँचे एवम आकार तथा लागत कार्यक्रमों को तय करते हैं। इनके साथ ही स्वहित ही निर्वाचित राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त करें। इस तरह सें निजी क्षेत्र एवम सार्वजनिक क्षेत्र के आर्थिक एजेन्टों के निजी हित से जुड़ी गतिविधियों की आपसी अन्तर्क्रिया ही मांग एवं पूर्तिकी शक्तियों को प्रभावित करती है। और वे ही अन्ततः सरकारी वित्तीय निर्णयों के प्रारूप को तय करती है।

5.7 लोक चयन के अन्य उपागम (मॉडल)

जॉन राल्ज़ ने अपनी पुस्तक The Theory of Justice में न्याय के दो सिद्धान्तों की व्याख्या की है। राल्ज के अनुसार सभी व्यक्तियों को समान स्वतंत्रता प्राप्त है। उसके सम्मुख अपनी चयन के समान अवसर उपलब्ध हैं। राल्ज इन अवसरों की असमानता की स्थिति को तभी स्वीकृति

प्रदान करना है, जबकि उसका लाभ समाज के न्यूनतम सुविधा प्राप्त वर्ग को प्राप्त हो। राल्ज़ का मानना है कि ऐसी स्थिति में चयन का विकल्प सीमित नहीं होता वरन वह बड़े हित की प्राप्ति करता है। राल्ज ने इन्हीं दो सिद्धान्तों को न्याय के दो सिद्धान्तों की संज्ञा दी है। तत्व के इस सिद्धान्त की आलोचना रोबर्ट नोजिक (Robert Nozick) ने की है। नोजिक के सिद्धान्त को इच्छा स्वतंत्रतावादी (Libertarianism) की संज्ञा दी जाती है। इनका मानना है कि राल्ज़ के सिद्धान्त को मानने के फलस्वरूप एक तरफ व्यक्ति की पसंदगी का दायरा कम होता है तो दूसरी तरफ असमानतायुक्त व्यवस्था के संचालन हेतु एक प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता पड़ती है। जोकि व्यक्ति की स्वतंत्रता पसंदगी के विपरीत होता है।

चार्ल्स टाइबाडर (Charles Tiebout) राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय निर्माण कुशलता की क्षेत्र चलन उपागम विकसित करने वाले प्रारम्भिक विद्वान थे। इन्होंने 1956 में अपने लेख "A Pure Theory of Local Expenditure" में बाजार तंत्र संबंधी निर्णयों के बारे में बताया। उनका कहना है कि एक व्यक्ति अपनी इच्छा से राजनैतिक संगठन में अधिक से अधिक समय तक मुक्त रूप से विचरण कर सकता है। विभिन्न व्यक्ति विभिन्न संगठनों में आजादी से परिवर्तन कर सकते हैं। वे तब तक बजट व्यय और कर की नीतियाँ बनाते हैं जो उनकी राजकोषीय वरीयता को अधिक पसंद आती है। निःसंदेह उपभोक्ता की संप्रभुता और कुशलतम साधन आवंटन की विशेषताएं भी निहित रहती हैं। तथापि वैकल्पिक राजकोषीय नीतियाँ वास्तविकता के नजदीक नहीं हैं। क्योंकि व्यक्ति का एक व्यवसाय सें दूसरे व्यवसाय में आना-जाना बेलोच है। स्थान परिवर्तन की नीति सैद्धान्तिक दृष्टि सें सही है। लेकिन वास्तविक जीवन में इसकी उपयोगिता सीमित है। और प्रजातंत्र सिद्धान्तों के तहत निर्णय हेतु इसका व्यापक प्रयोग सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त अतिरिक्त लोकतांत्रिक मत प्रारूपों के अलावा कुछ अन्य प्रारूप भी कुछ विचारकों ने प्रस्तुत किए हैं जिनमें से मुख्य निम्न हैं प्रथम जेम्स बुकानन तथा गोल्डन टू लोक का लॉगरालिंग मॉडल (Logrodling Model) इस प्रारूप के अंतर्गत व्यक्ति एक मुद्दे से दूसरे मुद्दे के लिए अपने मतों का विनिमय करते हैं। यह प्रारूप पूर्व व्याखित कोलमैन के प्रारूप के काफी नजदीक हैं क्योंकि इसका आग्रह इस बात पर होता है कि निर्वाचित पदाधिकारियों के छोटे-छोटे वर्गों को एक विशिष्ट मुद्दे पर उनके मतों का इस प्रकार से विनिमय किया जाता है कि वैकल्पिक व्यवस्था को आवश्यक बहुमत प्राप्त हो जाए। द्वितीय प्रारूप एन्थानी डान्स का प्रतियोगी प्रारूप है। इस प्रारूप का आग्रह राजनैतिक दलों की भूमिका पर होता है। इस प्रारूप का मानना है कि राजनैतिक दल पद पर बने रहने के लिए वोट अधिकतम की प्रेरणा लिए हुए होते हैं। दूसरे शब्दों में राजनीतिज्ञ का उद्देश्य अधिकतम लोक कल्याण की प्राप्ति का नही होता है वरन वे अधिकतम मत प्राप्ति पर जोर देते हैं। और इस काम को राजनैतिक दल सुगमता से करते हैं। व्यक्ति राजनैतिक दल को इसलिए वोट देता है कि वह उसके हितों की देख-रेख करेगा। किन्तु राजनैतिक दल अधिकतम मत प्राप्त करके मतदाता के हितों की अपेक्षा राजनीतिज्ञों के हितों की पूर्ति करते हैं। तृतीय प्रारूप चार्ल्स ई ० लिंडब्लो तथा एरोन बुल्डावस्की ने प्रस्तुत किया है। इनका आग्रह राजनैतिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर रहा है। इनका मानना है कि सभी बजट संबंधी प्रावधानों में विधायकों एवं

समाज एवं सरकार के विभिन्न वर्गों की सहभागिता निश्चित की जानी चाहिए ताकि वे अपने हितों के अनुरूप तथा नीति प्रतियोगी मान्यता के आधार पर निर्णय ले सकते हैं।

5.8 राजनैतिक संविधान तथा वित्तीय नियम :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह माना जाता है कि सार्वजनिक वस्तुओं के सिद्धान्त को राजनैतिक संस्थाओं के सिद्धान्त द्वारा अनुपूरित किया जाना चाहिए, अर्थात व्यक्तियों के मध्य स्वैच्छिक समझौतों पर प्रतिबंध हो तथा समाज में व्यक्ति निर्णय मूल राजनैतिक संविधान की मान्यताओं के अनुरूप तथा राजनैतिक संविधान की संरचना के अन्तर्गत तय किए गए विशिष्ट राजकोषीय नियमों के तहत ले। अर्थात लोक निर्णय स्वैच्छिक निर्णयों की अपेक्षा संस्थात्मक नियमों के अन्तर्गत लिए जाने चाहिए, ताकि उनकी व्यवहारिक उपयोगिता संभव हो सके।

5.9 सारांश :

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में लोक चयन का आधार क्या हो, इसके बारे में आप विभिन्न सिद्धान्त पढ़ चुके हैं। जैसा कि स्पष्ट है कि यही आधार जन सहभागिता का स्तर तय करता है। अत: लोक चयन के विभिन्न सिद्धान्तों का पर मूल्यांकन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से विक्सेल का सामाजिक अधिमान प्रकटीकरण का सिद्धान्त, ऐरो की असंभवता प्रमेय सिद्धान्त, अंक मत पद्धति द्वारा सामाजिक पसंदगियों की अभिव्यक्ति का सिद्धान्त, अनिश्चितता की स्थिति में सामाजिक अधिमानों की अभिव्यक्ति एवं सूचनात्मक लागत तथा राजनैतिक परिणाम सिद्धान्त आदि उल्लेखनीय हैं। विक्सेल सामान्यत: पूर्ण सर्वसम्मति के सिद्धान्त को प्रमुखता देता है किन्तु साथ ही वह सापेक्ष बहुमत प्रणाली की उपयोगिता को भी स्वीकार करता है। ऐरो की मान्यता मुख्यत: व्यक्तिवादी लोकतांत्रिक सिद्धान्त कई मान्यता पर आधारित है। ऐरो का मानना है कि सामाजिक कल्याण की नीति तय करते समय व्यक्तिगत पसंदगियों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। अंक मत प्रणाली के अन्तर्गत साधारण बहुमत प्रणाली की अपेक्षा अंक पद्धति में वरीयता प्रारूप की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है। अनिश्चितता की स्थिति में सामाजिक अधिमानों की अभिव्यक्ति का सिद्धान्त जेम्स सी. कोलमेन द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उनके अनुसार चूँकि नीति पसंद का परिणाम अनिश्चितता होता है। अत: व्यक्तिगत मतदाता की पसंदगी भी सम्भावित परिणाम से जुड़ी होती है। सूचनात्मक लागत एवं राजनैतिक परिणाम सिद्धान्त रेन्डल बार्टलैट द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इनके अनुसार निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में सूचनाओं को व्यक्तिगत स्वार्थ प्राप्ति में प्रयोग किया जाता है। निजी क्षेत्र में यह कार्य उद्योगों के मालिक द्वारा तथा सार्वजनिक क्षेत्र में राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों द्वारा किया जाता है।

5.10 शब्दावली :

Social Preferences	सामाजिक अधिमान
Interaction cost	अंत: क्रिया
Majority Voting	बहुमत मतदान
Impossisbility Theorem	असंभवता प्रमेय
Point Voting	अंक मत पद्धति
Uncertainity	अनिश्चितता
Informational Cost	सूचनात्मक लागत
Public Choice	लोक चयन
Constitution	संविधान
Fiscal Rules	वित्तीय नियम

5.11 सन्दर्भ सूची :

Arrow Kenneth, "Social Choice and Individual Values", New York: John Wiley & Sons;1951.

Bartlett Rondall, "Economic Foundations of Political Power", New York Free Press, 1973.

Buchanan J.M. : 1968. "Demand and Supply of Public Goods", Chicago Rand McNally, 1968.

Buchanan J.M. And Tullock Gordon, "The calculus of consent", Ann Arbor :University of Michigan Press, 1962.

Coleman J.S., "The Possibility of a Social Welfare Function", American Economic Review, December, 1966.

Downs Anthony, "Inside Bureaucracy" Boston : Little, Brown, 1967 "An Economic Theory of Democracy", New York : Harper & Row, 1957.

Herbar B.P., "Mordern Public Finance", Richard D. Irwin, INC, 1988.

Nozic Robert, "Anarchy, State and Utopia", Harvard University Press, 1974.

Rawls John, "A Theory of Justice", Princeton University Press, 1971.

Tiebout C.M. "A Pure Theory of Local Expenditure", Journal of Political Economy October, 1956.

Wicksell Knut, "A New Principle of Just Taxation" Richard A Musgrave and AlanT. Peacock; (Eds): Classics in the Theory of Public Finasnce, London : Macmillan, 1958.

इकाई -6

सार्वजनिक वस्तुएँ बनाम निजी वस्तुएँ

Public Good V/s Private Good

इकाई की रुपरेखा

6.1 सार्वजनिक वस्तुएँ बनाम निजी वस्तुएँ

6.2 जनहितकारी वस्तुएँ

6.3 अपवर्जन नियम

6.4 निजी वस्तुएँ

6.5 शब्दावली

6.6 बोधगम्य प्रश्न

6.1 सार्वजनिक वस्तुएँ बनाम निजी वस्तुएँ

सार्वजनिक वस्तुएँ सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इन्हें सामाजिक वस्तु भी कहते है। समाज के प्रत्येक सदस्य को इन वस्तुओं का उपभोग करने की स्वतन्त्रता होती है। एक व्यक्ति के द्वारा उपभोग से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली मात्रा कम नहीं होती। इनकी उपलब्धि के सम्बन्ध में भी कोई भेद-भाव नहीं बरता जाता। सभी व्यक्तियों को ऐसी वस्तुओं का लाभ समान रूप से उपलब्ध रहता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी व्यक्ति समान मात्रा में इनका उपभोग कर सकें या इनसे समान लाभ प्राप्त कर सकें। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण हैं - सार्वजनिक उद्यान, नदी पर बांध, सुरक्षा सेवायें, इत्यादि।

(i) अविभाज्यता (Non-Excludable) - कुछ वस्तुएँ 'विभाज्य' होती है, तथा कुछ 'अविभाज्य'। विभाज्य वस्तुएँ वे हैं जिन के अस्तित्व में आ जाने पर समाज के कुछ सदस्यों को उनसे लाभान्वित होने से वंचित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि इन वस्तुओं पर अपवर्जन (अथवा वंचितन) नियम लागू होता है। बाजार व्यवस्था में ऐसी वस्तुएँ मुफ्त न मिलकर कीमत पर मिलती हैं। इन्हें वे लोग ही प्राप्त कर सकते हैं जो इनकी कीमत चुकाने की क्षमता रखते हों तथा उसे चुकाने के इच्छुक भी हों। यदि सरकार अथवा कोई अन्य संस्था इन वस्तुओं को निशुल्क भी मुहैया करा रही हो, तो भी किसी न किसी आधार पर उन उपभोक्तओं की पहचान करना सम्भव होती है जिन्हें इनसे वंचित रखा जाना हो।

इसके विपरीत अविभाज्य वस्तुएँ वे हैं जिन पर समाज के हर सदस्य का पूरा अधिकार होता है। एक अविभाज्य वस्तु के अस्तित्व में आ जाने पर किसी सम्भावित उपभोक्ता को उससे लाभान्वित होने से रोका नहीं जा सकता। अविभाज्य वस्तु वही है जिसका एक उपभोक्ता द्वारा

उपभोग किए जाने पर दूसरों के लिए उसकी शेष मात्रा में कमी न आए। ऐसी वस्तुओं के उदाहरणार्थ बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा, रेडियो तथा टी वी प्रसारण, सड़क पर की गई रोशनी आदि के नाम गिनवाए जा सकते है। समाज के किसी भी सदस्य द्वारा इन वस्तुओं से लाभान्वित होने पर भी समाज के शेष सदस्यों के लिए उनकी उपलब्ध मात्रा में कमी नहीं आती। वैसे इस कथन में यह संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए कि यह अनिवार्य नहीं कि हर अविभाज्य वस्तु से हर व्यक्ति समान रूप से लाभान्वित हो। उदाहरणार्थ सभी व्यक्तियों का समान अधिकार होते हुए भी किसी सार्वजनिक पार्क के पड़ोस में रहने वालों को उसकी शुद्ध वायु से अधिक लाभ होता है। इसी प्रकार सामान्य तौर पर देश की सीमा के पास तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों के पास रहने वाले लोगों को विदेशी आक्रमण से होने वाली हानि की आशंका अधिक होती है। परन्तु इन सब तथ्यों के होते हुए भी किसी वस्तु के अविभाज्य होने की मुख्य कसौटी यही है कि उस पर समाज के हर उस सदस्य का भी बराबर का अधिकार बनता है जिसने उसके लिए अदायगी न की हो अथवा न कर सकता हो।

(ii) उपभोगमें गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक (Non-Rivalrous)

निजी वस्तुएँ केवल उसी व्यक्ति को सन्तुष्टि प्रदान करती हैं जो उनका उपभोग करता है। अन्य व्यक्तियों को स्वाभाविक रूप से इनका लाभ प्राप्त नहीं होता। जिन व्यक्तियों में इन वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता होती है वही उनका उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति एक गिलास दूध पीता है उसी को उसका लाभ प्राप्त होता है, तथा उसी व्यक्ति में उस दूध के गिलास को प्राप्त करने की योग्यता होती हैं, अन्य में नहीं, इसी कारण अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वंचित रहते है। निजी वस्तुओं का उत्पादन एवं उपलब्धि बाजार तन्त्र द्वारा निर्धारित होते हैं। इनमें बहिष्करण सिद्धान्त लागू होता है, अर्थात् जो इनका मूल्य चुका सकते है वही इनका उपभोग कर सकते है। अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वर्जित रहते है। इन वस्तुओं की कीमत बाजार में निर्धारित होती है। निजी वस्तु विभाज्य होती है तथा इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्वी होते है। जो व्यक्ति वस्तु की बाजार कीमत देने को तैयार है वह उसकी आवश्यक मात्रा बाजार से खरीद सकता है। इसलिए निजी वस्तुओं के संदर्भ में वस्तु की कीमत निर्धारण योग्यता, वस्तु की विभाज्यता और बहिष्करण सिद्धान्त, सभी एक साथ लागू होते हैं। अतः स्पष्ट है कि निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतिद्वन्द्वात्मक होता है जबकि सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक होता है। विशुद्ध सार्वजनिक वस्तुएँ अविभाजय होती है, अर्थात् इनका लाभ सभी व्यक्तियों को बिना भेद-भाव के उपलब्ध होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी व्यक्तियों को ऐसी वस्तुओं का लाभ समान अनुपात में प्राप्त होता है। सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन सरकार द्वारा किया जाना चाहिए और निजी वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा होना चाहिए। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि निजी वस्तुओं का उत्पादन भी सरकार द्वारा किया जाए।

एक व्यक्ति को उपभोग संतुष्टि प्राप्त होने से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले संतुष्टि कम नहीं होती। अतः बाजार द्वारा सामाजिक वस्तुओं की पूर्ति उचित एवं कुशल नहीं होगी। इसके अतिरिक्त संसाधनों का कुशल उपयोग उसी समय संभव हो सकता है जबकि कीमत उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो। क्योंकि सामाजिक वस्तुओं की सीमान्त लागत शून्य होती है इसलिये इनकी कीमत भी

शून्य होनी चाहिये। क्या बाजार में बिकने वाली वस्तु के संबंध में यह लागू हो सकता है? इसलिये ऐसी सुविधाओं की पूर्ति सरकार की बजटीय व्यवस्था करनी चाहिये।

मसग्रेव के अनुसार सार्वजनिक आवश्कताए दो प्रकार की होती है (1) सामाजिक (2) जनहितकारी वस्तुएँ । उसके अनुसार प्रथम प्रकार की आवश्यकताएँ वे आवश्यकताएँ हैं जो उन सेवाओं द्वारा संतुष्ट की जा सकती है जिनका उपभोग सभी व्यक्ति समान मात्रा में करते हैं। ये आवश्यकताएँ बाजार तन्त्र द्वारा संतुष्ट नहीं की जा सकती है क्योंकि इनकी कोई कीमत नहीं होती और न ही इनको प्राप्त करने के लिए किसी कीमत का भुगतान करना होता है। इसलिए यदि राज्य ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं का लाभ सभी नागरिकों को प्राप्त होता है तो उनको सार्वजनिक वस्तुएँ कहेगें और उनकी व्यवस्था सामान्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा की जानी चाहिए। इन वस्तुओं अथवा सेवाओं को प्रदान करने के लिए जो धन की आवश्यकता होती है उसकी व्यवस्था सामान्य बजट द्वारा की जानी चाहिए।

6.2 जनहितकारी वस्तुएँ (Merit Good)

ये ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके उपभोग से उपभोक्ताओं के साथ गैर-उपभोक्ता भी लाभान्वित होते है। जिन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन का लाभ समाज के प्रत्येक सदस्य के लिये बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध हो सकता है। उनका उत्पादन सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के लिए किया जाता है, इनकी लागत बहुत अधिक होती है और आर्थिक दृष्टि से लाभ शून्य होता है। परन्तु इन्हे निजी क्षेत्र में रखने से इनकी उत्पादन मात्रा सामाजिक आवश्यकता से कम रह जाने की सम्भावना रहती है। अतः इन्हें भी सार्वजनिक क्षेत्र में रखना ही उचित रहता है।

शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, पीने का स्वच्छ पानी, मल-निर्यास व्यवस्था भूमि कटाव की रोकथाम आदि इन वस्तुओं के कुछ उदाहरण हैं। लोक वित्त के दृष्टिकोण से ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि इन जनहितकारी वस्तुओं की उपलब्धि समाज के सभी सदस्यों के लिए प्रचुर मात्रा में होनी चाहिए। उनकी पूर्ति का कार्य केवल बाजार व्यवस्था पर छोड़ दिया जाए, तो ऐसा होने की सम्भावना अत्यल्प रहती है की वस्तुओं की उपलब्धि समाज के सभी सदस्यों के लिए प्रचुर मात्रा है। इसका बुनियादी कारण यह है कि समाज के सभी सदस्य इन वस्तुओं का बाजार भाव चुकाने में या तो समर्थं नहीं होते या तैयार नहीं होते। इन परिस्थितियों में यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार इन जनहितकारी वस्तुओं की उपलब्धि में बढ़ोतरी हेतु उनकी उत्पादन-लागत का एक भाग वहन करने को तत्पर हो, अथवा निजी स्त्रोतो से होने वाली पूर्ति के अतिरिक्त स्वयं भी उनके उत्पादन तथा उपलब्धि में सक्रिय भाग ले अथवा उनकी आवश्यक मात्राओं को मुहैया करने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी स्वयं उठा ले।जैसे निम्न लागत वाले मकान या राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत दिया जाने वाला अनाज या कृषि के लिए नीची कीमत पर दिये जाने वाले उर्वरक। दूसरी ओर सरकार जिन वस्तुओं के उपभोग को हानिकारक समझती है और उन पर रोक लगाना चाहती हे तो ऐसी वस्तुओं को गैर जनहितकारी वस्तुएँकहते हैं जैसे नशीली वस्तुओं के उपभोग को नियन्त्रित करने के लिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाए।जिन वस्तुओं का उपयोग क्षेत्र अति सीमित हो और जिनका सामान्य एवं खुला उपयोग समुदाय के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक, हो उनका उत्पादन एवं वितरण

सार्वजनिक क्षेत्र में ही रहना चाहिए जैसे अफीम, गॉजा, चरस इत्यादि। जिन वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति से व्यक्तिगत लाभ के साथ-साथ सम्पूर्ण समुदाय को लाभ पहुंचे या जिनकी उपलब्धत के बाह्य हानियॉ भी हो सकती हैं जैसे मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुए से प्रदूषण होता है। इसी प्रकार रेलवे शैड या वर्कशाप के पास रहने वालों को बहुत कष्ट सहन करना पड़ता हैं क्योंकि इंजनों से कोयले का धुआं निरन्तर निकलता रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ वस्तुओं की मात्र निजी लागत होती है और कुछ की निजी के साथ-साथ सामाजिक लागत भी होती है। जिन वस्तुओं की केवल निजी लागत होती है उनकी कीमत बाजार में निर्धारित हो सकती है और उनमें संसाधनों का आवंटन कठिन नहीं होता किन्तु जिन वस्तुओं की निजी लागत के साथ-साथ सामाजिक लागत भी होती है और उनको एक दूसरें से अलग करना सम्भव नहीं होता, उनकी कीमत बाजार में निर्धारित नहीं हो सकती। ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं के संबंध में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच संसाधनों का आवंटन सम्भव नहीं होता, इसलिये इनकों सार्वजनिक क्षेत्र में ही रहना चाहिये।

यह जान लेना आवश्यक है कि जनहितकारी आवश्यकताओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि समान स्तर की नहीं होती। यह अवश्य है कि दोनों सार्वजनिक आवश्यकताएं है, क्योंकि दोनों की पूर्ति सरकारी बजट द्वारा होती है, किन्तु दोनों वस्तुओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सन्तुष्टि में अलग-अलग सिद्धान्त लागू होते हैं। सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि उपभोक्ता की सार्वभौमिकता के अन्तर्गत आती है जैसा कि निजी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के मामलों में होता किन्तु जनहितकारी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का अर्थ यह है कि उपभोक्ता की अभिरूचियों में हस्तक्षेप किया जा रहा है। इसके अतिक्ति सामाजिक आवश्यकताएं अबहिष्कार, अविभाज्यता तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के गैर-प्रतिद्वन्द्वी स्वभाव जैसी शर्तो की सन्तुष्ट करती हैं जो यह आवश्यक नहीं कि जनहितकारी आवश्यकताओं के क्षेत्रों में अवश्य ही लागू हों, अर्थात् जनहितकारी आवश्यकताओं में यह शर्ते लागू हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती हैं। एक पूर्ण बाजार में जनहितकारी वस्तुओं की पूर्ति नही होती इसलिए इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए बाजार निर्णयों में फेरबदल तथा हस्तक्षेप किया जाता है जो सरकार द्वारा ही संभंव होता है। इन वस्तुओं की सन्तुष्टि वस्तु विशेष की लागत अथवा लाभ पर निर्भर नहीं करती। अतः इन वस्तुओं अथवा सेवाओं के उपभोग के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप बाह्य लागतों अथवा लाभों की उपस्थिति के कारण नहीं किया जाता।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक तथा जनहितकारी आवश्यकताएँ दोनों ही सार्वजनिक आवश्यकताएं होती हैं और राजस्व के आदर्शी सिद्धान्त के क्षेत्र में आती हैं। इसका अर्थ यह है कि इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि राजस्व के आदर्शी पहलू का अंग होती है। इसलिए सार्वजनिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए संसाधनों के आवंटन की समस्या भी राजस्व के आदर्शी सिद्धान्त का अंग होती है।

जिन वस्तुओं अथवा सेवाओं की सीमान्त लागत शून्य या लगभग शून्य हो , अर्थात् एक अतिरिक्त व्यक्ति के उपयोग के कारण न तो उसकी उपलब्धता में कोई कमी आये या उसकी सामाजिक लागत में कोई खास वृद्धि होती हो, उनका उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में ही रहना चाहिये

जैसे नदी पर पुल। इनकी कीमत बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित नहीं हो सकती और यदि इनको निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया जाये तो एकाधिकार की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जायेगी।

लोक वित्त के दृष्टिकोण से किसी वस्तु के अविभाज्य होने से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी वस्तु की उपलब्धि की वित्त-व्यवस्था सरकार द्वारा ही की जाए, अर्थात् लोक वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण सरकारी क्षेत्र में ही हो।

इसके विपरीत शुद्ध निजी वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण निजी क्षेत्र द्वारा ही उत्तम रहता है। परन्तु इस बात का निर्णय करने में कुछ अन्य तथ्यों पर ध्यान देना भी अति आवश्यक रहता है जैसे कि दोनों क्षेत्रों की तुलनात्मक कार्य-कुशलता, देश के सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे में विचारधीन निर्णय की संगति आदि।

सैद्धांतिक स्तर पर यह उपेक्षा की जाती है कि एक शुद्ध निजी वस्तु का कोई अतिरिक्त प्रभाव नहीं होगा। इस कारण उसकी सामाजिक तथा निजी सीमांत उत्पादन लागत एक समान होगी। अतः ऐसी वस्तु को निजी क्षेत्र में रखा जा सकता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वास्तविकता में भी सदैव ऐसा ही हो। अनेक कारणों से बहुत-सी ऐसी वस्तुओं को भी सरकारी क्षेत्र में शामिल कर लिया जाता है। इन कारणों में विभिन्न प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक लक्ष्य आदि भी हो सकते है।

सीमांत लागत : सामान्यतः एक शुद्ध सार्वजनिक वस्तु की सीमांत उत्पादन लागत शून्य अथवा अति कम होने की सम्भावना काफी अधिक होती है। इस कथन का अर्थ यह लेना चाहिए कि इस वस्तु से लाभान्वित समाज के सदस्यों में एक सदस्य की वृद्धि कुल लागत में बढ़ोतरी किए बिना की जा सकती है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि यदि विचाराधीन वस्तु के उपभोक्ताओं में एक की वृद्धि कर दी जाए तो अन्य सदस्यों के लिए उपलब्ध शेष मात्रा में कोई कमी नहीं आती। ऐसी वस्तु का एक उत्तम उदाहरण आपके द्वारा अपने रेडियो अथवा टीवी काचलाया जाना है। एक अन्य उदाहरण एक पुल का हो सकता है, जिस पर से एक अतिरिक्त वाहन के निकल जाने पर उस के रखरखाव के व्यय में कोई अन्तर नहीं पड़ता; स्मरण रहे कि यथार्थ में यह नियम एक सीमा तक ही लागू होता है। यह सम्भव नहीं हैं कि पुल पर से निकलने वाले वाहनों की संस्था में एक एक कर के असीमित वृद्धि कर ली जाए। एक स्थिति ऐसी आती है, जब पुल की क्षमता को बढ़ाना अनिवार्य हो जाता है अथवा एक नए पुल का निर्माण करना पड़ता है। अर्थात् एक सीमा के पश्चात् वस्तु की सीमांत लागत में एक-दम वृद्धि आती है। तत्पश्चात् यह फिर शून्य हो जाती है।

6.3 अपवर्जन नियम

जिन व्यक्तियों में इन वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता होती है वही उनका उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं।अर्थात् जो इनका मूल्य चुका सकते है वही इनका उपभोग कर सकते है। अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वर्जित रहते है। इन वस्तुओं की कीमत बाजार में निर्धारित होती है।

जनहितकारी वस्तुएँ :वे वस्तुएँ जिनके उपभोग से उपभोक्ताओं के साथ गैर-उपभोक्ता भी लाभान्वित होते हों।शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, पीने का स्वच्छ पानी आदि इन वस्तुओं के कुछ उदाहरण हैं।

गैर-जनहितकारी वस्तुएँ

सरकार जिन वस्तुओं के उपभोग को हानिकारक समझती है और उन पर रोक लगाना चाहती हे तो ऐसी वस्तुओं कोगैर-जनहितकारी वस्तुएँ कहते हैं जैसे नशीली वस्तुओं के उपभोग को नियन्त्रित करने के लिए सरकार ऐसी वस्तुओं पर कर लगाए।जिनकी उपलब्धत के बाह्य हानियॉ भी हो सकती हैं जैसे मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ से प्रदूषण होता है। इसी प्रकार रेलवे शैड या वर्कशाप के पास रहने वालों को बहुत कष्ट सहन करना पड़ता हैं क्योंकि इंजनों से कोयले का धुआं निरन्तर निकलता रहता है।

6.4 निजी वस्तुएँ

निजी वस्तु विभाज्य होती है तथा इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्वी होते है। जो व्यक्ति वस्तु की बाजार कीमत देने की तैयार है वह उसकी आवश्यक मात्रा बाजार से खरीद सकता है। इसलिए निजी वस्तुओं के संदर्भ में वस्तु की कीमत निर्धारण योग्यता, वस्तु की विभाज्यता और बहिष्करण सिद्धान्त, सभी एक साथ लागू होते हैं।

उपभोगमें गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक

जिन वस्तुओं के उपभोगसेएक व्यक्ति को उपभोग संतुष्टि प्राप्त होने से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले संतुष्टि कम नहीं होती।

6.5 शब्दावली

सार्वजनिक वस्तु . सार्वजनिक वस्तु के एक उत्पाद है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए इसकी उपलब्धता कम करने के बिना उपभोग कर सकते हैए और जिसमें से कोई भी बाहर रखा गया है।

निजी वस्तु . एक निजी वस्तु दोनों **Excludable** और **Rivalrous**

क्लब वस्तु . एक क्लब या टोल वस्तु excludable किन्तु non-rivalrous,;कम से कम एक बात करने के लिए इस केबल टीवी, निजी पार्क

6.6 बोधगम्य प्रश्न

1 सार्वजनिक वस्तुओं की एक प्रमुख विशेषता क्या है?

2 सार्वजनिक वस्तुओं और निजी वस्तु क्या है ?

3 यह सार्वजनिक वस्तुओं से संबंधित मुक्त सवार समस्या क्या है?

4 सार्वजनिक वस्तुओं का एक उदाहरण है?

इकाई 7

सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का निजी प्रावधानों द्वारा उपलब्ध करना

(PRIVATE PROVISION OF PUBLIC GOODS & SERVICE)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 पृष्ठभूमि
7.2 वस्तुओं के प्रकार
7.3 सार्वजनिक वस्तु और निजी वस्तु का मूल्य निर्धारण तथा फ्रि राइडर की समस्यां
7.4 सार्वजनिक वस्तुओं के निजी प्रावधान
7.5 सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के निजी क्षेत्र माध्यम से उपलब्ध करवाने में अपनाये गये तरीके
7.6 राजनीतिक, आर्थिक नीतियों के कारण सरकार द्वारा किया गया नीतियों में बदलाव
7.7 मुख्य शब्दावली
7.8 संदर्भ पुस्तके
7.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

7.0. उद्देश्य:

इस अध्याय में हम सार्वजनिक वस्तुओं की परिभाषा तथा उनका जन सामान्य को निजी प्रावधानों के माध्यम से उपलब्ध करना तथा वे निजी वस्तुओं से किस प्रकार भिन्न हैं, को समझने का प्रयास किया जायेगा इस अध्याय में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा की सार्वजनिक वस्तुओं को बाजार के माध्यम से उपलब्ध करवाने में क्या बाधाऐ हैं तथा उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता हैं। इसको निजी क्षेत्र के द्वारा उत्पन करवाने के तरीको से सार्वजनिक वस्तुए उपलब्ध करवाने के अनुभव कैसे रहे हैं।

7.1 पृष्ठभूमि

सरकारी या सार्वजनिक वस्तुओं को निजी प्रावधानों के माध्यम से उपलब्ध कराना 19 वी०सदी के अंतिम दशक में आरंभ हुआ आधारभूत सेवाएँ एवं सार्वजनिक कल्याण कि सेवाओं एवं वस्तुओं से इसका आरंभ हुआ। इसे उदारीकरण की प्रक्रियासे जोड़कर अधिक सफल बनाया गया। जब हम सरकारी वस्तुएँ व सेवायें उपलब्ध कराते हैं तो हम जानते हैं कि आधारभूत संरचना सबसे महत्वपूर्ण जरूरत हैं, इसके बिना विकास संभव नहीं हैं। सरकारों द्वारा ये सभी को मुफ्त या बिना कर

के उपलब्ध करवाई जाती हैं परन्तु इसके रख रखाव हेतु एक स्थाई ढांचे की जरूरत होती हैं जो कि बिना कर लगाये संभव नहीं हो पाता हैं अत:यहाँ पर निजी क्षेत्र द्वारा सरकारी या सार्वजनिक सेवाओं को स्थायी रूप में बनाये रखना या लम्बे रख रखाव हेतु कार्य करने के संदर्भ में निजी क्षेत्र द्वारा सरकारी सेवाओं को प्रदान करने कि संकल्पना उभर कर आती हैं चूकि निजी क्षेत्र में बहुत सारी कंपनिया हैं अत: किसी को ये जिम्मा सौपा सकता हैं इस बात के लिए बोली लगाई जायेगी फिर उपयुक्त को ये कार्य सोंपा जायेगा। (Rivals bidding for the franchise in renegotiation waste) यहाँ पर तकनीकि विकास होनेके आधार पर भविष्य में पुनः वार्ता हो सकती हैं। इस प्रकार के नियन्त्रण (Regulation)में अचानक लाभ या हानि की स्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकतीं हैं अत: नियंत्रण कर्ता को इन स्थितियों से उपर उठकर आकर्षक तरीके का नियन्त्रण स्थापित करने वाला होना चाहिए।

7.2 वस्तुओं के प्रकार

सार्वजनिक वस्तु :- वे वस्तुऐ जो सरकार सभी को बिना प्रतिद्वन्द्वीता तथा बिना किसी को उनकी उपलब्धता से बाहर रखे प्रदान करवाती हैं, उसे सार्वजनिक वस्तुए कहते हैं।

निजी वस्तुयें :- निजी वस्तुएँ वे वस्तुएँ जो बाजार के माध्यम से उपलब्ध करवाई जाती हैं, साथ ही ये वस्तुऐँ प्रतिद्वंद्वी तथा बाह्यता की विशेषता से युक्त होती हैं, अथार्त इन्हें मूल्य चुका के प्राप्त किया जा सकता हैं।

क्लब वस्तुयें :- जब वस्तुओं को कुछ कर या फ़ीस लगाकर उपलब्ध कराया जाता हैं,इनको सभी लोग प्राप्त कर सकते हैं, कोई बाह्य नहीं होता हैं जैसे केबल टीवी भुगतान से सेवा प्राप्त करना।

कोमन पूल रिसोर्सेज :- ये वे वस्तुएँ होती हैं जो बह्यता की विशेषता रखती हैं, साथ ही इनमेंप्रतिद्वन्द्वीता भी पायी जाती हैं, जैसे कोयले के भंडार, मछली भंडार। उपरोक्त चारों प्रकारों को चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं।

	बाह्य(Excludable)	बाह्य नहीं(Non-Excludable)
प्रतिद्वंदी वस्तुएँ	निजी वस्तुएँ /सेवाए, कार, फ्रिज, कपडे।	कोमन पूल रिसोर्सज कोयले के भंडार, मछली भंडार।
ग़ैर प्रतिस्पर्धी वस्तुएँ	क्लबवस्तुएँ , निजी पार्क, सेटेलाइट टीवी,	पब्लिक गुड्स, हवा, रक्षा सेवाएं।

7.3 सार्वजनिक वस्तु और निजी वस्तु का मूल्य निर्धारण तथा फ्रि राइडर की समस्यां :

सार्वजनिक वस्तुएँ सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसलिए इन्हें सामाजिक वस्तु भी कहते है। समाज के प्रत्येक सदस्य को इन वस्तुओं का उपभोग करने की स्वतन्त्रता होती है। एक व्यक्ति के द्वारा उपभोग से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली मात्रा कम नहीं होती। इनकी

उपलब्धि के सम्बन्ध में भी कोई भेद-भाव नहीं बरता जाता अर्थात् सभी व्यक्तियों को ऐसी वस्तुओं का लाभ समान रूप से उपलब्ध रहता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी व्यक्ति समान मात्रा में इनका उपभोग कर सकें या इनसे समान लाभ प्राप्त कर सकें। ऐसी वस्तुओं के उदाहरण हैं - सार्वजनिक उद्यान, नदी पर बांध, सुरक्षा सेवायें, इत्यादि।

एक उदाहरण से समझने का प्रयास करेंगे , माका व सूसन इसे प्राप्त करना चाहते हैं एक रेडियो प्रसारण जो कि ग़ैर प्रति द्वंद्वी तथा ग़ैर बाह्य हैं । माका व सूसन इसे प्राप्त करना चाहते हैं । एक के उपयोग करने पर अन्य को प्रभावित नहीं करता हैं ।

माका दो प्रसारण के लिए 4 डालर खर्च करना चाहता हैं प्रत्येक पर वहीँ सूसन प्रत्येक पर 7 डालर खर्च करना चाहता हैं, जबकि बाजार मांग 11 डॉलर हैं प्रत्येक प्रसारण सुनने की ।

परन्तु सार्वजनिक वस्तु को प्रभावी तरीकें से उपलब्ध कराने हेतु बाजार इसको समानता के आधार पर उपलब्ध करवाता हैं जो कि चित्र से स्पष्ट हैं। प्रभावी मूल्य पर उपलब्ध करवाता हैं ।

मार्केट सप्लाई (Equilibrium quantity of 3) इसके लिए केवल 6 डालर खर्च करने होंगे जिसमें माका के 2 डालर तथा (सूसन के 4 डालर को शामिल किया गया हैं)

जब भी सार्वजनिक वस्तुएँ निजी तरीकें से प्रदान कि जाती हैं तो इसकी सफलता लोगों की इच्छा पर निर्भर करती हैं । क्योंकि अधिकतर निजी वस्तुओं को खरीदने के लोग इच्छुक नहीं होते हैं जब उनकी इच्छानुसार मूल्य होता हैं तभी खरीदतें हैं, जैसे 10 रुपयें में वो चाहें ब्रेड मिलें और सच

में उतने मूल्य में ही मिल जाये तो वे खुशी से खरीदतें हैं । परन्तु वही वस्तु सरकारी हो या सार्वजनिक वस्तु हो एवं उसी मूल्य पर मिलें तो लोग हमेशा उससे कम मूल्य के प्रति कम अधिमान प्रकट करते हैं । उदाहरण दाना खरीद कर पानी में डालना व मछली देखना परन्तु कुछ लोग किसी और के द्वारा फेंके दान से मछली देखतें हैं,तो ये बिना पैसा खर्च किये आनन्द उठाते हैं इन्हें फ्रि राइडर कहते हैं ।अथार्त वस्तु का मूल्य चुकाये बिना प्रयोग करना ।इससे वस्तु की लागत वसुल नहीं हो पाती हैं । इसी समस्या से निजात पाने हेतु, सरकारी वस्तुओं को निजी प्रावधानों से उपलब्धकराया जाता हैं ताकि फ्रि राइडर से मुक्ति मिले एवं जनता अपनी इच्छानुसार भुगतान करके सेवायें एवं वस्तुएं प्राप्त करें ।

अधिकतर देशों में केवल मेरिट गुड्स जैसे स्वास्थ्य एवं शिक्षा को सार्वजनिक सेवाओं के रूप में प्रदान किया जाता हैं, परन्तु रक्षा ऐसी सेवा हैं, जो सार्वजनिकता के आधार पर उपलब्ध कराते हैं, परन्तुउसकी सामग्री अधिकतर निजी क्षेत्र से खरीदी जाती हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य एवं शिक्षा प्योर (pure) पब्लिक गुड हैं। तथ्य यह हैं कि जनता मेरिट गुड्स पर खर्च नहीं करना चाहतीं हैं अत: ये बाजारके माध्यम से उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। क्योकि सरकार इसको बिना भुगतान या फ़ीस के उपलब्ध कराती हैं, जिससे फ्रि राइडर की समस्यां बढ़ जाती हैं। तथाये कर देने की इच्छा नहीं रखते हैं अत: बाजार उपलब्ध नहीं होता हैं। इस प्रकार बाजार फेल की स्थिति उत्पन्न होती हैं। ये स्थिति सरकार की नीतियों के कारण उत्पन्न हो रही हैं।

फ्रि राइडर की समस्यां (Free Rider Problem) :-

फ्रि राइडर , वे व्यक्ति होते हैं जो केवल सुविधाओं का फायदा उठाते हैं उनके लिए भुगतान कोई और करता हैं । जैसे लाइब्रेरी से पुस्तक लेकर पढ़ना । यहाँ पर प्रश्न हैं कि सरकारी वस्तु/सेवा को निजी तरीकें से क्यों उपलब्ध करायें तो उदाहरण से समझाते हैं । गरीबों के लिए घर बनाना सरकार मदद करती हैं परन्तु सभी को एक उच्च जीवन स्तर वाले घर प्रदान करना हो तो निजी संस्थान की मदद लेनी होगी तभी सबके लिए आवश्यक मानदण्डों के अनुसार घर बन पायेंगे । निष्कर्षत: कह सकते हैं कि फ्रि राइडर की समस्या से भी कुछ हद तक निजात इस तरीकें में हो सकती हैं जब सबको सरकारी सेवायें निजी माध्यम से प्रदान करें ।

सार्वजनिक व निजी वस्तुओं विशेषताएँ

(1) अविभाज्यता (**Non-divisibility**)- कुछ वस्तुएँ 'विभाज्य' होती है, तथा कुछ 'अविभाज्य'। विभाज्य वस्तुएँ वे हैं जिन के अस्तित्व में आ जाने पर समाज के कुछ सदस्यों को उनसे लाभान्वित होने से वंचित किया जा सकता है। इसका अर्थं यह है कि इन वस्तुओं पर अपवर्जन (अथवा वंचितन) नियम (**Principle of Exclusion**) लागू होता है। बाजार व्यवस्था में ऐसी वस्तुएँ मुफ्त न मिलकर कीमत पर मिलती हैं। इन्हें वे लोग ही प्राप्त कर सकते हैं जो इनकी कीमत चुकाने की क्षमता रखते हों तथा उसे चुकाने के इच्छुक भी हों। यदि सरकार अथवा कोई अन्य संस्था इन वस्तुओं को निशुल्क भी मुहैया करा रही हो , तो भी किसी न किसी आधार पर उन उपभोक्तओं की पहचान करना सम्भव होती है जिन्हें इनसे वंचित रखा जाना हो।

इसके विपरीत अविभाज्य वस्तुएँ वे हैं जिन पर समाज के हर सदस्य का पूरा अधिकार होता है। एक अविभाज्य वस्तु के अस्तित्व में आ जाने पर किसी सम्भावित उपभोक्ता को उससे लाभान्वित होने से रोका नहीं जा सकता। अविभाज्य वस्तु वही है जिसका एक उपभोक्ता द्वारा उपभोग किए जाने पर दूसरों के लिए उसकी शेष मात्रा में कमी न आए। ऐसी वस्तुओं के उदाहरणार्थ बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा, रेडियो तथा टी वी प्रसारण, सड़क पर की गई रोशनी आदि के नाम गिनवाए जा सकते है। समाज के किसी भी सदस्य द्वारा इन वस्तुओं से लाभान्वित होने पर भी समाज के शेष सदस्यों के लिए उनकी उपलब्ध मात्रा में कमी नहीं आती। वैसे इस कथन में यह संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए कि यह अनिवार्य नहीं कि हर अविभाज्य वस्तु से हर व्यक्ति समान रूप से लाभान्वित हो। उदाहरणार्थ सभी व्यक्तियों का समान अधिकार होते हुए भी किसी सार्वजनिक पार्क के पड़ोस में रहने वालों को उसकी शुद्ध वायु से अधिक लाभ होता है। इसी प्रकार सामान्य तौर पर देश की सीमा के पास तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों के पास रहने वाले लोगों को विदेशी आक्रमण से होने वाली हानि की आशंका अधिक होती है। परन्तु इन सब तथ्यों के होते हुए भी किसी वस्तु के अविभाज्य होने की मुख्य कसौटी यही है कि उस पर समाज के हर उस सदस्य का भी बराबर का अधिकार बनता है जिसने उसके लिए अदायगी न की हो अथवा न कर सकता हो।

(2) उपभोग में गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक

निजी वस्तुएँ केवल उसी व्यक्ति को सन्तुष्टि प्रदान करती हैं जो उनका उपभोग करता है। अन्य व्यक्तियों को स्वाभाविक रूप से इनका लाभ प्राप्त नहीं होता। जिन व्यक्तियों में इन वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता होती है वही उनका उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति एक गिलास दूध पीता है उसी को उसका लाभ प्राप्त होता है, अन्य को नहीं। इसी कारण अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वंचित रहते है। निजी वस्तुओं का उत्पादन एवं उपलब्धि बाजार तन्त्र द्वारा निर्धारित होते हैं। इनमें बहिष्करण सिद्धान्त लागू होता है, अर्थात् जो इनका मूल्य चुका सकते है वही इनका उपभोग कर सकते है, अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वंचित रहते है। इन वस्तुओं की कीमत बाजार में निर्धारित होती है। निजी वस्तु विभाज्य होती है तथा इनके उपभोग प्रतिद्वन्द्वी होते है। जो व्यक्ति वस्तु की बाजार कीमत देने को तैयार है वह उसकी आवश्यक मात्रा बाजार से खरीद सकता है। इसलिए निजी वस्तुओं के संदर्भ में वस्तु की कीमत निर्धारण योग्यता, वस्तु की विभाज्यता और बहिष्करण सिद्धान्त, सभी एक साथ लागू होते हैं। अतः स्पष्ट है कि निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतिद्वन्द्वात्मक होता है जबकि सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक होता है। विशुद्ध सार्वजनिक वस्तुएँ अविभाजय होती है, अर्थात् इनका लाभ सभी व्यक्तियों को बिना भेद-भाव के उपलब्ध होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी व्यक्तियों को ऐसी वस्तुओं का लाभ समान अनुपात में प्राप्त होता है। सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन सरकार द्वारा किया जाना चाहिए और निजी वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा होना चाहिए। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि निजी वस्तुओं का उत्पादन भी सरकार द्वारा किया जाए।

एक व्यक्ति को उपभोग संतुष्टि प्राप्त होने से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले संतुष्टि कम नहीं होती। अतः बाजार द्वारा सामाजिक वस्तुओं की पूर्ति उचित एवं कुशल नहीं होगी। इसके

अतिरिक्त संसाधनों का कुशल उपयोग उसी समय संभव हो सकता है जबकि कीमत उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो। क्योंकि सामाजिक वस्तुओं की सीमान्त लागत शून्य (MC=0) होती है इसलिये इनकी कीमत भी शून्य होनी चाहिये। क्या बाजार में बिकने वाली वस्तु के संबंध में यह लागू हो सकता है? इसलिये ऐसी सुविधाओं की पूर्ति सरकार की बजटीय व्यवस्था करनी चाहिये।

7.4 सार्वजनिक वस्तुओं के निजी प्रावधान (Privatization of Public Function):

सरकारी सेवाओं को प्रदान करने का प्रभावी तरीका (थ्योरी प्राइवेट प्रोविजन आफ पब्लिक गुड्स) हैं।, गेम थ्योरी (खेल सिद्वान्त) नैश द्वारा सुझाया गया तरीका हैं, इसमें अधिकतम सफलता तथा अधिकतम लाभ की स्थितियों को मध्य नजर रख कर स्थिति का चुनाव किया जाता हैं।

आधारभूत सुविधा (Private Infrastructure Services):- उल्लेखनीय हैं कि आधारभूत सुविधाओं को लोगों तक उचित तरीके से पहुँचाने हेतु, उसके बदले कुछ मात्रा में कर वसूल करना या मूल्य वसूल करके ही रखरखाव लम्बे समय तक कुशलता पूर्वक हो सकता हैं। साथ ही बिजली वितरण कंपनी भी अपने अधिकतम लाभ व हानि को घ्यान में रख कर उचित बोली पर ऐसा निर्णय लेती हैं। इंग्लैंड में कूड़ा एकत्र करने वाली कंपनियों ने बिजली बनाकर, इसे मेरिट गुड़ में बदल दिया हैं। आधारभूत सुविधाओं को लोगों तक पहुँचाने के अन्य उल्लेखनीय तरीके BOLT(Build-Own operate lease, Transfer), BOOT(Buit own oprate transfer) इत्यादि हैं ।

सामाजिक सुरक्षा (Social security services)समाज में परिवर्तन लाने हेतु सामाजिक कल्याण के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना भी आवश्यक होता हैं। इसलिए सरकार एक सुरक्षा कवच अपनाती हैं ताकि जरुरत मंदों को उसका उचित लाभ मिले। तथा सरकार (Market failure) से भी बचे अत: वो कुछ करों के प्रवधान कर उनको प्राइवेट/निजी हाथों में सौंपा कर जरूरतमंदो को सुविधाओं का लाभ पहुँचाती हैं। उपरोक्त सुरक्षा हेतु सरकार बीमाकंपनियों के माध्यम से, कोपरेटिव सोसाइटी के माध्यम से सहायता करने का प्रयास करती हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में जीवन बीमा कंपनियाअधिक कार्यरत हैं, जो कि सूचनाओं को जन-जन तक पहुंचा कर, कुछ कर या फ़ीस के बदले सुरक्षा कवच प्रदान करती हैं। भविष्य में इन्हीं सूचनाओं के कारण डाक्टर व मरीजों को उचित सेवायें देते हैं, उन्हें सही जानकारी के कारण धोखे से बच पाने में सहायता मिलती हैं। स्वास्थ्य से संबंधित निजी प्रावधानों के सफल नहीं होने में (Moral hazards)नैतिकता की कमी एंव(Trust deficit) अविश्वास की भूमिका होती हैं क्योंकि बिना स्वास्थ्य बीमा प्राप्तकर्ता सही जानकारी कम्पनी को नहीं देता हैं और कंपनिया भी यही तरीके से बताये नियमों का पालन नहीं करती हैं अत: परस्पर अविश्वास, बाजार, फेलयर को उत्पन्न करता हैं। साथ ही जोखिम (Riskiness) जैसी कठिनायों से बचाने में ये मदद करते हैं साथ ही (Legislature) विधायिकाके प्रावधान ऐसे बनाये जाते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति का जोखिम कम करते हुए उन्हें आश्वस्त करता हैं कि इन सुविधाओं को ग्रहण करते समय उन्हें किसी प्रकार भयभीत होने या नुकसान होनेकी आवश्यकता नहीं हैं। सरकार कानून बना कर ऐसे प्रावधान करती हैं कि सबका अधिकतम कल्याण

हो, गरीबी कम हो साथ ही बीमा कम्पनियों, निजी कंपनियों एवं कापरेटिव सोसाइटी के माध्यम से उचित प्रकार से स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँचजनता तक बना सके।

शिक्षा(Education) :- इसी प्रकार के प्रावधान शिक्षा के क्षेत्र में भी करती हैं , जे.एस मिल स्पष्ट करते हैं कि हजारों वर्ष पहले सरकार/राज्य शिक्षा प्रदान करता था परन्तु उदारवादी एवं कल्याणकारी राज्यों में राज्य जब पर्याप्त लोगों को शिक्षित कर देते हैं तथा वो लोग स्वोच्छिक आधार पर अन्य को शिक्षाप्रदान करते हैं यहाँ सरकारी मदद भी ऐसे स्कुल, कालेज को पहुंचाई जाती हैं, साथही जैसे मिलिट्री विधालयों में भी ऐसी मदद पहुंचाई जाती हैं यानी शिक्षा में इस प्रकार के प्रावधान से सरकारी व निजी सार्वजनिक शिक्षा को निजी संस्थाओ द्वारा प्रदान करने के प्रावधान यहाँ स्पष्ट होते हैं।

पेंशन :-सामाजिक सुरक्षा का बड़ा स्तर यहाँ दिखता हैं कल्याणकारी राज्य में सरकारी पेंशन के अलावा विभिन्न निजी तरीके जैसे बीमा कंपनियों के माध्यम से प्रदान करवाना जैसे – पे-एज-यू-गो स्कीम,वृद्धावस्था पेंशन जैसे चिली में प्राइवेट फण्ड के माध्यम से पेंशन देते हैं, जिसे वो सतत रूप से टैक्स के माध्यम से एकत्र करते रहते हैं।

सरकार द्वारा तथा निजी संस्थानों के माध्यम से प्रदान कि गई सामाजिक सुरक्षा :- परम्परागतव आधुनिक दोनों रूपों में सामाजिक सुरक्षा कई प्रकार से प्रदान की जाती हैं। जैसे चर्च के माध्यम से जिसका प्राथमिक एंव आधारभूत कार्य होता हैं समाज के सबसे गरीब तबके कि मदद करना उसकी सुरक्षा प्रदान करना। भारत में यह कार्य विभिन्न धार्मिक ट्रस्टों के माध्यम से किया जाता हैं उदाहरण इस्कोन ट्रस्ट स्कूलों में मिड-डे-मील वितरण करके मदद करता हैं सरकारी जिम्मेदरियों में दूसरा हैं व्यतिगत सुरक्षा प्रदान करना, यह कार्य वृहद परिवारों में होता हैं, जहाँ कमाने वाला सदस्य अन्य कमजोर सदस्यों के साथ सुरक्षात्मक सहयोग करते हैं तीसरा समाज के अत्यंत गरीबी तबके की मदद एंव सहायता (NGO) समूह प्रदान करते हैं। साथ ही विभिन्न प्रकार की बीमा कंपनियाँ जोकि परम्परागत गांवों में बहुत समय पहले से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करते हैं।

7.5. सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के निजी क्षेत्र माध्यम से उपलब्ध करवाने में अपनाये गये तरीके:-

पहला- पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (PPP), इसमें जन सामान्य को वस्तुएँ एवं सेवाये दोनों सार्वजनिक व निजी के सहयोग द्वारा प्रबंधन करके पहुंचाई जाती हैं सरकारी वस्तुओं एवं सेवाओं को निम्न प्रकार से प्रदान किया जा सकता हैं , सरकार द्वारा उत्पादन हो जो कि निजी संस्थाएँ वस्तुएं एवं सेवायें प्रदान करवायें, । इसमें पूरा फाइनेंस प्राइवेट सेक्टर से लिया जाता हैं। चीन में इस प्रकार के आधरभूत संरचना निर्माण रखरखाव में विदेशी प्रत्यक्ष निवेशकेमाध्यम से पूरा करने का तरीका अपनाया जाता हैं। इसकाअन्य उदाहरण हैं जैसे बिजली का उत्पादन सार्वजनिक संस्थान करते हैं परन्तु उनका वितरण क्षेत्रीय एवं ग्रामीण स्तर पर वितरण(Transmisssion) के लिए छोटी कम्पनियों को (Franchise) बाली लगाकर उचित निर्णय के आधार पर कार्य सोंपा जायेगा ।

उदाहरण :- निजी संस्थानों द्वारा वस्तुएँ एवं सेवायें प्रदान कराने पर कुछ अस्पष्ट परिणाम सामने आते हैं जैसे 1993 का अलबरर्टा (Alberta) का अध्ययन जिसमें शराब का ठेका निजी संस्थानों को दिया। इन्होंने पहले से 2 गुना स्टोर खोलें, पहले से तीन गुना कर्मचारी रखें परन्तु तनख्वाह पहले से 50% कम दर दी।

परिणाम :- शराब बिक्री में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई साथ ही कम तनख्वाह पर अधिक कर्मचारी कहा तक उचित हैं विकास के लिए ? अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर यह भी कह सकते हैं कि स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसा संभव हैं कि घटिया/ सस्ती क्वालिटी के वस्तुएँ एंव सेवायें प्रदान की जायें अत: ये (Debate) मंथन योग्य/ विचारणीय विषय हैं। फिर भी इन सेवाओं को प्रदान करने के कई तरीकें हैं। दूसरा – उत्पादन वस्तुओं एवं सेवाओं का निजी संस्थान करें जो कि सरकार द्वारा उपलब्ध करवाया जाये।

दूसरा:- सरकारी सहायता (Private Transfers):-यानी सरकारी सहायता/ सेंवाएं, निजी संस्थानों द्वारा प्रदान करना। फाइनेंस सरकारी सेक्टर से लिया जाता हैं।। – उत्पादन वस्तुओं एवं सेवाओं का निजी संस्थान करें जो कि सरकार द्वारा उपलब्ध करवाया जाये। यहाँ हम स्पष्ट करना चाहेंगे कि पशिचमीसर्वाधिक विकसित देशों में भी कल्याणकारी सामाजिक फण्ड/ सहायता को धीरे-धीरे निजी माध्यमों द्वारा प्रदान करवाया जा रहा हैं। गरीबी उन्मूलन हेतु जब कि विकासशील देशों में गरीबी उन्मूलन में निजी संस्थान की अब भी भूमिका कुछ कम हैं।

परन्तु बहुत से देशों में यह प्रावधान भिन्न-भिन्न हैं जैसे कुछ परिवारों में माता-पिता अपने बच्चों पर, उनकी शिक्षा पर ज्यादा निवेश करते हैं इस आशा के साथ कि वो, माता-पिता की वृद्धावस्थामें देखभाल करेंगे। अत: ऐसे में यह एक आपसी समझ व सहमति आधारित तरीका हैं जो सार्वजनिक व निजी सहायता के अनुभाविक अध्ययनों से भिन्न स्थान रखता हैं। ऐसा प्रावधान बाटेसवाना में अध्ययन किया गया था। जहाँ पर देखा कि पब्लिक व प्राइवेट दोनों सहायता (Crowding out effect) दर्शा रही थी। साथ ही अमेरिका में सरकारी सहायता क्राउडिंग आउट इफेक्ट दिखा रही थी, निजी सहायता पर लेकिन छोटे स्तर पर ही दिखता हैं। क्योंकि विकसित देशों मेंनिजीसहायता एक सीमान्त स्तर तक ही होती हैं। बाकिपूराकार्य सरकार द्वारा प्रदान कि गई सहायता का हिस्सा होता हैं। वहीँ विकासशील देशो में सरकारी सहायता की मात्रा ही कम होती हैं। हमारे पास दक्षिणअमेरिका देश पेरू का अध्ययन हैं वहाँ पर सरकारी सुरक्षा कमी के कारण शहरीपेरू में वृद्धावस्था संरक्षण का 20% निजी क्षेत्र द्वारा किया जा रहा हैं। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र को क्राउडिंग आउट कर दिया हैं फिलीपींस के अध्ययन भी इसी प्रकार के नतीजे दिखता हैं।

सहायता प्रदान करने के लिए विश्वास की भूमिका:- विशव बैंक के अध्ययन के अनुसार निष्कर्ष निकला हैं कि जब प्राइवेट/निजी संसाधनों द्वारा बेरोजगारी,बीमा तथा सामाजिक सुरक्षाव सामाजिक सहायता प्रदान की गई तो जो जनसँख्या ग्रामीण क्षेत्रो में94% तथा शहरी में 46% गरीबी की रेखा के नीचे थे, येसहायता प्राप्त करने के बाद भी आकड़ो में कोई परिवर्तन नहीं आया। विशव बैंक के अन्य अध्ययन में बताया कि जब मेरिट गुड्स पर सार्वजनिक फण्ड से खर्च किया गया तथा सर्वाधिकखर्च सामाजिक सुरक्षा परकिया गया स्वास्थ्य एंव शिक्षा की अपेक्षा तो 1980 में परिणाम

सकरात्मकव चौकानेवाले थे। निष्कर्ष, निकला कि सामाजिक सुरक्षा का जो विश्वास हैं वहअधिक महत्वपूर्ण हैं। साथ ही लोगों कि भावना जो सरकार के प्रति होती हैं उसका अधिक महत्व होता हैंकेवल ये सरकार के प्रति विश्वास ही हैंजो इसकी सफलता को सुनिश्चित करताहैं। यानी निजी या ग़ैर सरकारी संस्थान "काउडिंग इन" इफेक्ट तभी ला सकते हैं जब जनता उन पर नैतिक यकीन हो, तथा(Moral reliance) वो जनता की expectation आकाक्षाओं व जरूरतों को प्राथमिकता के अनुसार पूरा करें ।

7.6. राजनीतिक आर्थिक नीतियों के कारण सरकार द्वारा किया गया नीतियों में बदलाव:-

पोलिटिकल इकोनोमी आफ ट्रांसफर स्टेट्स में विशव बैंक के होणडूरास के अध्ययन से स्पष्ट होता हैं कि राजनिति के आधार पर सरकारी फण्ड का उपयोग इस प्रकार करते हैं कि सर्वाधिक प्राथमिक रूप से मध्यवर्ग को मिले, क्योकिं वो उनमें(Median voter) होते हैं जो उन्हें चुनाव जीतते हैं व केवल विकासशील देशों में बल्कि OECD देशों में भी यह बात स्पष्ट होती हैं कि "इंटरेस्ट ग्रुप" (इच्छा समूह/दबाव समूह) के आधार पर ऐसा होता हैं। इस प्रकार लोकतंत्र में भी कल्याणकारी सहायता प्राथमिक रूप से मध्यवर्ग को फायदा पहुँचाती हैं। परिणामस्वरूप गरीबी उन्मूलन हेतु कुछ ज्यादा फण्ड नहीं बचता हैंविकसित तथा विकासशीलदेश दोनों ऐसा दिखाते हैं। साथ ही उत्पादन तथा टैक्स वसूलने में फिर यह अन्तराल बड़ा होता जाता हैं। यही कारण हैं कल्याणकारी राज्यों में गरीबी उन्मूलन नहीं हो पाता हैं। यही कारण हैं OECD जैसे विकसित देश भी इन कल्याणकारी रास्तों से पीछे हट जाते हैं1980, 90 के दशक से उपरोक्त कारणों को दूर करने हेतु कल्याण करी योजनायें निजी संसाथाओं द्वारा करना उपयुक्त मान रहे हैंसाथ ही मेरिट गुड्स स्वास्थ्य , शिक्षा आदि में निजी एंव ग़ैरसरकारी संस्थानों की भूमिका को प्रभावी मान रहे हैं। साथ ही बहुत से देश अपनी आवश्यकताओ को पुनः परिभाषित कर सार्वजनिक व निजी सामंजस्य ला रहे हैं। वर्तमान में टेक्नोलॉजी की मदद से कल्याणकारी कार्यो को संपन्नकिया जा रहा हैं ताकि जरुरत मंदो को लाभ हो विशव के सभी देश इस और बढ़ रहे हैं। बुचानन, सेन का मानना हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अच्छा हो साथ ही आपसी समझ के आधार पर समाज में अंदर ही प्रत्येक का भला करने का संकल्प हो यह तकनीकि के प्रयोग से संभव हो सकता हैं। जैसा कि राल्स एंव नाजिक ने सुझाया हैं। अन्य अध्ययन उपरोक्त तथ्यों से भिन्न आकड़े दर्शाते हैं जैसे OECD देशों में पर्यावरणिक अपदाओ में सरकारी सहायता ,प्राइवेट/निजी संस्थानों को (Crowding out) बाहर कर देती हैं। वहीँ विकासशील देश उदाहरण भारत यहाँ पर साक्षरता, मृत्युदर, शिशु, मत्युदर आदि में सुधार सरकारी प्रयासों द्वारा संभव हो पाया हैं। साथ ही फिलीपींस जैसे देशों में भी ऐसा पाया गया हैं। वर्तमान में विभिन्न देशों में स्वास्थ्य, पर्यावरण एंव जीवन स्तर सुधार के उपाय सरकारी,ग़ैरसरकारी एंव निजी स्तर पर संयुक्त प्रयास से दिखाई देता हैं जिनके अध्ययन अधिकतर देशो में देखने पर नजर आ रहे हैं

सारांश- जनहितकारी वस्तुओं की उपलब्धि समाज के सभी सदस्यों के लिए प्रचुर मात्रा में होनी चाहिए। उनकी पूर्ति का कार्य केवल बाजार व्यवस्था पर नहीं छोडऩा चाहिए। कि समाज के सभी

सदस्य इन वस्तुओं का बाजार भाव चुकाने में या तो समर्थ नहीं होते या तैयार नहीं होते।तो उनको सार्वजनिक वस्तुएँ कहेगें और उनकी व्यवस्था सामान्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा की जानी चाहिए। इन वस्तुओं अथवा सेवाओं को प्रदान करने के लिए जो धन की आवश्यकता होती है उसकी व्यवस्था सामान्य बजट द्वारा की जानी चाहिए। इसके विपरीत शुद्ध निजी वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण निजी क्षेत्र द्वारा ही उत्तम रहता है।

7.7 मुख्य शब्दावली:-

1. **सीमांत लागत** – उत्पादन में एक इकाइ की वृद्धि से कुल लागत में बढ़ोतरी सीमांत लागत कहलाती है।
2. **निजी वस्तुएँ -** निजी वस्तु विभाज्य होती है तथा इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्वी होते है। जो व्यक्ति वस्तु की बाजार कीमत देने की तैयार है वह उसकी आवश्यक मात्रा बाजार से खरीद सकता है।
3. **सामाजिक वस्तु-** समाज के प्रत्येक सदस्य को इन वस्तुओं का उपभोग करने की स्वतन्त्रता होती है। एक व्यक्ति के द्वारा उपभोग से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली मात्रा कम नहीं होती।
4. **अपवर्जन नियम** -जिन व्यक्तियों में इन वस्तुओं को प्राप्त करने की योग्यता एवं क्षमता होती है वही उनका उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं। अर्थात् जो इनका मूल्य चुका सकते है वही इनका उपभोग कर सकते है। अन्य व्यक्ति उसके उपभोग से वर्जित रहते है।
5. **उपभोग में प्रतिद्वन्द्वात्मक वस्तुएँ-** ऐसी वस्तु केवल जो उसी व्यक्ति को सन्तुष्टि प्रदान करती हैं जो उनका उपभोग करता है।
6. **गैर-जनहितकारी वस्तुएँ** -सरकार जिन वस्तुओं के उपभोग को हानिकारक समझती है और उन पर रोक लगाना चाहती हे तो ऐसी वस्तुओं को गैर-जनहितकारी वस्तुएँ कहते हैं जैसे नशीली वस्तुएँ।
7. **उपभोग में गैर-प्रतिद्वन्द्वात्मक -**जिन वस्तुओं के उपभोग से एक व्यक्ति को उपभोग संतुष्टि प्राप्त होने से दूसरे व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले संतुष्टि कम नहीं होती।

7.8 संदर्भ पुस्तके:-

- R.A. Musgrave and P.B. Musgrave, Public Finance in Theoryand Practice, MC-Graw Hill Book Co. London.
- R.A. Musgrave, The Theory of Public Finance.
- RK Lekhi and Joginder Singh, Public Finance, Kalyai Publishers.
- HL Bhatia Public Finance, Vikash Publishing House Private Ltd.
- A B Atkinson and J.E. Stiglitz, Lectures on Public Economics.

7.9 महत्वपूर्ण प्रश्न:-

प्रश्न 1. सार्वजनिक सेवाए एंव वस्तुओं तथा निजी सेवाओं एंव वस्तुओं को परिभाषित करते हुए इनमेंआधारभूत अंतर को स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 2. विभिन्न दशों में किए गये अध्ययन के आधार पर स्पष्ट कीजिए, कि कल्याणकारी सेवाएँ किस प्रकार उपयुक्त तरीके से लोगों तक पहुंचाई जाए?

प्रश्न 3. क्या आप सहमत हे कि सरकारी सहायता ही श्रेष्ठ रूप में कल्याणकारी हो सकती हैं। लोगो को आधारभूत सुविधायें प्रदान करने में तर्को द्वारा स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 4. पारिवारिक एकता एंव बन्धुत्व मजबूती अपने आप में कल्याणकारी हो सकती हैं ? किये गये अध्ययनों को दर्शाते हुए स्पष्ट करे?

प्रश्न5.वर्तमानमें कल्याणकारी योजनाओ के मॉडल विकसित एंव विकासशील देशों के अध्ययनों को आधार बनाकर समझाइये कि कौनसा मॉडल श्रेष्ठ हैं और क्यों? निजी एंव सार्वजनिक में से चुनते हुए?

इकाई 8

सार्वजनिक वस्तुओं का नाश कुर्नो समाधान, लिंडाल और सैम्युलसन का सिद्धांत

इकाई रुपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 स्वेछात्मक विनिमय सिद्धांत

8.3 लिंडहल का दृष्टीकोण

8.4 आलोचना

8.5 सार्वजनिक वस्तुओं का सैम्युलसन का सिद्धांत

8.6 बोध प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं अर्थव्यवस्थाओं में से साहित्य, मुख्य रूप से दो में संतुलनों अवधारणाओं का प्रयोग किया गया: कुर्नो नैश और लिंडाल संतुलनों। बाद में सैमुएलसन , इस साहित्य में एक मानक यह है कि है लिंडाल संतुलन हमेशा एक परेटो कुशल आवंटन है। इसलिए, गैर-सहकारी तहत कुर्नो नैश संतुलन, सामान्य रूप में, शुद्ध सार्वजनिक वस्तु के अध्ययन में उपयोग किया जाता है किन्तु संतुलन परेटों इष्टतम नहीं होगा। इन दो संतुलनों मुकाबले इस पत्र का मुख्य चिंता का विषय है कि चाहे परेटों इष्टतम, लिंडाल संतुलन पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किया जाता है

सार्वजनिक वस्तु की में कुर्नो नैश संतुलन

कुर्नो नैश की स्थति का विस्तार दो या दो से अधिक प्रतिद्वंदियों तक किया जा सकता है । सार्वजनिक वस्तु के उत्पादन एवं वितरण की स्थिति को कुर्नो नैश से सीधे सम्बंधित किया जा सकता है । सार्वजनिक वस्तुएँ जब सामान मात्रा व गुणवत्ता में सभी को उपलब्ध होती है तथा एक प्रतिस्पर्धी के द्वारा निर्धारित मात्रा या गलत प्रकिया से प्रयोग किये जाने पर दूसरे प्रतिस्पर्धी/उपभोक्ता पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है । इसलिए इसमें आपस में परस्पर समझ के आधार पर इसे बिंदु पर संतुलन होता है जहाँ मात्रा एवं गुणवत्ता को बनाये रखते हुए समान रूप से उपभोग किया जा सकता है । यह स्थिति विभिन्न उदाहरणों एवं चित्रों से भी स्पष्ट की जा सकती है ।

कुर्नो मॉडल :-

जैसे फर्म या उपभोक्ता समान मात्रा में उत्पादन या उपभोग करें और संतुलन की स्थिति को प्राप्त करें अर्थात कीमत एवं मात्रा का निर्धारण करें तों इस स्थिति को व्यक्त करने वाला मॉडल कहलाता है।

नैश संतुलन

जब प्रत्येक फर्म दी गयी परिस्थिति में परस्पर प्रतियोगिता करते हुए अपने सबसे उपयुक्त स्तर को प्राप्त करने की कोशिश करें। यह परस्पर सहयोग के अभाव (non-cooperative) की स्थिति में संतुलन को प्राप्त करने वाली स्थिति है। अगर किसी बिंदु पर संतुलन की स्थिति में पहुँच जाते है तों इस संतुलन से अलग होने की कोई प्रेरणा भाग लेने वाली फर्म या उपभोक्ताओं को नहीं होती है अर्थात भाग लेने वाला प्रतियोगी विभिन्न कारणों से इसे बनाये रखना चाहता है। द्वेताधिकार में जब उत्पादन समान हो तथा भाग लेने वाले प्रतिस्पर्धियो में कोई विशेष सम्बन्ध न हो अर्थात प्रत्येक प्रतिस्पर्धी स्वतंत्र हो तों इनके बीच संतुलन कुर्नो नैश के माध्यम से समझाया जा सकता है।

कुर्नो नैश संतुलन

द्वैत एकाधिकार की स्थिति में जब प्रत्येक फर्म दूसरी प्रतिस्पर्धी फर्म से प्रभावित होती है तथा दूसरी फर्म को प्रतिक्रिया का अनुमान लगाकर अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करते है इसके लिए प्रत्येक फर्म का प्रतिक्रिया फर्म बनाया जा सकता है। यदि द्वैत एकाधिकार की स्थिति है तों वहाँ दोनों फर्मो के प्रतिक्रिया फलन एक दूसरे को काटेंगे। वहाँ सन्तुलन के स्थिति प्राप्त होगी। यह स्थिति चित्र में भी दिखाई जा सकती है।

$Q_1 = f(Q_2)$ और $Q_2 = f(Q_1)$ फर्मो के प्रतिक्रिया फलन है।

8.2 स्वेछात्मक विनिमय सिद्धांत (Voluntary Exchange Theory)

स्वीडन के अर्थशास्त्री कानोट विसिल, इरिक लिंडहल व होवाड बावेन तथा अनेक इतालवी अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक वस्तुओ का स्वेछात्मक विनिमय सिद्धांत प्रस्तुत किया यह सिद्धांत यह सुझाव देता है कि सार्वजनिक क्षेत्र को साधन इस प्रकार आवंटित किया जाए कि वह बाजार इसके आवंटन व मूल्य व्यवस्था से मेल खाते हो। अन्य शब्दों में किसी व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तुए, करों का भुगतान करके उसी तरह खरीदनी चाहिए जैसे वह बाजार मूल्य पर निजी वस्तुए खरीदना पसंद करता है। वह कर देने वाला खरीददार बन जाता है जो सार्वजनिक वस्तुओ से लाभ प्राप्त करने के लिये उन्हें खरीदते समय करों का भुगतान करता है। वह सार्वजनिक क्षेत्र में सार्वजनिक वस्तुओं के लाभ तथा कर मूल्यों के सीमांत अनुपात को बराबर कर देगा। इसी प्रकार वह सार्वजनिक वस्तुओं तथा निजी वस्तुओं में आपसी आधार पर लागत लाभ अनुपात बराबर कर लेगा । इस प्रकार एक ऐसी स्थिति आ जायेगी जहाँ स्त्रोतों का अधिकतम आपसी आवंटन हो सकेगा।

8.3 लिंडहल का दृष्टीकोण (Lindhal's view) :-

इस का प्रतिपादन इरिक लिंडाल ने 1919 में किया। इससे संबंधित Classics in the Theory Public Finance में मुद्रित है जिसका संपादन आर.ए. मुसग्रेव और ऐलन पीकाक द्वारा किया गया है।लिंन्डाल के अनुसार समुदाय में समूहों के बीच करों के भार के वितरण के संबंध में सार्वजनिक व्यय का निर्धारण होता है।

इरिक लिन्डाल के अनुसार न्यायपूर्ण कराधान का कार्य आदर्श आय वितरण की प्राप्ति व आय के आदर्श वितरण को बनाए रखते हुए सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है। लिन्डाल ने अपने मॉडल मे इस बात की व्याख्या की है कि लोगों की कर देने की सामथ्र्य एवं सरकार द्वारा प्रदत लाभों के अनुपात में कर भार के वितरण करना सम्भव है। यह समाधान वैयक्तिक प्राथमिकताओं के आधार पर सार्वजनिक वस्तुओं का स्वेछात्मक विनिमय पर जोर देता है। इस सिद्वान्त के अनुसार किसी व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तुऐ करों का भुगतान करके उसी तरह खरीदनी चाहिए,जिस प्रकार वह बाजार मूल्य पर निजी वस्तुऐ खरीदना पसंद करता है। इस प्रकार वह कर देने वाला खरीददार बन जाता है अर्थात वह सार्वजनिक वस्तुओ से लाभ प्राप्त करने के लिए उन्हे खरीदते समय करों का भुगतान करता है।

लिन्डाल के मॉडल में तीन निर्णयों का समाधान है -

1. सरकारी व्यय और करों की कुल मात्रा।
2. सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं पर कुल व्यय का आवंटन।
3. विभिन्न व्यक्तियों के मध्य करों का आवंटन।

ये निर्णय परस्पर सम्बन्धित तथा एक दूसरे पर निर्भर है। अतः इन्हें एक साथ ही रखा जाना चाहिए।

मान्यतायें

लिन्डाल ने अपने मॉडल में निम्न मान्यताऐं ली है।

1. राज्य में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था होनी चाहिए।
2. राज्य एक सार्वजनिक वस्तु पैदा कर रहा है।
3. A तथा B दो कर दाता है जो राज्य द्वारा प्रदत विशेष वस्तु खरीद रहे है।
4. समाज में आय विस्तरण स्थिर है।
5. सामाजिक वस्तु का उत्पादन स्थिर लागत (*constant cost conditions)*के अन्तर्गत हो रहा है।

लिन्डाल ने अपने सामाधान में बाजार की समान मूल्याकंन प्रकिया(*analogous pricing process)* का सहारा लिया है। सार्वजनिक वस्तु की पूर्ति A और B दोनो करदाताओं को लाभ पहुँचाती है जिनके लाभ के हिस्सों को उनका संयुक्त उत्पाद माना जा सकता है। A और B संयुक्त रूप में इतना अंशदान अवष्य करेंगे कि उससे कुल लागत की पूर्ति हो सके। यदि वस्तु की कुल लागत का ।कम भार वहन करता है तोस्वभाविक है कि B उस वस्तु की लागत का अधिक भाग वहन करेगा।। के द्वारा वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए जो कीमत प्रदान की जायेगी उसे B के लिए पूर्ति अनुसूची कहा जा सकता है। इसी प्रकार B द्वारा वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए जो मूल्य प्रदान किया जायेगा उसे । के लिए पूर्ति अनुसूची कहा जा सकता है।

चित्र की सहायता से लिन्डाल मॉडल को आसानी से समझा जा सकता है। चित्र में सार्वजनिक वस्तु की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। चित्र में दायें शीर्ष रेखा पर सामाजिक वस्तु की कुल लागत का B द्वारा वहन किया जाने वाला प्रतिशत भाग मापा गया है।Aव B द्वारा दिये जाने वाले मूल्य को कुल लागत के प्रतिशत के रूप में मापा गया है।aa और bb रेखाये क्रमषः A और B दोनों करदाताओं की माँग अनुसूचियों को प्रदर्षित करती है।Aकी माँग अनुसूची में B की पूर्ति अनुसूची अथवा इसके विपरीत देखा जा सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की OC मात्रा के

लिए कर दाता A लागत का 100 प्रतिशत भार वहन करने को तैयार है। जैसे-जैसे उत्पादन बढता है । द्वारा कुल लागत का वहन किया जाने वाला प्रतिशत घटता है। OT उत्पादन पर वह 50 प्रतिशत लागत का वहन करने को तैयार है। शेष 50 प्रतिशत लागत B वहन करने को तैयार है। इस प्रकार OT संतुलन उत्पादन है तथा A व B दोनों द्वारा दी गई लागत सामाजिक वस्तु की कुल लागत के बराबर है। इस उत्पादन पर A का भाग TQ व B का भाग QT है । OT से आगे किसी भी उत्पादन पर A व B द्वारा वहन की जाने वाली लागत का योग 100 प्रतिशत से कम रहेगा अतः उत्पादन कम करना होगा। इसी प्रकार यदि उत्पादन OT से कम होगा तो A व B द्वारा दी गई सामाजिक वस्तु की लागत कुल लागत से अधिक होगी अतः उत्पादन बढाना होगा। अतः OT उत्पादन पर ही संतुलन स्थापित हो सकेगा। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन OT_1मात्रा में किया जायेगा तो A व B दोनो ही कुल लागत का 75, 75 प्रतिशत देनें को तैयार होंगे अतः उत्पादन बढाना पडेगा व T बिन्दु तक लाना होगा। जहाँ पर उनके द्वारा दी गई लागत आवश्यक लागत से अधिक न हो। यदि उत्पादन OT_2 मात्रा में किया जायेगा तो दोनों 30, 30 प्रतिशत देने को तैयार होंगे जो कुल लागत से कम होगा। अतः उत्पादन कम करना पडेगा । उत्पादन यदि OT से कम होगा तो दोनों उपभोक्ता उत्पादन वृद्धिका समर्थन करेंगे। यदि उत्पादन OT से अधिक होगा तो उत्पादन में कमी का समर्थन करेंगे। इस प्रकार सामाजिक वस्तुओं की संतुष्टि के लिए आय व्यय प्रकिया प्रतिस्पर्धी प्रकिया से ही निर्धारित होती है जो निजी बाजार में प्रयुक्त होने वाली प्रकिया के अनुरूप है।

इस प्रकार लिंडाल ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक सार्वजनिक वस्तुओं की ईकाईयों OT तक न पहुँच जाए , दोनों ही व्यक्ति अधिक मात्रओं का ही समर्थन करेंगे। इस प्रकार सामाजिक आवश्यकताओंकी सन्तुष्टि के लिए राजस्व व्यय की प्रकिया का निर्धारण प्रतियोगी प्रकिया द्वारा होता है। इस प्रकार लाभ के आधार पर तथा विनिमय की प्रकिया के द्वारा सरकारी सेवाओं की मात्रा का तथा कर भार के वितरण का साथ-साथ ही निर्धारण किया जा सकता है। लिंडाल ने अपनी सम्पूर्ण राजस्व व्यय की प्रकिया को निश्चित आय की उपयुक्त मान्यता के अन्तर्गत सामाजिक आवश्यकतओं की सन्तुष्टि पर ही आधारित किया। उसने अपने को केवल कर भार के न्यायोचित एवं कुशल बँटवारे से ही सम्बन्धित रखा, आय के प्रभावों के वितरण से नहीं। जैसा कि निजी वस्तुओं के बाजार में लागू होता है।

सीमाएं

1. यह आंशिक विश्लेषण है क्योंकि यह मानता है कि सार्वजनिक वस्तुओं के अनुकूलतम आकार का निर्धारण निजी वस्तुओं की मात्रा से स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है।

2. लिंडाल यह मानकर चलता है कि प्रत्येक करदाता सार्वजनिक वस्तु के लिए अपने अधिमानों को सत्य प्रकट करेंगा। किन्तु यह संभव है कि ऐसा न हो,विशेष कर जब करदाता को यह पता हो कि सार्वजनिक सेवाओं के लिए कम माँग करके वह अपने उपर लागत के भार को कम कर सकता है। इस प्रकार यहाँ मोल भाव करने की स्थिती पैदा हो जायेगी और एक स्थायी साम्य प्राप्त नही होगा यह द्वाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की समस्या के समान स्थिती बन जाती है और कोई स्थायी समाधान प्रस्तुत न हीं करती जब तक और अधिक कड़ी मान्यताएँ न स्वीकार कर लि जाये |

3. यदि हम इस तथ्य को स्वीकार करते है कि मतदाताओं की बढती संख्या के साथ किसी एक व्यक्ति के अंश में परिर्वतन से सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति प्रभावित नही होती तो सिद्वान्त लागू नही होता। व्यक्ति अपनी प्राथमिकताओं को स्वतः प्रकट नहीं करता है। सामाजिक वस्तुओं के मामले में अतः प्राथमिकताए व्यक्त नहीं होगी। यहाँ स्वैच्छिक अंशदान की पूर्ण मान्यता असफल हो जाती है। सार्वजनिक वस्तुएँ सामूहिक आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करती है। समूह बोलता नहीं है, अतः उसकी भावनाओं की सही अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

4. यह मॉडल आय वितरण दिया हुआ मानता है। यह सिद्धांत इस गलत मान्यता पर आधारित है कि करदाताओं की व्यक्तिगत पसंद का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है। इस संदर्भ में पहले सार्वजनिक वस्तुओं का उदाहरण लीजिये ।इन वस्तुओं का अपवर्जन नियम लागू नहीं होता है। उनके अस्तित्व में आने पर किसी को उनसे लाभान्वित होने से रोका नहीं जा सकता। अतः इन वस्तुओं के लिये अपनी पंसद दर्षाकर कोई करदाता कर-भार वहन करना नहीं चाहेगा। वह राज्य-सेवाओं को मुफ्त में पाना चाहेगा। इस तथ्य को यों भी रखा जा सकता है कि करदाताओं को कर से बचने के लिए अपनी सच्ची प्राथमिकताएं छुपाने के लिये प्रोत्साहन मिलता है। इसी प्रकार वस्तुओं और सेवाओं की माँग का ढाँचा करदाताओं की आय पर निर्भर करता है। अतः यदि आय वितरण असमान हो तो माँगढाँचा भी समाज के सही आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

5.यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि राज्य सेवाओं की उत्पादन लागतें परिवर्तनीय होने के कारण उनकी कीमतें बदलने की आवश्यकता रहती है। अर्थात् इन सेवाओं की पूर्ति वक्र स्थिर नहीं रहते है। यही दषा करदाताओं के माँग वक्रों की है। वह भी करदाताओं की आय तथा अन्य प्राथमिकताओं और परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण अस्थिर रहते है। इस दषा में इस सिद्वांत के आधार पर ऊपर उठाए गए बुनियादी प्रश्नों के इष्टतम उतर नही मिल पाते।अर्थात हम यह तय करने में असमर्थ रहते है कि सरकार की गतिविधियों का स्तर क्या हो, राज्य सेवाओं का सम्मिश्रण क्या हो, तथा करदाताओं पर कर-भार का आबंटन कैसे किया जाए?

6. के.जे.ऐरो ने इस सिद्वान्त के व्यावहारिक पक्ष की चयन अंसक्रमणता के कारण आलोचना की है। उसका मत है यदि सभी व्यक्ति अपने अधिमानों को सही रूप से व्यक्त कर भी दे तो भी इस आधार पर सामाजिक कल्याण फलन निधार्रित नही किया जा सकता क्योंकि भिन्न भिन्न वस्तुओं के प्रति प्राथमिकताऐं भिन्न भिन्न होगी।

7. लिंडाल का सिद्वान्त इस मान्यता पर आधारित है कि राज्य की गतिविधियों का वित्त-पोषण केवल कर राजस्व के द्वारा होता है परन्तु वस्तुस्थिति यह नही है। इस सिद्धांत की एक मुख्य त्रुटि यह है कि शुद्ध तर्काधार पर राज्य-सेवाओं के लिए की गई अदायगियों को करों संज्ञा नहीं दी जा सकती। कर की परिभाषा तो यह है कि करदाता राज्य से किसी हित के लिए नहीं, प्रत्युत बाध्य होकर अदायगी करता है। उसका राज्य से किसी सेवा को प्राप्त करने का अधिकार नहीं बनता। परन्तु इस सिद्धांत में सरकार को अदायगियाँ सार्वजनिक सेवाओं की कीमत के रूप में की जाती हैं तथा करदाता को यह अधिकार भी रहता है किवह सरकारी सेवाओं को लेने से मना कर दे।

जब इन सेवाओं को मुहैया करने के बारे में तथा उनकी कीमत वसूल करने के बारे में निर्णय व्यक्तिगत स्तरपर न लेकर सामूहिक स्तर पर विधान मण्डल आदि द्वारा लिया जाए, तो भी इन

कीमतों की कर-प्रकृति आंशिक ही बन जाती है। कोई अदायगी पूर्ण रूप से कर का रूप तभी प्राप्त कर सकती है जब वह अनिवार्य भी हो और उसके बदले में किसी प्राप्ति का अधिकार भी न मिले।

8. इस सिद्वान्त में एक बडी कठिनाई यह आती है कि करदाताओं के माँग वक्र कैसे निर्धारित किए जाऐं। इस कार्य में कई विष्लेष्णात्मक कठिनाइयों उत्पन्न होती है और इन कठिनाइयों का कोई संतोषजनक उत्तर उपलब्ध नही है।

8.4 आलोचना :-

(i) सही अधिमानों को प्रकट न करना :– लिंडहल यह मानकर चलता है कि प्रत्येक करदाता सार्वजनिक वस्तु के लिए अपने सही अधिमानों को प्रकट करेगा किन्तु सम्भव है कि ऐसा न हो विशेषकर जब करदाता को यह पता हो कि राज्य-सेवाओं के लिए कम मांग करके वह अच्छी स्थिति को प्राप्त कर सकता है । इस प्रकार यह मोलभाव करने का प्रश्न बन जायेगा और एक साम्य प्राप्त नहीं होगा ।

(ii) दो करदाताओं की मान्यता :- यह सिद्धांत दो करदाताओं की मान्यता पर आधारित है जिनमे से प्रत्येक राज्य सेवाओं के लिए अपनी मांग इस मान्यता पर निर्धारित करता है कि राज्य सेवाओं कि लागत के लिए दूसरे करदाता का अंशदान दिया हुआ है । यह द्धेधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की समस्या के समान बन पाती है और कोई स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं करती जब तक और अधिक कड़ी मान्यताएँ न स्वीकार कर लि जाये ।

(iii) समाज के अधिमान छिपाना सम्भव :- यह सोचकर कि तो मन लीजिए प्रतिरक्षा प्रयत्नों पर कोई प्रभाव नहीं निःसन्देह समाज का सही अधिमान विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के लिए किन्तु इस अधिमान को छिपाया जा सकता है

(iv) अधिमानों कि जानकारी अवास्तविक मान्यता :- यह मानना नितान्त अवास्तविक है कि हम कभी करदाताओं के अधिमान जान सकते है । सामाजिक वस्तुएँ जिनमे अपवर्जन का सिद्धांत (Theory of exclusion) लागू नहीं होता, सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जाती है ।

8.5 सार्वजनिक वस्तुओं का सैम्युलसन का सिद्धांत:-

सैम्युलसन ने ज्ञात अधिमानों के आधार पर सार्वजनिक वस्तुओं के कुशल आवंटन के लिए एक स्वीकृत दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। स्वेच्छिक विनिमय सिद्धान्त के अन्तर्गत जो विश्लेषण किया गया था, वह इस मान्यता पर आधारित था कि उपभोक्ता अपने अधिमान सही रूप में व्यक्त कर देगा। सैमयुलसन ने सही अधिमानों के ज्ञात व अभिव्यक्त होने की मान्यता के आधार पर व्यापक संतुलन के अन्तर्गत किस प्रकार राज्य, निजी व सार्वजनिक वस्तुओं के मध्य साधनों का आंबटनकर इष्टतम स्थिति प्राप्त कर सकती हैं, इसे समझाया है।

सार्वजनिक वस्तुओं को सामूहिक रूप से प्रदान किया जाता है। इन्हे निजी उद्यमियों द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता। निजी वस्तुऐ बाजार में व्यक्तियों की पसन्द व प्राथमिकता के आधार पर प्रदान की

जाती है, लेकिन निजी वस्तुओं की भांति सामाजिक वस्तुओंके सम्बन्ध में हित-लाभ सिद्धान्त को नहीं अपनाया जा सकता। अर्थात सामाजिक वस्तुओं के मामलें में व्यक्तिगत प्राथमिकता पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए सार्वजनिक वस्तुओं पर बाजार सिद्धान्त कैसे लागू हो सकता है -लाभ सिद्धान्त के अनुसार किसी प्रकार से विकेन्द्रित तरीके से संगणानात्मक समस्या को नहीं सुलझा सकता जो प्रथम श्रेणी की निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में संभव है व जिनके सम्बन्ध में सामान्य बाजार की कीमत व्यवस्था लागू होती हैं व जिनमें बाहरी प्रभाव नहीं होते जो सामूहिक उपभोग वस्तु की कल्पना के मूल में है।

सैम्युलसन मॉडल को चित्र की सहायता से समझाया जा सकता है। चित्र A दिखाता है कि एक दिए हुए आय वितरण और अन्य वस्तुओं की कीमतों पर A व B दो व्यक्तियों की निजी और सामाजिक वस्तुओं के लिए माँग क्या होगी। चित्र A में निजी वस्तु माना कि X के लिए दो व्यक्तियों A व B के माँग वक्र D_Aऔर D_Bहै। D_{A+B} वस्तु X का बाजार माँग वक्र है जिसे क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त किया गया है। S वस्तु X का पूर्ति वक्र है। D_{A+B} और S वक्र एक दूसरे को E बिन्दु काटते है। इस प्रकार E बिन्दु पर साम्य कीमत OP निर्धारित होती है। इस कीमत पर A ने OL मात्रा खरीदी है। A व B दोनों ने कुल मात्रा OH खरीदी है।

चित्र B में सामाजिक वस्तु का माँग वक्र दर्शाया गया है। जहां निजी वस्तुओं के सम्बन्ध में दोनों व्यक्तियों के माँग का योग कुल माँग के बराबर है। वहां सामाजिक वस्तुओं के सदंर्भ में कुल दोनों व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली माँग मात्रा समान होती है। सामाजिक वस्तुओं का उपभोग सभी व्यक्तियों द्वारा समान मात्रा में किया जाता है। अतः A व B की माँग,A व B की माँग का योग न होकर दोनों के लिए माँग मात्रा समान होती है। इसलिए सामाजिक वस्तुओं की बाजार माँग (या कुल माँग) के लिए व्यक्तिगत माँग वक्रों की लम्बवत योग लिया जाता है।

चित्र A

चित्र B में सामाजिक वस्तु का पूर्ति वक्र S_1तथा DA+B माँग वक्र है।माँग और पूर्ति का सन्तुलन बिन्दु E है। A व B दोनों के द्वारा सामाजिक वस्तु की मात्रा OT है , क्योंकि सामाजिक वस्तुओं का सभी व्यक्ति समान मात्रा में उपभोग करते हैं। दोनों के द्वारा प्रदान किया गया संयुक्त मूल्य OP_1 है।

जिसमें OP_3मूल्य Aके द्वारा और OP_2मूल्य B के द्वारा प्रदान किया गया है, अतः $OP_1 = OP_3 + OP_2$

चित्र B

चित्र C संसाधनों के अनुकुलतम प्रयोग को दर्षाता है।Aकी उपयोगिता को क्षैतिज अक्ष पर तथा B की उपयोगिता को लम्बवत् अक्ष पर मापकर सैम्युलसन समाज कल्याण रेखा के आधार पर पेरेटो इष्टतम को दर्षाता है। च्च्वक्र पर समस्त पेरेटो इष्टतम बिन्दु स्थित है। U_1, U_2 एवं U_3 समाज के अधिमानों को व्यक्त करने वाले तटस्थता वक्र है। बिन्दु g समाज के लिए पेरेटो इष्टतम की व्यक्त करता है। सैम्यूलसन ने इस बिन्दु को सर्वोतम प्राप्य सुखद बिन्दु कहा है। सैम्युलसन के द्वारा व्यापक संतुलन के आधार पर जो उक्त विश्लेषण किया है, उसमें साधनों का इष्टतम आबंटन आय के पहले से ही दिए वितरण के आधार पर निर्धारित किया गया है।

चित्र C

8.6 बोध प्रश्न

1. स्वेछात्मक विनिमय सिद्धांत की व्याख्या कीजिय?

2. लिंडहल का दृष्टीकोण लिखों।
3. सार्वजनिक वस्तुओं का सैम्युलसन का सिद्धांत की व्याख्या कीजिय?
4. सैम्युलसन के सिद्धांत को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है? व्याख्या कीजिये?

इकाई 9

क्लब वस्तुएँ

Club Good

9.0 उद्देश्य

9.1 सामान्य परिचय

9.2 अर्थ एवं परिभाषा

9.3 क्लब सिद्वांत का सामान्य परिचय

9.4 बुचानन का क्लब सिद्वांत

9.5 क्लब सिद्धांत के द्वारा सार्वजनिक व निजी वस्तुओ की बाजार के द्वारा उपलब्धता में समस्या का समाधान

9.6 क्लब वस्तुएँ/सेवाओं का मूल्य निर्धारण

9.7 क्लब वस्तुओ/सेवाओं के अनुकूलतम स्तर का उपभोक्ता द्वारा चुनाव

9.8 मुख्य शब्दावली

9.9 संदर्भ पुस्तके

9.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस अध्याय मे हम क्लब वस्तुओं के बारे मे जानने का प्रयास करेगे । साथ ही स्पष्ट करने का प्रयास करेगें, कि किन विशेषताओं के कारण सार्वजनिक व निजी वस्तुएँ से भिन्न क्लब वस्तुएँ अपना स्थान रखती हैं तथा किस प्रकार इनका आपस में रूपांतरण संभव है । इस अध्याय में हम कुछ क्लब वस्तुओं, सार्वजनिक वस्तुओं तथा निजी वस्तुओं की विशेषताओं से अवगत करने के, साथ साथ निजी वस्तुओं को परिभाषित करने का प्रयास करेंगे, इसके साथ ही अन्य वस्तुऐ कैसे क्लब वस्तुओं से भिन्न हैं इसको स्पष्ट करेगे । क्लब वस्तुओं के सिद्वांत का विवरण उदाहरण सहित स्पष्ट किया जायेगा तथा क्लब वस्तुओं में लाभ अधिकतम करने को समझाने का प्रयास करेगे । समाज में तथा जब सार्वजनिक एंव निजी वस्तुएँ हैं तो किन कारणों से क्लब वस्तुओं कि जरुरत समाज में उत्पन्न होती हैं। साथ इनकी उपरोक्त वर्णित दोनों(सार्वजनिक एंव निजी) वस्तुओं से किस प्रकार समानता एवं भिन्नता हैं

9.1.प्रस्तावना / सामान्य परिचय

क्लब वस्तुएँ वे होती हैं जिनममें कुछ विशेषताएँ सार्वजनिक वस्तुओं की तथा कुछ विशेषताएं निजी वस्तुओं की पायी जाती हैं। इनमे गैर प्रतिद्वन्द्वीता और बह्यता की विशेषता पाई जाती है सभी को इनके उपभोग की अनुमति देने पर ये सार्वजनिक वस्तुओं में बदल जाती है और इनका मूल्य वसूलने पर निजी वस्तुओ में बदल जाती है इसलिए इनके मूल्य और मात्रा के निर्घारण में सामान्य बाजार के नियम लागु नही होते है। क्लब वस्तुओं के सिद्वांत के द्वारा इसको समझा जा सकता है।

9.2.अर्थ एंव परिभाषा:-

1.2a सार्वजनिक वस्तुयें :- वे वस्तुएँ होती हैं जिनमें बाह्यता की विशेषता नहीं होती हैं अर्थात जिनके उपयोग या इस्तेमाल से किसी को बाह्य नहीं किया जा सकता हैं यानी (Non-excludable) जिनमें किसी को वंचित रखने का गुण नहीं पाया जाता हैं (Non rivalries) यानी इनके वितरण में किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्वीता को शामिल नहीं किया जाता हैं उदाहरण जैसे टेलीविजन पर मुफ्त राष्ट्रीय प्रसारण, ये सभी को समानरूप से उपलब्ध करायी जाती हैं। जिन पर इस का प्राक्रतिक रूप से अधिकार मन लिया जाता हैं। तकनीकि रूप से अब्राह्यता (Non-exludable) और अप्रतिद्वन्द्वीता (Non-Rival) की विशेषताओं से युक्त वस्तुएँ सार्वजनिक वास्तु हैं।

1.2b.निजी वस्तुयें:- निजी वस्तुएँ वे होती हैं जो अप्रतिद्वन्द्वीता की श्रेणी में आती हैं तथा जिनमे ब्रहयता की विशेषता होती हैं उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं निजी वस्तुओं को मूल्य चुका कर प्राप्त करते हैं जैसे कार, फ्रिज कपड़े जो जिनता अधिक सामर्थ्य इनको खरीदने का रखेगा ये उसे उसी मात्रा में प्राप्त होगी तथा इनमें बह्यता की विशेषता होती हैं, यानी अगर A कार को X व्यक्ति ने खरीद लिया हैं तो A कार को Y व्यक्ति नहीं खरीद सकता हैं उसे Y को B..... Z तक अन्य कार खरीदने की स्वतंत्रता हैं। यानी निजी वस्तुएँ प्रतिस्पर्धी / प्रतिद्वन्द्वीता की विशेषता रखती हैं साथ ही ये जिसको प्रतिस्पर्धी के आधार पर प्राप्त हो जाता हैं बाकी अन्य के लिए वह वस्तु बाह्यता यानी अन्य की पहुँच से बाहर हो जाती हैं। यहाँ प्रतिस्पर्धा वस्तुओं के मध्य हैं, जिसको निजी सामर्थ्य के अनुसार व्यक्ति खरीद सकता हैं, यह प्रतिस्पर्धा व्यक्ति के मध्य नहीं हैं वरन उसके पास उस वस्तु को खरीद कर स्वामित्व प्राप्त करने के मध्य हैं। इसके उदाहरण कार, पार्किंग स्थल, कपड़े, भोजन आदि होते हैं।

1.2c.क्लब वस्तुयें :-क्लब वस्तुएँ निजी व सार्वजनिक दोनों वस्तुओं के गुणों से युक्त होती हैं परन्तु इन वस्तुओं की उपलब्धता में कृत्रिम तरीकें से कमी (Scarcity) उत्पन्न कर दी जाती हैं, तो ये एक ठहराव को दर्शाती हैं, इसमें क्लब वस्तुओं को शामिल किया जाता हैं हम इसे उदाहरण के माध्यम से समझने का प्रयास करेगें क्लब वस्तुएँ अपनी प्रकति में बाह्यता की विशेषता से युक्त होती हैं साथ ही इनकी प्रकति गैर प्रतिद्वन्द्वीता का श्रेणी से युक्त होती हैं अर्थात क्लब वस्तुएँ जिसको प्राप्त हो जाती हैं उसका इस पर अनन्य अधिकार होता हैं, अन्य व्यक्ति कोई प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता हैं, इन्हें प्राप्त करने हेतु ये स्वयं ही प्रतिस्पर्धात्मक होती हैं साथ ही ये बाह्यता की विशेषता से युक्त होती

हैं उदाहरण जैसे किसी अविष्कार/ लेखन पर कोई कोपीरइट इस कृति का अनन्य अधिकार माना (A) व्यक्ति का कोपीरईट हैं यह A की कृति हैं तो अन्य वयक्तियो के लिए बाह्यता हैं, साथ ही इसके उपयोग / उपभोग व वितरण का पूरा अधिकार (A) को प्राप्त हैं अत: यह गैर प्रतिद्वन्द्वीता की विशेषताओ से युक्त हैं। इस प्रकार क्लब वस्तुएँ वो वस्तुएँ होती हैं, जिन पर किसी का प्राक्रतिक अधिकार हो जाता हैं, तथा साथ ही क्लब वस्तुओं में कृत्रिम कमी उत्पन्न करने की क्षमता होती हैं वतर्मान में व्यवहार में इसके उदाहरण देख सकते हैं जैसे सिनेमा, केबल टेलीविजन, कोपीरईट का अनन्य अधिकार या फिर वे सेवायें जिन्हें सामाजिक एंव धार्मिक समूह केवल अपने ही सदस्यों को उपलब्ध कराते हैं या फिर आर्थिक उदाहरण से जैसे यूरोपीय यूनियन यह आर्थिक छूट का लाभ केवल अपने देशों को ही उपलब्ध कराती हैं। ये सभी क्लब वस्तुओं के उदाहरण हैं।

उपरोक्त विवरणों को हम चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं।

	बाह्य(Excludable)	**बाह्यनहीं(Non-Excludable)**
प्रतिद्वंद्वी (Revalrous)	निजी वस्तुएँ, कार, भोजन कपड़े, पार्किंग जगह	कोमन पूल संसाधन टिम्बरकोयला फिस टोक्स।
प्रतिद्वंद्वी नहीं (Non-Revalrous)	क्लब वस्तुएँ,सिनेमा, प्राइवेट पार्क सेटेलाइट टेलीविजन,	सार्वजनिक वस्तुएँ, फ्रि टू-एयर टेलीविजन एयर नैशनल डिफेन्स

जैसे :- जब सार्वजनिक वस्तुओं का उपयोग किसी समूह विशेष के लिए कर दिया जाता हैं जैसे चाकलेट केक केवल बच्चो के लिए ही बनेगा, तो यहाँ सभी बड़ो के लिए यह चाकलेट केक बाह्य हो जायेगा यानी (Excludable) साथही ये केवल बच्चो के लिए हैं अत: बच्चो में इसको प्राप्त करने को लेकर कोई प्रतिद्वन्द्वीता नहीं हैं यानी (Non-rivalrous) हैं इस प्रकार सार्वजनिक वस्तुओं को क्लब वस्तुओं में बदला जा सकता हैं।

9.3.क्लब सिद्धांत का सामान्य परिचय :

अर्थ व्यवस्था में बहुत वस्तुओ को इचिछत मूल्य पर उपभोग करने के लिए व्यवस्थित सम्मेलित उपभोग का तरीका प्रयोग किया जाता हैं। इन वस्तुओ का उपभोग निजी और सार्वजनिक वस्तुओ तरीके से संभव नही हो पाता है। क्लब सिद्धांत में मेंबरशिप के माध्यम से उपभोग को नियंत्रित किया जाता है तथा मेम्बरशिप की फीस से उत्पादन का मूल्य निकाला जता है । हम इसे एक चारागाह के माध्यम से भी समझ सकते हैं चारागाह जब तक सार्वजनिक हैं तब तक सब लोग स्वतंत्रत हैं अपनी अपनी भेड़ो को जितने चाहे समय तक उसमे घुमा सकते हैं भेड़ वहां पर घास खा सकती हैं। परन्तुजब हम घास के मैदान को पट्टे पर लेते हैं तब केवल जिसके पास उसका पट्टा / अधिकार हैं केवल वही व्यक्ति अपनी भेड़ चरा सकता हैं तब यह क्लब गुड्स की श्रेणी में आ जाती हैं। अब इस पर अन्य व्यक्ति का अधिकार नहीं होगा।

9.4.बुचानन का क्लब सिद्दांत:-

क्लब वस्तुओं एंव सेवाओं का सिद्धांत बुचानन द्वारा दिया गया हैं जिसे वे " द स्टडी आफ क्लब गुड्स इन इकोनोमिक्स" स्पष्ट करते हैं इसमें वे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का सार्वजनिक एंव क्लब वतुओं एंव सेवाओं हेतु अलग अलग दृष्टिकोण होता हैं। जैसे सार्वजनिक सेवा/वस्तओं हेतु कोई इच्छा/चुनाव व्यक्त नहीं किया जा सकता हैं बही गोल्फ क्लब की सदस्यता लेना, यह आकर, समय एंव उसके लिये दिये गये घन ,सदस्यता प्राप्ति हेतु पर निर्भर करेगा,ज्यादा धन देकर अधिक समय तक खेल सकते हो, यहाँ क्लब में वस्तओं को इस प्रकार व्यवस्थित कर (corigestion) एकत्रण से बनाया जा सकता हैं। तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी खरीदने की क्षमता के आधार पर खेल/ इस्तेमाल कर सकता हैं। इस प्रकार प्राप्त क्लब सेवाओं/वस्तुओं में प्राप्तकर्ता को एक संतोष एक आनंद की अनुभूति भी प्राप्त होती हैं। यही क्लब वस्तओं को प्राप्त करने में एक सुखद अनुभूति होती हैं। पैरेटो कहते हैं कि ये ही अनुभूति एक मात्रा तक सार्वजनिक वस्तुओं/सेवाओं में होनी चाहिए। क्लब थ्योरी के माध्यम से बुचानन यह समझाना चाहते हैं कि अगर प्रत्येक नागरिक कुछ मात्रा में सहयोग करे सार्वजनिक वस्तुओं का फ्री राइडर न बने, उसके बदले कुछ मात्रा में सहयोग करे; तो सार्वजनिक वस्तएं /सेवाएँ उसे क्लब वस्तुओं की तरह अच्छी व इच्छानुसार प्राप्त हो सकेगी जैसे कुछ कर देने और सार्वजनिक भवनों का निर्माण उसके आवास हेतु हो सकता हैं। उच्च वर्ग की तरह उसके लिए अलग स्वच्छ वातावरण वाले आवास बन सकते हैं। उनसे जीवन स्तर में सुधार आ सकता हैं।। मूलर इसे वोलेंटरी एसोसिएशन एपरोच कहते हैं । इस सिद्वान्त के अनुसार यहाँ बाह्यता नहीं हैं स्वेच्छा से एकजुटता दिखाने पर बल हैं।

9.5. क्लब सिद्धांत के द्वारा सार्वजनिक व निजी वस्तुओ की बाजार के द्वारा उपलब्धता में समस्या का समाधान :-

जिन वस्तुओं को गैर प्रतिद्वंद्वी तथा गैर बाह्य (Non excludability, Non rivalary) माना जाता हैं वे सार्वजनिक वस्तुएँ (public goods)हैं, सार्वजनिक वस्तुएँ एंव सेवायें सरकार के राजनैतिक संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती हैं जिनसे किसी को वंचित नहीं किया जाता हैं, इसके एवज में सरकार जनता पर कर लगती हैं। परन्तु इनमे किसी व्यक्ति के लिए किसी प्रकार का आरक्षण (कोटा) नहीं किया जाता हैं। यदि कोटे संबधी नियम लगाये जायेंगे तो यह क्लब गुड्स में बदलने लग जायेगी । इसी प्रकार जब हम किसी वस्तु या सेवा पर व्यक्तिगत जायदाद संबंधी नियम आरोपित करते हैं तो सार्वजनिक से निजी में बदलने लगती हैं जैसे पुल अगर टोल `फ्री हैं तो सार्वजनिक हैं परन्तु उस पर टोल लगा दिया जाए तो निजी को श्रेणी में आ जायेगा यानी बाह्य व प्रतिद्वंद्वी (excludable and rivalary) श्रेणी में आ जायेगा। प्योर पब्लिक गुड्स यानी केवल और केवल सार्वजनिक वस्तुएँ की विशेषता हैं कि वो गैर बाह्य एंव ग़ैरप्रतिद्वंद्वी प्रकृति होती हैं वही निजी वस्तुएँ बेची जा सकने योग्य होती हैं, जो भी इसका बाजार मूल्य उठा सकता हैं, वह इसको खरीद सकता हैं, जो इन्हें मूल्य चूका कर नहीं खरीद सकता हैं वह इसका उपयोग भी नहीं कर सकता हैं। अर्थात् निजी वस्तुओं में प्रतिद्वन्द्वीताऔर ब्राहयता का गुण पाया जाता हैं। परन्तु सार्जनिक वस्तु जो

प्योर मुख्य रूप से सार्वजनिक वस्तु हैं (जैसे एयर डिफेंस सेवायें या सार्वजनिक रूप प्रकाश प्रदान करने वाले लाइट हाउस, सड़को के किनारे लगी लाइटें या वस्तुएँ/सेवायें) मार्केट के माध्यम से उपलब्ध नहीं करा सकते हैं इसे सरकार के राजनीतिक नीतियों द्वारा निर्धारित करके स्थापित नौकरशाही के माध्यम से ही उपलब्ध कराना होगा क्योकि ये सार्वजनिक उपयोग की सेवायें एंव वस्तुएँ चाहे कोई भी देश हो लोकतंत्र,कम्युनिस्ट या राजतन्त्र, सार्वजनिक सेवायें केवल प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा राजनेताओं द्वारा स्थापित या संविधान में वर्णित राजनीतिक नियमों के माध्यम से ही प्रदानकी जा सकती हैं। इस प्रकार की सेवाओं एंव वस्तओं को प्योर (Pure Public Goods) सार्वजनिक वस्तुएँ एंव सेवाओं की श्रेणी में रखते हैं इन्हें निजी गुड्स में शामिल नहीं किया जा सकता हैं। इनमें बाजार विफलता की स्थिती उत्पन्न हो जाती हैं।

9.6.क्लब वस्तुएँ/सेवाओं का मूल्य निर्धारण:-

सार्वजनिकवस्तुओं से भिन्न क्लब वस्तुओं पर उनकी उपलब्धता कराने के आधार पर मूल्य का निर्धारण हो सकता हैं जैसे किसी क्लब में व्यक्ति खेलने जाना चाहता हैं तो सुबह-शाम अधिक व्यक्ति आने को व्यवस्थित करने हेतु अधिक फीस, तथा दोपहर में कम व्यक्ति आने पर कम फीस की व्यवस्था हो सकती हैं ताकि धन व्यय करने के अनुपात में सुविधा प्राप्त हो सके परन्तु सार्वजनिक पार्क में यह वयवस्था लागू नहीं की जा सकती हैं। बुचानन स्पष्ट करते हैं कि क्लब वस्तओं के मूल्य निर्धारण के आधार पर वो क्लब सेवाओं/वस्तुओं को उचित एंव संतोषजनक सेवाओं की श्रेणी में लाकर इनको लोगों को प्रदान कर एक उचित व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करते हैं ताकि लोग इसका समर्थय के अनुसार फायदा उठा सके। साथ ही इसके दो अन्य फायदे होगे जिसमें फ्री राइडर की समस्या/व्यवस्था से नहीं जूझना पड़ेगा, प्रत्येक व्यक्ति अपनी सेवाओं की प्राप्ति हेतु समान रूप से प्रत्यनशील रहेगा। साथ ही सामान्य जनता को सेवायें/ वस्तुएँ प्रदान करने की आर्डर (व्यवस्था) भी इसमें स्थापित होती हैं। सार्वजनिक वस्तु के उत्पादन की लागत वसूलने में सबसे बड़ी समस्या मुफ्त में इन वस्तुओं का उपयोग करने से उत्पन्न होती हैं। इसमे मूल्य नही चुकाने वाले उपभोग करते है तथा मूल्य चुकाने वाले या तो उपभोग से वंचित रह जाते है या कम मात्रा में वस्तु प्राप्त करते है इन्हे फ्रीराइडर और फोर्स राइडर में बाटा जा सकता है , फ्री राइडर (Free rider) :- वर्तमान में इसको समझने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण हैं स्वच्छ पर्यावरण, पर्यावरण प्रदुषण नियन्त्रण यह सरकार के द्वारा किया जाने वाला कार्य क्रम यानी पूर्णत: सार्वजनिक सेवा/वस्तु हैं साथ ही इसमें किये गये उपाय जैसे वातावरण स्वच्छता हेतु CFC कन्ट्रोल, लेड(सीसा रहित) पेट्रोल केटालिटीक कनवरटर सभी सरकारी प्रयास से होते हैं तथा इससे स्वच्छ वातावरण मिलता हैं। एक नागरिक जिसका प्रयास इसमें शामिल नहीं हैं जिसने इसके लिए कोई कीमत अदा नहीं की हैं तथा स्वच्छ वातावरण का लाभ उठाया हैं फ्रीराइडर कहलायेगा । परन्तु यदि प्रत्येक नागरिक फ्री राइडर बनने लगेगा तब उस वस्तु की प्रभावी मांग समाप्त हो जाएगी। अत: इसकी प्रशासनिक लागत बड़ जायेगी। ग़ैर प्रतिद्वंद्वी एंव ग़ैर बाह्य यानी पब्लिक गुड्स (सार्वजनिक वस्तु) की भाँति ये सेवायें होगी। परन्तु बाजार इस पद्वति से संचालित नहीं हो सकता हैं। मांग के साथ लागत वसूलने का तंत्र नहीं होने पर, इन सार्वजनिक वस्तुओं को लम्बे समय तक उपलब्ध नहीं करवाया जा सकता हैं।

फोर्स राइडर :-इसमें लोगो को उपभोग करने सेवाओं/ वस्तओं के बाह्य किया जाता हैं। चाहे वे उस सार्वजनिक वस्तु की या सेवा की (Range) परिधी को पहुँचनें को पसंद करे या न करे, उदाहरण के लिए रक्षा सेवाओं की सीमित पहुँच के कारण कुछ लोगों को सहायता से वंचित भी रहना पड़ सकता हैं। तथा ये कह दे कि इस सुरक्षा व्यवस्था को सब तक पहुचाने हेतु कुछ मात्रा में आप को कीमत चुकानी होगी सेवाओं की तब यह सार्वजनिक वस्तु/सेवा सब को उपलब्ध हो पायेगी , इस समय ऐसी स्थिती में सेवा प्राप्त करने वाले नागरिक फोर्स राइडर की श्रेणी में आजयेगें। इस प्रकार क्लब सिद्दांत फ्री-राइडर और फोर्स-राइडर की समस्या का समाधान करता है जिससे उद्देश्य अनुसार वस्तु का मूल्य निर्धारित हो पाता है, मूल्य का निर्धारण उद्देश्य के आधार पर किया जा सकता है क्लब का उद्देश्य यदि अधिकतम लोगो को गुणवत्ता की वस्तुए उपलब्ध करवाना है तो मूल्य औसद लागत के बराबर हो सकता है परन्तु सभी तथ्यों पर व्यापकतासे सोचा जाए तो ज्ञात होता हैं, कि क्लब गुड्स/सर्विसेज कालांतर में लाभ लाभ कमाने वाले संस्थान में बदल सकती हैं अत: इनके नियमों की कृत्रिमता अत्यधिक लाभ कमाने के आशय से बहुत सी जनता को उनके कल्याणकारी सेवाएँ व वस्तुओं से वंचित करने का साधन बन सकती हैं।

9.7. क्लब वस्तुओ/सेवाओं के अनुकूलतम स्तर का उपभोक्ता द्वारा चुनाव (Optimization of Club goods):-

जब उपभोक्ता को विभिन्न मात्रा में वस्तु उपलब्ध करवाई जाती है तो वह अपने कुल लाभ और लागत में अंतर के आधार पर अनुकूलतम स्तर का चुनाव करता है -S1 व S2 वस्तु मात्रा के स्तर पर कुल लाभ और कुल लागत के अंतर की तुलना करते है जहा यह अंतर अधिक होगा वहा लाभ अधिकतम की स्थिति होगी। इस प्रकार अनुकूलतम मात्रा के स्तर का निर्धारण होता है लेकिन यदि नये मेंबर बनाये जायेगे तो एक तरफ तो कुल लागत में परिवर्तन आयेगा और दूसरी तरफ़ कूल लाभ में इससे व्यक्तिगत सीमांत लागत या क्लब की मेम्बरशिप लागत और सीमात लाभ की स्थिति भी बदल जाएगी और नया संतुलन का बिंदु प्राप्त होगा। इसे क्राऊडिंग आउट इफेक्ट कहते है इससे नया संतुलन प्राप्त होता है।

कुल लागत और कुल लाभ....

वस्तु की मात्रा .....

B(X1) - X1 वस्तु का कुल उपयोगिता वक्र।

B(X2)-X2 वस्तु का कुल उपयोगिता वक्र।

C(X1)-X1 वस्तु का लागत वक्र।

C(X2)-X2 वस्तु का लागत वक्र।

-X अक्ष पर कुल लाभ और कुल लगत को दिखाया गया है। Y – अक्ष पर वस्तु की मात्र को लिया गया है।

9.8. मुख्य शब्दावली (Key Words) :-

1. क्लब वस्तुएँ : गैर प्रतिद्वंदिता तथा बाहाय्ता की विशेषता से युक्त वस्तुऐ ।
2. सार्वजनिक वस्तुएँ : गैर प्रतिद्वंदिता तथा बाहाय्ता की विशेषता से युक्त वस्तुऐ ।
3. निजी वस्तुएँ : प्रतिद्वंदिता तथा बाहाय्ता की विशेषता से युक्त वस्तुऐ ।
4. फ्री राइडर : पूरा मूल्य न देकर वस्तुऐ उपभोग की इच्छा वाले उपभोक्ता ।
5. फोर्स राइडर : आवश्यकता नहीं होने पर भी वस्तु का प्रयोग व भुगतान करने वाले उपभोक्ता
6. प्रोफिट मेक्सीमाइज : लाभ अधिकतमकरण एक आर्थिक उद्देश्य हैं।

9.9 संदर्भ पुस्तकें :-

लेखक		पुस्तक
• ब्राउन सी.वी. व जैक्शन	-	पब्लिक सेक्टर इकोनोमिक्स (आक्सफोर्ड)
• बर्गलास ईटन	-	ऑन वा थ्योरी आफ़ क्लब (अमेरिकन इकाम रिव्यू)
• ग्रीन जेरी आर	-	कन्जूमर थ्योरी लंदन मैकमिलियन
• कीम ओ वाल्कर मार्टिन	-	प्रोब्लम आफ़ फ्री राइडर
• डेमसेट्ज हराल्ड	-	जोइंट सप्लाई एण्ड प्राइस डिक्रीमिनिशन
• मुलर डी.	-	पब्लिक च्वाइस (combridge university press)
• एन. जी न्यू क्वांग	-	इकोनॉमिक थ्योरी आफ़ क्लब

9.10. महत्वपूर्ण प्रश्न :-

प्रश्न 1. क्लब गुड्स को परिभाषित कीजिये?

प्रश्न 2. क्लब गुड्स एंव पब्लिक गुड्स में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 3. क्लब गुड्स की विशेषताओं को इंगित करते हुए स्पष्ट करें कि क्या ये समानता के साथ वितरण का एक मात्र तरीका हो सकता हैं?

प्रश्न 4. क्लब गुड्स के व्यवहारिक स्तर पर गुण व दोषों को स्पष्ट कीजिए |

इकाई 10

सार्वजनिक व्यय

Public Expenditure

रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि एवं विस्तार

10.3 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

10.3.1 आर्थिक कारण

10.3.2 सामाजिक कारण

10.3.3 राजनैतिक कारण

10.3.4 अन्य कारण

10.4 वैगनर का बढ़ती हुई राज्य की क्रियाओं का नियम

10.4.1 वैगनर के नियम का विस्तृत क्षेत्र में लागू होना

10.4.2 वैगनर के नियम के विस्तृत होने के कारण

10.4.3 अतिरिक्त शक्तियां जो सार्वजनिक व्यय को बढ़ाती है

10.4.4 वैगनर के नियम की समालोचना

10.5 वाइजमेन एवं पीकाक की परिकल्पना

10.5.1 वाइजमेन-पीकाक परिकल्पना की समालोचना

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.9 अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

सार्वजनिक व्यय का अध्ययन सार्वजनिक वित्त में विशेष महत्व रखता है। सार्वजनिक व्यय की वृद्धि की प्रकृति के अध्ययन का उद्देश्य उन कारणों का अध्ययन करना है जिनसे सार्वजनिक

व्यय बड़े हैं। सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के सिद्धान्तों का अध्ययन, विकासशील. अर्थ-व्यवस्था में उनकी सार्थकता किस अंश तक है उसका परीक्षण करना है। विकसित एवं विकासशील अर्थ-व्यवस्था में व्यय की वृद्धि की प्रकृति में अन्तर है। एक कल्याणकारी राज्य में अनेक ऐसे, कार्य हैं जिन्हें शासन अब अनिवार्य रूप से अपनाने लगा है कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां निजी क्षेत्र कार्य नहीं कर सकता एवं उन्हें अपनाने की रुचि ही नहीं रखता क्योकि उसमें लाभार्जन की विशेष आशा नहीं होती तथा पूंजी भी अधिक विनियोजित होती है जैसे आर्थिक आधार निर्माण क्रियायें (Infrastructure Activities) इसके अतिरिक्त सामाजिक हित की दृष्टि से शासन को अनेक सेवायें निशुल्क एवं कम दामों पर प्रदान करना आवश्यक हो जाता है।

10.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक व्यय पिछली लगभग दो शताब्दियों से सतत रूप से सभी देशों में बढ़ा है। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने आय के पक्ष पर अधिक ध्यान आकर्षित किया और सार्वजनिक व्यय को प्राय: भुला दिया। इसका कारण था कि सार्वजनिक व्यय उनके समय मे इतना विस्मृत नही था जितना कि आधुनिक काल में। राजस्व के अध्ययन में दोनों पक्षों का परीक्षण आवश्यक है अन्यथा सही निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। अधिकतम सामाजिक कल्याण सिद्धांत का व्यावहारिक अध्ययन भी राजस्व के इन दोनों पहलुओं पर आधारित होता है। इस इकाई में बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय के कारणें एवं सिद्धांतों का वर्णन किया गया है।

10.2 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि एवं विस्तार

गत वर्षो में सार्वजनिक व्यय के बढ़ने का कारण है कि राज्य के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होती गई है और इनकी सघनता एवं क्षेत्र दोनों में विस्तार हुआ है। सघनता का अर्थ है कि राज्य के उन कार्यो पर जो राज्य द्वारा प्राचीन समय में भी अपनाये जाते थे, जैसे सुरक्षा एवं न्याय व्यवस्था, वर्तमान में अब उन. पर पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक व्यय किया जाता है। भारत में केन्द्र सरकार का कुल व्यय 1950-51 में मात्र 504 करोड़ रुपयों से बढ़कर 2012-13 में 1398273 करोड़ रुपये हो गया।

सार्वजनिक व्यय में विस्तार का अभिप्राय यह है कि शासन अनेक नये-नये कार्यो को सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत अपनाने लगा है जो पूर्व में निजी क्षेत्र में किये जाते थे। उदाहरणार्थ, औद्योगिक इकाइयों की सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापना तथा अनेक नवीन कार्यो को अपनाना जैसे आय एवं सम्पत्ति के वितरण की विषमता को क्या करना, मूल्य नियंत्रण, आदि। डाल्टन का कथन है कि (अन्य देशों में आधुनिक विकास ने जन सत्ताओं को नये कार्य अपनाने को बाध्य कर दिया है जो वास्तव में निजी साहसी द्वारा पूर्ण नहीं किये जा सकते"। सार्वजनिक हित की दृष्टि से एवं देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को विकसित करने के लिये यह आवश्यक माना जाने लगा है।

शासन सार्वजनिक हित में व्यय करता है जबकि निजी क्षेत्र व्यक्तिगत लाभ की ओर अधिक ध्यान रखता है। अत: सरकार आर्थिक विषयों में अधिक हस्तक्षेप करने लगी है।

10.3 सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित चार प्रमुख भागों में बांट सकते हैं-

10.3.1 आर्थिक कारण

(1) राष्ट्रीय आय और जीवन स्तर में वृद्धि करना- आर्थिक विकास के माध्यम से वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि करना जिससे राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय बड़े, और सामान्य जीवन-स्तर में वृद्धि हो सके। यह राज्य का प्रमुख उद्देश्य हो गया है।

(2) आर्थिक नियोजन अपनाया जाना- आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन आवश्यक है जिससे प्राप्त संसाधनों का अधिकाधिक उत्पादन हेतु प्रयोग किया जा सके और निश्चित किये गये लक्ष्यों को निश्चित दर से एवं निश्चित समय में प्राप्त किया जा सके।

(3) उत्पादकों को आर्थिक सहायता- देश में कृषि और औद्योगिक विकास थे, प्रत्येक राज्य को कृषक और उद्योगपतियों को काफी मात्रा में धन, ऋण, दान, अनुदान, तकनीकी सहायता आदि के रूप में व्यय करना पड़ रहा है।

(4) उद्योगों का राष्ट्रीयकरण- शासन को सार्वजनिक हित को देखते हुये निजी क्षेत्र के कुछ उद्यमों का राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक हो जाता है जिसके करण उन्हें भारी राशि क्षति पूर्ति के रूप में देना आवश्यक हो जाती है।

(5) सरकार स्वयं भी बड़े-बड़े आधारभूत उद्योगों की स्थापना कर रही है जिसके कारण राज्य का व्यय दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

(6) मुद्रा स्फीति- सरकार स्वयं वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोक्ता है। मूल्य वृद्धि के कारण सरकारी व्यय में विशेष वृद्धि हुई, साथ ही विकास योजनाओं के व्यय में वृद्धि से लोक व्यय निरंतर बढ़ता गया। सरकार को रहन-सहन लागत सूचकांक बढ़ने के कारण अपने कर्मचारियों को मंहगाई भत्ता भी बढ़ाना पड़ा।

(7) व्यापार चक्र- तेजी व मंदी के कारण व्यापार चक्र में उच्चावचन आते रहते हैं। राज्य का यह विशेष कर्त्तव्य है कि वह अर्थ-व्यवस्था में स्थायित्व एवं व्यवसाय की स्थिति को बनाये रखे। अत: आर्थिक अस्थायित्व को दूर करने के लिये सरकार को लोक कार्यो पर बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

10.3.2 सामाजिक कारण-

(1) सामाजिक सेवा में वृद्धि- राज्य का उत्तरदायित्व दिन-प्रतिदिन सामाजिक सेवाओं के सम्बन्ध में बढ़ता जा रहा है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं हेतु अधिकाधिक अपेक्षा अब जनता राज्य से करने लगी है।

(2) सामाजिक सुरक्षा पर व्यय- राज्यों ने अब सामान्यत: कल्याणकारी राज्य का रूप धारण कर लिया है और समस्त राष्ट्र कर्मचारियों एवं श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करनें की व्यवस्था करते हैं, जैसे, सामाजिक बीमा, पैन्शन भत्ता, चिकित्सा भत्ता मातृत्व लाभ, आदि।

10.3.3 राजनीतिक कारण-

(1) राजनीतिक जागृति-प्रजातंत्रीय राज्य में अन्य राज्यों की तुलना में अनेक प्रकार के व्यय अधिक होते हैं, जैसे चुनाव, सभाओं एवं संसद आदि पर। इनके अतिरिक्त अपने शासन को लोकप्रिय बनाने के लिये शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं सामाजिक सुरक्षा आदि कार्यो पर व्यय बढ़ाने के लिये बाध्य होना पड़ता है।

(2) सुरक्षा व्यय- वर्तमान समय में न केवल युद्ध काल में वरन् शान्तिकाल में भी राज्यों को सुरक्षा व्यय पर अधिक व्यय करना पड़ता है, तथा सुरक्षा व्यय बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में वैज्ञानिक आविष्कारों से इस पर बहुत अधिक व्यय होने लगा है। भारत विश्व में तीसरा सबसे बड़ा हथियार आयातक देश है। सुरक्षा व्यय हर वर्ष बढ़ता जा रहा है।

10.3.4 अन्य कारण-

(1) दोषपूर्ण अर्थ-व्यवस्था तथा स्वार्थ पूर्ण प्रशासन- यद्यपि शासन इनको नियंत्रित करने का प्रयत्न भी करता है परन्तु अनेक स्थितियों में शासन उन्हें पूर्णरूप से दोष रहित एवं स्वार्थ रहित नहीं कर पाता।

(2) सामाजिक एवं स्थानीय समस्यायें- अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो जाती है। जैसे शरणार्थियों की व्यवस्था करना, सूखा एवं बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होना जिसके कारण समय-समय पर बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

(3) आवश्यकताओं की सामूहिक संतुष्टि- प्राचीन काल में सरकार का सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य बहुत सीमित था परन्तु वर्तमान में सरकार समाज की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन आवश्यकताओं को व्यक्तिगत उद्यमी पूरा नहीं कर सकता क्योंकि इसमें सुविधाओं का मुफ्त उपयोग किया जाता है एवं मूल्य सिद्धान्त लागू नही किया जा सकता। जल आपूर्ति, सड़कें, सुरक्षा सेवाएं, आकाशवाणी व दूरदर्शन के कार्यक्रम आदि पर व्यय बढ रहा है।

बोध प्रश्न 1

1. आर्थिक विकास और सार्वजनिक व्यय वृद्धि से सम्बन्धित पांच प्रमुख तत्व लिखिये-
2. सार्वजनिक व्यय वृद्धि में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक तथा अन्य कारणों का समन्वित योगदान है। संक्षिप्त विवेचना कीजिये।

10.4 वैगनर का बढ़ती हुई राज्य की क्रियाओं का नियम

उपर्युक्त कारणों से सार्वजनिक व्यय में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। बढ़ते हुये सार्वजनिक व्यय के दो बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध सिद्धांत हैं। पहला, एडाल्फ वैगनर (1835-1917) जो जर्मन अर्थशास्त्री थे उसके नाम से सम्बन्धित है तथा दूसरा जे. वाइजमेन तथा एलन टी पीकाक के नाम से सम्बद्ध हैं जिन्होंने 1890-1955 काल के ब्रिटेन के सार्वजनिक व्यय का अध्ययन किया।

वैगनर का नियम- वैगनर ने ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं के नियम को प्रतिपादित किया। उनके अनुसार राज्य के विभिन्न स्तरों (केन्द्रीय एवं प्रादेशिक) पर सघन रूप से एवं विस्तृत रूप से बढ़ती हुई क्रियाओं की परम्परागत प्रवृति होती है। अर्थव्यवस्था के विकास और शासकीय क्रियाओं में सम्बन्ध होता है, जिसमें अर्थ-व्यवस्था की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र अधिक तेजी से बढ़ता है।

10.4.1 वैगनर के नियम का विस्तृत क्षेत्र मे लागू होना

ऐतिहासिक उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकालता है कि वैगनर का यह नियम न केवल जर्मनी के लिये लागू होता है वरन् अनेक राज्यों के लिये भी चरितार्थ होता है, यद्यपि अनेक दृष्टि से वे एक दूसरे से बहुत भिन्न है। तथा सभी स्तर के राज्य अर्थात् चाहे वे केन्द्रीय हों अथवा प्रादेशिक, एवं चाहे उनके उद्देश्य भिन्न हों (अर्थात् शान्तिपूर्ण हों अथवा युद्ध भावनायुक्त हो) अथवा चाहे उनका आधार भिन्न हो सभी की प्रवृत्ति सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को रही है। इनके कारण निम्नलिखित बताये-

10.4.2 वैगनर के नियम के विस्तृत होने के कारण

(अ) राज्य के परम्परागत कार्य बढ़ रहे हैं। सुरक्षा पहले से अधिक विस्तृत हो गई है। इसी प्रकार न्याय प्रशासन भी बढा है। जैसे-जैसे समाज ने प्रगति की एक अतिरिक्त शक्ति जो सार्वजनिक व्यय के बढ़ा रही है वह है सामाजिक एवं आर्थिक विकास, जो क्षमता पूर्ण प्रशासनिक ढांचे को अधिक जटिल और व्ययपूर्ण बना रही है।

(ब) पूर्वकाल में सार्वजनिक क्रियाओं केवल सुरक्षा, न्याय और व्यवस्था तथा शासन का संचालन एवं सामाजिक मदों पर व्यय तक ही सीमित थी। परन्तु समाज के प्रति बढते हुए उतरदायित्व एवं उनके प्रति राज्य की जागरूकता के कारण अनेक कल्याणकारी कार्य जैसे सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, सहायता देना आदि, तथा आय एवं सम्पत्ति के पुनर्वितरण हेतु राजकीय क्रियाओं मे वृद्धि हुई है।

(स) अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि सार्वजनिक वस्तुओं को अधिकाधिक जनता को दिया जाये और उसका क्षेत्र बढ़ाया जाये।

10.4.3 अतिरिक्त शक्तियां जो सार्वजनिक व्यय को बढाने में सहायक होती हैं, निम्नलिखित हैं-

1. जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप सेवाओं को बढ़ाना।
2. शहरीकरण के कारण सार्वजनिक सेवाओं मै वृद्धि।
3. मूल्यों में वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण व्यय बढ़ना।
4. सार्वजनिक सेवाओं के आकार और प्रकृति में विशिष्टीकरण जिसके लिये अधिक योग्य प्रशासक एवं तकनीज्ञों, की सेवाओं की आवश्यकता होती है।
5. बाजार को नियंत्रित करने तथा कल्याण एवं समाज सुरक्षा के अनेक कार्यों को अपनाना।
6. सार्वजनिक ऋण लागत एवं ऋण भुगतान हेतु अनेक क्रियाओं को अपनाना।
7. नियोजन एवं आर्थिक विकास हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के उत्तरदायित्व को बढ़ाना।

10.4.4 वैगनर के नियम की समालोचना-

वैगनर का नियम ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित था। परन्तु यह उन अतिरिक्त कारणों, को नहीं दर्शाता था जिसके दबाव में सरकार को धीरे-धीरे अपनी क्रियाओं और व्यय को बढ़ाना पड़ा। यह नियम आधुनिक प्रगतिशील सरकारों के इस दृष्टिकोण के आधार पर लागू होता है जो सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ाने और अन्य सार्वजनिक कल्याण कार्यों को बढ़ाने में रुचि रखते हैं। यह दीर्घकालीन दृष्टिकोण था, जबकि अल्पकाल में वित्तीय कठिनाइयाँ आ सकती है। अत: वैगनर दीर्घकालीन शक्तियों पर बल देता था। उन्होने सार्वजनिक व्यय प्रक्रिया पर कुछ नही बताया। यह तथ्य कि भविष्य में सार्वजनिक व्यय किस सीमा तक बढ़ेगा इसे बताने में वह असमर्थ था। वास्तव में विकास की प्रारंभिक अवस्था में शासन अपनी क्रियाओं को अनेक क्षेत्रों में काफी तेजी से बढ़ायेगा, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, संचार, सामाजिक सुविधायें, आदि। परन्तु जब यह प्रारंभिक स्थिति पूरी हे जाती है तब सार्वजनिक क्रियायें सम्पूर्ण आर्थिक विकास की अपेक्षा कम दर से बढ़ेगी।

10.5 वाइजमेन एवं पीकाक की परिकल्पना-

सार्वजनिक व्यय की वृद्धि का दूसरा सिद्धांत वाइजमेंन एवं पीकाक द्वारा ब्रिटेन में 1890-1955 काल के सार्वजनिक व्यय वृद्धि के अध्ययन द्वारा प्रस्तुत किया गया। इन लेखकों का मुख्य अभिलेख यह था कि सार्वजनिक व्यय अविबाध एवं सततरूप से नहीं बढ़ता, परन्तु झटके के साथ एवं सीढ़ीनुमा तरीके से बढ़ता है। कभी-कभी कोई सामाजिक एवं अन्य बाधायें उत्पन्न होती है जिसके कारण तुरंत सामाजिक व्यय बढ़ाना आवश्यक हो जाता है जिसके लिये उस समय की सार्वजनिक आय अपर्याप्त होती है। यह अपर्याप्तता की स्थिति सबको स्पष्ट हो जाती है। पुराने व्यय स्तर से उठना तथा अधिक करारोपण स्तर पर आने को 'विचलन प्रभाव' (displacement effect) कहते हैं। तथा यह स्थिति आवश्यक सार्वजनिक व्यय की तुलना में आय-अपर्याप्तता का 'निरीक्षण

प्रभाव' (inspection effect) उत्पन्न करती है। अर्थात् शासन एवं जनता स्थिति की समीक्षा करते हैं। इसका हल निकालने के लिये आवश्यक समायोजन के लिये वे सहमत हो जाते हैं। जनता अधिक करारोपण के भार को सहने के लिये तैयार हो जाती है तथा सामान्य सार्वजनिक आय स्तर ऊँचा हो जाता है और व्यय बढ़ जाते है। इस तरह सार्वजनिक व्यय और आय एक नये स्तर पर स्थिर हो जाते है जब तक कि पुन: दूसरा झटका नहीं आता जिससे फिर विचलन प्रभाव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक बड़ा झटका शासन को अधिक बड़े अनुपात में राष्ट्रीय क्रियाओं को प्रेरित करता है इसका परिणाम 'एकत्रीकरण प्रभाव' (concentration effect) होता है।

10.5.1 वाइजमेन-पीकाक परिकल्पना की समालोचना : बाह्य रूप से वाइजमेन-पीकाक की परिकल्पना संतोषप्रद मालूम होती है, परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिये कि वे असामान्य-स्थितियों के पुनरागमन पर बल दे रहे हैं जो सार्वजनिक आय एवं व्यय में पर्याप्त उछाल लाते हैं। परंतु वास्तव में हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि अर्थ-व्यवस्था में विकास के कारण और उसमें संरचनात्मक परिवर्तन के कारण सार्वजनिक व्यय और आय में स्थायी रूप से एवं नियमित रूप से परिवर्तन होते हैं। सार्वजनिक व्यय के सततरूप से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। क्योंकि सार्वजनिक क्रियायें व्यवस्थित रूप से बढ़ती है और उनकी सघनता और गुण में वृद्धि होती है। बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण और सामाजिक अधिकारों के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता तथा साथ में शासन की अपने उत्तरदायित्व के प्रति चेतना सार्वजनिक व्यय को ऊपर उठाते हैं। कुछ सीमा तक सार्वजनिक व्यय बराबर बढ़ती हुई आय द्वारा वित्त प्राप्त करते हैं जो अर्थ-व्यवस्था में विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तनों के माध्यम से सम्भव होते हैं।

वर्तमान में भारत जैसे विकासशील देशों में शासन स्वयं अपनी क्रियाओं को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है और इस हेतु वित्त प्राप्त करने के, लिये वह अनेक प्रकार के अधिकाधिक आय प्राप्ति के प्रयास करता है। विकसित देशों में भी शासन यह पाता है कि अर्थ-व्यवस्था के नियमन हेतु इसका उत्तरदायित्व है, जिससे वह अस्थायित्व एवं अत्याधिक आय असमानताओं से देश की रक्षा कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाइजमेन-पीकाक परिकल्पना विशेष स्थितियों में सार्वजनिक व्यय वृद्धि की प्रवृत्ति का वर्णन करता है तथा सभी सम्बंधित कारणों को नहीं बताता।

इस तथ्य पर अवश्य बल देना है कि अनेक घटको जैसे, जनसंख्या वृद्धि, सुरक्षा व्यय, शहरीकरण, बढ़ते मूल्य आदि जो स्वयं सार्वजनिक व्यय को बढ़ा रहे हैं, पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। एक और महत्वपूर्ण शक्ति इस क्षेत्र में काम कर रही है, वह है बाजार तंत्र का अनेक उद्देश्यों की पूर्ति में असफल होना। बाजार तंत्र में मूलभूत कमजोरी है जिसके कारण यह अर्थ-व्यवस्था में अस्थायित्व, आय एवं संपत्ति में असमानता तथा उपभोग, रोजगार एवं विनियोग के दोषपूर्ण प्रारूप को उत्पन्न करता है। अनुभव बताता है कि अर्थ-व्यवस्था को निर्धनता के कुचक्र से निकालने में बाजार तंत्र असमर्थ होता है तथा दीर्घकालीन एवं द्रुतगति से विकास के मार्ग पर ले जाने में वह सहायक नहीं होता। परिणामस्वरूप इस विषय में भी सार्वजनिक क्रियाओं की वृद्धि ने सार्वजनिक व्यय को बढ़ाया है।

बोध प्रश्न- 2

वाइजमेन-पीकाक और वैगनर दोनों सार्वजनिक व्यय वृद्धि की परिकल्पना करते हैं। परन्तु इन दोनों में आधारभूत अन्तर है, स्पष्ट कीजिये।

10.6 सारांश : -

आधुनिक राज्य के कार्यों में विशेष वृद्धि हुई है जिसके कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है। अनेक ऐसे कार्य हैं जिन्हें शासन अनिवार्य रूप से अपनाने लगा है अथवा अपनाने को बाध्य होता है। अर्थ-व्यवस्था के विकास एवं सुधार हेतु, आर्थिक, कूटनीतिक एवं सामाजिक कूटनीतिवश भी अनेक कार्यों का शासन द्वारा अपनाया जाना आवश्यक हो गया है।

अनेक ऐसे कार्य हैं जिन्हें निजी क्षेत्र न तो स्वयं करना चाहता है और न ही उसमें उन्हें करने की क्षमता होती है। इसका कारण यह है कि या तो उसमें पूंजी विनियोग इतना अधिक होता है कि वह उसे नही कर सकता अथवा यदि विनियोग करे भी तो उसमें उसको लाभार्जन की विशेष आशा नहीं होती है। शासन अनेक कल्याणकारी कार्यो को एवं विकास कार्यों को अपनाता है जिसमें उसे हानि पर भी कार्य करना पडता है।

सार्वजनिक व्यय में सघनता एवं विस्तार दोनों पाये जाते हैं। अर्थात जो कार्य शासन पूर्व में भी अपनाता था और अब उन पर पहले की अपेक्षा बहुत अधिक व्यय किया जाता है। जबकि विस्तार का अभिप्राय नये-नये कार्यो को अपनाना एवं कार्य क्षेत्र को विस्तृत करना है जो पूर्वकाल में नहीं किये जाते थे।

सार्वजनिक व्यय वृद्धि के आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक एवं अन्य कारण हैं। आर्थिक कारणों में सर्वोपरि राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना एवं जीवन-स्तर को ऊपर उठाना है, जिसके लिये योजनागत व्यय बढ़ते हैं। उत्पादन बढ़ाने हेतु उत्पादकों को आर्थिक सहायता, उद्योग का राष्ट्रीयकरण आदि करना पड़ता है। मुद्रा स्फीति एवं व्यापार चक्र के प्रभावों को सन्तुलित करने हेतु भी शासन को अधिक व्यय करना पड़ता है।

राज्य का उत्तरदायित्व समाज की ओर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है एवं शासन इस ओर सजग भी है। अत: अनेक प्रकार के सामाजिक व्यय जैसे सामाजिक सेवा में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा पर व्यय, आदि बढ़ रहे हैं।

राजनीतिक जागृति के कारण प्रजातंत्रीय राज्य में अन्य राज्यों की तुलना में अनेक व्यय अधिक होते हैं जैसे, संसद, सभाओं आदि पर व्यय एवं चुनावी व्यय। दूसरी ओर सुरक्षा व्यय सामान्यत: सभी देशों में बढ़ा है।

सार्वजनिक व्यय के बढ़ने के अन्य कारण भी हैं जैसे सामाजिक एवं स्थानीय समस्यायें। विश्व संघ का प्रभाव एक अतिरिक्त प्रमुख कारण है।

बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय का अध्ययन जर्मनी में वैगनर ने महत्वपूर्ण ढंग से किया और उन्होंने बताया कि अर्थव्यवस्था की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र अधिक तेजी से बढ़ता है। वैगनर का

नियम न केवल जर्मनी के लिये लागू हुआ वरन् अनेक कारणों से इसका नियम विस्तृत रूप से लागू होता है और उनके कथन की सार्थकता को सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि राज्य के परम्परागत कार्य बड़े हैं एवं समाज के प्रति बढ़ती हुई शासकीय जागरूकता के कारण अनेक कल्याणकारी कार्य बढ़े हैं।

वैगनर के नियम में अनेक तथ्यों का और समावेश किया जा सकता है, जिनके दबाव के कारण सरकार को अपनी क्रियाओं और व्यय को बढ़ाना पड़ा हैं। इनमें से अनेक शक्तियां सामयिक एवं अल्पकालिक हैं, जिनका उल्लेख वैगनर ने नहीं किया है एवं दीर्घकालीन प्रवृति पर विशेष ध्यान दिया है तथा व्यय बढ़ने की गति किस अवस्था में कम हो जायेगी इसका विवरण उन्होंनें नहीं दिया है।

वाइजमेन एवं पीकाक की परिकल्पना ब्रिटेन के अनुभवों पर आधारित है। परिणामस्वरूप उनका कथन कि सार्वजनिक व्यय सतत रूप से न बढ़कर झटके के साथ बढ़ता है पूर्णरूप से व्यवहारिक नहीं कहा जा सकता, यद्यपि वह भी इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि सार्वजनिक व्यय की बढ़ने की प्रवृत्ति आधुनिक राज्यों में पाई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप करारोपण और व्यय का साम्य ऊंचे उठते हुए स्तर पर निर्धारित होता है।

10.7 शब्दावली:-

- **Infrastructural Activities=**आधार-निर्धारण सम्बन्धी क्रियायें, जैसे, यातायात, संचार, विद्युत अथवा ऊर्जा की व्यवस्था एव जल पूर्ति व्यवस्था। ये 'आर्थिक' आधार निर्माण के अन्तर्गत आते है। 'सामाजिक' आधार निर्माण में शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवायें आती है।
- **Principle of Maximum Social Welfare (or advantage or benefit)** अधिकतम सामाजिक कल्याण (अथवा लाभ) का सिद्धान्त करारोपण के सीमान्त त्याग एवं सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त लाभ सिद्धान्त पर आधारित है। अत: आय के साथ व्यय का अध्ययन सामाजिक लाभ को अधिकतम बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।
- **Intensify** (सघन बनाना)
- **Extensify** (विस्तृत करना)
- **Raising General Standard ऑफ Living/** सामान्य जीवन स्तर को ऊँचा उठाना
- **Market Mechanism-** बाजार तंत्र, इसका सामान्य अर्थ स्वतंत्र बाजार व्यवस्था से अर्थात् निर्बाध बाजार व्यवस्था से है जिसमें संतुलन दीर्घकाल से मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित हो जाता है। यह बाजार तंत्र कहलायेगा। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाता जिसके कारण

शासन को बाजार व्यवस्था नियंत्रित करनी पड़ती है जिसे नियंत्रित बाजार व्यवस्था (Controlled Market Economy) कहते हैं।

- **Displacement Effect-** सन्तुलित स्तर में परिवर्तन होना।
- **Inspection effect –** ऐसा प्रभाव जिसके कारण विद्यमान स्थिति का पुन: निरीक्षण करना पड़े।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- H.L. Bhatia – Public Finance.
- R.A. Musgrave & P.B. Musgrave – Public Finance in Theory and Practice.
- जे.सी. पन्त- राजस्व, चतुर्थ संस्करण, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 1990
- वी.डी. नागर एवं एस.सी. शर्मा - राजस्व
- वी.सी. सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा - राजस्व

10.9 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 का उत्तर :

(अ) आर्थिक विकास हेतु भारी उद्यमों का मुख्यत: सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जाना पूर्व आवश्यकता है- जैसे सीमेन्ट, लोहा इस्पात एवं मशीनरी उद्योग, आदि।

(ब) आर्थिक विकास हेतु आधारभूत सेवाओं का सार्वजनिक क्षेत्र में विकास किया जाना - जैसे यातायात, संचार, जलपूर्ति, आदि।

(स) आर्थिक विकास हेतु प्रशासन एवं योजनातन्त्र को विकसित करना।

(द) आर्थिक विकास हेतु उत्पादन के अनेक संसाधनों को 'सहायतार्थ मूल्य' पर प्रदान करना जैसे- उर्वरक, विद्युत आदि।

(ड) आर्थिक विकास हेतु अनेक सार्वजनिक सेवाओं का राष्ट्रीयकरण।

2. प्रजातंत्रात्मक राजनैतिक व्यवस्था में शासन को क्रियायें अनेक प्रकार से बढ़ती है। निजी क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए सार्वजनिक क्षेत्र को भी विस्तृत करना होता है। उदाहरणार्थ, कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों के आधुनिकीकरण में सहायता देना, बाजार व्यवस्था एवं संचय व्यवस्था आदि करना। जनता पर विश्वास बनाये रखने के लिये अनेक कल्याणकारी कार्यों को बढ़ाना पड़ता है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य व्यवस्था, आदि।

बोध प्रश्न 2 का उत्तर :

यद्यपि वाइजमेन-पीकाक एवं वैगनर दोनों यह बताते हैं कि सार्वजनिक व्यय की बढ़ने की प्रवृत्ति है। परन्तु दोनों इस प्रवृत्ति का चित्रण भिन्न प्रकार से करते हैं। वाइजमेन-पीकाक इस वृद्धि के सामयिक कारणों पर विशेष बल देते हैं जबकि वैगनर दीर्घकालीन प्रवृत्तियों पर। वास्तव में इस प्रवृत्ति में एक सततता रहती है और सार्वजनिक व्यय झटके के साथ सामान्यत: नही बढ़ते जैसा कि वाइजमेन-पीकाक बताते हैं।

इकाई 11

पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना
Peacock-Wiseman Hypothesis

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.1 पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना

11.3 सॉराश

11.4 वेगनर का सार्वजनिक व्यय का सिद्धांत

11.5 सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि के लिये उत्तरदायी घटक

11.6 अभ्यासों के उत्तर

11.1 प्रस्तावना

1890 में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के लिए प्रयोगाश्रित आंकड़ों का प्रयोग करने के पश्चात् उन्हें लगा कि ब्रिटिश सार्वजनिक क्षेत्र की साक्षेप वृद्धि पीढ़ी दर पीढ़ी के रूप में हुई है न कि निरन्तर वृद्धि के आधार पर। अन्य शब्दों में सरकारी राजस्व पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़े हैं तथा सामाजिक संकट के समय भी अर्थात् जिस समय पर युद्ध व मंदी भी थी तो भी इसमें वृद्धि हुई है। इन बाधाओं ने विस्थापन प्रभाव स्थापित किया है जिस के फलस्वरूप पुराने कर तथा व्यय स्तर के स्थान पर नए तथा उच्च बजटीय स्तर आ जाते हैं; जब से सामाजिक उपद्रव शांत हुए हैं तब से करों की नई दरें आई हैं तथा समाज सोचता है कि वह उच्च सार्वजनिक व्यय स्तर के लिए नए करों को सह सकता है। इसलिए सामाजिक अशांति के पश्चात् पुराने कराधान के स्तर को लागू नहीं किया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र के आबंटन के उच्च स्तर के लिए अतिरिक्त राशि खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। 1890.1960 के समय ब्रिटेन में बहुत बार विस्थापन की प्रक्रिया को अपनाया गया।

इसके अतिरिक्त पीकॉक तथा वाइजमैन केन्द्रीकरण प्रभाव की भी चर्चा करते हैं। यह अवधारणा केन्द्रीय सरकार की आर्थिक गतिविधि की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है कि जब समाज में आर्थिक वृद्धि होती है तो यह आर्थिक गतिविधि समग्र सार्वजनिक क्षेत्र की आर्थिक गतिविधि का बढ़ा हुआ अंश बन जाती है। ऐसा होना अनिवार्य है क्योंकि केन्द्रीय सरकार को उच्च आर्थिक गतिविधि बनाए रखने के लिए बहुत से उपाय करने पड़ते हैं।

11.1 पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना

इस सिद्धान्तं को जैक वाईजमन और एलन पीकाक ने ब्रिटेन के 1890 से 1955 तक के सार्वजनिक व्यय के के अध्ययन के आधार पर 1961 मे प्रतिपादित किया। यह सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्ति में समय अवधि पर जोर डालता है और इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि एक लगातार तथा एक ही रफतार से होने वाली वृद्धि नहीं है बल्कि यह चरणों में होने वाली वृद्धि है।इस सिद्धांत के अनुसार सार्वजनिक व्यय में दीर्घकालीन वृद्धि अवश्य होती है, परन्तु यह वृद्धि निष्कोण न होकर पेड़ीदार होती है अर्थात् इसमें वृद्धि लगातार न होकर झटकों में होती है। 1890 में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के लिए प्रयोगाश्रित आंकड़ों का प्रयोग करने के पश्चात् उन्हें लगा कि ब्रिटिश सार्वजनिक क्षेत्र की साक्षेप वृद्धि पीढ़ी दर पीढ़ी के रूप में हुई है न कि निरन्तर वृद्धि के आधार पर। अन्य शब्दों में सरकारी राजस्व पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़े हैं तथा सामाजिक संकट के समय भी अर्थात् जिस समय पर युद्ध व मंदी भी थी तो भी इसमें वृद्धि हुई है। इन बाधाओं ने विस्थापन प्रभाव स्थापित किया है जिसके फलस्वरूप पुराने कर तथा व्यय स्तर के स्थान पर नए तथा उच्च बजटीय स्तर आ जाते हैं।

कभी-कभार सरकार को कुछ ऐसी सामाजिक अथवा राजनीतिक उथल-पुथल का सामना करना पड़ता है जिसके कारण यह अपने व्यय में वृद्धि करने पर बाध्य हो जाती है। इसके अतिरिक्त पीकाक तथा वाइजमैन केन्द्रीकरण प्रभाव की भी चर्चा करते हैं। यह अवधारणा केन्द्रीय सरकार की आर्थिक गतिविधि की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है कि जब समाज में आर्थिक वृद्धि होती है तो यह आर्थिक गतिविधि समग्र सार्वजनिक क्षेत्र की आर्थिक गतिविधि का बढ़ा हुआ अंश बन जाती है। ऐसा होना अनिवार्य है क्योंकि केन्द्रीय सरकार को उच्च आर्थिक गतिविधि बनाए रखने के लिए बहुत से उपाय करने पड़ते हैं।

इस परिकल्पना में तीन अलग-अलग धारणाएं हैं-

1. विस्थापन प्रभाव(**Displacement Effect**)
2. निरीक्षण प्रभाव (**Inspection Effect**)
3. एकाग्रता प्रभाव(C**oncentration Effect**)

विस्थापन प्रभाव(Displacement Effect)

पीकाक व वाइजमैन ने पाया कि ग्रेट ब्रिटेन में सार्वजनिक क्षेत्र का संदर्भित विकास खण्डित टुकड़ों में हुआ न कि लगातार तथा सरकार की राजकोषीय गतिविधियां 70 वर्षों की अवधि में उच्च स्तर पर धीरे-धीरे बढ़ी। कर एवं व्यय में ज्यादातर वृद्धि मुख्य सामाजिक कठिनाइयों के दौरान हुई। जिसने 'विस्थापन प्रभाव' को उत्पन्न किया। इसके द्वारा भूतकाल का निम्न कर व व्यय नए और उच्चतर बजट स्तर में स्थानान्तरित हो गया। सामाजिक कठिनाइयों की समाप्ति के पश्चात् कर सहने की नई शक्ति ने समाज को बोध करवाया कि वे पहले से ज्यादा सार्वजनिक व्यय में समर्थ हैं। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय और राजस्व का एक नया स्तर स्थापित हो गया जब तक कि कोई अन्य कठिनाई आकर विस्थापन प्रभाव का कारण नहीं बनी। विस्थापन प्रभाव बताता है कि सामान्य समय

में जिन करों को समाज असहनीय समझता है, उन्हें वह असामान्य या आपातकालीन समय में वहन करने को तैयार हो जाता है। युद्ध आदि की असामान्य स्थितियों में करारोपण व सार्वजनिक व्यय उच्च-स्तर प्राप्त कर लेते है, जो स्थिति सामान्य होने पर भी बनी रहते है। इस प्रकार सामाजिक जटिलता की समाप्ति पर कोई भी मजबूत प्रेरणा ऐसी नहीं थी जो समाज को पुराने कर के निम्न स्तर पर वापिस आने के लिए बाध्य करें।

इस रेखाचित्र में विस्थापन के प्रभाव दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर समय को वर्षों के रूप में मापा गया है। जबकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप में लोक राजस्व (मुख्यतः करों, तथा सार्वजनिक व्यय) को लम्बवत् अक्ष मापा गया है। ऐसा माना जाता है कि सामाजिक गड़बड़ियों से सार्वजनिक क्षेत्र साक्षेप रूप में बढ़ता है तो विस्थापन प्रभाव 'समय पद्धति' को स्पष्ट करने में सहायक होता है जिसके द्वारा सरकारी वृद्धि होती है।

जब से सामाजिक उपद्रव शांत हुए हैं तब से करों की नई दरें आई हैं तथा समाज सोचता है कि वह उच्च सार्वजनिक व्यय स्तर के लिए नए करों को सह सकता है। इसलिए सामाजिक अशांति के पश्चात् पुराने कराधान के स्तर को लागू नहीं किया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र के आबंटन के उच्च स्तर के लिए अतिरिक्त राशि खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। 1890-1960 के समय ब्रिटेन में बहुत बार विस्थापन की प्रक्रिया को अपनाया गया।

2. निरीक्षण प्रभाव (Inspection Effect)

इस विस्थापन प्रभाव को व्यय के नए उच्चतर स्तर की आवश्यकता नहीं होती बल्कि यह सामाजिक जटिलता द्वारा उत्पन्न स्थिति में जारी रहता है। इस तरह बढ़ा हुआ व्यय आंशिक रूप से सामाजिक कठिनाई का परिणाम है जबकि अन्य व्यय सरकार की नई आर्थिक गतिविधियों का परिणाम है। उदाहरण के तौर पर सामाजिक कठिनाइयां लोगों और उनकी सरकारों पर उन समस्याओं के हल ढंूढने के लिए जोर डालते हैं जिनकी पहले अवहेलना हुयी थी। सर्वमान्य सार्वजनिक व्यय की परिवर्तित परिस्थितियों में अपर्याप्तता से निरीक्षण प्रभाव की उत्पत्ति होती है अर्थात् समाज के सदस्यों को इस बात का आभास होता है कि सरकार की राजस्व उसके दायित्वों की तुलना में कम

पड़ती हैं। इससे उनकी कर सहनशीलता (tax tolerance)में वृद्धि होती है, अर्थात् वे पहले से अधिक कर अदा करने को तैयार हो जाते हैं। इसे 'निरीक्षण प्रभाव' के नाम से जाना जाता है।

3.एकाग्रता प्रभाव(Concentration Effect)

पीकाक व वाइसमैन ने एकाग्रता प्रभाव का भी वर्णन किया है जो समाज के आर्थिक विकास के समय उभरने वाली उस प्रवृत्ति से सम्बन्धित है जो केन्द्र सरकार को राज्य तथा स्थानीय सरकारों की तुलना में तीव्र आर्थिक गतिविधियों हेतु प्रवृत करती है। वास्तव में एकाग्रता प्रभाव देश के राजनैतिक ढांचे से निकटता से संबंधित है।

संक्षेप में पीकाक और वाइजमैन ने कहा है कि ग्रेट ब्रिटेन में -

1. सार्वजनिक क्षेत्र में साक्षेप वृद्धि पीढ़ी दर पीढ़ी होती है (विस्थापन प्रभाव)
2. एक निरीक्षण की प्रक्रिया आरंभ होती है जिसमें वर्तमान समस्याओं की अधिक स्पष्टता से व्याख्या की जाती है तथा उनकी बाधाओं के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् सशक्त सम्भाविक उपाय सुझाये जाते हैं।
3. तब एक केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया होती है जिसमें केन्द्रीय सरकार सकल सार्वजनिक क्षेत्र का वृहद अनुपात बन जाती है।

अतः हर्बर के अनुसार सरकारी व्यय प्रवृत्ति के संदर्भ में पीकाक वाइजमैन की अवधारणा वेगनर की अवधारणा से अधिक बढ़िया है। यह स्वयं को विशिष्ट आर्थिक सिद्धान्त अथवा कानून घोषित नहीं करती। यह केवल वृद्धि के कुछ बिन्दुओं की कुछ विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न करती है तथा सार्वजनिक क्षेत्र की वृद्धि से जुड़े अन्य अनेक छोटे-छोटे कारकों के महत्व को भी नहीं भूलती। वेगनर तथा पीकाक दोनों की अवधारणाएं ही औद्योगिक राष्ट्रों में सार्वजनिक क्षेत्र की वृद्धि की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करती है परन्तु दोनों में से कोई भी आर्थिक कानून से अधिक उच्च स्थान नहीं गहण कर सकती।

संक्षेप में, पीकाक व वाइसमैन का सरकारी व्यय का सिद्धान्त वैगनर की परिकल्पना से अधिक सही है। यह कोई आर्थिक नियम अथवा सिद्धान्त नहीं बताता बल्कि औद्योगिक ढांचे की विकास पद्धति के कुछ गुणों की चर्चा करता है। यहां यह याद रखना आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक रूप से विकास एवं ढांचागत परिवर्तन का दौर आता है जो कि सार्वजनिक व्यय में लगातार और व्यवस्थित वृद्धि का कारण बनता है। इसी प्रकार से शहरीकरण, जनसंख्या में वृद्धि, नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं उसके साथ जुड़े सरकार के कत्र्तव्य सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार यह परिकल्पना एक विशेष प्रवृत्ति का वर्णन है और कार्य के सभी संबंधित कारणों को अलग नहीं करता।

विश्लेषणात्मक स्तर पर यह सिद्धांत काफी विश्वसनीय दिखाई देता है परन्तु यथार्थ के स्तर पर इसमें कई त्रुटियाँ है। वाईजमन और पीकाक इस बात पर जोर देते हैं कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि पेड़ीदार होती है परन्तु वास्तविकता यह है कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि लगातार होती रहती है। हर

समाज और अर्थव्यवथा में संरचनात्मक परिवर्तन आते रहते हैं, जिनके फल स्वरूप सार्वजनिक व्यय में भी वृद्धि होती रहती है। विशेषकर अल्पविकसित देशों में यह प्रक्रिया अधिक सक्षम होती है। निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि वैगनर सिद्धांत के विस्तृत रूप से सम्बद्ध वर्णित कारक सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को सुनिश्यित करते हैं तथा वाईजमन-पीकाक सिद्धांत इस बात की पुष्टि करता है कि सार्वजनिक व्यय में यह वृद्धि कई बार काफी तीव्र झटकों से भी होती है।

11.3 सॉराश

कभी कभार सरकार को कुछ ऐसी सामाजिक अथवा राजनीतिक उथल-पुथल का सामना करना पड़ता है जिसके कारण यह अपने व्यय में वृद्धि करने पर बाध्य हो जाती है। जनता की ओर से राजस्व की वृद्धि के प्रति विरोध की भावना भी इस नई स्थिति में क्षीण हो जाती है। सरकार अपनी राजस्व-प्राप्तियों में वृद्धि कर पाने के कारण अपने व्यय में भी वृद्धि कर सकती है तथा इस प्रकार सरकारी व्यय एक नए तथा ऊँचे स्तर पर आ टिकता है। यह नई स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक कि फिर से एक नई उथल-पुथल की लहर न आ जाए। इस सारी प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का कई शब्दावलियों से नामकरण किया गया है। सार्वजनिक व्यय की परिवर्तित परिस्थितियों में अपर्याप्तता से निरीक्षण प्रभाव (inspection effect)की उत्पत्ति होती है। कर राजस्व के एक स्तर से दूसरे स्तर पर आने की प्रक्रिया को विस्थापन-प्रभाव (displacement effect)) कहा जाता है। उन सबका परिणाम यह निकलता है कि राष्ट्रीय आय का पहले से बड़ा अनुपात सार्वजनिक व्यय के रूप में बर्ता जाता है। इस परिवर्तन को केन्द्रीयकरण प्रभाव (concentration effect)कहते है।

11.4 वेगनर का सार्वजनिक व्यय का सिद्धांत

वैगनर का वर्द्धमान राज्य गतिविधियों का नियम

एडोल्फ वैगनर (Adolph Wagner, 1835-1917): एक जर्मन अर्थशास्त्री था जिसने इस सिद्धांत का प्रतिपादन मुख्यतः जर्मनी के ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किया।जो इस प्रकार है: विभिन्न देशों तथा विभिन्न समयों की विशुद्ध तुलना यह प्रकट करती है कि प्रगतिशील राष्ट्रों में, जिनसे हमारा सम्बन्ध है, केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों की क्रियाओं में नियमित रूप से वृद्धि होती है। यह वृद्धि गहन तथ व्यापकः दोनों प्रकार की होती है। केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें लगातार नये कार्य अपनाती है जबकि नये तथा पुराने कार्यों को वे अधिक पूर्णता तथा कुशलता से करती है।

वैगनर के अनुसार अपनी गतिविधियों में बढ़ोतरी करना हर सरकार की आंतरिक प्रवृति हैं। कालान्तर में विभिन्न कारणों से उसकी गतिविधियों में फैलाव के साथ-साथ उनकी गहनता भी बढ़ती है। राज्य की गतिविधियों का अर्थव्यवस्था के विकास के साथ इस प्रकार का फलनात्मक (निदबजपवदंस) सम्बन्ध होता है कि पूर्वोक्त के विकास की गति परवर्ती विकास की गति से अधिक होती है। वैगनर ने स्वयं अपने सिद्धांत में इस बात को स्पष्ट नहीं किया कि राज्य की गतिविधियों में बढ़ोतरी का अर्थ (क) कुल सार्वजनिक व्यय, (ख) (सार्वजनिक व्यय/समग्र राष्ट्रीय आय) के

अनुपात तथा (ग) (सार्वजनिक क्षेत्र/कुल अर्थव्यवस्था) के अनुपात में से किसमें वृद्धि है। प्रो. मस्ग्रेव का कहना है कि वैगनर का संकेत (ग) की ओर था।

वेगनर ने राज्य की राजस्व आवश्यकताओं एवं राष्ट्रीय आय के मध्य उचित संबंध को सार्वजनिक वित्त के अध्ययन का लक्ष्य माना है। उनका मत था कि "व्यय की कोई निरपेक्ष सीमा निर्धारित करने अथवा राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में व्यय की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के सभी पूर्ववर्ती प्रयास विफल रहे हैं।" (All earlier attempts to lay down absolute figure of expenditure or to define an upper limit to its proportion to national income have always miscarried.)

वेगनर ने यह अनुभव नहीं किया कि सार्वजनिक क्षेत्र अंततः सारी आर्थिक गतिविधियों को निगल जाएगा। उसने अनुभव किया कि सार्वजनिक व्यय तथा राष्ट्रीय आय के मध्य कुछ अनुपात होता है जिसका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। अंततः राज्य की राजस्व आवश्यताओं का नागरिकों के घरेलू बजट पर तो प्रभाव पड़ता ही है। परन्तु इसने वेगनर को बढ़ती हुयी सार्वजनिक गतिविधियों के नियम को स्पष्ट करने से नहीं रोका। ऐसा लगता था कि वेगनार को विश्वास था कि बीसवीं सदी में सरकार की गतिविधियों का क्षेत्र तथा सापेक्ष अर्थात् राष्ट्रीय आय के संदर्भ में भी बढ़ता रहेगा। यह आर्थिक वृद्धि तथा सामाजिक प्रगति के निरन्तर दबाव का स्वाभाविक परिणाम था।

वैगनर के अनुसार सरकारी क्षेत्र का सापेक्ष विकास औद्योगिक अर्थव्यवस्था का एक गुण है। उसने न केवल ब्रिटेन का उदाहरण दिया जिसने वैगनर से पहले औद्योगिक क्रान्ति का चरण पूरा कर लिया था बल्कि अपने समकालीन फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं जापान की औद्योगिक क्रान्तियों का भी उदाहरण दिया। वैगनर की बढ़ती हुई राज्य गतिविधियों की परिकल्पना के अनुसार औद्योगिक देशों को प्रतिव्यक्ति आय और उत्पादन स्तर में जैसे ही वृद्धि होती है वैसे ही इन देशों के सार्वजनिक क्षेत्र में आवश्यक रूप से कुल आर्थिक गतिविधियों के अनुपात में वृद्धि हो जाती है। वैगनर ने सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बांटा है-

1. आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा हेतु किए गए व्यय
2. सांस्कृतिक एवं कल्याण जिनमें स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा, बैंकिग इत्यादि शामिल हैं, पर किए गए व्यय।

प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में बाह्य सुरक्षा पर व्यय में वृद्धि होगी क्योंकि राज्य की सामान्य प्रवृति अतिक्रमण तथा युद्ध से बचाव और उत्तम हथियारों का प्रयोग करने की होती है। इसी प्रकार आन्तरिक सुरक्षा पर व्यय में वृद्धि होगी क्योंकि आर्थिक इकाइयों और शहरी लोगों के मध्य टकराव में वृद्धि होगी।

वैगनर का नियम कहता है कि औद्योगीकरण के मार्ग पर चलने वाले देश में जैसे ही प्रति व्यक्ति आय तथा उत्पत्ति बढ़ती है वैसे ही इन देशों का सार्वजनिक क्षेत्र कुल आर्थिक क्रिया के अनुपात में अवश्य ही बढ़ जाता है। उसके कथन को इस प्रकार कहा जा सकता है

$$\frac{(PCPG)t_2}{(PCI)t_2} > \frac{(PCPG)t_1}{(PCI)t_1}$$

यहां PCPG सार्वजनिक वस्तुओं ; $(Public\ goods)$का वास्तविक प्रति व्यक्ति उत्पादन

PCI प्रति व्यक्ति आय

t_1 समय का पहला बिन्दु

t_2 समय का बाद वाला बिन्दू

अर्थात् जैसे ही वास्तविक प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है वैसे ही सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक प्रति व्यक्ति उत्पादन कुल आर्थिक क्रिया के अनुपात में बढ़ जाता है।

रेखाकृति द्वारा निरूपण

वैगनर का विश्लेषण निश्चित रूप से हमारे समक्ष सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधियों में वृद्धि का अनुमान प्रस्तुत करता है। फिर भी वेगनर की विचारधारा कोई ऐसा तर्क की विचारधारा प्रस्तुत नहीं करती जिससे किसी ऐसे नियम अथवा परिकल्पना की पुष्टि हो कि सार्वजनिक व्यय राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में बढ़ता ही है। वेगनर द्वारा प्रस्तु की गई सरकार की बढ़ती गतिविधियों की परिकल्पना को चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है; इस चित्र में सार्वजनिक वस्तुओं का प्रति व्यक्ति उत्पादन लम्बवत अक्ष पर मापा गया है तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। इस ग्राफ में समय तीसरा महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि सार्वजनिक वस्तुओं के प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय दोनों में ही वृद्धि को साक्षेप रूप में रखा गया है तथा कुछ लंबे समय के लिए उसे ऐतिहासिक आधार पर रखा गया है।

PG_1रेखा एक ऐसी स्थिति को दिखाती है जबकि किसी समय सार्वजनिक क्षेत्र कुल उत्पत्ति का एक स्थिर अनुपात है। यह रेखा उन परिस्थितियों का संकेत करती है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र एक विशेष समय में समाज के कुल आर्थिक उत्पादन का एक अनुपात में निरंतर बना कर रखता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जैसे ही समाज के आर्थिक विकास के कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो सार्वजनिक वस्तुओं का प्रति व्यक्ति उत्पादन कुल आर्थिक गतिविधि के बराबर ही रहता है।

PG_2रेखा वैगनर के नियम को प्रदर्शित करती है अर्थात् समय बीतने पर सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन में लगे कुल साधनों का अनुपात बढ़ता जाता है।

समाज में जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है सामाजिक पूंजीगत वस्तुएं जैसे संचार, यातायात, शिक्षा इत्यादि में निवेश बढ़ जाता है तथा ये सभी आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अंशं हैं। इन वस्तुओं की उत्पादन लागत भी बहुत अधिक होती है तथा यह सामूहिक रूप में उपयोग की जाती हैं तथा सरकार द्वारा प्रदान की जाती हैं। इसलिए जब अर्थव्यवस्था औद्यागीकरण की स्थिति में पहुंचती है तो कुछ समय बाद सार्वजनिक वस्तुओं का प्रति व्यक्ति उत्पादन प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ही अंश बन जाता है। यह स्थिति वेगनर की परिकल्पना को प्रस्तुत करती है।

दुनिया के सब देशों में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सार्वजनिक व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा भारत भी इसका अपवाद नहीं रहा। 1950-51 में केन्द्रीय सरकार का व्यय 530.8 करोड़ रुपये था जो 1993-94 के बजट अनुमानों के अनुसार बढ़कर 1,31, 323 करोड़ रुपये हो गया।

डाल्टन के अनुसार वैगनर का नियम लागू होने के तीन कारण हैं:-

1. **अधिक कुशलता** -बहुत से क्षेत्रों में व्यक्तिगत संस्थाओं की अपेक्षा सार्वजनिक संस्याएअधिक कुशलता से कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रो. डैल्टन के अनुसार, ''सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ती हुयी कुशलता निजी संगठनों की तुलना में, इसका व्यय बढ़ाती है। यह सर्वविदित है कि व्यक्तिगत निजी संगठन सदैव अधिकतम लाभ देखते हैं। जबकि सार्वजनिक क्षेत्र देश का सामाजिक हित।''

डाल्टन के शब्दों में सरकारी एजेन्सियों का न कि व्यक्तिगत एजेन्सियों का चयन आज बुद्धिमत्तापूर्ण है यद्यपि यह बात कल मूर्खतापूर्ण थी। कुछ अन्य मामलों में यह आज मूर्खतापूर्ण हो सकती है जबकि कल यह बुद्धिमत्तापूर्ण समझी जायेगी।

2. **व्यक्तिगत संस्थाओं की असमर्थता-** अन्य क्षेत्रों में भी आधुनिक गतिविधियों ने सरकार के लिए यह आवश्यक बना दिया है कि यह नये कार्यों को अपनाये जो व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा नहीं किये जा सकते, जैसे बड़े नगरों में जन'स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्य।

3. **सामूहिक प्रयोग-** सार्वजनिक व्यय में बहुत-सी वस्तओं का सामूहिक प्रयोग सम्मिलित होता है जबकि व्यक्तिगत व्यय में केवल व्यक्तिगत प्रयोग ही शामिल होता है। पार्क, संग्रहालय, कला-वीथिकाए तथा सार्वजनिक पुस्तकालय इस प्रकार के उदाहरण है। एफ.एस.नित्तीने 14वीं शताब्दी में विभिन्न देशों के व्यय का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि केन्द्रित तथा विकेन्द्रित सरकारें, युद्ध में लगी अथवा शान्तिमय सरकारें और बड़ी तथा छोटी सरकारें सभी व्यय बढ़ाने के सम्बन्ध में एक सी प्रवृत्ति दिखाती है। बीसवीं शतादी ने तो यह बात और भी लागू हो रही है।

वेगनर की परिकल्पना एक सुविधाजनक ढांचा है जिससे औद्योगीकरण एवं आर्थिक प्रगति के दौर में शामिल होने वाले आर्थिक तत्वों को व्याख्यायित किया जा सकता है। परन्तु इसमें व्यापकता का अभाव है। सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त किसी भी समाज का सार्वजनिक व्यय निर्धारित करते समय वहां के समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र तथा सांस्कृतिक परिवेश को भी विचार में रखना चाहिए।

कमियां ;

वेगनर के तर्क में तीन गंभीर दोष हैं।

1. यह राज्य के स्व-निर्धारण सिद्धान्त पर आधारित है तथा यह सिद्धान्त अधिकतर पश्चिमी देशों में प्रचलित नहीं है।
2. यह सरकार के व्यय पर युद्ध के प्रभावों को निरस्त करती है।
3. यह दीर्घकालिक सार्वजनिक आर्थिक गतिविधि पर बल देती है जो सार्वजनिक व्यय वृद्धि की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण समय पद्धति पर विचार नहीं करती।

11.5 सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि के लिये उत्तरदायी घटक

आर्थिक विकास की गतिविधियां बहुत बड़ी जनसंख्या को अच्छी जीवन स्तर प्रदान करती हैं तथा इसके लिए सकार की गतिविधियां बढ़ जाती हैं। आर्थिक विकास का अर्थ है श्रम का विभाजन, बड़े व्यावसायिक संगठनों में वृद्धि तथा सामान्य रूप से लोगों के मध्य बहुआयामी आर्थिक संबंध विकसित होना, अतः इन शक्तियों के संदर्भ में ऐसी आशा करना अनुचित नहीं है कि इससे सरकार की गतिविधियों में वृद्धि होगी।

वैगनर की परिकल्पना को प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आफ. एस. निटी ने समर्थन दिया है। उन्होंने अनुभव सिद्ध प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यह नियम न केवल जर्मनी पर लागू होता है बल्कि अन्य सरकारों पर भी लागू होता है जो एक दूसरे से व्यापक रूप से भिन्न हैं। सभी प्रकार की सरकारों में चाहे उनके आकार एवं प्रकार जो भी हों, सार्वजनिक व्यय की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रवृत्ति में सरकार के स्तर (केन्द्रीय, राज्यीय अथवा स्थानीय), उसके इरादे (शांति प्रिय या युद्धप्रिय) तथा उसके आकार आदि से किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं पड़ता।

वैगनर की परिकल्पना में सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि के कई घटक हैं। जो इस प्रकार हैं -

1. सामाजिक क्रियाकलापों में लगातार विस्तार -

वैगनर ने स्वीकार किया है कि सामाजिक गतिविधियों में लगातार विस्तार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का मूल कारण है। भूतकाल में सरकार के कार्य बाह्य सुरक्षा और देश की आन्तरिक सुरक्षा और कानून के रखरखाव तक सीमित थे परन्तु आधुनिक एवं परिवर्तनशील युग में इस पुरानी विचारधारा में बदलाव आया है और सरकार अपने नागरिकों के हित के लिए आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कार्य करने लगी है। इसके अतिरिक्त वे व्यापारिक उतार-चढ़ाव को कम करने और देश में पूर्ण रोज़गार के लिए कार्य करने लगी हैं। इस प्रकार सरकार के कार्यों में वृद्धि से उनकी निरपेक्ष तथा सापेक्ष आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है।प्रशासनिक संयंत्र की गतिविधियों में फैलाव के साथ-साथ उनकी गहनता में भी बढ़ने की प्रवृत्ति रहती है। समाज की प्रगति के साथ साथ सरकार को अपने प्रशासन के लिए कार्य-कुंशल कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है तथा अधिक महँगे

उपकरणों आदि का उपयोग करना पड़ता है। समाज और अर्थव्यवस्था की बढ़ती जटिलता के कारण सरकार के लिए भी प्रशासनिक व्यवस्था में यथोचित सुधार करना अनिवार्य हो जाता है।

2. जनसंख्या में वृद्धि और नगरीकरण

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या में वृद्धि है। बढ़ी हुई जनसंख्या के सुख और सुविधा पर व्यय बढ़ जाता है; इसके अतिरिक्त राज्य का प्रशासनिक व्यय भी बढ़ जाता है। यह सरकार पर अतिरिक्त जिम्मेवारी डालती है। सरकार खाद्य पदार्थों का निरीक्षण, आवश्यक वस्तुओं का वितरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य में वृद्धि, अस्पतालों का निर्माण एवं रख-रखाव, शिक्षा और जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए कार्य करती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक समाज ज्यादा जटिल होते जा रहे हैं। जहां उनकी मांगों को पूरा करने के लिए ज्यादा राशि की आवश्यकता होती है।

सरकारी गतिविधियों और सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक और कारण शहरीकरण में वृद्धि है। शहरीकरण की प्रक्रिया से इस प्रकार के व्यय में वृद्धि होती है जिससे जीवन और सम्पत्ति का संरक्षण हो। गत वर्षों से एक अन्य प्रवृत्ति यह दिखाई दे रही है कि व्यक्ति गांवों को छोड़कर शहरों में आने लगे हैं। कुछ शहरों की चमक-दमक से प्रभावित होकरआते हैं, जबकि कुछ रोजगार की तलाश में आते हैं। इस नगरीकरण से स्थानीय संस्थाओं का प्रति व्यक्ति व्यय बढ़ा है, पुलिस पर व्यय, शिक्षा पर व्यय, सड़कों पर व्यय बढ़ गया है। सार्वजनिक स्वास्थ्य, नगर को साफ-सुथरा रखने, खाद्यान्न के वितरण तथा व्यक्तियों की चिकित्सा पर अधिक व्यय करना पड़ता है। बिजली, जल की व्यवस्था खेल के मैदान, पार्क, सार्वजनिक पुस्तकालय तथा मनोरंजन की सुविधाओं पर पहले से अधिक व्यय करना पड़ता है।

3. कल्याणकारी क्रियाएँ

आधुनिक सरकारें कल्याणकारी हैं और अपने लोगों के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में सुधार लाना उनका लक्ष्य होता है। आम जनता के जीवन स्तर को फपर उठाना उनका नैतिक कत्र्तव्य है इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इन्हें बहुत से कल्याणकारी कार्य जैसे शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य इत्यादि अपने हाथ में लेने पड़ते हैं। पूंजीवादी अथवा समाजवादी सभी प्रकार की सरकारों के लिए यह सत्य है। उत्पादन और वितरण प्रणाली मे सुधार लाने के लिए विधि एवं प्रशासनिक माध्यमों द्वारा भी सरकारी हस्तक्षेप को बढ़ावा मिला है। राज्य समाज की बहुत-सी मांगों को सामूहिक रूप से पूरा कर देता है जो कि पहले व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट की जाती थी; एवं अन्य लोगों का विचार है कि विकसित देशों में स्थिरता और अल्प-विकसित देशों में विकास दर में वृद्धि लाने के लिए सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक है। सामाजिक बीमा, बेरोजगारी कम करना, सस्ती चिकित्सा सुविधाएं, वृद्धावस्था पैंशन, आवास सुविधा इत्यादि नए कार्य हैं। सरकार को समाज की सामाजिक असमानता को भी कम करना है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों में राज्य का व्यय बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

वैगनर द्वारा राज्य सरकार की गतिविधियों के कल्याणकारी पहलू को सामाजिक प्रगति के दबाव के रूप में पारिभाषित किया गया है। वैगनर की परिकल्पना में सामाजिक सुधारों के लिए दबाव ही आधुनिक समय में सार्वजनिक व्यय की सापेक्ष्ज्ञ वृद्धि का मुख्य कारण है। संक्षिप्त में इन

कार्यों के लिए नियोजित आर्थिक विकास की रणनीति की आवश्यकता है जिसमें व्यय अधिक होना स्वाभाविक है।

4. सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति

परमाणु अस्त्रों के क्षेत्र में विज्ञान, और तकनीकी विकास में तेजी के कारण बाहरी आक्रमणों का डर बढ़ गया है। सम्पूर्ण विश्व की राजनैतिक स्थिति अनिश्चित एवं असुरक्षित हो गया है। यदि एक देश अपने सुरक्षा साधनों को मजबूत बनाता है तो अन्य देशों को भी आत्म रक्षा में अपने सुरक्षा साधनों में वृद्धि करनी होगी। आधुनिक परमाणु अस्त्रों का निर्माण, प्रशिक्षण अथवा सेना का नियोजन बहुत ही महंगा काम है। युद्ध तकनीक में परिवर्तन आता रहता है और इस परिवर्तन के साथ-साथ सेना के लिए नए प्रकार के हथियारों की खरीद आवश्यक हो जाती है। इससे सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।

भारत में 1962 में चीन, 1965 और 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के पश्चात् ही सुरक्षा व्ययों में तेजी से वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा व्ययों में वायुसेना, जल सेना, थल सेना के रखरखाव, सैन्य कला एवं अभ्यास का व्यय भी शामिल है। इसके कारण सार्वजनिक व्यय में अत्यधिक वृद्धि होती है।

5. विश्व मन्दी

1929-33 का महान विश्वव्यापी मन्दी भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए एक अन्य मुख्य कारण है। इस मन्दी ने सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता को उजागर कर दिया जिससे विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी क्रियाकलाप बढ़ गये। अतः आधुनिक सरकार की निवेश गतिविधियाँ सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए एक और कारण पैदा करती हैं।

विभिन्न स्तरों-संघीय-प्रान्तीय और स्थानीय-पर उदार सरकारें स्थापित होना आरम्भ हुई। सरकारों ने मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में नये-नये दायित्वों को स्वीकार किया। ये क्षेत्र निम्न प्रकार हैः

(अ) उद्योग, कृषि तथा श्रम को प्रोत्साहन देना,

(ब) अर्थ-व्यवस्था पर बढ़ती हुई मात्रा में नियन्त्रण रखना,

(स) जन-कल्याण में वृद्धि करना।

यद्यपि सन् 1930 के महान अवसाद से पहले भी इसी किस्म के कार्य आरम्भ हो गये थे, परन्तु अवसाद काल में तो इसमें आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। उद्योगों की सहायता के लिए सरकार ने अनेक सार्वजनिक योजनाएँ निर्मित की, श्रमिकों के लिए मकानों की व्यवस्था सम्बन्धी नये-नये कार्यक्रम बनाये, कृषि के क्षेत्र में कृषकों को साख-सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए वस्तुओं के मूल्य को ऊँचा करने के लिए, भूमि के कटाव को कम करने के लिए सभी देशों में विभिन्न प्रकार के कानून बनाये गये। इसी प्रकार श्रम के सामूहिक सौदा करने की शक्ति को बढ़ाने के लिए अधिनियम बनें। सरकारी रोजगार सेवाएँ स्थापित हुई, बेकारी मुआवजा और वृद्धावस्था पेन्शन तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ श्रमिकों को दी जाने की व्यवस्था की गयी।

6.मूल्यों में वृद्धि

स्वतन्त्रता के बाद से सार्वभौमिक स्तर पर मूल्यों में वृद्धि भी सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए समान रूप से भागीदार है। मूल्यों में वृद्धि के दो प्रभाव होत हैं। प्रथम, सरकार को उन सभी

वस्तुओं और सेवाओं के लिए उच्चतर मूल्य प्रदान करने पड़ते हैं जो वह खरीदती हैं। द्वितीय, उसे अपने बढ़ते हुए व्यय के लिए अधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार बढ़ता हुआ सार्वजनिक व्यय स्वयं में मूल्यों में वृद्धि के लिए जिम्मेदार घटक बन जाता है।

7. आर्थिक योजना की भूमिका

आजकल सभीदेशों की सरकारें आर्थिक योजनाएं अपनाती हैं जिससे कि देश का आर्थिक विकास हो सके। इसके कारण भी व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुयी है।

8 सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका

कुछ सार्वजनिक वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनके अभाव में समाज और अर्थव्यवस्था दोनों दुर्बलता का शिकार रहते है। अतः इनको मुहैया करने की मुख्य जिम्मेदारी भी राज्य की बनती है। सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ इन वस्तुओं की संख्या एवं महत्व भी बढ़ते जाते है। अतः यह तथ्य भी सरकार की गतिविधियाँ तथा व्यय बढ़ाने में योगदान देता है। आधुनिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलताएं सरकार को साधारण जनता के हित में बहुत से गुणात्मक एवं संख्यात्मक कार्य करने पर बाध्य करती हैं जिससे सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।

9. ग्रामीण विकास योजनाएं

भारत जैसे विकासशील देशों में सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर बहुत राशि व्यय करनी होती है जहा। जनसंख्या का बड़ा भाग गांव में रहता है उसे समुदाय विकास परियोजनाएं एवं अन्य सामाजिक योजनायें अपनानी पड़ती हैं। भारत में गरीबी उन्मूलन हेतु ऐसी बहुत सी योजनाएं अपनाई गई हैं। जिसमें इत्यादि प्रमुख हैं। इसमें संशय नहीं है कि इससे सरकारी व्यय में वृद्धि होती है।

वैगनर का सिद्धांत ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। उनमें उन मजबूरियों का वर्णन नहीं है जिन के कारण सरकार को अपनी गतिविधियों को बढ़ाना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु उस का सिद्धान्त उन आधुनिक जन-हितकारी सरकारों पर लागू होता है जो समाज के हित के लिए अपने आप को कर्तव्य बद्ध मानती है तथा उसके लिए व्यय करने को तत्पर रहती है।

यदि कुछ कारणों से किसी सरकार का व्यय कुछ काल के लिए घट जाए, तो उससे वैगनर के सिद्धांत पर कोई आंच नही आती। वैगनर का सिद्धांत मुख्य रूप से दीर्घकालीन है तथा दीर्घकाल में हर सरकार का व्यय बढ़ती प्रवृत्ति ही दर्शाता है। दीर्घकाल में सरकारी व्यय की वृद्धि में आने वाली रूकावटें प्रभावहीन प्रमाणित होती है।

11.6 अभ्यासों के उत्तर

1. पीकाक-वाइसमैन परिकल्पना को समझो?
2. वेगनर का सार्वजनिक व्यय का सिद्धांत को समझो?
3. सार्वजनिक व्यय में लगातार वृद्धि के लिये उत्तरदायी घटको को समझाए।

इकाई 12

लेवाथन हाईपोथीसिस एंव निक्सनेन मॉडल, समता और दक्षता में विनिमय

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 लेवाथन

12.3 निस्कनेन मॉडल

12.4 क्षमता और दक्षता में विनिमय

12.5 प्रयोग में की गई शब्दवाली

12.6 संदर्भ पुस्तकें

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

सर्वप्रथम हम लेवाथन हाईपोथेसिस /मॉडल के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करेगे तत्पश्चात निक्सनेन द्वारा लेवाथन हाईपोथेसिस मॉडल को आधार बनकर किया गया विवरण एंव अंत में बुचानन द्वारा लेवाथन हाईपोथेसिस मॉडल पर दिया गया स्वंय का अध्ययन जिसमें करों के वृहदीकरण हेतु वो सुझाव प्रदान करते हैं। साथ ही लेवाथन हाईपोथेसिस एंवआगे कुछ विचारकों द्वारा लेवाथन हाईपोथेसिस / मॉडल के अनुभाविक परीक्षण किये गये हैं उनका ब्योरा प्रस्तुत किया जायेगा। इसके पश्चात् समता और दक्षता के मापदण्डों पर इन मॉडलों और हाईपोथेसिस का अध्ययन किया जायेगा।

12.1 उद्देश्य

इस अध्याय में हम समझने का प्रयास करेगें कि सरकार की संस्थाएँ, सरकार का आकार, सरकार में स्थित नौकरशाही का आकार किस प्रकार से बजट को वृहद करने में योगदान देता हैं, साथ ही स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार राजनेता एंव नौकरशाही मिल कर इस प्रकार उपयुक्त निर्णय लेते हैं कि सरकार के राजस्व, एक एकत्रण या बजट में वृद्धि हो जाती हैं। दूसरे शब्द में इनके संयुक्त सुझाव, नियम एंव नियमों का पालन किस प्रकार कर एकत्रण को बढ़ावा देते हैं जो सरकार के द्वारा वस्तु और सेवाओं की लागत के लिये आवश्यक हैं लेवाथन मॉडल जो कि होब्स द्वारा दिया गया मॉडल हैं इसमें बजट को वृहदीकरण में जो पात्र (actor) बनाये गये हैं उसके दो भाग हैं एक राजनेता दूसरा नौकरशाह । आगे,निक्सनेन मॉडल में कर वृहदीकरण का कार्य केवल

नौकरशाहो के माध्यम से ही संभव बनाना समझाया गया हैं तथा अन्त में बुचानन द्वारा इस कार्य को (बजट वृहदीकरण) को रूलर/प्रशासन (set of people) जोकि तीन प्रकार के हैं (घरेलू प्रशासन, विदेशी प्रशासन एंव करदाता घरेलू प्रशासन करता हैं) में बाटता हैं। साथ ही स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा कि कैसे विकसित टैक्स प्रारूप (कर व्यवहार) को अपनाकर, कोई भी देश अविकसित से विकसित की श्रेणी में आ सकता हैं, कर एकत्रण या बजट को वृहदतम कर सकता हैं।जोसरकार के द्वारा सेवाएँ और वस्तुएँ उपलब्ध करवाने के लिए आवश्यक हैं। जो लोगो के उच्चतम कल्याण के स्तर पर पहुँचने तथा अधिकतम संतुष्टी के स्तर को बढाती हैं।

लेवाथन की प्रष्ठभूमि:- सरकार सीमा तक सरकार को अर्थव्यवस्थाऔर सार्वजनिक जीवन में हस्तक्षेप करना चाहिये । हस्तक्षेप का तरीका कौन निर्धारित करेगा, जिससे लोगो का अधिकतम कल्याण हो सके । सार्वजनिक वस्तुओं/ पब्लिक गुड्स का उत्पन्न और वितरण कैसे हो। सरकार का कर एकत्रण किस विधि से सर्वाधिकहो सकता हैं, साथ ही वस्तुओं एंव सेवाओं का वितरण किस सिद्वान्त द्वारा करने से वह उपयुक्त तरीके से हो पाता हैं , एवं आमजन को किस प्रकार इसका फायदा अधिक एंव उपयुक्त प्रकार से हो पाता हैं आगे हम उस विचार के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत करेंगे जिसे "लेवाथन हाईपोथेसिस" कहते हैं जिसे होब्स ने सर्वप्रथम पश्चिमी जगत की सरकारों के बजट द्वारा सेवायें उपलब्ध करने और कर एकत्रण को वृहदत्तम बनाने हेतु प्रस्तुत किया था। और समय समय पर अनेक विद्वानों ने उसे आधार बनाकर मॉडल प्रस्तुत किये।

12.2 लेवाथन मॉडल/प्रारूप :-

केंद्र मुखी अधिकार मॉडल बजट वृहदीकरण का, इसे ही लेवाथन प्रारूप के नाम से जाना जाता हैं। हब्स द्वारा प्रस्तुत लेवायथन मॉडल एक एकात्मक प्रारूप हैं जिसमें राजस्व को अधिकतम करने के लिए इसे संविधान में उल्लेखित प्रावधानों के अनुरूप, समान वितरण नियमों के अनुसार होना चाहिए। संविधान के अनुसार नियम बनाना एंव उनको लागू करना, इसकी शक्ति केवल सत्ता(सरकार) के पास होगी। सत्ता ही एकमात्र सर्वोच्च होगी जो, कि समय काल व परिस्थितिनुसार नियमों को बनाने एंव लागू करने का अन्तिम निर्णय लेगी। साथ ही उन्होंने स्पष्ट किया कि लेवायथन मॉडल में सत्ता के प्रारूप में राजनेता एंव नौकरशाह दोनों शामिल होंगे तथा नियमों का निर्धारण तथा (Budget maximise) बजट वृहदीकरण के नियम लागू करने की सम्पूर्ण शक्ति इन दोनों के हाथों में पूरी तरह से होगी। राजनेता तथा प्रशासनिक अधिकारी संविधान में उल्लेखित नियमों के अनुसार यह निर्धारित करेंगे कि कौन-कौन सी नीतियों को अपनाने से कर एकत्रणअधिकतम हो सकता हैं। लेवायथान मॉडल में हाब्स इस शर्त को बताता हैं कि राजनेताओं का चुनाव तार्किक मुददों के आधार पर जनता के द्वारा किया जाए, दूसरी शर्त कि राजनेताओं तथा नौकरशाहो को प्राप्त सुचना उपयुक्त, तार्किक एंव उसमें एकरूपता होना आवश्यकत हैं।

व्यवहार में दोनों में संयुक्त निर्णयों की एकजुटता के साथ करों की दर को व्यवहारिक स्तर पर रख कर, अधिकतम कर एकत्रण को संभव बना सकते हैं। साथ ही ये भी बताया हैं कि ये तभी संभव हैं, जब सरकार एवं ब्यूरोक्रेट्स (प्रशासनिक अधिकारी) एकात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए

निर्णय ले जो संविधान के अनुसार हो। यहाँ पर इस एकात्मक मॉडल में (morolitanic model) राजनेता एंव प्रशासनिक अधिकारियों का एकमत होना जरुरी हैं इसी एकमत दृष्टिकोण के आधार पर इसे एकात्मक मॉडल प्रारूप कहा गया हैं।

लेवायथन मॉडल प्रारूप को सफल बनाने की आवश्यक शर्ते:-

यह मॉडल व्यवहारिक धरातल पर तभी सफल हो पायेगा जब राजनेता एंव प्रशासनिक अधिकारी सूचनाओं का तार्किक, व्यवहारिक एंव वस्तुनिष्ठ उपयोग करें, ये सूचनाएं इस प्रकार होगी।

1. सरकारी वस्तुओं (public goods)के बारे में सही एवं सटीक जानकरी हो, अनुमानित सूचना नहीं प्राप्त होनी चाहिए।
2. जिस स्त्रोत से सूचना प्राप्त की जा रही हैं वह (valueable) यानी मूल्यात्मक हो, अनुमान पर या व्यक्तिनिष्ठा पर आधारित न हो।
3. साथ ही राजनेता तथा प्रशासनिक अधिकारियों के सुचना प्रप्ति स्त्रोत में विषमता नहीं होनी चाहिये।

लेवायथन मॉडल में हाब्स ने स्पष्ट किया कि उपरोक्त प्रावधानों के अनुसार जब राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारी।

बजट वृहदीकरण या कर एकत्र वृहदीकरण हेतु, करों को व्यवहारिक स्तर पर या व्यवहारिक दर परलागू करके, करों से अधिकतम साधन एकत्रित करते हैं।

1. इसी प्रकार लेवायथन मॉडल प्रारूप में करों को वृहद आधार पर लागू कर बजट वृहदीकरण की अवधारणा को स्पष्ट किया हैं। अधिकतम संतुष्टी प्रदान करने वाली वस्तुओं/ सेवाओं पर खर्च किया जाता हैं। गहराई से अवलोकन करने पर ज्ञात होता हैं कि लेवयाथन मॉडल प्रारूप में कुछ कमियां प्रवेश कर जाती हैं जैसे पहला राजनेताओं का चुनाव तार्किक मुददोंपर होना चाहिए जो कि संभव नहीं हो पाता हैं
2. राजनेता एंव प्रशासनिक अधिकारियो की सूचना का स्त्रोत समान रूप से तार्किक व वस्तुनिष्ठ होना चाहिए परन्तु जब राजनेता जनता के बीच जाते हैं तो उनके निर्णय तार्किक के स्थान पर भावात्मक अधिक होते हैं जिससे उनमे व्यक्तिनिष्ठा/ आत्मनिष्ठा की प्रधानता हो जाती हैं।
3. राजनेताओं को जो स्त्रोत निर्णय लेने में सहायता प्रदान करते हैं , साथ ही जो स्त्रोत मुद्दों से अवगत कराते हैं वो जनता की वास्तविक मांगो का प्रतिनिधत्व नहीं करते हैं।
4. इनके साथ ही जिन मुददों के आधार पर जनता ने राजनेताओं को चुना हैं तथा जिन मुददों को विश्वनीय स्त्रोत मान कर राजनेता (public goods) सार्वजनिक वस्तुओं के बारे में निर्णय लेते हैं उन दोनों में असमानता के बिन्दू अधिक उभर कर आ जाते हैं।
5. साथ ही राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारीयों को मिलकर , (सरकार जो कि एकात्मक मॉडल पर काम कर रही हैं राजस्व वृहदीकरण हेतु), कि सहायता हेतु बनाया गया था, कर

एकत्रण व लागू करने हेतु इन दोनों की सूचनाओं में तार्किक एकता के स्थान पर भिन्नता आ जाती हैं जो कि जो कि एकरूप नियमों को लागू करने में सबसे बड़ी बाधा बन जाती हैं।

उपरोक्त कमियों के आने से लेवयाथन मॉडल प्रारूप में यहाँ जनता का स्थान, सुचना के आधार पर निम्न अंका जाता हैं तथा राजनेता एंव नौकरशाह स्वयं को सर्वोच्च या कर्तमकर्ता समझने लगते हैं इस स्थिति में यह तथ्य उभर कर आता हैं कि जिस सरकारको जनता ने चुना हैं उसकी सीमायें स्पष्ट होने लगती हैं ।यानी सरकार की क्षमतापर सीमायें लागू होनें लगती हैं । ऐसे में वह अतिरिक्त संसाधन जुटाने में अक्षय रहती हैं। यह एक प्रकार से संविधान के अनुसार लगाये गये करों का परिणाम हैं, जो सरकार की अन्य स्त्रोतों से कर क्षमता बढ़ाने पर अंकुश लगता हैं।

अन्तमें निष्कर्षत: यह कहा जा सकता हैं कि संवैधानिक सीमा संवैधानिक सीमओं का कर लगाने का दयारा हटाना ही एक मात्र उपाय बचता हैं। इसको हटा कर ही सरकार अन्य स्त्रोतों नए स्त्रोतों का उपयोग कर वृद्धि ला सकती हैं।

बरेनान एंव बुचानन का लेवायथन मॉडल प्रारूप

पृष्ठभूमि:-बुचानन इस प्रारूप के माध्यम से स्पष्ट करना चाहते हैं कि सामान्य स्तर पर करों की दर को किस ढांचागत स्तर पर रखा जाए, कि वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण में कर का ढांचागत आधार समानता (Equilibrium) में काम करें। बुचानन करों को एक समान आधार स्तर पर संविधान के प्रावधानों के अनुरूप लगाने की बात करते हैं ।

परम्परागत कर ढांचे से कैसे भिन्न हैं :-परम्परागत सरकारों में कर ढांचा संविधान के अनुसार नहीं होता था साथ ही समान कर आधारका उसमें अभाव होता था ।

मुख्य प्रावधान :-बुचानन करों के लगाने के हेतु तीन प्रकार के (Rular) प्रशासकों की बात करते हैं वो लोगों के उप समूह को (Set of people) को (Rular) प्रशासक कहते हैं ।

ये तीन प्रकार के प्रशासक हैं

1. स्थानीय प्रशासक जो कर नहीं देते हैं
2. कर देने वाले घरेलु प्रशासक
3. विदेशी प्रशासक

यह मॉडल परम्परागत संसाधनों का विशेष संदर्भ में प्रयोग करता हैं इस प्रारूप की विशेषता हैं की प्रशासक संविधान के आधार कार्य करते हैं इसमें संविधान के अनुसार करों को लगाना एवं वस्तुओं का वितरण करना होता हैं यहाँ कराधार से तात्पर्य हैं, वे नियम जो संविधान के अनुसार हैं तथा जिनका पालन करना प्रशासक के लिए अनिवार्य हैं । जैसे अगर कर की दर उच्च हैं तथा सभी वस्तुओं पर हैं तो प्रशासक उसे व्यवहारिक तरीके से लागू कर सकते हैं परन्तु जब कर कुछ ही वस्तुओं पर हो तो प्रशासक इसे बदल नहीं सकते हैं ।

कौन सी वस्तुओं पर किस प्रकार का कर होगा, इसका चुनाव तीनों प्रकार के प्रशासक करेंगे जैसे :-

1. **बिना कर देने वाले घरेलू प्रशासक** :- येस्थानीय स्तर कि वस्तुओं का इस प्रकार वितरण करेंगे कि वो न केवल विदेशी प्रशासकों को उत्साहित करे वरन इसके साथ स्थानीय स्तर की वस्तुओं का उपभोग भी बढे ।
2. **विदेशी प्रशासक** :- ये कर नहीं देते हैं ये केवल करों को व्यवहारिक स्तर पर रखेंगे कि उन्हें बाजार में इस प्रकार वस्तुओं को उतारेंगे की वे स्वयं ही अधिक कर एकत्रण में सहयोग करें।
3. **एक्साइज टैस्क देने वाले घरेलू प्रशासक:-** क्योंकि तीनों में से केवल ये ही करों का भुगतान करते हैं अत: वस्तुओं पर करों की दरों को व्यवहारिक स्तर पर रखने का प्रयास करेंगे ताकि ये स्वयं फायदे में रहे। इस प्रकार करों का संयोजनात्मक ढांचा घरेलु प्रशासक से – विदेशी प्रशासक कर देने वाले हैं – करनदेनेवालेप्रशासकतथाअधिक प्रशासकों से – कम प्रशासको की तरफ अग्रसर होता हैं।

करधार/ करों का मापदण्ड क्या हैं ?

प्रत्येक प्रशासक ये चाहता हैं कि कुछ मात्रा में उसको भी आमदनी प्राप्त हो यानी जिसमें उसका स्वयं का लाभ हो, अत:वह स्वयं के उपभोग की वस्तुओं पर कम कर रहने का प्रयास करेगा । साथ ही जन उपभोग की वस्तु पर सबसे पहले टैक्स लगाने की सोचेगा । यहाँ पर प्रशासक को अधिक लाभ होगा या अतिरिक्त लाभ का अवसर होगा यदि वह निजी उपभोग की वस्तुओं की अपेक्षा , जनता के उपभोग की वस्तुओं पर अधिक कर लगायें । इसी कारण बुचानन कहते हैं, कि वह (Optimum) ओपटीमम कर आधार/ मापदंडों को चुने ताकि उपरोक्त अनियमितताओं से बचा जा सके। परन्तु प्रसाशक वर्ग के लिए व्यवहारिक कराधार का चुनना कठिन होता हैं। अत: उपरोक्त समस्याओं के समाधान से हेतु संविधान में वर्णित प्रावधानों के अनुसार कर का लगाना एवं वसूलना होना चाहिए। साथ ही जितना हो सके कर लगाने का दायरा विस्तृत होना चाहिए क्योंकि सिमित दायरे से प्राप्त करों से समाज कल्याण पूर्ण रूप में नहीं हो पायेगा बहुत सारे देशो में करों को लगाने का सीमित दायरा होता हैं जोकि व्यवहारिक नहीं हैं ।

इस प्रकार बुचानन, लेवायथन मॉडल को संविधान के अनुसार करों के लगाने के आधार पर कल्याण के लिए उपयोग बढ़ाने को स्पष्ट करते हैं

लेवयाथन मॉडल की अन्य प्रारूप से तुलना :-अन्य मॉडल/प्रारूप भी सरकार के कर स्त्रोतों के वृहदीकरण एंव संवृद्धि से संबंधित हैं जिसमें तीन प्रमुख हैं

1. **तार्किक चुनाव मॉडल :-** पहले में सरकार की संवृद्धि का मुख्य स्त्रोत जनता होती हैं। इसमें सरकार का आकार जन इच्छानुसार निर्धारित होता हैं। साथ ही 19 वी० एंव 20 वी० सदी में वोट देने वाली जनता में निम्न आय वर्गका प्रतिनिधित्व बढ़ा हैं अत: सरकार पर दबाव बढता हैं करों की दरो में वृद्धि करने का जिससे सरकार के संसधानों में वृद्धि हो जाती हैं साथ ही इस सदी में महिलाओं मताधिकार प्राप्त होने से भी सरकारी नीतियो में बजट व संसधानो के एकत्रीकरण में नये प्रावधान उभरे हैं।

2. **पाथ निर्भरता मॉडल(Path dependency module):-**इस प्रारूप में स्पष्ट किया हैं कि अगर सरकार के व्ययमें एक बार किसी कारण से वृद्धि हो जाए जैसे मंदी के कारण (Depression) या युद्ध के कारण , तो कुछ समय बाढ़ उस कारण के समाप्त होने के बाद भी अर्थव्यवस्था अपनी पहले वाली स्वभाविक अवस्था में कभी वापस नहीं आ पाती हैं। क्योकिं एक स्थिति के बाद बहुत से दबाव समूह कार्यरत हो जाते हैं, जो सरकारी संसाधनों को निजी हित में मोड़ने का दबाव बनाते हैं, जिसका नतीजा होता हैं, कम आर्थिक संवृद्धि के साथ बड़ी सरकार का अस्तित्व में होना।
3. **बजट वृहदीकरण मॉडल**:-यह निक्सनेन प्रारूप हैं। जिसे (The Bilateral Monopoly Model of Budget Maximization) भी कहते हैं। इस मॉडल के अनुसार सरकार की संवृद्धि का कारण उपरोक्त दोनों प्रारूपों में वर्णित नागरिकों की मांग या दबाव समूह न होकर सरकार में अंतर्निहित दशा/स्थिति (Circumtances) हैं।

   निक्सनेन का प्रारूप (Neoclassical Economics Behaviour Assumption) हैं। निक्सनेन के मॉडल में लेवायथन के मॉडल से भिन्न बजट वृहदीकरण के उपकरण के रूप में केवल नौकरशाहो/प्रशासनिक अधिकारीयों को शामिल करता हैं जबकि लेवायथन नौकरशाह एंव राजनेताओं को सरकार की कर वृद्धि में महत्वपूर्ण कर्ता (actor) मानता था।

12.3 निक्सनेन मॉडल

लेवायथन मॉडल प्रारूप जहाँ एकात्मक प्रारूप हैं। वही निक्सनेन मॉडल संघात्मक प्रारूप की तरफ की बढ़ता हैं। क्योकिं यह नौकरशाहों में सर्वोच्च यानी राज्य स्तर से लेकर लोकल (स्थानीय प्रशासनिक इकाईयों स्तर) के प्रशासनिक अधिकारियों को शामिल करता हैं। बजट वृहदीकरण केमाध्यम से सरकारी राजस्व में वृद्धि इन अधिकारियों की कार्य कुशलता एंव इनके द्वारा उपयुक्त मांगो को रखे जाना बताते हैं। जैसे – प्रशासनिक अधिकारियों का वेतन बहुत उपयुक्त होना चाहिए, इनके दफ़्तर की पूर्वनिर्धारित शर्तो/ आवश्यक मूलभुत- शर्तो का पुरा होना चाहिए, इनकी जनता में प्रतिष्ठा होनी चाहिए, शक्ति होनी चाहिये, साथ ही अपने दफ़्तर को चलने की पूरी स्वतंत्रता हो ताकि आसानी से दफ्तर को संचालित किया जा सके (Ease of managing the bureace) साथ ही बदलावों को लेन में भी व्यवहारिक स्वतंत्रता उन्हें प्राप्त हो उपरोक्त सभी चर एकात्मक कार्य हैं ब्युरो/ दफ़्तर द्वारा बजट को पूर्णता में रखने हेतु निस्कनेन ने बतया कि जो वित्त की पूर्ति वाली संस्था या जारी करने वाली हैं वह (Sponsor) प्रायोजक हैं जो, वित्त उपलब्ध कराते हैं।

इन्हीं प्रयोजकों का प्रतिनिधित्व राजनेताओं द्वारा किया जाता हैं, ये राजनेता सदैव प्रयत्न करते हैं, कि इनको पुनःपुन: चुना जाए । दूसरी तरफ वित्त का स्त्रोत प्रयोजक हैं अत: प्रशासनिक अधिकारीयों एंव प्रयोजकों के मध्य एक एकात्मक द्विपक्षीय संबंध होता हैं। क्योंकि प्रशासनिक अधिकारीयों के पास प्रायोजकों के अतिरिक्त वित्त की दृष्टि से प्रयोजक स्वयं को उच्च स्थान पर पाते हैं । साथ ही शक्ति प्रशासनिक अधिकारीयों के पास होती हैं अत: वो यकीन रखते हैं कि शक्ति की

दृष्टि से उनका स्थान सर्वोच्च हैं। साथ ही सूचनाओं की दृष्टि से भी प्रशासनिक अधिकारी सर्वोच्च स्तर पर होते हैं तथा प्रायोजकों से सर्वोच्चता के दृष्टिकोण से बातचीत की क्षमता रखते हैं क्योकिं प्रायोजकों को इसकी कोई सूचना नहीं होती हैं, कि दफ़्तर के खर्च का वास्तविक मूल्य क्या हैं। इस तरह से प्रशासनिक अधिकारी सूचनाओं के दृष्टिकोण से सर्वोच्च स्तर पर आ जाते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के मध्य नजर निष्कर्षत: परिणाम यह होता हैं कि दफ्तर या प्रशासनिक अधिकारी आवश्यकता से कहीं बड़ा बजट बनाते हैं। यानी सरकारी वस्तुओं (Public goods) की जितनी आवश्यकता समाज (Society) को होती हैं, उससे कही अधिक बड़ा बजट को बनाते हैं इस प्रकार प्रशासनिक अधिकारी बजट को वृहदीकरण कर देने का प्रयास करते हैं। जैसा कि निक्सनेन मॉडल प्रारूप के नाम से ही विदित हैं, राजस्व या बजट वृहदीकरण मॉडल प्रशासनिक अधिकारियो के द्वारा संचालित होता हैं। इसमें वो उपरोक्त वर्णित प्रकिया द्वारा इसको संभव होता दर्शाते हैं। परन्तु व्यवहार या अनुभाविक स्तर पर क्या ऐसा संभव हो पता हैं थोमसन यही प्रश्न उठाते हैं, आगे हम इस मॉडल का अनुभाविक परीक्षण प्रस्तुत करेंगे कि यह कितना सफल हैं।

क्योंकि थामसन इस पर कई तरह के प्रश्न चिन्ह्न लगाते हैं जैसे- पहला प्रयोजन जो ट्रस्टी हैं वो विभिन्न ब्यूरो/ दफ्तरों से डील कर सकता हैं, साथ ही बजट आबंटन व लागत के मध्य विभिन्न चरणों का ध्यान/ विवरण रखने हेतु अनेक समीतियाँ कार्यरत रहती हैं जो सूचनाएं दे सकती हैं। साथ ही थामसन बताते हैं, कि प्रशासनिक अधिकारी सरकारी वस्तुओं के उत्पादन व लागत का हिसाब जहाँ लगाते हैं वहाँ प्रयोजन के प्रतिनिधि भी उपस्थित होते हैं क्योकिं प्रशासनिक अधिकारी (Public goods production) सरकारी वस्तु उत्पादन के बारे में सुचनाओं को बदल कर प्रस्तुत कर सकते हैं।

इस प्रकार अर्थशास्त्रीय भाषा में इस मॉडल को लागू करने में (Asymmetric Information) ऐसिमेट्रिरिक इन्फोर्मेशन Principal Agent Problem (प्रिंसिपल एजेंट प्रोब्लम), मोरल हजार्ड (Moral Hazard)।

बजट वृहदीकारण हेतु अन्य आलोचक ब्रिटोन ने – बताया कि बजट वृहदीकरण हेतु टैक्स (करों) की दर को बढ़ाना आवश्यक होगा। अगर बजट वृहदीकरण हेतु प्रशासनिक अधिकारी स्वयं की सूचना सर्वेच्यता के आधार पर ऐसा करते हैं तो अगली बार राजनेताओं द्वारा चुनाव जितना संभव नहीं होगा। अर्थात सरकार की कर नीति का जनता की अपेक्षाओं (अधिमान) के अनुरूप न होना। साथ ही सरकार संगठन की स्वयं की गतिशीलता भी बहुत अधिक होती हैं, अत: वो बजट की आवश्यकता एवं व्यवहार को आसानी से छानबीन कर सकते हैं यह केवल तभी संभव हैं जब सरकारी तंत्र एकदम जड़ होकर रहे, या उसकी गतिशीलता नगण्य हो। इस तरह की जड़ (regid) मान्यताए पूरा होना कठिन हैं।

साथ ही यह भी संभव हो सकता हैं कि जब मोनिटरिंग समीति एंव प्रशासनिक अधिकारी एक साथ मिल जाये तथा सूचनाओं को बजट वृहदीकरण हेतु प्रस्तुत करे तब प्रयोजको के पास इसकी कोई सुचना नहीं होगी तथा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा बजट वृहदीकरण का कार्य संभव

हो सकता हैं ।इस तरह के गढ़बंधन मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के बाद उत्पन्न करते हैं । आगे हम वास्तविक या आनुभविक प्रभाव एवं इसकी प्रभाविता क्या हैं को स्पष्ट करेंगे तब पता चल पायेगा कि यह प्रारूप किस स्तर तक सफल है, साथ ही जान पायेंगे कि इसकी वास्तविक कमियाँ क्या हैं ।

निक्सनेन मॉडल में कार्यो का विभाजन एक आवश्यकता है, (Division of labour) परन्तु मंत्री/मिनिस्टरस जो सरकार में होते हैं वो भी अपने डिपार्टमेंट (महुकमा) का बजट वृहदीकरण चाहते हैं तथा उनकी मांगे संसदीय समीतियों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती हैं । संसदीय समीतियों कि सिफारिसे बजट वृहदीकरण को लेकर इस प्रकार होती हैं, कि जिससे कार्यपालिका के सभी स्तरों पर खर्च के लिए अधिकतम प्रवाधान हो ताकि समाज में सरकारी वस्तुओं एंव सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके में अत: व्यवहारिक स्तर पर ये कहना कि केवल प्रशासनिक अधिकारी बजट वृहदीकरण हेतु प्रयासत रहते हैं उचित प्रतीत नहीं होता हैं ।

साथ ही ये कहना कि प्रशासनिक अधिकारियों की स्थिति उनके पास उपलब्ध विश्वसनीय सूचनाओं के कारण हैं यह भी व्यवहारिक स्तर पर उचित नहीं प्रतीत होता हैं क्योंकि प्रयोजकों के पास पिछले कई सालों का बजट रिव्यू (बजट के प्रस्ताव)उपलब्ध होते हैं जिसका आलोचनात्मक परीक्षण करके वो बजट की वर्तमान समय में उचित व्याख्या भली भांति समझ सकते हैं, तथा विशेषज्ञयों की मदद से इसका विशलेषण कर आसानी से निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सार्वजनिक वस्तुओं एंव सेवाओं की कितनी आवश्यकता बढ़ी हैं उसी के अनुसार प्रयोजको के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं तथा उसी अनुपात बजट आबंटन होता हैं, इस प्रकार बजट वृहदीकरण केवल प्रशासनिक अधिकारी अपनी सूचनाओं के आधार पर कर पाये संभव नहीं होता हैं ।

निक्सनेन का प्रारूप संकीर्ण दृष्टिकोण का शिकार हो जाता हैं (क्योंकि अगर भारतीय दृष्टिकोण से देखें तो प्रधानमंत्री व अन्य मन्त्रियों की भूमिका गौण हैं ।) अगर अमेरिका के दृष्टिकोण से देखे तो वहां के राष्टपति की भूमिका गौण हैं साथ ही संसदीय विधायिका पर कार्यपालिका की सर्वोच्चता दर्शाने का प्रयास करता हैं । इस प्रकार यह प्रारूप जिस समय में दिया गया था तभी इसकी वास्तविकता प्रसंगिक थी । वर्तमान सरकारों के प्रारूप में इसकी प्रसंगिकता संदिग्ध हैं ।क्योंकि इसमें कही से ये स्पष्ट नहीं होता हैं कि राजनेता भी बजट वृहदी करण हेतु प्रयासरत रहते हैं उनकी भी रूचि होती हैं, अधिकतम सरकारी वस्तुओं एंव सेवाओं को जरुरत मंद जनता में पहुंचा ने की ।

साथ ही निक्सनेन मानते हैं कि सूचनाओं के आधार पर ब्यूरोक्रेट्स अधिक उच्च स्तर पर रहते हैं तो यह "सुचना युग " वर्तमान युग में प्रयोजको के पास भी बेहतर व विश्वसनीय सूचनातंत्र उपलब्ध होता है, अत: ये संभव नहीं है, कि सुचना के प्राप्ति से आधार पर ही प्रशासनिक अधिकारी बजट वृहदीकरण को संभव बना सकते हैं।

परन्तु निष्कर्षत: कह सकते हैं कि कुछ प्रशासनिक अधिकारी ऐसे हो सकते हैं जो जनहित को सर्वोपरि रखते हुए इस प्रकार नीतियों के निर्धारण हेतु योगदान दे की बजट वृहदीकरण कुछ मात्रा में हो सकता हैं। साथ ही हो सकता कि प्रशासनिक अधिकारीयों के इस बजट वृहदीकरण के प्रस्ताव

से प्रयोजक भी समानता का दृष्टिकोण रखे तब सार्वजनिक वस्तुओं का एवं सेवाओं अधिकतम लाभ जनता तक पहुँच सकता हैं। कुछ हद तक इस प्रकार के प्रयास प्रशासनिक अधिकारी इसलिए भी कर सकते हैं ताकि उन्हें भविष्य में (प्रमोशन) प्राप्त हो सकें। वैसे एकमात्र प्रारूप है निक्सनेन का बजट वृहदीकरण में प्रशासनिक अधिकारियो की भूमिका को दिखाया हैं, वह मानता हैं कि प्रशासनिक अधिकारी राज्य से लेकर स्थानीय स्तर तक विभिन्न स्तरों पर होते हैं अत; यह एक संघात्मक प्रारूप कोदर्शाता है, प्रशासनिक अधिकारीयों के दृष्टिकोण से, यहाँ सभी स्तरों की जनता की आवश्यकतायोंको समझ कर उनको संघात्मक रूप में बजट वृहदीकरण हेतु उपयोग किया जा सकता हैं। अर्थात सामाजिक कल्याण फलन को उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिंदु पर स्पर्श करके इसे दिखाया जा सकता हैं। (Budget – Maximizing Govt Agencies : An emperical Test)

अनुभाविक परीक्षण :-

निक्सनेन ने बताया कि प्रशासनिक अधिकारी ही बजट वृहदीकरण के माध्यम से अधिकतम लोगों का अधिकतम भला कर सकते हैं निक्सनेन के प्रारूप में सरकारी एजेन्सी जो कि अपने बजट का वृहदीकरण करना चाहती हैं तथा 'राजनेता' जो सरकार के संचालन हैं, जिनको जनता का वृहद जनादेश मिला हैं, से प्रशासनिक अधिकारी अपने बजट का वृहद सूचनाओं का उपयोग कर उपरोक्त प्रयोजकों से बारगेनिंग (मोलभाव) कर बजट का वृहदीकरण करते हैं। क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियो का दृढ़मत (मानना) होता हैं कि सरकारी सेवाओं की उपलब्धता कराने के प्रति तो प्रयोजकों का रुख लचीला होता हैं, परन्तु सरकारी क्षेत्र में श्रम की (Labour) की मांग न बढे या यह श्रम की मांग कम से कम हो ऐसा, दबाव बना के रखा जाता हैं। प्रयोजकों के द्वारा (यहाँ प्रयोजको से तात्पर्य हैं, बजट आबंटन में शामिल राजनेता एंव समीतियों से हैं।)

निक्सनेन बताते हैं, कि अधिकतर परम्परागत सरकारों में मांग को नहीं बढ़ने देने के कारण श्रम की क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता हैं इस कारण उत्पादन व्यवहारिक स्तर तक नहीं पहुँच पाता हैं अत: जनता को सरकारी वस्तुओं एंव सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं ।

निक्सनेन ये भी स्पष्ट करते हैं कि सरकार के मुख्य निति निर्माता एंव मुख्य कार्यकारी अधिकारी समाज कल्याण कारी योजनाओं को जानबूझ कर दबाते हैं उन्हें व्यवहार में धरातल पर लागू करने में अरुचि व विलम्ब व कार्यरत व हो का प्रयास करते, इस स्तर पर वो अपने को सर्वोच्च मानकर अपने अधिकारों का स्वतंत्रता पूर्वक आत्मनिष्ठा के अनुसार व्यवहार करते हैं तथा वस्तु एंव सेवाओं की आपूर्ति जनता को हो सके इसमें बाधक बन जाते हैं। निस्कनेन ने जो, अपने परिकल्पना में बताया हम उसे अनुभाविक परीक्षण के आधार पर समझने के प्रयास में निम्नलिखित प्रमुख तध्य उभर कर सामने आतें हैं।

उन्होंने अपनी परिकल्पना में बताया कि सरकारी ऐजेंसी मुख्यतः प्रशासनिक अधिकारी बजट का वृहदीकरण चाहते हैं अत: वो बारगेनिंग (मोलभाव) व सूचना श्रेष्ठता से,प्रायोजको से ज्यादा

बजट आबंटन प्राप्त कर लेते हैं पर गहराई से अवलोकन किया जाए ज्ञात होता हैं कि वो सार्वजनिक हित में उसका बहुत कम खर्च करते हैं।

निष्कर्ष यही निकलता हैं, कि बजट वृहदकरणतो सरकारी एजेंसियो से करवालिया जाता हैं परन्तु व्यवहारिक धरातल पर यह तभी कर्यकारी या लाभकारी सिद्ध होगा जब वास्तव में सेवाओं एंव वस्तुओं हेतु जनता में मांग भी बढ़ी हुई हो। जबमांग एंव आपूर्ति में लचीले पन का संबंध होगा तभी व्यवहारिक सफलता मिल सकेगी।

साथ ही निक्सनेन मॉडलमें यह भी दिखया गया हैं कि विधायिका एंव कार्यपालिका मुख्यतः प्रशासनिक अधिकारी, प्रयोजको से तोलभाव के संबंधो से संचालित हो रहे हैं यहाँ यह मानकर चला जा रहा हैं कि प्रयोजको को सरकारी वस्तुओं एंव सेवाओं का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं हैं परन्तु ऐसा होता नहीं हैं सुचना युग में प्रयोजको के पास भी वास्तविक जनता की आवश्यकताओं की जानकरी होती हैं जो विभिन्न सिमितियो के माध्यम से पूर्व वर्षो के बजट दस्तावेजों व वर्तमान आवश्यकताओं के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित हैं, अत: सरकारी एजेन्सी, प्रयोजकों उसी मात्रा में धन का आबंटन करते हैं, जिस मात्रा में जनता को वास्तव में आवश्यकता का अनुमान लगाया गया होता हैं। अत: (Surplus Zero) अतिरिक्त धन के नाम पर शून्य से अधिक कुछ प्राप्त नहीं हो पाता हैं। इसके साथ यह भी देखा जा सकता हैं कि जैसे-जैसे सरकारी वस्तुओं एंव सेवाओं की मांग जनता में बढती हैं निक्सनेन मानते हैं कि प्रशासनिक अधिकारी बजट इस प्रकार लचीला रुख मध्य नजर रख कर बनाते हैं कि मांग एंव आपूर्ति में लचीलापन का संबंध स्थापित हो जाए वो इसे स्पष्ट, करते हुए कहते हैं कि जब राज्य एवं स्थानीय स्तर की सरकारे मिलकर वस्तुओं एंव सेवाओं की मांग करती हैं तो ये दोनों संस्थाये इसका संधात्मक रूप बनती हैं। जब ये सेवाओं की मांग करती हैं तो उसी अनुपात में श्रम (Labour) की मांग बढ़ जाती हैं। इस प्रकार निक्सनेन स्पष्ट करना चाहते हैं कि इन दोनों का संबंध लचीला/सातरव(Elastic) संबंध होता हैं मांग बढ़ने पर श्रम को बढ़ाकर सेवाएं एंव वस्तुएं प्रदान कर दी जाती हैं। निक्सनेन मानते हैं कि संधात्मक मॉडल अच्छा हैं इसमें राज्य एंव स्थानीय स्तर की सरकारों की मांग के अनुसार आपूर्ती सुनिश्चित कर दी जाती हैं। अत: यह बजट वृहदीकरण का प्रशासनिक अधिकारियो द्वारा का सर्वश्रेष्ठ प्रारूप हैं।

कमियाँ:-

1. यह जरुरी नहीं हैं कि सारे प्रशासनिक अधिकारी बजटवृहदीकरण हेतु उत्सुक (Intrested) हो।
2. प्रयोजको से मोल-भाव में हो सकता है, प्रशासनिक अधिकारी अधिक सृदृढ स्थिति में हो।
3. ये भी हो सकता है, कि सरकारी प्रयोजका(Agencies) का लक्ष्य (Motive) कमजोर हो, स्वयं ही प्रशासनिक अधिकारियो से कार्य के स्तर पर तालमेल न कर पाये।

परन्तु उपरोक्त कमियां पर्याप्त नहीं हैं निक्सनेने मॉडल की आलोचना कर उसको अव्यवहारिक बताने हेतु। सिद्ध करने लिए।

खूबियाँ:-

यह मॉडल इस आधार पर अधिक सफल प्रतीत होता हैं कि राज्य एंव स्थानीय सरकारें बहुत अधिक मात्रा में स्वयं को विलय रखती हैं साथ ही ये बजट पर "गूढ़ दृष्टि" रखने का काम भी करती हैं।

12.4 क्षमता और दक्षता में विनिमय

इसप्रकार सैद्धांतिक रूप से लेविथान हाइपोथेसिस पर आधारित मॉडल एकात्मक सरकार के द्वारा सरकारी बजट को अधिकतम स्तर पर पहुँचने का तर्क देते हैं। जिसको व्यय करके उच्चतम सामाजिक कल्याण के स्तर पर पहुंचा जा सकता हैं यह दक्षता के समग्र स्तर उच्चतम स्तर को बतलाता हैं।उपयुक्त कर मापदंडों के द्वारा इन मॉडलो में समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास किये जा सकते हैं। कर संरचना और व्यय संरचना के माध्यम से दक्षता और समता दोनों प्रभावित होती हैं। जिनमे संभव्य आवश्यक हैं। इसके साथ निक्सनेन मॉडल संघात्मक व्यवस्था का पक्षघर हैं। निक्सनेन मॉडल के अनुसार कर लगाने की शक्तियां और उसके व्यय का निर्धारण स्थानीय स्तर पर करने से, दक्षता और कल्याण में वृद्धि होगी। स्थानीय संस्थाओ में परस्पर प्रतिस्पर्धा का कर संग्रहण पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा। अर्थात"क्राउडिग आउट" नहीं होगा। और समता के साथ दक्षता का लक्ष्य भी प्राप्त किया जा सकेगा।

12.5 प्रयोग की गई मुख्य शब्दावली:-

ब्यूरोक्रेसी	:-	प्रशासक
ब्यूरो	:-	महुकमा/ दफ्तर
लेवायथन	:-	हाब्स द्वारा प्रस्तुत प्रारूप
रूलर	:-	प्रशासक(A set of population)
स्पोन्सर	:-	प्रयोजको
रेवेन्यु	:-	राजस्व

12.6 संदर्भ पुस्तके:-

लेखक		पुस्तक
• आर्मी	-	दा फ्रिज्म रिजोल्यूशन वाशिंगटन रिगनरी।
• बरनान एंव बुचानन लेवायथन	-	दुवा र्ड्स ए टैक्स कोन्सटीट्यूशन फार
• होलकोम्ब	-	एन इकोनॉमिक थ्योरी आफ ब्यूरोक्रेसी
• मूलर	-	पब्लिक च्वाइस III केमिब्रज प्रेस युनिवर्सिटी
• तन्जी	-	पब्लिक स्पेंडिंग इन 20th सेंचुरी(केमिब्रज)

- सेमुअलस - दा प्योर थ्योरी आफ पब्लिक एक्सपेंडीचर रिव्यू आफ इकोनोमिक्स एण्ड स्टेसटेरिजम्स

12.8 अभ्यास प्रश्न

1. हाब्स द्वारा वर्णित लेवायथन मॉडल की प्रमुख विशेषतायें बताइये ?
2. क्या लेवथन प्रारूप व्यवहारिक स्तर पर कर एकत्रण में वृद्धिकरण को संभव बना पाता हैं ? आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ?
3. क्या आपके अनुसार निक्सनेन प्रारूप, लेवथन प्रारूप में सुधार को दर्शाता हैं ? अगर हाँ तो कैसे स्पष्ट करें तर्को सहित।
4. निक्सनेन प्रारूप की प्रमुख विशेषताओं को दर्शाते हुए स्पष्ट करें कि यह 20 वी० सदी के सरकारों के कराधार का विवरण प्रस्तुत करने में कहा तक सक्षम हैं ?
5. बुचानन का लेवायथन प्रारूप परम्परागत कराधारों वाली सरकारों से किस रूप में भिन्न हैं तर्क सहित स्पष्ट करें।
6. वर्तमान सरकारों के लिए लेवायथन मॉडल को कौन प्रारूप को व्यवहारिक स्तर पर लागू कर सकते हैं ? और क्यों उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

इकाई – 13

भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव, वृद्धि, प्रवृत्तियाँ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव

13.3 भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

13.4 भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ

13.5 मूल्यांकन

13.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

13.7 शब्दावली

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक व्यय की अवधारणा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जिस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन में उपयोग महत्वपूर्ण है ठीक उसी प्रकार लोकवित्त के अध्ययन में सार्वजनिक व्यय ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है इसलिए सार्वजनिक व्यय की अवधारणा की जानकारी आवश्यक है। समाज कल्याण, आर्थिक प्रगति तथा नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों द्वारा किये जाने वाले व्यय को सार्वजनिक व्यय कहते है। भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव के अध्ययन का उद्देश्य उन परिस्थितियों को व्यक्त करता है जिनमें भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को अध्ययन का उद्देश्य उन कारणों को व्यक्त करना है जिनकी वजह से भारत में सार्वजनिक व्यय निरन्तर बढ़ा है। भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियों के अध्ययन का उद्देश्य यह बताना है कि किन मदों पर कितना व्यय किया जाता है और किन मदों में अधिक और किन मदों पर कम सार्वजनिक व्यय करने की प्रवृति है।

13.1 प्रस्तावनाः-

वर्तमान कल्याणकारी राज्यों के लिए सार्वजनिक व्यय अनिवार्य है। भारत की स्वतंत्रता उपरान्त सार्वजनिक व्यय ने अर्थव्यवस्था को कठिनाइयों की स्थिति से निकालने के लिए महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। सार्वजनिक व्यय आर्थिक गतिविधियों को नियमित करता है तथा आर्थिक विकास के दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करता है। यही कारण है कि भारत सरकार की आय और व्यय में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति है। वास्तव में सरकार सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में जितनी जल्दी सम्भव हो सके आर्थिक वृद्धि के लिए अपनी गतिविधियों का विस्तार करना चाहती है। अतः जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर की बढ़ती हुई गतिविधियों की धारणा भारत के सार्वजनिक व्यय की वृद्धि में झलकती है।

13.2 भारत में सार्वजनिक व्यय का उदभव

भारत का आकार सघनाकार है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से यह एक बड़ा देश है जहाँ पर प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता पायी जाती है परन्तु यहाँ पर कृषि अपनी पिछड़ी अवस्था में है, औद्योगिक दृष्टि से भारत का विकास कम हुआ है। प्रति व्यक्ति आय कम है तथा जीवन स्तर भी गिरा हुआ है । स्वतंत्रता से पूर्व सरकार मुख्य उद्देश्य देश में सुरक्षा एवं शान्ति बनाये रखना था इसलिए सार्वजनिक व्यय का अधिकांश भाग सुरक्षा पर ही व्यय कर दिया जाता था । व्यय का थोड़ा सा भाग ही विकास कार्यो पर व्यय किया जाता था । 1939-40 में सरकार का सुरक्षा कार्यो पर व्यय 49.54 करोड़ रू. था जो बढ़कर 1944-45 में 458.22 करोड़ रूपये हो गया था । 1939-40 में सामाजिक सुरक्षा पर 18.5 करोड़ रू. व सार्वजनिक निर्माण कार्यो पर 29.6 करोड़ रू. था । अतः प्राकृतिक साधनों के विदोहन करने, कृषि एवं उधोग का विकास करने, लोगो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, देश में आन्तरिक शान्ति व बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था करने तथा आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में उन्नति हेतु देश में सार्वजनिक व्यय का उदभव हुआ और उसमें वृद्धि हुई ।

13.3 भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारण

स्वतंत्रता के बाद भारत के सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जिसके लिए आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कारण उत्तरदायी है जैसेः

1. भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के आर्थिक कारणः-

1. **योजना बद्ध आर्थिक विकास पर भारी व्ययः-** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों पर सार्वजनिक क्षेत्र किया गया । जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 1960 करोड़ रूपये का व्यय हुआ वहाँ 1990-91 में 98272 करोड़ रू. व्यय हुआ । 2010-11 में यह व्यय बढ़कर 11,08749 करोड़ रू. हो गया ।

2. **सार्वजनिक ऋणों पर बढ़ता ब्याज भुगतानः-** देश के विकास कार्यो के लिए सरकार ने बड़े पैमाने पर आन्तरिक व बाह्य ऋण प्राप्त किये जिन पर प्रतिवर्ष पर्याप्त मात्रा में ब्याज की राशि चुकानी पड़ती है। 1950-51 में सार्वजनिक ऋणों पर केन्द्र सरकार का ब्याज भुगतान 37 करोड़ रू. था जो बढ़कर 1990-91 में 21498 करोड़ रूपये हो गया। वर्ष 2009-10 में इस मद पर 2,11,643 करोड़ रूपये किये गये वर्ष 2010-11 में यह व्यय 2,48,664 करोड़ रूपये तक बढ़ गया।
3. **आर्थिक सहायता में वृद्धिः-** केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न क्षेत्रो जैसे उधोग, व्यापार , कृषि , परिवहन,सार्वजनिक वितरण प्रणाली, खाद्य, ईधन, शिक्षा आदि के लिए आर्थिक सहायता व अनुदानों में भारी वृद्धि हुई है। केन्द्र सरकार की कुल आर्थिक सहायता 1990-91 में 9581 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर 2009-10 में 1,23,396 करोड़ रूपये हो गयी।
4. **मूल्य स्तर में वृद्धिः-** कीमतों में वृद्धि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कारण है। स्वतंत्रता के बाद वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई है। कीमतों में वृद्धि के कारण वस्तुओं की पूर्ववत् मात्रा खरीदने के लिए सरकार को पहले से अधिक व्यय करना पड़ता है फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है। कीमतो में वृद्धि के कारण उपभोक्ता मूल्य सूचकांक बढ़ जाता है जिसे फलस्वरूप के वेतन-भत्तों में वृद्धि करनी पड़ती हैं जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में और वृद्धि हो जाती है।
5. **आर्थिक सेवाओं पर व्यय में निरन्तर वृद्धिः-** स्वतंत्रता के बाद भारत में आर्थिक सेवाओं पर अत्यधिक व्यय बढ़ा है। आर्थिक सेवाओं में कृषि विकास, उद्योग विकास यातायात, सिंचाई, विद्युत, रसायन व उर्वरक आदि सम्मिलित है। सन् 1986-87 में आर्थिक सेवाओं की गतिविधियों पर लगभग 104 करोड़ रू. व्यय हुआ। सन् 1990-91 में यह व्यय 754 करोड़ रू. हुआ। 2000-01 में यह 1941 करोड़ तथा 2010-11 में आर्थिक सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय 336107 करोड़ रूपये हो गया।
6. **राष्ट्रीय आय में वृद्धिः-** देश की राष्ट्रीय आय में पिछले वर्षो में निरन्तर वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय आय वृद्धि के बदले में अपने व्यय को बढ़ाने के लिए सरकार सक्षम है जो कर राजस्व और अन्य आय के माध्यम से सरकार को आर्थिक राजस्व में हुई है। उदाहरण के लिए 1980-81 से 2007-08 के लिए प्रति व्यक्ति आय में 5.7 की दर से वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।
7. **गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमः-** भारत में सरकार गरीबी उन्मूलन और रोजगार सृजन कार्यक्रमों पर धन की एक अच्छी रकम खर्च कर रही है। इप कार्यक्रमों में मुख्य है- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि।
8. **सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना पर व्ययः-** देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए सुदृढ़ आधारभूत सरंचना तैयार करने हेतु भारत सरकार तथा राज्य सरकारो ने कई भारी व्यय किया है। जहाँ 1950-51 में केन्द्र सरकार के उपक्रमों की संख्या 5 थी व उन में पूंजी निवेश केवल 29 करोड़ रूपये था वहीं 9 वीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दौरान

केन्द्र सरकार के उपक्रमों की संख्या 234 तक पहुँच गयी और उनमें पूंजी निवेश 330649 करोड़ रूपये पर पहुँच गया। राज्य सरकारों ने भी अपने सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना और संचालन में काफी व्यय बढ़ाया है।

2. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सामाजिक कारणः-

1. **समाजिक सुरक्षा सेवाओं पर बढ़ता व्ययः-** भारत में गरीबी बेकारी, भूखमरी आदि के कारण सामाजिक सुरक्षा सेवाओं जैसे वृद्धावस्था पेंशन, निशुल्क शिक्षा, चिकित्सा सुविधाएँ, लोक निर्माण कार्य, राहत कार्यक्रम आदि की व्यवस्था पर एक कल्याणकारी राज्य के रूप में केन्द्र और राज्य सरकारों को करनी पड़ती है फलस्वरूप भारत के सार्वजनिक व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
2. **जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धिः-** भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनसंख्यामें विस्फोटक वृद्धि हुई है। जहाँ 1851 में भारत की जनसंख्या केवल 36.1 करोड़ रुपये थी वह 2001 में 102.9 करोड़ रुपये और 2011 में बढकर 121.02 करोड़ रुपये पर पहुँच गयी। जहां एक और जनसंख्या नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर भारी व्यय करना पड़ता है वहाँ बढ़ती जनसंख्या के लिए शिक्षा, चिकित्सा, बुनियादी सुविधाओं, सब्सिड़ी, समाज कल्याण, सामाजिक सुरक्षा आदि कार्यो पर भारी व्यय करना पड़ता है। योजनाबद्ध विकास के वर्षो में परिवार नियोजन पर अत्यधिक व्यय किया गया है।
3. **समाज कल्याण, शिक्षा व चिकित्सा सुविधाओं पर बढ़ता व्ययः-** कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण, सफाई, जलपूर्ति, शहरी विकास आदि कार्यो पर भारी व्यय करना पड़ता है परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

3. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के राजनैतिक कारणः-

I. **प्रतिरक्षा पर बढ़ता व्ययः-** केन्द्र सरकार के प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि हुई है। 1950-51 में प्रतिरक्षा पर कुल व्यय 168 करोड़ रूपये था जो बढ़कर 1990-91 में 10,874 करोड़ रू. 2000-01 में 49622 करोड़ रूपये तथा 2009-10 में 90668 करोड़ रूपये हो गया। इसके प्रमुख कारण कश्मीर समस्या, भारी स्थल सेना, उच्च सैनिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, युद्ध के सामान हेतु कारखानों की स्थापना, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सेना को सुसज्जित करना, पाकिस्तान, चीन व बंगला देश की शत्रुतापूर्ण नीति है।

II. **प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्थाः-** भारत में प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था भी सार्वजनिक व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। चुनाव, विधानसभाओं, संसद, राष्ट्रपति, भारी मंत्रीमण्डल आदि की व्यवस्था पर बहुत व्यय होता है। सरकार को कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध रखने पड़ते है। विभिन्न सयुंक्त राष्ट्र संघ (UNO) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) , विश्व बैंक आदि की सदस्यता स्वीकार करनी पड़ती है। यह सब खर्चीली व्यवस्था है फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है।

4. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के अन्य कारण:-

I. **पुलिस एवं प्रषासनिक व्यय में वृद्धि-** भारत में शान्ति व आन्तरिक सुरक्षा के लिए पुलिस व प्रशासनिक शासन व्यवस्था को चलाने के लिए प्रशासनिक व्यय में तेजी से वृद्धि हुई है। कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बढ़ते वेतनमान एवं मंहगाई भत्ता आदि ने भी राजकीय व्यय ये बढ़ाया है। सन् 1950-51 में प्रशासन पर 21 करोड़ रूपये व्यय हुआ था जो सन् 1980-81 में 1603 करोड़ रू., 1990-91 में 7040 करोड़ रूपये और 2008-09 में 97087 करोड़ रूपये हो गया। 1980-81 में पुलिस पर कुल व्यय 1163 करोड़ रूपये हुआ वह 2000-01 में बढ़कर 23006 करोड़ रूपये हो गया।

II. **प्राकृतिक विपदाओं में राहत पर बढ़ता व्यय:-** देश में प्राकृतिक विपदाओं जैसे अकाल, बाढ़, भूकम्प, तूफान आदि से कई बार भारी जनधन की हानि होती है। तथा उनमें राहत पहुँचाने के लिए भारत सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है।

III. **कर संग्रहण व्यय में वृद्धि:-** किसी भी सरकार की आय में कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जहाँ 1950-51 में कर संग्रहण व्यय नाममात्र था। 1980-81 में कर एकत्रित करने पर 504 करोड़ रूपये व्यय हुआ। 1990-91 में 1973 करोड़ रूपये व्यय हुआ जो 2000-01 में 6570 करोड़ रूपये हो गया। सन् 2010-11 में कर संग्रहण व्यय बढ़कर 19093 करोड़ रूपये हो गया।

IV. **आतंकवाद पर नियंत्रण हेतु व्यय:** जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद, आंध्रप्रदेश में नक्सली हमलें, नागालैंड, असम मिजोरम में बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों पर नियंत्रण हेतु भारी सार्वजनिक व्यय करना पड़ता है।

V. **विस्थापितों के पुर्नवास पर बढ़ता व्यय:-** भारत में शरणार्थियों की समस्या किसी न किसी रूप में सदा बनी रही है। इसके अलावा आतंकवाद से त्रस्त विस्थापितों के पुर्नवास आदि पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है।

VI. **शहरीकरण:-**शहरीकरण ने नागरिक प्रशासन पर व्यय में वृद्धि करने के लिए प्रेरित किया है। न्यायालय, पुलिस, परिवहन, रेलवे, स्कूलों व कालेजो, सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों, पानी और बिजली की आपूर्ति, सार्वजनिक पार्को पर सरकारी व्यय आदि के कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हुई है।

13.4 भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ

विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय की प्रवृत्तियाँ अधिकतर आर्थिक विकास की स्थिति, सरकार का दृष्टिकोण, सरकार की योग्यता तथा देश में वर्तमान आर्थिक स्थितियो पर निर्भर करती है। सन् 1947 तक भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था तथा विदेशी सरकार ने देश को निर्धनता एवं अनियमितताओं के कुचक्र से निकालने के लिए कोई व्यापक विकासात्मक कार्यक्रम नहीं बनाया। दूसरे विश्वयुद्ध ने बढ़ती सीमा तक सार्वजनिक व्यय को प्रभावित किया। विभाजन में भी इसी प्रकार के प्रभाव थे। देश के स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर आर्थिक नीति में तीव्र परिवर्तन आये।

सरकार ने देश के आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए साकारात्मक कदम उठाये। योजनाकाल में विभिन्न विकासात्मक योजनाओं पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों का व्यय बहुत बढ़ गया।

योजनाकाल में भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है:-

1. सुरक्षा व्यय:-

यह भारत सरकार के व्यय की सबसे महत्वपूर्ण मद है। एडमस्मिथ के अनुसार, '' सुरक्षा धन सम्पत्ति से अधिक महत्वपूर्ण है। सुरक्षा, बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक अनियमितताओं के विरूद्ध, राष्ट्रीय सौभाग्य के लिए एक आवश्यक शर्त है। सुरक्षा व्यय निरन्तर बढ़ रहा है। तथा आधुनिक युद्धकला के उपकरण अधिक मंहगें और परिष्कृत हो गये है। यद्यपि भारत का सुरक्षा व्यय सन् 1921 में 8.2 करोड़ रूपये था सन् 1934- 35 में 45 करोड. रूपयों तक और सन् 1938-39 में 46.18 करोड़ रूपयों तक बढ़ गया। सन् 1944-45 तक यह लगातार बढ़ता रहा और दूसरे विश्व युद्ध के दौरान यह 395.49 करोड़ रूपये तक पहुँच गया। अतः इस सम्बन्ध में लेयटन समिति की रिपोर्ट का कहना है'' भारत मे लोकवित्त का एक विशिष्ट लक्षण है- सुरक्षा दर 62 प्रतिशत का उच्चतम अनुपात है जो कि केन्द्रीय सरकार के कुल व्यय का उच्चतम अनुपात है तथा विश्व के सभी देशों से अधिक है। सन् 1929 में ए.जे. टायनबी ने यह कहते हुए अपने विचार प्रकट किए कि या राष्ट्रों की सूची में, भारत सुरक्षा पर 45.29 प्रतिशत व्यय के साथ सर्वप्रथम स्थान पर है। यू.एस.ए. और यू.के. में इसी वर्ष में यह प्रतिशतता क्रमशः 16.09 और 19.05 प्रतिशत थी। ''इस बड़े व्यय का मुख्य कारण यह था कि भारत ब्रिटेन पर निर्भर था भारत में आन्तरिक उपद्रव तथा राष्ट्रीयता की लहर को रोकने के लिए विदेशी सरकार को भारत मे फौज की आवश्यकता थी जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश अधिकारियों को बहुत बड़े वेतन दिये जाते थे।

व्यय को बढ़ाना आवश्यक हो गया। **यह कारण इस प्रकार है-**

1. स्वतंत्रता के तुरन्त बाद, देश में विघटनकारी शक्तियाँ थी जिन्हें रोकने के लिए बहुत सावधानी पूर्ण प्रयत्न आवश्यकता थी।
2. कश्मीर युद्ध तथा हैदराबाद भी पुलिस कार्यवाही भी व्यय में वृद्धि का कारण थी।
3. मूल्यों में सामान्य वृद्धि से भी सरकार को निपटना व इस प्रकार सुरक्षा विभाग को हर प्रकार की आधुनिक व नवीनतम सुविधाएँ उपलब्ध करवाकर दृढ़ करने की आवश्यकता थी।
4. चीन के साथ लगातार तनाव के कारण भी सुरक्षा व्यय गुणा बढ़ गया विशेषकर सन् 1962 के बाद चीन के आने के बाद, जब चीन ने भारत की उत्तरीय सीमा पर आक्रमण किया।
5. उत्तर और पश्चिम की ओर से निरन्तर खतरा बढ़ रहा। पाकिस्तान ने सन् 1965 और सन् 1971 मे भाग पर आक्रमण किया।
6. सेना सामग्री के क्षेत्र में भारतीय सेना को आत्म बनाना - जिसके फलस्वरूप सेना के साजो समान के लिए फैक्ट्रियाँ स्थापित की गई।
7. स्वतंत्रता के पश्चात् देश की भूमि सीमाओं में वृद्धि हुई जिसकी हर हालत में सुरक्षा करनी थी।

8. पर्याप्त तथा उच्च सेना प्रशिक्षण उपलब्ध करवाने के कारण भी सुरक्षा व्यय में वृद्धि हुई।
9. अनेक प्रकार की सहायक सैनिक सेवाएँ जैसे नैशनल कैडेट कोर (NCC), टेरीटोरियल आर्य के संगठन पर भी सरकार को काफी व्यय करना पड़ा।

वर्तमान स्थिति:-

राजस्व खाते पर कुल व्यय की प्रतिशतता में सुरक्षा व्यय को अग्रतालिका द्वारा दर्शायी गयी है:-

वर्ष	राजस्व खाते पर कुल	राजस्व खाते पर सुरक्षा	प्रतिशत
1950-51	346	164	45
1960-61	926	248	26
1990-91	73516	10874	15
2000-01	277838	37238	14
2010-11	958724	8734	13

उपयुक्त तालिका दर्शाती है कि सन् 1950-51 से 1960-61 सुरक्षा व्यय 33 प्रतिशत था परन्तु सन् 1980-81 के पश्चात् व्यय 15 से 18 प्रतिशत के बीच रिकार्ड किया गया। सन् 1950-51 में राजस्व खाते पर सुरक्षा व्यय 164.13 करोड़ रूपये था जो सन् 1980-81 में बढ़कर 3540.38 करोड़ रूपये हो गया। सन् 2000-01 में 37278 करोड़ रूपये हुआ और 2010-11 में सुरक्षा व्यय 87344 करोड़ रूपये हो गया।

1. प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि के परिणाम:-

सुरक्षा व्यय में अत्यधिक वृद्धि का देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योकि प्रतिरक्षा पर किया गया व्यय गैर विकास व्यय कहलाता है। यदि सुरक्षा पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता तो अनेक विकासोन्मुख योजनाओं को पूरा किया जा सकता था। कृषि एवं औद्योगिक प्रगति सम्भव होती तो इससे न केवल उत्पादन का स्तर बढ़ता बल्कि देश आत्मनिर्भरता भी हो जाता और जो जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है, उसे ऊँचा उठाया जा सकता। इस प्रकार सुरक्षा व्यय में अत्यधिक वृद्धि का सीधा अर्थ यही होता है कि विकास कार्यो पर किये जाने वाले व्यय में कटौती हो रही है अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई, विद्युत, उद्योग, खनिज, परिवहन के साधन आदि पर किए जा सकते है।

2. विकासात्मक एवं गैर-विकासात्मक व्यय में प्रवृत्तियाँ-

सन् 1980-81 में भारत मे विकासात्मक व्यय 24426 करोड़ रूपये था जबकि देश की स्वतंत्रता के समय (1950-51) यहीं व्यय 208 करोड़ रू. था तत्पश्चात् सन् 1990-91 में इसकी राशि 105922 करोड़ रूपये थी। यह सन् 2000-01 में 317464 करोड़ रूपये हुआ तथा सन् 2009-10 में बढ़कर 1183036 करोड़ रूपये हो गया विकासात्मक व्यय को निम्नतालिका में दर्शाया गया है-

विकासात्मक व्यय

वर्ष	विकासात्मक व्यय
1950-51	208
1980-81	24426
1990-91	105922
2000-01	317464
2009-10	1183036

गैर विकासात्मक व्यय 1950-51 में 320 करोड़ रूपये था जो बढ़कर 1990-91 में 70626 करोड़ रूपये तथा वर्ष 2000-01 के दौरान यह 298194 करोड़ रूपये हो गया और 2009-10 में यह बढ़कर 883416 करोड़ रूपये हो गया विभिन्न वर्षो में देश के गैर विकासात्मक व्यय को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	गैर-विकासात्मक व्यय
1950-51	320
1980-81	12419
1990-91	70626
2000-01	298194
2009-10	883416

बढ़ती हुई गतिविधियों, आन्तरिक कानून व्यवस्था और चीन के आक्रमण के कारण सुरक्षा व्यय आदि कारणों से थी।

3. प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रशासित प्रदेशों को ऋण तथा अनुदानः-

यह भारत की केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक व्यय का (दोनों राजस्व एवं पूँजी खातों पर) महत्वपूर्ण लक्षण है। सरकार अनुदानों और ऋणों के रूप में प्रान्तों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को सहायता उपलब्ध करवाती है। प्रान्तों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को दिए जाने वाली अग्रिम राशि तथा ऋण पूँजीगत खाते से लिए जाते है जबकि प्रान्तोऔर केन्द्र शासित प्रदेशों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान राजस्व खाते से प्राप्त होते है।

स्वतंत्रता के पश्चात् काल से सहायक अनुदानों एवं ऋणों पर व्यय का चित्रण निम्न तालिका में किया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	सहायक अनुदानों एवं ऋणों पर व्यय
1950-51	61
1980-81	1810
1990-91	7664
2000-01	42189
2009-10	106004

तालिका में स्पष्ट है कि 1950-51 में इस मद पर 61 करोड़ रू. व्यय किए गये। 1980-81 में यह राशि बढ़कर 1810 करोड़ रूपये, 1990-91 में 7664 करोड़ रू. , 2000-01 में 42189 करोड़ रू. हो गयी। सन् 2009-10 में इस मद पर व्यय 106004 करोड़ रू. हो गया। अतः केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रान्तों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों को दी जाने सहायता अनुदान तथा ऋण की राशि निरन्तर बढ़ी है।

4. सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ-

शिक्षा, गृह निर्माण, नागरिक पूर्तियाँ, पुर्नवास, श्रम एवं रोजगार, सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, कला एवं संस्कृति को सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएँ, श्रमिकों का कौशल और मानवीय साधनों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। इन सेवाओं पर व्यय तीव्रता से बढ़ रहा है क्योंकि हमारी सरकार प्रजातांत्रिक है तथा कल्याणकारी राज्य स्थापित करने के लिए वचनबद्ध है।

5. **आर्थिक सेवाएँ-**

आर्थिक सेवाओं पर व्यय में सम्मिलित है- कृषि एवं सम्बन्धित सेवाएँ, उद्योग, खनिज, जल, विद्युत विकास, विदेशी सेवाएँ आदि जो धीरे-धीरे राष्ट्रीय आय को बढ़ाती है। आर्थिक सेवाओं पर व्यय सन् 1980-81 में 406 करोड़ रूपये था, सन् 1990-91 में यह 754 करोड़ रूपये हुआ जो वर्ष 2000-01 में 1941 करोड़ रू. तब बढ़ गया तथा 2008-09 में यह राशि बढ़कर 7829 करोड़ रू. व 2009-10 में 9041 करोड़ रू. हो गयी। आर्थिक सेवाओं के शीर्षक के अधीन व्यय सन् 1971 से लगातार बढ़ रहा है।

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	आर्थिक सेवाओं पर व्यय
1970-71	864
1980-81	406
1990-91	754
2000-01	1941
2008-09	7823

5. **ऋण सेवा पर व्ययः-**

भारत सरकार समय-समय पर देश में विकासात्मक परियोजनाओं के लिए आन्तरिक साधनो से बड़े स्तर पर ऋण लेती है जिसके परिणाम स्वरूप ब्याज के रूप में एक बड़ी राशि देनी पड़ती है। इसलिए इसमें सम्मिलित है- बकाया ऋणों पर ब्याज का भुगतान, तथा हर वर्ष ऋण को घटाने अथवा छुड़ाने के लिए विनियोजन। यह वर्ष 1950-51 और 1980-81 में क्रमशः 32.4 करोड़ रूपये और 2957 करोड़ रूपये था। सन् 1990-91 में यह व्यय 34371 करोड़ रू. हुआ। सन् 1992-93 में ऋण साधनों का व्यय पर्याप्त मात्रा मे कम होकर 18082 करोड़ रू. हो गया तथा सन् 1996-97 में घटकर 15124 करोड़ रू. रह गया लेकिन 2008-09 में ऋण सेवा पर व्यय बढ़कर 58103 करोड़ रूपये हो गया जिसका आने वाले वर्षो में बढ़ने की सम्भावना है।

6. प्रशासनिक व्ययः-

सरकार को आन्तरिक सुरक्षा एवं कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए बहुत बड़ी राशि व्यय करनी पड़ती है। संसदीय प्रणाली का कामकाज, विदेशी सम्बन्ध तथा सामान्य प्रशासन आदि पर बहुत व्यय होता है। ब्रिटिश शासनकाल में यह खर्चा सदा उच्च रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने कई कल्याण योजनाएँ आरम्भ की है जिससे प्रशासनिक व्यवस्था पर बोझ रूपये हो गया। सन् 1990-91 में यह 7040 करोड़ रूपये तथा 2000-01 में 35809 करोड़ रूपये तक पहुँच गया। वर्ष 2008-09 में नगरीय प्रशासन पर व्यय 97087 करोड़ रूपये हुआ।

स्वतंत्रता क बाद नगरीय प्रशासन व्यय में वृद्धि को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

(राशि करोड़ रूपये में)

वर्ष	नगरीय प्रशासन पर व्यय
1950-51	21
1980-81	1603
1990-91	7040
2000-01	35809
2008-09	97087

13.5 मूल्यांकन

आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय का उपयोग बढ़ रहा है जिससे एक राष्ट्र का आर्थिक जीवन प्रभावित होता है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों में इसका अधिक महत्व है। रैग्नर नर्कसे का कहना है कि '' विकासशील देश निर्धनता के कुचक्र की पकड़ में होते है'' क्योकि वहाँ विकास संवर्धन के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव होता है। इन विपरीत परिस्थितियों में सार्वजनिक व्यय प्रभावी ढ़ंग से कार्य करता है तथा आर्थिक गतिविधियों को नियमित करता है। अतः ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक व्यय आवश्यक हो जाता है। सार्वजनिक व्यय कार्यक्रम की योजना

इस प्रकार की जाये जिससे आर्थिक विकास में दीर्घकालीन एवं लघुकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिल सकें।

दीर्घकालीन लक्ष्य-

सार्वजनिक व्यय के दीर्घकालीन लक्ष्यों का उद्देश्य करना नहीं बल्कि दीर्घकाल में उत्पादन का अधिक तीव्र दर प्राप्त करना है। इसलिए यह निम्नलिखित को लक्षित करता है-

1. **आधार-भूत एवं मुख्य वस्तुओं के उद्योग** दीर्घकालीन अनुदृश्य के सन्दर्भ में यह आधार-भूत तथा मुख्य पूँजीगत वस्तुओं के उद्योग स्थापित करने की नीति का अनुसरण करता है जिससे विकास को प्रोत्साहन मिले तथा भविष्य के निवेश के लिए पर्याप्त बचत हो।

2. **सामाजिक बन्धे खर्चे -** अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय, रेलवे, सड़कें बान्ध, नौ सेनाएँ, टैलीफोन, बैंक सुविधाएँ, शिक्षा संस्थाएँ तथा स्वास्थ्य सेवाओं आदि के लिए संरचना निर्माण के प्रयास करता है। यह सामाजिक बन्धे खर्चे आर्थिक विकास की मौलिक नींव माने जाते है।
3. **स्वयं-चालित वृद्धि -** अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय की एक और सकारात्मक भूमिका है- आत्म निर्भर एवं स्वयं चलित वृद्धि उत्पन्न करना। यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन लाने से ही सम्भव है। सार्वजनिक व्यय, अर्थव्यवस्था के प्रोत्साहन का दायित्व लेकर इसे वृद्धि की स्वयं- उत्पत्ति की स्थिति पर ले जाता है।

सार्वजनिक व्यय के लघुकालीन लक्ष्यों का उद्देश्य देश की अर्थव्यवस्था की तुरन्त आवश्यकताओं की पूर्ति करना। इसके लिए उपलब्ध साधनों का उचित निर्धारण करना। इच्छित परिणामों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक व्यय के लघुकालीन उद्देश्यों को निम्नलिखित की ओर लक्षित करना ,साधनों का ठीक निर्धारण।

1. प्राथमिकताएँ निश्चित करना।
2. आय व धन की असमानताओं को कम करना।
3. सन्तुलित क्षेत्रीय विकास।
4. केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकार प्रथाओं को रोकना।
5. रोजगार क अवसरों की उत्पत्ति।

सरकार का यह दायित्व बन जाता है कि वह निर्धनता के कुचक्र को तोड़ने के लिए कदम उठायें तथा अर्थव्यवस्था को स्वचालित बनाने के लिए प्रोत्साहन उपलब्ध करवाये। इसलिए सार्वजनिक व्यय निस्सदेह अर्थव्यवस्था को पिछड़ेपन और निर्धनता की दलदल से ऊपर उठायेगा तथा मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों से स्वचालित वृद्धि की प्रक्रिया को तीव्र करेगा।

13.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. सार्वजनिक व्यय क्या है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
2. भारत के सार्वजनिक व्यय के उदभव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. भारत के सार्वजनिक व्यय में तीव्र गति से वृद्धि के कारण बताइये।
4. भारत में प्रतिरक्षा व्यय के आकार एवं वृद्धि के कारण बताइये। प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि के परिणाम बताइये।
5. भारत जैसे अल्पविकसित देशों में सार्वजनिक व्यय की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
6. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए:-
   a. विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय।
   b. भारत में सुरक्षा व्यय।
   c. राजस्व खाता।
   d. पूँजीगत खाता।

7. भारत में सार्वजनिक व्यय में तीव्रगति से वृद्धि के कारण तथा सार्वजनिक व्यय की प्रमुख प्रवृत्तियों बताइये।

13.7 शब्दावली

1. सार्वजनिक वित्त
2. राजस्व खाता
3. सुरक्षा व्यय
4. सहायता अनुदान
5. आर्थिक सेवाएँ
6. पूँजी खाता
7. सामाजिक सेवाएँ
8. विकासात्मक व्यय
9. गैर विकासात्मक व्यय
10. प्रशासनिक व्यय
11. ऋण सेवा
12. दीर्घकालीन लक्ष्य
13. लघुकालीन लक्ष्य
14. सामाजिक बन्धे खर्चो
15. स्वयं-चलित वृद्धि
16. निर्धनता कुचक्र

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Public Finance By H.L. Bhatia
2. Public Finance By R.K. Lekhi
3. The Theory and working of Union Finance in IndiaBy R.N. Bhargava.
4. States' Finances in India. By K. Venkataraman.
5. राजस्व के सिद्धान्त तिलक नारायण हजेला

इकाई 14

सार्वजनिक व्यय मूल्यांकन एवं बजटीय रूप

रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 सार्वजनिक व्यय मूल्यांकन की कसौटी

- 14.2.1 अन्तर्निहित सिद्धान्त
- 14.2.2 यदि बजट का आकार निश्चित हो
- 14.2.3 यदि बजट का आकार परिवर्तनीय हो
- 14.2.4 अविभाजनशील प्रायोजनायें

14.3 सामाजिक लाभ-लागत विश्लेषण

- 14.3.1 सामाजिक लाभ एवं लागत का माप
- 14.3.2 सामाजिक लागत की प्रभावशीलता
- 14.3.3 मध्यस्थ वस्तुओं से लाभ

14.4 प्रायोजना के मूल्यांकन का सिद्धान्त

- 14.4.1 प्रायोजना का शुद्ध लाभ
- 14.4.2 प्रायोजना चयन में भार देना

14.5 बट्टा दर का चुनाव

14.6 प्रोग्राम बजटिंग

14.7 शून्य आधारित बजट पद्धति

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.11 अभ्यासों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

अच्छे व्यय निर्णयों में यह आवश्यक होता है कि वैकल्पिक कार्यक्रमों अथवा प्रायोजनाओं के सापेक्षिक गुणों की जानकारी प्राप्त की जाये और उसके अनुसार राशि व्यय की जाये। इस जानकारी हेतु हमारा उद्देश्य एक सामान्य अध्ययन विधि मालूम करना है जिससे इस कार्य को किया जा सके।

निकटवर्ती वर्षों में यह विश्लेषण वित्तीय अर्थशास्त्र के व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण विषय माना जाने लगा है। सामाजिक लाभ-लागत विश्लेषण का प्रयोग इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है।

14.1 प्रस्तावना

प्रायोजनाओं के मूल्यांकन में लाभ-लागत विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस विश्लेषण में अभौतिक लाभ एवं लागत का निर्णय एक समस्या उत्पन्न करता है जिन्हें कुछ स्थितियों में परोक्ष रूप से मूल्यांकित किया जा सकता है। दूसरी समस्या भविष्यकालीन मूल्यांकन की है जो अनेक आर्थिक विकृतियों एवं परिवर्तनों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं। उनका भी समायोजन करना आवश्यक हो जाता है। प्रायोजनायें भी विभाज्य एवं अविभाज्य हो सकती हैं। अविभाज्य प्रायोजनाओं को थोड़ी मात्रा में घटाना बढ़ाना सम्भव नहीं होता। इसी प्रकार बजट का आकार परिवर्ती एवं अपरिवर्ती हो सकता है। दोनों स्थितियों में व्यय के निर्णय लेने की पद्धति में भी अन्तर आ जाता है। इन विषयों से सम्बन्धित तत्वों का इस इकाई में वर्णन किया गया है।

14.2 सार्वजनिक व्यय मूल्यांकन की कसौटी

राष्ट्रीय उद्देश्यों की दृष्टि से व्यय निर्णयों हेतु वैकल्पिक प्रायोजनाओं की विस्तृत रूप सें सापेक्षिक उपयोगिता एवं महत्व की जानकारी आवश्यक होती है। इस हेतु विकसित की गई सामान्य रीति का यहां उल्लेख किया गया है।

14.2.1 अन्तर्निहित सिद्धान्त :- संसाधनों के आवंटन सिद्धान्त के समान प्रायोजना का मूल्यांकन उन रीतियों को बताता है जिससे सीमित साधनों का अत्युत्तम प्रयोग किया जा सके। अर्थात् किस प्रकार एक निश्चित आकार के बजट में दी हुई राशि को वैकल्पिक प्रायोजनाओं में आवंटित किया जायें। परन्तु यदि बजट का आकार परिवर्तनशील है तो एक और समस्या उत्पन्न होती है, कि बजट का आकार किस प्रकार निर्धारित किया जाये। इसके उपरान्त यदि प्रायोजनायें अविभाज्य हैं तो समस्या और जटिल हो जाती हैं। इन विभिन्न स्थितियों में प्रायोजनाओं के लाभ और लागत भी मालूम होने चाहिये।

यदि प्रायोजनायें विभाजित की जा सकती हैं अर्थात् थोड़ी मात्रा में भी घटाई-बढ़ाई जा सकती हैं, यद्यपि यह बहुत व्यवहारिक परिकल्पना न भी हो, परन्तु यह प्रायोजना के चुनाव में आधारभूत औचित्य प्रदान करती है।

14.2.2 यदि बजट का आकार निश्चित हो :- यदि बजट का आकार निश्चित हो तो दो प्रायोजनाओं और में एक निश्चित राशि कैसी बांटी जाये कि दोनों प्रायोजनाओं सें प्राप्त कुल शुद्ध लाभ अधिकतम हो अर्थात् कुल लागत के ऊपर कुल लाभ अधिकतम हो यह निम्नांकित चित्र से स्पष्ट हैं-

चित्र 14.1

X और Y प्रायोजनाओं पर व्यय इस प्रकार होना चाहिये कि X पर व्यय की गई मुद्रा की अन्तिम इकाई से लाभ Y पर व्यय की गई मुद्रा की अन्तिम इकाई के लाभ के बराबर हो। अर्थात् AC=BD के हो और कुल विनियोग OA+OB हो। Y से प्राप्त कुल लाभ, क्षेत्रफल FCAO द्वारा अंकित किया जायेगा तथा Y से प्राप्त कुल लाभ GDBO क्षेत्रफल बतायेगा। इन दोनों का योग अधिकतम होगा।

14.2.3 यदि बजट का आकार परिवर्तनीय हो :- बजट की विस्तृत समस्या है उसके आकार के निर्धारण की। यहाँ शासन को यह निर्धारित करना है कि साधनों को निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में किस तरह विभाजित किया जाये। अत: प्रायोजनाओं के चुनाव को पुनर्निर्धारित किया जायें जिससे बजट का आकार निर्धारित किया जा सके। एक प्रायोजना के स्थान पर दूसरी प्रायोजना अपनाने पर निश्चित बजट और लोचशील बजट में प्राय: अन्तर हो जाता है क्योंकि निजी क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रायोजना अपनाने पर अवसर लागत में अन्तर आ जाता है। इस स्थिति में राशि निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तान्तरित हो जाती है, क्योंकि निजी क्षेत्र से प्राप्त लाभ में कमी आ जाती है।

अत: अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि लाभ और लागत सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनो को मिलाकर निकालना होती है। निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र की वैकल्पिक प्रायोजनाओं में सीमान्त मुद्रा व्यय दोनों मैं बराबर होनी चाहिये। यदि X सार्वजनिक क्षेत्र की प्रायोजना को मान लें और निजी क्षेत्र की प्रायोजना को तो उपर्युक्त चित्र पुन: प्रयोग किया जा सकता हे और ऊपर बताये गये निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

14.2.4 अविभाजनशील प्रायोजनायें :- अविभाजनशील प्रायोजनायें अर्थात् जिनमें इकट्ठा राशि लगानी पड़ती है और आसानी से बढ़ाये अथवा घटाये नहीं जा सकते यानि सीमान्त परिवर्तन सम्भव नहीं होने। ऐसी स्थिति में तीन अवस्थायें वर्णित की ,जा सकती हैं, प्रथम जिसमें वैकल्पिक प्रायोजनाओं में लाभ अनुपात (C/B) कम से कम हो अर्थात् प्रति मुद्रा की इकाई से

उत्पादन अधिकतम हो। द्वितीय, जिनमें अधिक लागत पर अधिक लाभ प्राप्त हो। तृतीय, जिनमें वैकल्पिक प्रायोजनाओं में शुद्ध लाभ तो हो परन्तु शेष राशि कुछ भी न बचें। इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है-

1. लागत 6,30,000 रु. शुद्ध लाभ 4,19,000 रु.

लाभ 10,49,000 रु.

बजट राशि 7,00,000 रु.

शेष राशि 70,000 रु. (7,00,000 रु. - 6,30,000 रु.)

2. लागत 6,75,000 रु. शुद्ध लाभ 4,25,000 रु.

लाभ 11,20,000 रु.

बजट राशि 7,00,000 रु.

शेष राशि 5,000 रु.

3. लागत 7,00,000 रु. शुद्ध लाभ 33,000 रु.

लाभ 10,30,000 रु.

बजट राशि 7,00,000 रु.

शेष राशि X

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि 1 और 2 स्थितियां तीसरी की अपेक्षा अनुकूल है, परन्तु 1 और 2 में चुनाव जटिल हैं क्योंकि पहली स्थिति में लागत-लाभ अनुपात दूसरी स्थिति की अपेक्षा कम है परन्तु शुद्ध लाभ दूसरे में अधिक है। अत: दूसरी स्थिति अच्छी कही जा सकती है यदि कोई अन्य प्रायोजना ऐसी नहीं जहां लागत-लाभ अनुपात की बचत से कोई अन्य प्रायोजना का लाभ उठाया जा सके।

14.3 सामाजिक लाभ-लागत विश्लेषण

प्रोजैक्ट चयन का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि लाभ और लागत ज्ञात है। परन्तु इसके माप की समस्या को अब अध्ययन करना आवश्यक है। इनके माप की समस्या सरल होगी यदि उनका मूल्य बाजार मूल्यों पर अनुमानित किया जा सके। परन्तु ऐसा सदैव सम्भव नहीं होता। लागत और लाभ सामान्यत: अभौतिक रूप में होते हैं और यदि बाजार मूल्यों पर भी इनका मूल्यांकन किया जा सकता हो तो उन्हें समायोजित करना आवश्यक होता है क्योंकि बाजार पूर्ण प्रतियोगी नहीं होते और इनमें विकृतियाँ होती हैं।

14.3.1 सामाजिक लाभ एवं लागत का माप :- प्रायोजनाओं के लाभ मूलत: अभौतिक होते होते हैं अथवा भौतिक एवं अभौतिक दोनों रूपों में होते हैं। उदाहरणार्थ, शिक्षा व्यवस्था जिससे सांस्कृतिक विकास हो एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था को उचित योगदान दे सकें। परन्तु

साथ में भौतिक परिणाम भी होंगे जैसे रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी। इसी प्रकार लागत भी भौतिक एवं अभौतिक दोनो प्रकार जी हो सकती हैं, जैसे राष्ट्रीय मार्ग निर्माण मे, प्रयुक्त साधनों की लागत के अतिरिक्त मार्ग निर्माण के कारण वहां के निवासियों को विस्थापित करें अथवा प्राकृतिक सौंदर्य को नष्ट करें अथवा यातायात के 'प्रदूषण से उनको प्रभावित करें, आदि। इस प्रकार के अभौतिक मद तत्काल बाजार मूल्य से नही मापे जा सके। इसका आधार राजनैतिक हो सकता है कि मतदाता एवं जनता यह निर्णय ले कि वे कहीं तक शुद्ध वायु या पानी को पसन्द करते हैं अथवा यदि सुरक्षा व्यय है तो उससे उनको कहां तक संरक्षण प्राप्त होता है। निजी लाभ व लागत में भी यही समस्या आती है। दुर्घटनाओं एवं अपराधों में कमी लाने के उपायों के लाभों का किस प्रकार मूल्यांकन करेंगे?

ऐसी स्थितियों में परोक्ष रीतियों द्वारा मूल्यांकन यद्यपि बहुत संतोषजनक तो नहीं कहा जा सकता है परन्तु अपनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, समय का मूल्यांकन विभिन्न गति से चलने वाले यातायात साधनों को विभिन्न मूल्य दिये जाने से किया जा सकता है। जीवन का मूल्य अनेक प्रकार से मापा गया है- (1) भविष्य कालीन आशातीत आय का वर्तमान मूल्य, तथा जीवन बीमा किश्त देने की वर्तमान इच्छा (2) सुरक्षित एवं जोखिम पूर्ण कार्यों में मजदूरी की भिन्नता (3) अन्य स्थितियों में प्रायोगिक रीतियों अर्थात् विशेष प्रायोजनाओं में उनसे प्राप्त सेवाओं व वस्तुओं को वे कितना महत्व देते हैं।

14.3.2 सामाजिक लागत की प्रभावशीलता :- यद्यपि सामाजिक लागत का मूल्यांकन कठिन हो सकता है। परन्तु यह दो प्रकार से सहायक हो सकता है। (1) वे भौतिक इकाइयों में लागत की प्रभावशीलता बता सकते हैं- जैसे साक्षरता से लाभ, सुखा शक्तियों में वृद्धि, अपराध एवं दुर्घटनाओं में कमी आदि, जो विभिन्न प्रायोजनाओं से सम्भव होगी। (2) दूसरी स्थिति जो लाभ के मूल्यांकन में सहायक हो सकती है, जो समाज को अन्य लागतों से बचाये। उदाहरणार्थ, स्वास्थ्य सेवाऐं, अस्पताल पर व्यय को कम कर सकती है।

14.3.3 मध्यस्थ वस्तुओं से लाभ :- यदि सार्वजनिक सुविधायें अन्तिम न होकर मध्यस्थ हो। उदाहरणार्थ, सड़क निर्माण कार्य, ट्रक की संचालन लागत को कम करेगा। यद्यपि सड़क निर्माण सामाजिक सुविधा प्रदान करती हैं परन्तु निजी क्षेत्र के उत्पादन में सहायक कार्य है। उत्पादित वस्तुओं को बाजार में ले जाने में सहायक होती है जिसका मूल्य वस्तु के बाजार मूल्य से आंका जा सकता है। बाढ़ नियंत्रण सिंचाई योजनायें इसी प्रकार से मूल्यांकित की जा सकती हैं। यद्यपि सिंचाई हेतु पानी कृषकों को बेचा नहीं जाता परन्तु इनका मूल्य बड़े हुए कृषि उत्पादन से, अन्य उत्पादन साधनों के मूल्य में से घटा कर आंका जा सकता है।

बोध प्रश्न 1 -

बाजार से प्राप्त भौतिक साधनों के मूल्य निर्धारण में किन-किन तत्वों का समावेश करना आवश्यक होगा यदि (अ) बाजार अपूर्ण हो (ब) कर लगाये गये हो (स) यदि साधन अप्रयुक्त ही। (द) जहां श्रम बेरोजगार हो। (उत्तर अन्त में देखिये)

14.4 प्रायोजना के मूल्यांकन का सिद्धान्त

प्रायोजना से लाभों के माप को समझने के लिये उपभोक्ता बचत की परिकल्पना का प्रयोग किया जाता है। चित्र 2 में मान लें कि मांग वक्र वाहनों की क्रमागत इकाईयों का जो उपभोक्ता देने को तैयार है दर्शाता है। वह P_1 मूल्य पहले वाहन के लिये और P_2 दूसरे वाहन के लिये देगा, आदि। पहले वाहन की उपयोगिता $OP_1N_1Q_1$ स्तम्भ द्वारा मापी जायेगी और दूसरे वाहन की Q_1RVQ_2 द्वारा। उपभोक्ता उस बिन्दु तक अपने क्रय को बढायेंगे जहां सीमान्त मूल्यांकन सीमान्त लागत (अथवा, जो मूल्य वह देने को तैयार है) के बराबर हो। यदि वह उत्पादन शून्य मूल्य पर उपलब्ध हो तो वह OB मात्रा का उपभोग करेगा। लाभ OAB होगा जो पूर्ण उपभोक्ता बचत बतायेगा। यदि मूल्य OC है तो OD इकाईयां क्रय की जायेगी और कुल लाभ OCED होगा। OCED लाभ पर उपभोक्ता बचत (OAED-OCED) अर्थात CAE होगी। यह आधिक्य D इकाईयों के लिये जितना उपभोक्ता देने को तैयार है और जितना उसे देना पड़ता हैं उसका अन्तर है।

चित्र 14.2

14.4.1 प्रायोजना का तल लाभ :- उपर्युक्त परिकल्पना किसी सार्वजनिक प्रायोजना से प्राप्त लाभ को मापने में अब हम प्रयोग कर सकते हैं। सेवाओं की माँग AB द्वारा दर्शायी जायेगी। सार्वजनिक सेवा आरम्भ करने के पूर्व मूल्य OA के ऊपर होगा और कोई खरीददारी नहीं होगी। इस स्थिति में कोई उपभोक्ता बचत नही होगा। मान लीजिये प्रायोजना का आरम्भ प्रति इकाई लागत OC पर आरम्भ किया गया। मान लीजिये एक अविभाज्य प्रायोजना OF आकार की है तो कुल लाभ OAHF क्षेत्रफल दर्शायेगा एवं कुल लागत OCKF क्षेत्रफल बतायेगा और शुद्ध लाभ उपभोक्ता बचत के बराबर होगा जो क्षेत्रफल CAHK दर्शाता है। किसी निश्चित बजट में प्रायोजना का चुनाव इन उपभोक्ता बचतों का योग होगा। विभाज्यशील बजट के लिये OD तक का प्रावधान होना चाहिये, यह वह बिन्दु है जहाँ सीमान्त मूल्य सीमान्त लागत के बराबर होगा। अर्थात् उपभोक्ता बचत में सीमान्त लाभ शून्य होगा और आधिक्य CAE के बराबर होगा जो अधिकतम होगा।

14.4.2 प्रायोजना में भार देना-:- सामान्यत: सभी प्रायोजनायें एक समान लाभ एवं लागत युक्त नही होती है। अत: उनको विभिन्न भार देना आवश्यक होगा। लाभ का संयोग इस पर निर्भर करेगा कि किस प्रकार से प्रायोजना बनाई गई है। प्रायोजना का प्रारूप उस रीति को प्रभावित

करेगा कि किस प्रकार से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में लाभ समानरूप से प्राप्त ही। यह सारे विकल्प प्रायोजना बनाने में ध्यान रखने योग्य हैं जिससे कुल लाभ अधिकतम किया जा सके।

बोध प्रश्न 2

शिक्षा प्रायोजना के वास्तविक एवं आर्थिक लाभों को तालिका बना कर बताइये। वास्तविक लाभों का वर्गीकरण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, भौतिक एवं अभौतिक खण्डों में कीजिये।

14.5 बट्टा दर का चुनाव

उपर्युक्त तथ्यों में अभी तक इस विषय पर ध्यान नही दिया गया है कि लाभ एवं लागत तत्काल आरम्भ नहीं होते हैं परन्तु इसमें समय लगता है। यहाँ इस स्थिति का वर्णन करेंगे। कुछ व्यय तात्कालिक लाभ देते हैं, जैसे अग्निदमन वाहकों को वेतन भुगतान तुरन्त लाभ देते है। जबकि अग्नि-दमन वाहन, नदी घाटी विकास योजनायें लाभ को कई वर्षों तक प्रदान करने रहते हैं। इस प्रकार के दीर्घकाल तक प्राप्त लाभों (एवं लागत) को वर्तमान मूल्यों पर परिणित किया जाना आवश्यक होता है। उन्हें इस तथ्य पर बट्टा देना चाहिये कि भविष्यकालीन लाभ वर्तमान लाभ की तुलना में कम मूल्यवान होते हैं। यही बात लागत के मूल्यांकन में भी लागू होती है। निजी क्षेत्र में संसाधनों को सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तांतरित करने में उनकी अवसर लागत मालूम की जानी चाहिये जिसमें यह मूल्यांकन करना होगा कि निजी क्षेत्र से कम किये गये वर्तमान उपभोग का क्या मूल्य है, जहाँ भविष्यकालीन निजी उपभोग में कमी निजी क्षेत्र से विनियोग हस्तान्तरित करने के कारण हुई है।

मान लीजिये तीन प्रकार के विनियोग X, Y और Z किये गये हैं जिनकी लागत बराबर हैं। उनसे वार्षिक आय क्रमश: 5, 15 और 25 वर्षों तक प्राप्त होती है। वार्षिक आय इस प्रकार से चुनी गई है कि लाभ का वर्तमान कूच बराबर है। अर्थात् बट्टे की दर 5 प्रतिशत है। यदि हम 5 प्रतिशत बट्टे की दर से घटा कर 3 प्रतिशत कर दें तो Z सबसे अच्छा विकल्प होगा और X सबसे निकृष्ट। बट्टे की दर को कम करने से वर्तमान मूल्य उतना ही बढ़ जायेगा जितने अधिक समय तक वह आय प्रदान करेगा। यदि यह दर 8 प्रतिशत कर दें तो इसका विपरीत प्रभाव होगा। इस स्थिति में X सबसे अच्छा एवं Z सबसे निकृष्ट होगा। बट्टे की दर बढ़ाना अल्पकालिक विनियोग को बल देगा। जबकि बट्टे की दर घटाई जाये तो सभी विनियोगों का वर्तमान मूल्य बढ़ जायेगा, इसके विपरीत यह गिरेगा यदि बट्टे की दर बढ़ाई जाये। इस प्रक्रिया के अनुसार प्रायोजनाओं का प्राथमिकता कम भी बदल जायेगा। अत: बट्टे की उचित दर निर्धारण एक महत्वपूर्ण विषय हैं।

तालिका 14.1

वर्तमान मूल्य और बट्टे की दर			
(1) प्रायोजनायें लागत (रू०)	10,380	10,380	10,380
वर्षों की संख्या	5	15	25
वार्षिक लाभ (रु०)	2,397	1,000	736

(2) क्रमागत लाभों का वर्तमान मूल्य ब्याज दर (%)			
3	10,978	1 1,938	12,816
5	10,380	10,380	10,380
8	9,571	8,59	7,857
(3) लाभ लागत के अन्तर का वर्तमान मूल्य (रु.)			
3	598	1,558	2,436
5	0	0	0
8	-809	-1,821	7,857
(2) लाभ-लागत अनुपात (BC)			
3	1,057	1,150	1.235
5	1,000	1,000	1,000
8	0,922	0,825	0,757

उपर्युक्त तालिका के तृतीय और चतुर्थ मदों से स्पष्ट है कि प्रायोजनाओं 'की मौलिक लागत 10,380 रु. मानीं गई हैं और वार्षिक लाभ इस प्रकार माने गये हैं कि 5 प्रतिशत बट्टे की दर पर लाभ एवं लागत का अन्तर शून्य हो जाये और सभी विनियोगों के लिये लाभ-लागत अनुपात के बराबर आ जाये। इस स्थिति मे लाभों का वर्तमान मूल्य लागत के बराबर है। अत: उनमें से कोई भी प्रायोजना चुनी जा सकती है। 3 प्रतिशत बट्टे की दर के अनुसार तीनों प्रायोजनायें लाभप्रद हैं अर्थात् शुद्ध लाभ धनात्मक हैं, परन्तु Z सबसे अच्छी प्रायोजना है और X निकृष्टतम। 8 प्रतिशत दर पर तीनों प्रायोजनायें लाभकारक नहीं परन्तु X सबसे अच्छी तथा Z सबसे निकृष्ट है। इस उदाहरण से स्पष्ट हें कि विभिन्न प्रायोजनाओं का क्रम निश्चित करना औरं उनका अपनाया जाना इस पर निर्भर करता है कि कौन सी बट्टे की दर अपनाई जाये।

14.6 प्रोग्राम बजटिंग

अमेरिका में 1960 से सार्वजनिक व्यय के निर्णयों मैं लाभ-लागत विश्लेषण के प्रयोग को बढाने के लिये प्रयत्न किया गया। पहले इसका प्रयोग सुरक्षा विभाग में किया गया तथा पुन: सम्पूर्ण केन्द्रीय, प्रादेशिक एवं स्थानीय स्तर पर योजना-प्रोग्रामिंग-बजटीय पद्धति के नाम से विस्तृत रूप से लागू किया गया। इसके पूर्व भी इस दिशा में सार्वजनिक व्यय नीति के सुधार हेतु प्रयत्न किये गये थे। हूवर समिति ने 1949 में "कार्यात्मक बजट पद्धति" को भी लागू किया था।

प्रोग्राम बजटिंग पद्धति की आवश्यक परिकल्पना यह है कि बजट हेतु सभी कार्यक्रमों को एक इकाई के रूप में परीक्षण करना आवश्यक होगा। सामान्य उद्देश्यों के अनुसार -वर्गीकृत करके कार्यक्रम की संरचना निश्चित करनी होगी। उद्देश्य कुल लागत और लाभ को मिलाकर देखना हैं जिनमें सम्पूर्ण संगठन के विभिन्न भागों में विभिन्न श्रेणी की उपयोजनाएँ सम्मिलित की जायेगी। इस

प्रकार का कार्यक्रम एक उत्तम आधार प्रदान करता है जिसमें प्रायोजनाओं का सम्पूर्णता में मूल्यांकन के साथ वैकल्पिक कार्यक्रमों के सापेक्षक गुणों का विश्लेषण भी किया जाता है। इसका अन्य महत्वपूर्ण लाभ योजना कार्यक्रम में सततता प्रदान करना है। सततता प्राप्त करने के लिये विभागों एवं अभिकर्ताओं को न केवल चालू कार्यक्रम प्रदान करना होता है वरन् पिछले दो वर्षों के और आगामी 5 वर्षों के निर्णयों के आधार पर प्रोग्राम-क्षेत्रों में आवंटित राशि दर्शाना होती है और साथ ही भविष्यकालीन आवंटन को भी अनुमानित करना होता है। यह योजना यह मार्ग दर्शित करता है कि किस प्रकार वार्षिक बजट को दीर्घकालीन योजना और प्राथमिकताओं दे सम्बद्ध किया जाये।

अन्त में, बजट नियोजन की क्षमता निश्चित करने के लिये प्रोग्राम बजटिंग में लाभ-लागत विश्लेषण द्वारा प्रायोजनाओं के सापेक्षिक मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। परन्तु यह विश्लेषण सभी प्रायोजनाओं में लागू नही होता क्योंकि बहुत अधिक विस्तृत उपागम अप्रबन्धनीय हो जाता है। निकटवर्ती वर्षों में वातावरण के प्रभावों के उल्लेख ने प्रोग्राम मूल्यांकन को और जटिल बना दिया हैं। अत: प्रोग्राम बजटिंग के प्रति उत्साह निरुत्साहित होगा, फिर भी बजट बनाने के कार्य स्तर पर इसका विशेष महत्व कहा जा सकता है।

14.7 शून्य-आधारित बजट पद्धति

बजट के सुधार की एक रीति शून्य - आधारित बजट है। इसका विकास भी अमेरिका में ही किया गया। यद्यपि बड़ी औद्योगिक कम्पनियों के लिये इस विधि को विकसित किया गया था। शून्य-आधारित बजट में प्रति वर्ष सम्पूर्ण बजट की समीक्षा करनी होती है जिसमें बल इस बात पर दिया जाता है कि वैकल्पिक प्रायोजनाओं को क्रम-बद्ध रूप में रखा जाये। इस विधि की मूल धारणा यह है कि व्यय के हर मद का औचित्य सिद्ध किया जाये और नये सिरे से प्रतिवर्ष मूल्यांकन किया जाये कि उपर्युक्त व्यय करना उचित है या नही। कोई भी आधार न्यूनतम या दिया हुआ नहीं माना जायेगा। यहाँ यह तर्क कोई महत्व नहीं रखता कि कोई विकास या गैर-विकास कार्य क्योंकि वह वर्षों से चला आ रहा है, अत: उसे चालू रखा जाये और उसके लिये व्यय का प्रावधान रखा जाना आवश्यक है। अत: प्रति वर्ष बजट में प्रत्येक क्रिया पर होने वाले व्यय को शून्य मान कर राशि में थोड़ी वृद्धि करके अगले वर्ष के लिये प्रावधान कर लिया जाता है। वास्तव में शून्य आधारित बजट प्रणाली एक ऐसी विधि है जो चली आ रही प्रायोजनाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कर उनके मूल्यांकन का अवसर देती है। इस प्रणाली के उपयोग के निम्नलिखित उद्देश्य है:-

(1) पुरानी, कम या निम्न प्राथमिकता वाली प्रायोजनाओं को समाप्त कर देना।

(2) उन कार्यक्रमों या प्रायोजनाओं का पता लगाना जिन्हें चालू रखा जाना है तथा निर्णय लेना कि उसके लिये कितनी राशि का प्रावधान रखना आवश्यक होगा। इस प्रकार उन पर राशि का आवंटन कम या अधिक किया जा सकता है। इस प्रकार परम्परागत बजट प्रणाली में लगातार व्यय के बढ़ने की प्रवृति निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी सिद्ध होती है।

आर्थिक दृष्टिकोण से निश्चित आकार की अपेक्षा परिवर्ती बजट अपनाये जा सकते हैं। इसमें एक प्रायोजना की दूसरी प्रायोजना हे तुलना की जा सकती है। प रन्तु एक वर्ष में एक प्रायोजना के

परिणामों को दूसरे से तुलना नही के जा सकती। इस हेतु प्रायोजना विश्लेषण कठिन है। इसे प्रतिवर्ष बजट के छोटे से भाग के लिये अपनाई जा सकती है। शून्य आधारित बजट और पूर्णता में लाभ - लागत मूल्यांकन का पथ मार्ग विभिन्न कार्यक्रमों का बारी-बारी से कुछ वर्षो (जैसे - 5 वर्षों) में विस्तृत मूल्यांकन किया जाना है। इसे "सूर्यास्त सिद्धान्त" के नाम से प्रतिपादित किया गया है। इसके अनुसार पुराने कार्यक्रमों को जिनकी उपयोगिता समाप्त हो गई है समाप्त किया जा सकता है। अत: शून्य आधारित बजट की यदि व्यवहारिकता देनी है तो इसको ऐसा रूप देना होगा जिसमें बारी-बारी से आगे बढ़ा जाये।

भारत में 1979 में शुन्य आधारित बजट प्रणाली की शुरुवात हुई और 1986 में सरकार ने योजना व गैर योजना व्यय में शुन्य प्रणाली लागु की।

14.8 सारांश

बजट में लोच सीमित है क्योंकि वास्तव में बजट प्रक्रिया एक बड़ा राजनैतिक विषय है और लाभ-लागत सिद्धान्त एक अत्यन्त काल्पनिक धारणा है फिर भी बजट और लाभ-लागत सिद्धान्त में घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि क्षमतापूर्ण बजट का सार अर्थशास्त्र की दृष्टि से यही है कि सार्वजनिक धन को लाभ-लागत के वैकल्पिक प्रयोगों के आधार पर मूल्यांकन किया जाये।

प्रायोजनाओं के चयन में उचित निर्णायक नियम भिन्न होते हैं यह इस पर निर्भर करता है कि बजट लोचशील है या निश्चित है और क्या प्रायोजनायें विभाज्य हैं अथवा अविभाज्य। जहाँ प्रायोजनायें स्वतंत्रतापूर्वक विभाज्य हैं, अत्युत्तम हल इस प्रकार से किया जा सकता है कि प्रत्येक प्रायोजना पर मुद्रा की अन्तिम इकाई से प्राप्त लाभ बराबर हो, (जहाँ बजट निश्चित हो) और सार्वजनिक और निजी प्रायोजनाओं में (जहाँ बजट पूर्ण खुला हो अर्थात् लोचशील हो)। जहाँ निश्चित बजट हो वहाँ अविभाज्य प्रायोजनायें इस प्रकार से चुनी जानी चाहिये कि शुद्ध लाभ अधिकतम प्राप्त हो सके। खुले बजट मे ऐसी प्रायोजनायें अपनाई जानी चाहिये कि कुल लाभ लागत से अधिक हो।

14.9 शब्दावली

Projects	प्रायोजनायें
Evaluation	मूल्यांकन,
Expenditure Allocation	व्यय आवंटन
Lumpy Project	एकल प्रायोजना (अविभाज्य)
Tangible items	गोचर वस्तुएँ, भौतिक वस्तुएँ,
Intangible items	अगोचर मद (जैसे सेवायें)

	आदि, अभौतिक मद,
Intermediate goods	मध्यस्थ वस्तुएँ,
Discount rate	बट्टा दर,
Zero Based Budgeting	शून्य-आधारित बजट पद्धति (रीति)
Sunset Theory	सूर्यास्त सिद्धान्त,

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Richard A. Musgrave & P.B. Musgrave		Public Finance in Theory and Practice (Chapter 8)
Krishna Chawla		Social Cost-benefit Analysis
Raghbendra Jha		Mordern Theory of Public Finance

14.11 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

(अ) एकाधिकारी लाभों को नहीं गिना जायेगा।

(ब) बाजार मूल्य में करों को सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

(स) अवसर लागत सिद्धान्त वहाँ भी लागू किया जायेगा जहाँ उत्पादन के साधन पूर्व में उपयोग में नहीं लाये जा रहे थे अन्यथा उत्तमतर प्रयोगों में उन्हें लगाये जाने का विकल्प नही बताया जा सकता।

(द) विकासशील अर्थ-व्यवस्था में जहाँ श्रम बेरोजगार है अथवा अर्द्ध-रोजगार है, जबकि विकसित क्षेत्र में श्रम की सामाजिक लागत वास्तविक से अधिक मूल्यांकित की जाती है। प्रायोजना मूल्यांकन में उसकी लागत पर्याप्त नीचे दर्शानी चाहिये।

बोध प्रश्न 2.

शिक्षा प्रयोजना

		लाभ	लागत
1. वास्तविक			
प्रत्यक्ष	भौतिक	– भविष्य कालीन आय – में वृद्धि	शिक्षकों को वेतन, पुस्तकों एवं इमारत की लागत
	अभौतिक	– उन्नत जीवन	विश्राम का त्याग।
परोक्ष	भौतिक	– अपराध रोकने के कार्यक्रमों पर व्यय की कमी	
	अभौतिक	– अधिक शिक्षित वोटर	
2.मौद्रिक	-------	– शिक्षकों की आय में वृद्धि	

इकाई – 15

करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण
Principles of Taxation and Classification

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 करारोपण के सिद्धान्त

15.2.1 एडम स्मिथ के करारोपण सिद्धान्त

15.2.2 करारोपण के अन्य सिद्धान्त

15.2.3 अच्छी कर प्रणाली की विशेषता

15.3 करों का वर्गीकरण

15.3.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर

15.3.2 आनुपाती, प्रगतिशील, प्रतिगामी एवं अधोगामी कर

15.3.3 विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर

15.3.4 एकल एवं बहुकर प्रणाली

15.3.5 वस्तुओं एवं सेवाओं पर कर

15.6 अभ्यास प्रश्न

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.6 शब्दावली

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप -

– कर का अर्थ एवं इसकी विशेषताओं को समझा सकेंगे।

– करारोपण के सिद्धान्तों को स्पष्ट कर सकेंगे।

– करों के वर्गीकरण को समझा सकेंगे।

— विकासशील अर्थव्यवस्था में कर प्रणाली के लक्ष्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में 'कर' सार्वजनिक आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। 'कर' मुद्रा के रूप में अनिवार्य अंशदान है जो नागरिकों के सामान्य हित और कल्याण के लिए व्यय करने को सरकार नागरिकों से वसूल करती है।

प्रो० शिराज ने 'कर' की व्याख्या करते हुए कहा है- "कर सार्वजनिक अधिकारियों में द्वारा वसूल किया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है जो सार्वजनिक भलाई के व्यय को पूरा करने के लिए लिया जाता है और जिसका किसी लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।" कर की उपर्युक्त परिभाषा से कर की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है -

1. कर एक अनिवार्य भुगतान है।
2. कर का उद्देश्य जनता की भलाई करना है।
3. कर अदा करने वाले और सरकारी अधिकारियों के बीच "जैसे को तैसा" का सम्बन्ध नही होता है।

एक अच्छी कर प्रणाली में विभिन्न करों को इस प्रकार समायोजित करना होता है जिससे उसका सामुहिक प्रभाव समाज के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान पर सर्वोतम पड़े। आधुनिक काल मैं सार्वजनिक आय की मांग प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसलिए किसी भी एक कर से इस बढ़ती हुई मांग की पूर्ति नहीं की जा सकती है। इस सम्बन्ध में प्रो० व्यूहलर ने कहा है- "आज की आर्थिक और राजनैतिक विकास की स्थिति में कोई भी एक "कर" राज्यों से बढ़ते हुए व्ययों को सम्भवत : पूरा नहीं कर सकता और उसके द्वारा उत्पन्न हुए त्याग अथवा भार को समस्त जनता के उपर समान रूप में डाला भी नही-जा सकता है।" इसका अभिप्राय : यह नहीं है कि बहुत सारे करों को एक साथ लगाने से ही एक अच्छी कर प्रणाली का निर्माण हो जाता है। अच्छी कर प्रणाली में करों को वैज्ञानिक रीति से लगाया जाता है जिससे उनका सामूहिक दुष्परिणाम कम से कम रहे।

15.2 करारोपण के सिद्धान्त:

करारोपण मनमाने तरीके से नही होकर क्रमबद्ध और वैज्ञानिक तरीका से होते है। करारोपण के निम्नलिखित सिद्धान्त है -

(अ)एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त,

(ब) करारोपण के अन्य सिद्धान्त।

उपर्युक्त करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन शीर्षक 15.2.1 एवं 15.2.2 में किया गये है।

15.2.1 एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त:

करारोपण के सिद्धान्त सर्वप्रथम एडम स्मिथ ने प्रतिपादित किए। इन्होंने अपनी पुस्तक "Wealth of the Nations" में अच्छी कर प्रणाली के लिए कुछ ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित किए है जो एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त (Adam Smith's Canon of Taxation) के नाम से प्रसिद्ध है। एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त ये है -

(अ)समानता का सिद्धान्त

(ब) निश्चितता का सिद्धान्त

(स) सुविधा का सिद्धान्त, तथा

(द) मितव्ययिता का सिद्धान्त।

एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है –

(अ)स्मिथ के करारोपण का मुख्य सिद्धान्त **"समानता का सिद्धान्त"** (The Canon of Equality) है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की प्रजा को अपनी योग्यता के अनुपात में राज्य शासन के लिए कर देना चाहिए। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट बताता है कि सरकार को अपने राज्य शासन व्यय के लिए राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुपात में कर वसूल करना चाहिए। एडम स्मिथ ने इस संदर्भ में कहा है- "धनी व्यक्तियों को अपनी आय के अनुपात में नही वरन इस अनुपात से अधिक कर देना अनुचित नही होगा। "विभिन्न अर्थशात्रियों के बीच "समानता अथवा न्यायशीलता" शब्द पर गम्भीर मतभेद है। प्रो० वाकर ने 'समानता' का अर्थ आनुपातिक करारोपण होना बताया है। इसके विपरित में चैपमेन, कोहन एवं सैलिगमैन लिगमैन ने "समानता का अर्थ" प्रगतिशील करारोपण होना बताया है। इस संदर्भ में एडम स्मिथ के विचार है- "कर प्रगतिशील करारोपण के अनुसार लगाया जाना चाहिए।" इस प्रकार एडम स्मिथ का मत है कि धनिकों को अधिक एवं गरीबों को कम कर देना चाहिए। दूसरे शब्दों में कर, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपनी क्षमता के अनुसार देना चाहिए। प्रो० जे एस. मिल ने तो करारोपण के समानता सिद्धान्त को "एक महानतम नियम" की संज्ञा दी है।

(ब) एडम स्मिथ के करारोपण का दूसरा सिद्धान्त **"निश्चितता का सिद्धान्त"** (Canon of certainty) है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत वह कर जो कि एक व्यक्ति विशेष देने के लिए बाध्य है, वह निश्चित होना चाहिए, इच्छानुसार नहीं। कर भुगतान का समय, भुगतान की रीति, भुगतान की जाने वाली राशि करदाता को तथा अन्य व्यक्तियों को स्पष्ट होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में करदाता एवं कर वसूल करने वालों को पूर्णतया स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि किस समय, किस प्रकार, कर मात्रा, कर देना स्थान पर कर अदा करना है। एडम स्मिथ के शब्दों में "एक व्यक्ति को जितना कर देना होता है उसका निश्चित होना बहुत महत्वपूर्ण है।" इस संदर्भ में हैडले ने इस सिद्धान्त की महत्वता को स्वीकार किया है। हैडले के शब्दों मे - "कर की निश्चितता से करदाता और राज्य दोनों को ही लाभ होता है। इससे न केवल भ्रष्टाचार एवं स्वेच्छाचारिता दूर हो जाती है बल्कि करदाता

अपने बजट के बारे में निश्चित रहता हैं।" इस सिद्धान्त के बारे में 'कर की निश्चितता' के कारण ही कहा जता है कि "पुराना कर कोई कर नहीं है।" क्योंकि पुराने कर की धनराशि, उसके भुगतान की रीति तथा समय से करदाता इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसे यह कर का भार महसूस नहीं होता है। एडम स्मिथ ने अंत में इस सिद्धान्त के बारे में कहा है कि - "करों की बहुत बड़ी असमानता इतनी हानिकारक नहीं होती जितनी कि अनिश्चितता की थोड़ी सी मात्रा होती है।"

(स) एडम स्मिथ के करारोपण का तीसरा सिद्धान्त **"सुविधा का सिद्धान्त"** (Canon of Convenience) है। एडम स्मिथ के शब्दों में- "प्रत्येक कर ऐसे समय और इस प्रकार लगाना चाहिए कि जिससे वह भुगतान करने वाले के लिए अत्यधिक सुविधाजनक हो।" इस प्रकार इस सिद्धान्त के अन्तर्गत करदाता को आय प्राप्त होते ही कर राशी इससे वसूल की जानी चाहिए। अन्यथा इससे पूर्व कर अदायगी में असुविधा होती है। उदाहरणार्थ- भूमि पर लगान फसल कटकर तैयार हो जाने पर लगाना चाहिए, क्योंकि उस समय किसान के पास कर की राशि चुकाने के लिए पर्याप्त धन होगा और उसे कर देने में कोई असुविधा नहीं होगी।

(द) एडम स्मिथ के करारोपण का अन्तिम सिद्धान्त **"मितव्ययिता का सिद्धान्त"** (Canon of Economy) है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कर इस प्रकार होना चाहिए कि जनता से वसूल की जाने वाली कर की राशि का अधिकांश भाग सरकारी खजाने में आना चाहिए। दूसरे शब्दों में जनता से कर की वसूली में सरकार का व्यय कम से कम हो तथा करो से, प्राप्त धनराशि सरकारी कोष में अधिक से अधिक भाग मे जमा हो। एडम स्मिथ ने इस संदर्भ में कहा है कि - "प्रत्येक कर की रचना इस प्रकार करनी चहिए कि उसके द्वारा सरकारी कोष में जितना द्रव्य आये, उसके अतिरिक्त व्यक्तियों की जेबों से कम से कम निकले।" इस प्रकार कर की राशि को जनता से वसूल करते समय कम से कम व्यय हो और सरकारी कोष मे कर राशि अधिक से अधिक अंश में जमा हो। यही करारोपण एवं कर वसूली का 'मितव्ययिता का सिद्धान्त' है। वैगनर, हान्सन आदि अर्थशास्त्रियों ने मितव्ययिता का सिद्धान्त को एक "उचित सिद्धान्त" बताया है।

एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त होते हुए भी ये दोषरहित नही है। करारोपण के सिद्धान्त की आलोचना इस प्रकार है -

(i) समता या समानता का सिद्धान्त न्यायशीलता पर आधारित है परन्तु स्मिथ ने समानता के लिए एवं कर देय क्षमता के लिए कोई 'निश्चित माप' नहीं बताया है।

(ii) करारोपण के ये चारों सिद्धान्त कर नीति का आधार निश्चित करने में असफल है।

(iii) स्मिथ द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त वास्तव में कोई सिद्धान्त नहीं है बल्कि ये तो कर अधिकारियों के प्रशासन सम्बन्धी निर्देशन मात्र है। प्रो० फिन्डले शिराज ने इन सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए कहा है कि "करारोपण का प्रथम सिद्धान्त को छोडकर अन्य सभी सिद्धान्त व्यावहारिक सिद्धान्त मात्र है और ये कर नीति का आधार निश्चित नहीं कर सकते है।" इन सिद्धान्तों की प्रो० शिराज ने आलोचना करने पर भी इन्होंने इनकी महत्वता को स्वीकार किया है। इस संदर्भ में प्रो० शिराज का मत है कि – "एडम स्मिथ को जितनी सफलता कर के सिद्धान्तों को

सूक्ष्म करके सरल एवं स्पष्ट रूप में रखने में मिली है, उतनी सफलता किसी विद्वान को नहीं मिली है।"

स्मिथ के करारोपण सिद्धान्तों में कमियां होने के बावजूद भी आज भी ये सिद्धान्त उतने ही महत्वपूर्ण है जितने वे परम्परावादी अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) के समय में थे। आज एडम स्मिथ के कर सिद्धान्तों को वित्त के अध्ययन का एक आवश्यक अंग समझा जाता है।"

15.2.2 करारोपण के अन्य सिद्धान्त:

यद्यपि एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों ने करारोपण के सिद्धान्त प्रतिपादित किये है। इन अन्य सिद्धान्तों की विस्तृत इस प्रकार है -

(अ) उत्पादकता का सिद्धान्त (Canon of Productivity)

यह सिद्धान्त प्रो० वेस्टबेल ने प्रतिपादित किया है। इन्होंने "कर की उत्पादकता" पर बहुत अधिक जोर दिया है। कर की उत्पादकता की व्याख्या निम्नलिखित अर्थों में की गयी है :-

संकुचित अर्थ में कर की उत्पादकता का अर्थ है कि कर ऐसा होना चाहिए जिससे सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त हो जावे अर्थात् कर से वसूली अधिक हो और खर्च कम। यदि छोटे छोटे कर अनुत्पादक है परंतु बड़े कर उत्पादक है तो इस प्रकार के कर लगाना अधिक उपयुक्त रहेगा।

विस्तृत अर्थ में कर की उत्पादकता का अर्थ है कि सरकार को वर्तमान में पर्याप्त आय प्राप्त हो जाने तथा भविष्य में भी वह सरकारी आय का स्रोत बना रहे। साथ ही साथ कर ऐसा होना चाहिए कि कर दाता को कर के भार से उत्पादन शक्ति की कमी का अनुभव नहीं हो तथा करदाता के उपभोग, आय एवं बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े। इस प्रकार का करारोपण से व्यक्तियों का जीवन स्तर उन्नतिशील होता रहेगा और देश के उत्पादन में वृद्धि होगी। इस सिद्धान्त में निम्नलिखित कमियां है-

(i) यह सिद्धान्त एडम स्मिथ के मितव्ययिता के सिद्धान्त का प्रतिरूप है। प्रो० जे. के. मेहता ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि - "उत्पादकता का सिद्धान्त मितव्ययिता सिद्धान्त का प्रतिरूप है।"

(ii) यह सिद्धान्त बेकार एवं अर्थहीन सिद्धान्त है। राबर्टसन के शब्दों में – "उत्पादकता के सिद्धान्त को व्यर्थ एवं अर्थहीन सिद्धान्त कहा जावे तो यह कोई एक मजाक नहीं होगी।"

इस सिद्धान्त में उपर्युक्त कमियां होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से यह बहुत ही उपर्युक्त सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों दृष्टियों पर प्रकाश डालता है। कुछ कर वर्तमान काल में तो अनुत्पादक है परन्तु दीर्घकाल में ऐसे कर अधिक उत्पादक सिद्ध होंगे। इसी प्रकार कुछकर वर्तमान काल में तो उत्पादक है परन्तु दीर्घकाल में ऐसे कर अनुत्पादक सिद्ध होगें। वर्तमान समय में सरकार की वित्तीय आवश्यकताएं बढ़ती जा रही है। अत: करारोपण के समय कर की उत्पादकता पर ध्यान देना आवश्यक है।

(ब) लोच का सिद्धान्त (Canon of Elasticity) :

यह सिद्धान्त प्रो० वेस्टबेल ने प्रतिपादित किया है। प्रो० वेस्टबेल के शब्दों में- "करों से होने वाली आय को आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सके, वही लोच का सिद्धान्त कहा जाता है।" इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सरकार अपनी आवश्यकतानुसार करों द्वारा प्राप्त होने वाली आय को आसानी से घटा अथवा बढ़ा सकती है। लोच का सिद्धान्त का एक अच्छा उदाहरण- आयकर (Income Tax) है। आयकर की थोड़ी सी मात्रा में वृद्धि करने से सरकार की आय में पर्याप्त वृद्धि करने से सरकार की आय में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। इस सिद्धान्त के गुण को ध्यान में रखकर ही सरकार ने अपनी आय का महत्वपूर्ण साधन "आयकर" बना लिया है। अन्य कर जैसे - सम्पतिकर, उत्पादक कर आदि आयकर की तुलना में इतने लोचदार नहीं होते है। एक लोचदार कर व्यवस्था सरकार तथा जनता दोनों के लिए कम से कम कष्टदायक होती है।

(स) पर्याप्तता एवं लचीलापन का सिद्धान्त (Canon of sufficiency):

प्रो० शिराज ने पर्याप्तता एवं लचीलापन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। प्रो० शिराज ने पर्याप्तता सिद्धान्त तथा लचीलापन के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - "करारोपण के पर्याप्तता के सिद्धान्त का अर्थ है कि कर इस प्रकार से लगाए जावे जिससे सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त हो सके तथा लचीलापन के सिद्धान्त का अर्थ है कि कर प्रणाली इस प्रकार की हो जिसमें जनता को बिना किसी परेशानी के अथवा कष्टों के सरकार नये कर लगा सके और पुराने कर हटा सके।"

इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष है -

(i) पर्याप्तता का अर्थ अस्पष्ट है। जो आय इस वर्ष सरकार के पर्याप्त है। अगले वर्ष यह आवश्यक नहीं है कि उतनी ही आय सरकार के लिए पर्याप्त हो।

(ii) पर्याप्तता का गुण निरर्थक एवं व्यर्थ है। मुद्रा प्रसार के कारण अथवा तेजी से मूल्यों में वृद्धि होने से सरकारी व्यय में भी वृद्धि होती है। इस वर्ष की पर्याप्त आय अगले वर्ष अपर्याप्त हो सकती है। अत : पर्याप्तता एक निरपेक्ष शब्द नहीं है।

(द) सरलता का सिद्धान्त (Canon of simplicity)

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कर प्रणाली इतनी आसान होनी चाहिए जिससे जन साधारण की समझ में आसानी से आ जावे। यदि कर दाता की अदायगी के लिए वकील अथवा कानूनी सलाहकार की मदद लेता है तो करदाता सरकार से असन्तुष्ट रहेंगे ओर वे कर प्रणाली का जटिलता के कारण कर वंचन (Tax Evasion) करने लग जावेंगे। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव सरकारी आय पर विपरीत रूप में पड़ेगा।

इस सिद्धान्त में गुणों के होने पर भी निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष है -

(i) सरकार द्वारा इस सिद्धान्त का पालन करना अत्यन्त कठिन है। सरकार के समक्ष तेजी से बढ़ती हुई वित्तीय आवश्यकताएं है तो, दूसरी ओर जनता की मांग कर प्रणाली को

आसान एवं न्यायपूर्ण बनाने की है। ऐसी परिस्थितियों में सरकार द्वारा भरसक प्रयत्न किए जाने पर भी कर प्रणाली आसान होने की अपेक्षा जटिल हो जाती है।

(य) विविधता का सिद्धान्त (Canon of Diversity):

इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमें विभिन्न प्रकार के कर पाये जाते है। दूसरे शब्दों में सरकार को प्रत्येक नागरिक कुछ न कुछ अंश के रूप में कर अदा करता हो। इस प्रकार कर प्रणाली में विभिन्न प्रकार के कर लगाए जाने चाहिए ताकि प्रत्येक नागरिक अपनी क्षमतानुसार सार्वजनिक कार्यों के लिए योगदान दे सकें। कर की विविधता से करदाताओं पर कर-भार भी कम पड़ता है, इसके साथ साथ सभी वस्तुओं की मांग यथावत् बनी रहती है।

करों की विविधता के सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष है -

(i) यदि करों की विविधता का अर्थ करों की अधिकाधिक संख्या बढ़ाना है तो यह औचित्यपूर्ण नहीं है।

(ii) करों की विविधता की क्षेत्र सीमा असीमित नहीं होती है। दूसरे शब्दों में करों की विविधता का प्रयोग निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत ही होता है।

इस सिद्धान्त में उपर्युक्त कमियों के बावजूद भी करारोपण के सिद्धान्तों में यह श्रेयस्कर सिद्धान्त माना जाता है।

(र) समन्वयता का सिद्धान्त (Canon of Co-ordination):

इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमें करदाता को एक ही वस्तु पर अनेक स्थानों पर अथवा अनेक बार कर नहीं चुकाना पड़े। कभी कभी एक ही वस्तु पर बिक्री कर पहले एक प्रान्त द्वारा जो यह उचित नहीं है। इनमें परस्पर समन्वय होना चहिए। इसके लिए देश में विभिन्न प्रान्तों में समन्वय होना चहिए और कर प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए करदाता को एक ही वस्तु (single Commodity) पर विभिन्न स्थानों पर तथा अनेक बार कर नहीं देना पड़े।

(ल) वांछनीयता का सिद्धान्त (Canon of (Expediency)

इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार को केवल वे ही कर लगाने चाहिए जो उचित तथा वांछनीय हो। इस दृष्टि से जब भी सरकार कोई नया कर लगावे अथवा पुराने करों में वृद्धि करें तो उसके कुछ विशेष कारण होने चाहिए। जनता पर बिना किसी कारण के करारोपण किया जाता है तो इसे जनाक्रोश अथवा अशांति स्थिति स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है। अत: बिना कारण लगाए गए कर व्यर्थ एवं उत्तेजनात्मक सिद्ध होंगे। कभी-कभी तो इस प्रकार के करारोपण से भयंकर आन्दोलन होने की सम्भावना हो जाती है। कोई कर सरकार द्वारा लगाए जाने से पूर्व समाचार पत्रों अथवा वक्तव्यों अथवा दूर संचार साधनों के माध्यम से ऐसा वातावरण बनाया जावे जिससे जनता को नये

कर अथवा अधिक करारोपण के औचित्य का आभास हो जावें। इस प्रकार की स्थिति में ऐसी करारोपण नीति का जनता द्वारा विरोध नहीं होगा।

(व) अन्य अर्थशास्त्रियों के विभिन्न मत :

उपर्युक्त करारोपण के सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे-सिसमाण्डी, श्रीमती उर्सुला हिक्स ने उल्लेखनीय विचार प्रस्तुत किए है। इनकी विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से वर्णित है :-

(i) सिसमाण्डी के कर सम्बन्धी विचार

सिसमाण्डी करारोपण के लिए निम्नलिखित नियम प्रस्तुत किए है -

(अ) कर इस प्रकार के लगाये जावें जिनका भुगतान पूंजी में से न होकर आय में से किया जावे।

(ब) जीवन निर्वाह के लिए व्यक्ति की आवश्यक आय पर किसी भी प्रकार का कर नहीं लगाना चाहिए।

(ii) श्रीमती हिक्स के कर सम्बन्धी विचार :

श्रीमती हिक्स का मत है कि एक अच्छी कर प्रणाली के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है -

(अ) करारोपण जनोपयोगी सेवाओं को प्रदान करने के लिए करना चाहिए।

(ब) जन साधारण की आय एवं इनकी पारिवारिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही करारोपण इनकी कर देय क्षमता के अनुसार होना चाहिए।

(स) समान आर्थिक स्तर वाले व्यक्तियों पर एक सा कर लगाना चाहिए तथा ऐसे व्यक्तियों पर करारोपण के समय विभेदात्मक नीति (Discriminative policy) नहीं अपनानी चाहिए।

(द) कर प्रणाली सार्वभौमिक होनी चाहिए।

उपर्युक्त विभिन्न करारोपण के सिद्धान्तों से अवगत होता है कि किसी भी देश में कोई भी कर प्रणाली जनता को न तो पूर्णतया संतुष्ट करती है और न ही कर सकती है। इस संदर्भ में श्रीमती हिक्स ने कहा है कि "प्रत्येक कर को पृथक-पृथक नहीं लेकर सम्पूर्ण कर व्यवस्था को ध्यान में रखना चाहिए जिससे एक कर के दोष दूसरे कर से दूर हो जावे। इस प्रकार कर प्रणाली के लिए इस प्रकार के प्रयत्न होने चाहिए कि कर प्रणाली में बुरे प्रभाव कम से कम हो तथा उपर्युक्त अधिकांश सिद्धान्तों का समावेश हो। अत: एक आदर्श कर प्रणाली वह है जो आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है। दूसरे शब्दों में एक उपर्युक्त कर प्रणाली वही समझी जाती है जिसमें आदर्श कर प्रणाली के अधिकांश सिद्धान्तों की समाविष्ट होती है और ऐसी ही स्थिति होने पर जनता को अधिकतम सामाजिक लाभ मिलता है।

15.2.3 अच्छी कर प्रणाली की विशेषता:

एक अच्छी कर प्रणाली को प्रस्तुत करना कठिन होता है। व्यवहार में दोष रहित कर प्रणाली की कल्पना करना निरर्थक ही है। एक अच्छी कर प्रणाली की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित प्रकार से वर्णित की गयी है :

(अ) करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों के अनुरूप कर :

एक अच्छी कर प्रणाली करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों के अनुरूप होती है। इसमें निम्नलिखित गुण होते है -

(i) कर प्रणाली में सरलता होती है जिसके परिणामस्वरूप करवंचन नहीं होगा।

(ii) कर प्रणाली में मितव्ययिता विद्यमान होती है।

(iii) कर प्रणाली लोचदार एवं सुविधाजनक होती है।

(iv)कर प्रणाली में निश्चितता एवं उत्पादकता का गुण पाया जाता है

(ब) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों में उचित समन्वय :

प्रत्यक्ष करो का भार धनिक वर्ग पर तथा परोक्ष करों का भार निर्धन वर्ग पर पड़ता है। इन दोनों करो में से कर प्रणाली में किसी एक की प्रधानता है तो यह न्यायशीलता सिद्धान्त के प्रतिकूल कहलाती है। अत : कर प्रणाली में न्याय अथवा समानता के लिए दोनो करों में उचित समन्वय होना आवश्यक है।

(स) अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति :

एक अच्छी कर प्रणाली वह है जिसमें सरकार "अधिकतम सामाजिक लाभ" के सिद्धान्त के अनुसार आय प्राप्त करती है तथा इसी सिद्धान्त के अनुसार सरकार अपनी आय को तब तक व्यय करती है जब तक कि समाज का अधिकतम कल्याण होगा। डाल्टन के शब्दों मैं- "राजस्व की सर्वोत्तम प्रणाली वह है जिससे राज्य अपने कार्यो के द्वारा "अधिकतम सामाजिक लाभ" की प्राप्ति करता है।' अत : एक अच्छी कर प्रणाली "अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत" पर आधारित होती है तथा इस बात का ध्यान रखा जाता है कि करारोपण से देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े।

(द) बहु कर प्रणाली :

एक अच्छी कर प्रणाली की मुख्य विशेषता बहुकर प्रणाली (Multiple Tax System) है। सरकार को आवश्यकतानुसार करारोपण से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होती है तथा कर-वंचन एवं असमानता जैसी स्थिति राज्य में उत्पन्न हो जाती है ऐसी विषम स्थिति को नियंत्रण करने के लिए बहु कर प्रणाली सर्वोत्तम है जो कि एक अच्छी कर प्रणाली का मुख्य गुण है।

(स) उत्पादन पर प्रभाव

एक अच्छी कर प्रणाली वह है जो उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन दे तथा लोगों की काम एवं बचत करने की क्षमता को प्रोत्साहित करे। डाल्टन के शब्दों में- "आर्थिक दृष्टिकोण से करारोपण की सबसे अच्छी पद्धति वह है जो सबसे अच्छे आर्थिक प्रभाव डालती है अथवा सबसे कम।" इस प्रकार एक अच्छी कर प्रणाली अर्थव्यवस्था के उत्पादन पर अच्छा प्रभाव डालकर आर्थिक विकास में सहायक होती है।

(र) वितरण पर प्रभाव

एक अच्छी कर प्रणाली वह है जो आय एवं धन के वितरण में पायी जाने वाली असमानताओं को दूर करके देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती हो। इस प्रकार एक अच्छी कर प्रणाली वह है जो राष्ट्रीय आय की वृद्धि तथा आय के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के सम्बन्ध में आश्वस्त करे। दूसरे शब्दों में अच्छी कर प्रणाली वह है जो न केवल सरकार को पर्याप्त आय प्रदान करती है बल्कि आय तथा धन के वितरण में पायी जाने वाली असमानताओं को दूर करती है।

15.3 करों का वर्गीकरण (Classification of Taxes):

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने करों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है -

(i) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर

(ii) अनुपाती, प्रगतिशील, प्रतिगामी और अधोगामी कर,

(iii) विशिष्ट तथा मूल्यानुसार कर,

(iv)एकल एवं बहु-कर प्रणाली।

उपर्युक्त करों के वर्गीकरण की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित शीर्षकों में की गयी है -

15.3.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्षकर (Direct and Indirect Tax) :

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर की परिभाषा दी है जो इन दोनों के करों के अन्तर को स्पष्ट करती है। प्रो० जे० एस० मिल के शब्दों में- "प्रत्यक्ष कर वह है जो कि उसी व्यक्ति से मांगा जाता है जिसमें कि यह आशा अथवा इच्छा की जाती है कि वह उसे अपने पास से देगा और परोक्ष कर वह है जो किसी व्यक्ति से इस इच्छा अथवा आशा से मांगा जाता है कि वह किसी दूसरे से इस कमी को पूरा कर लेगा।

श्रीमती हिक्स के शब्दों में- "प्रत्यक्ष कर वह है जिससे करदाता तथा राज्य के मध्य सीधा सम्बन्ध हो तथा परोक्ष कर वह है जो राज्य व्यापारियों को मध्यस्थ बनाकर संग्रह करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है -

(अ) प्रत्यक्ष कर का कराघात (Impact) एवं करापात (Incidence) एक ही व्यक्ति पर पड़ता है। इसके विपरीत परोक्ष कर का कराघात एवं करापात भिन्न भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है।

(ब) प्रत्यक्ष कर ऐसे कर है जिनका विवर्तन नहीं किया जा सकता जबकि परोक्ष कर का विवर्तन होता है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष कर के अन्तर्गत आयकर (Income Tax), सम्पत्ति कर (Wealth Tax) तथा जायदाद कर (Estate Duty) आदि आते है तथा परोक्ष कर के अन्तर्गत बिक्री कर, मनोरंजन कर, माल गुजारी (Land revenue) आदि आते है । यहां प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष करों की आलोचनात्मक व्याख्या निम्नलिखित रूप में विस्तारपूर्वक की गई है -

(अ) प्रत्यक्ष कर के गुण :

प्रत्यक्ष करों के गुण अथवा पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती है -

(i) प्रत्यक्ष कर व्यक्ति की कर देय क्षमता के अनुरूप लगाए जाते है। जिस व्यक्ति की आय अधिक है वह अधिक कर तथा जिस व्यक्ति की आय कम है वह कम कर देता है। इसलिए प्रत्यक्ष कर में न्यायशीलता तथा समानता का गुण होता है।

(ii) प्रत्यक्ष कर के सम्बन्ध कर दाता को कर सम्बन्धी ज्ञान होता है, जैसे- यह कर कब और कितना देना है। इसलिए प्रत्यक्ष कर में निश्चितता (Certainty) का गुण होता है।

(iii) प्रत्यक्ष कर अदा करने वाले व्यक्ति कर की राशि सीधे सरकार को देते है जिससे सरकार अथवा राज्य को इन करों का संग्रह करने में बहुत कम व्यय करना पड़ता है । इसलिए प्रत्यक्ष कर में मितव्ययिता (Economy) का गुण होता है।

(iv) सरकार संकटकाल में प्रत्यक्ष करों की दरों में वृद्धि करके अपनी आय बढ़ा सकती है तथा सामान्य काल में प्रत्यक्ष करों की दरों में कमी अथवा छूट देकर अपनी आय कम कर सकती है। इसलिए प्रत्यक्ष करों में लोच (Elastic) का गुण पाया जाता है।

(v) प्रत्यक्ष कर नागरिकों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना करते है। सरकार के कोष में करदाता प्रत्यक्ष कर के रूप में धनराशि जमा कराता है जिससे ये स्वत: ही राजनैतिक गतिविधियों में रूचि लेना शुरू कर देते है । ऐसे करदाता सरकार द्वारा गलतियां करने पर इनके विरोध में आवाज उठाते है । इसलिए प्रत्यक्ष करों में "राजनैतिक जागरूकता' (Political Consciousness) का गुण पाया जाता है।

(ब) प्रत्यक्ष कर के दोष :

प्रत्यक्ष करों के दोषों अथवा विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती है -

(i) प्रत्यक्ष कर जनता को कष्टप्रद होते है। इस प्रकार के करों का भुगतान एक मुश्त करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त करदाता को सरकारी अधिकारियों के सामने पूरा पूरा हिसाब प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रकार करदाताओं को ऐसे करों के कारण कई प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। अत : प्रत्यक्ष कर में "असुविधाजनक" होने का दोष पाया जाता है।

(ii) प्रत्यक्ष कर का सीधा प्रभाव कर दाता पर पड़ता है जिससे इसको कई प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। चालाक व्यक्ति अपनी आय के झूठे हिसाब देकर इन करों से बच जाते है। अत : इस प्रकार के करों में दोष करवंचन (Tax-Evasion) का पाया जाता है।

(iii) सरकार इस प्रकार के करों का निर्धारण मनचाहे ढंग से करती है। दूसरे शब्दों में ऐसे करों का निर्धारण सरकार अपनी इच्छानुसार करती है। ऐसे कर देने वाले व्यक्तियों की कर देय क्षमता की अवहेलना होती है अत : ऐसे करों में स्वेच्छाचारिता अथवा मनमानी (Arbitrary) का दोष पाया जाता है।

(iv) प्रत्यक्ष करों का भार केवल धनिक वर्ग पर ही पड़ता है अर्थात् निर्धन वर्ग ऐसे कर अदा नहीं करते है। ऐसे करों का भार एक ही वर्ग पर पड़ता है। अत: ऐसी कर नीति में एक पक्षीय दोष (one side defect) पाया जाता है।

(स) परोक्ष करों के गुण

परोक्ष कर के गुण अथवा पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) परोक्ष कर वस्तुओं की कीमत में सम्मिलित होते है तथा इनकी कीमत में कर का अंश बहुत कम होता है। इस प्रकार व्यक्तियों को वस्तुएँ खरीदते समय कर देने का आभास बिल्कुल नहीं होता है। अत : ऐसे करों में "सुविधाजनक" (Convenient) का गुण होता है।

(ii) कर वस्तु के मूल्य में सम्मिलित होता है। व्यक्ति द्वारा वस्तु खरीदने पर उसे कर आवश्यक रूप से देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कर की चोर नहीं कर पाते है। अत. परोक्ष करो में कर-वंचन की सम्भावना (Impossibility of Tax - Evasion) का गुण पाया जता है।

(iii) प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदता है और वह कर का भुगतान करता है। अत: जिन व्यक्तियों में कर देने की क्षमता होती है वे ही वस्तुएं एवं सेवाएं खरीदते है। इस प्रकार परोक्ष करों में न्यायपूर्ण (Equitable) होने का गुण पाया जाता है।

(iv) परोक्ष कर सामाजिक बुराई तथा मादक वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगाने के लिए लगाए जाते है, जैसे-शराब, अफीम आदि। ऐसी स्थिति में इन वस्तुओं का उपभोग कम हो जाता है। इस प्रकार परोक्ष कर समाज को सुधारने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य करते है। अत: परोक्ष करों में "सामाजिक कल्याण' (Social Welfare) का गुण पाया जाता है।

(v) परोक्ष कर अनिवार्य एवं बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं पर आसानी से घटाए बढाए जा सकते है। ऐसी वस्तुओं की करों की दर में परिवर्तन करना सरल होता है। इस प्रकार परोक्ष करों में लोचदार (Elastic) होने का गुण पाया जाता है।

(द) परोक्ष करों के दोष

परोक्ष कर से दोष अथवा विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) परोक्ष कर अधिकांशत : उपभोक्ता वस्तुओं उपभोग-वस्तुओं पर लगाए जाते है। अत. ऐसे करों का भार गरीबों पर अधिक पड़ता है। इस प्रकार परोक्ष करो में "अन्यायपूर्ण" (unequitable) होने का दोष पाया जाता है।

(ii) परोक्ष करों से प्राप्त होने वाली आय का ठीक-ठीक पूर्व अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है। अत : ऐसे करों से प्राप्त होने वाली आय अनिश्चित होती है। इस प्रकार परोक्ष करों में अनिश्चितता (Uncertainty) को दोष पाया जाता है।

(iii) परोक्ष करों का क्षेत्र (Area) विस्तृत होता है। वस्तुओं, सेवाओं और नागरिकों की संख्या असीमित होती है। ऐसी स्थिति में ऐसे करों की वसूली करने में सरकार को अधिक व्यय करना पड़ता है। अत : ऐसे करों में "अमितव्ययिता" (Uneconomical) होने का दोष पाया जाता है।

(iv) विलासिता वस्तुओं की मांग लोचदार होती है। अत : ऐसी वस्तुओं पर कर लगाने से सरकारी आय बढ़ने की अपेक्षा कम हो जाती है। इस प्रकार परोक्ष करों में लोच का अभाव रहता है। अत: ऐसे करो में "बेलोचता" (Inelastic) का दोष होता है।

(v) वस्तुओं के मूल्यों में कर सम्मिलित होने से क्रेताओं अर्थात् व्यक्तियों को कर देने का आभास बिल्कुल नहीं होता है। अत : ऐसे कर नागरिकों में जनचेतना उत्पन्न करने में असमर्थ होते है। इस प्रकार परोक्ष करों में "नागरिक चेतना का अभाव" (Lack of public consciousness) दोष पाया जाता है।

(vi) परोक्ष कर लगाने से वस्तुओं का उपभोग कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा उत्पादकों को भी हानि होने लगती है। इससे प्रभावपूर्ण मांग गिरने लगती है जिसके कारण बेकारी और आर्थिक अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार परोक्ष करों में "प्रभावपूर्ण मांग कम" (Low Effective Demand) होने का दोष पाया जाता है।

(य) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों में सम्बन्ध.

दीर्घकाल, से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों में से कौनसा कर अधिक श्रेष्ठ है, यह वाद-विवाद का विचार-बिन्दु बना हुआ है। कुछ अर्थशास्त्री परोक्ष कर ली तुलना में प्रत्यक्ष कर को श्रेष्ठ मानते है क्योंकि प्रत्यक्ष करों का भार केवल धनिक वर्ग पड़ता है जिनमें कर-भार सहन करने की क्षमता होती है। इसके विपरीत परोक्ष करों का भार अधिकतर निर्धन वर्ग पर पड़ता है। ये दोनो कर एक दूसरे के दोष को दूर करते है। इस प्रकार किसी देश की कर प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर मध्य एक उचित सन्तुलन होना चाहिए क्योंकि ये दोनों कर परस्पर एक दूसरे के पूरक है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ग्रेट स्कॉटमैन (Great Scott man) के शब्दों में - "मै प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों के बारे में इसके अतिरिक्त और नहीं सोच सकता कि मैं उनको दो आकर्षक बहिनों के समान मान लूं जो लन्दन के सुन्दर संसार में आई है। ये दोनों ही बहुत भाग्यशाली है, दोनों के माता-पिता एक है- मेरा विश्वास है कि दोनों के माता-पिता "आवश्यकता" और "आविष्कार" है। इन दोनों में अन्तर केवल इतना हो सकता है जितना कि दो बहिनों में होता है।"

इसी सन्दर्भ में इटली के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **डिमार्को** में निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण बातें बतलायी है:

(i) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर एक दूसरे के पूरक है।

(ii) प्रत्यक्ष करों द्वारा उत्पन्न होने वाले घर्षाणात्मक शक्तियों (Frictional Forces) को परोक्ष कर कम करते है।

अत : एक आदर्श कर प्रणाली में इन दोनों करों के मध्य उचित सन्तुलन होना चाहिए।

(र) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर परस्पर पूरक :

ये देशों कर परस्पर पूरक होते है। परोक्ष कर प्रत्यक्ष करों के निम्नलिखित कारणों से पूरक होते है:-

(i) परोक्ष कर व्यक्तियों के उपभोग पर लगाए जाते है और आय की उस मात्रा पर भी कर वसूल करते है जो प्रत्यक्ष करों से बच जाती है।

(ii) वे किसी व्यक्ति की समय-समय पर परिवर्तन होने वाली आय को भी ध्यान में रख सकते है क्योंकि आय में परिवर्तन होने के साथ ही साथ व्यक्ति के उपभोग में भी प्ररिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार परोक्ष आय में होने वाले परिवर्तनों को अपने क्षेत्र लाकर उन पर भी कर ले लेते हैं।

इसी प्रकार प्रत्यक्ष कर परोक्ष करों के निम्नलिखित कारणों से पूरक होते है -

(i) परोक्ष कर उन वस्तुओं पर नहीं लगाए जा सकते है जिनका उपभोग स्वयं उत्पादकों द्वारा ही किया जाता है जैसे- कृषि पदार्थों पर, जो किसानों द्वारा स्वयं उपभोग किए जाते है। इन पर प्रत्यक्ष कर लगाए जाते है।

(ii) परोक्ष कर सभी प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं पर नहीं लगाए जा सकते है।

(iii) परोक्ष करों में भी कर-वंचन हो सकता है।

इन सब उपर्युक्त कारणों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर एक साथ लगाए जाते है। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से कर नहीं देता है करों का भुगतान वैधानिक दबाव में आकर ही किये जाते है। प्रत्यक्ष करों का भुगतान व्यक्ति अपनी आय में से करता है। अत: व्यक्ति की आय में से कर की मात्रा देख कर इसको मानसिक कष्ट होता है इसके विपरीत, व्यक्तियों को परोक्ष करों का भुगतान करते समय मानसिक कष्ट की अनुभूति कम होती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष करों से उत्पन्न तनाव, विरोध, मानसिक कष्ट की गहनता को कम करने के लिए परोक्ष कर आवश्यक है। इस प्रकार आर्थिक स्थिरता अथवा आर्थिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए दोनों प्रकार के कर महत्वपूर्ण है।

(ल) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों का तुलनात्मक अध्ययन:

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित दृष्टिकोणों से किया जाता है -

(i) साधनों का आवंटन :

(ii) प्रशासकीय आधार

(iii) वितरण सम्बन्धी प्रभाव।

इन उपर्युक्त दृष्टिकोणों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित रूप मे वर्णित है -

(i) साधनों का आवंटन (Allocation of Resources) :

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत है कि प्रत्यक्ष कर परोक्ष करों से अधिक अच्छे होते है, क्योंकि यदि निश्चित राशि का संग्रह परोक्ष करों की सहायता से किया जाता है तो इसका भार समाज पर अधिक पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि इस धनराशि को प्रत्यक्ष करों द्वारा संग्रह किया जाता है तो इसका भार समाज पर कम पड़ेगा। इसको उदासीनता वक्रों की सहायता से रेखाचित्र 15.1 द्वारा समझाया गया है।

रेखाचित्र 15.1

रेखाचित्र 15.1 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर आय मापी गयी है। यहां AB,AB_1, और A_1B_1 कीमत रेखा है। कर करारोपण से पहले E बिन्दु साम्य बिन्दु है, जहां IC_3 वक्र कीमत रेखा AB को स्पर्श करता है। उत्पादन कर लगाने पर वस्तु की कीमत बढ़ जाती है जिससे अब OA आय से केवल OB_1 वस्तुएं ही खरीदी जा सकती है। इस प्रकार कीमत रेखा AB_1 बन जाती है तो उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर साम्य प्राप्त करता है। अब यदि उपभोक्ता RE आय व्यय करता है तो इसके बदले में वह AR वस्तुएं प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में कुल आय R_1E_1 में से R_2 R_1 आय राज्य उत्पादन कर के रूप में लेती है। यदि यही समान धनराशि R_2E_1 राज्य व्यक्ति से आयकर के रूप में वसूल करती है तो इसकी आय OA_1 रह जावेगी। वस्तु की कीमत यथा स्थिर रहे तो कीमत रेखा बदलकर A_1B_2 हो जावेगी। ऐसी अवस्था में नया साम्य बिन्दु E_2 होगा जहां 1 IC_2 वक्र कीमत रेखा A_1B_2 को स्पर्श करता है। इस प्रकार उपभोक्ता की स्थिति शुल्क देने वाली स्थिति से अधिक श्रेष्ठ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन कर (अर्थात् परोक्ष कर) की तुलना में आयकर (अर्थात् प्रत्यक्ष कर) अधिक अच्छा होते हैं।

(ii) प्रशासकीय आधार

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करो की तुलना प्रशासकीय आधार से भी की जाती है। प्रत्यक्ष कर कम आय वाले व्यक्तियों पर लगाये जाते है। उदाहरणार्थ - आयकर की सीमा सरकार ने 3,50,000 रुपये

निर्धारित की है तो ऐसी दशा में 3,50,000 रूपये से कम आय वाले व्यक्तियों को आयकर नहीं देना पड़ता है।

प्रत्यक्ष कर असुविधाजनक होते है क्योंकि कर दाता को कर का भुगतान एक मुक्त राशि में देना होता है जबकि आय प्रतिमास प्राप्त होती है ऐसी स्थिति के कारण ऐसे कर भार स्वरूप प्रतीत होते है और करदाता झूठे हिसाब देकर इनसे बचना चाहते है। दूसरे शब्दों में परोक्ष करों का संग्रह करना आसान है, ये सुविधा जनक होते है तथा इनका कर-वंचन कठिन होता है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि विकासशील देशों में परोक्ष कर ही उचित होते है। ऐसे देशों में प्रत्यक्ष कर अच्छे नहीं होते है क्योंकि इन देशों में छोटे तथा स्वतंत्र उत्पादक बहुत संख्या में पाये जाते है तथा ऐसे उत्पादक अशिक्षित होने से अपने व्यवसाय के आय का ब्यौरा नहीं रख पाते है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति तो अपनी जीविका चलाने के लिए ही कमाते है। ऐसे देशों में वर्तमान में वस्तु-विनिमय (Barter system) प्रणाली का प्रचलन भी देखने को मिलता है। अत: ऐसे देशों के लिए तो परोक्ष कर ही उचित होते है।

(iii) वितरण सम्बन्धी प्रभाव :

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों की तुलना वितरण पक्ष की दृष्टि से भी की जाती है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में जो आय की असमानता (Inequality of Income) होती है इसको प्रत्यक्ष करों के द्वारा कम किया जा सकता है। चूंकि ऐसे कर प्रगतिशील होते है। अत : अधिक आय वर्ग पर ऊंची दर से कर लगाए जावें तो इससे उनकी आय और कम होती रहती है। इसके विपरीत परोक्ष कर प्रतिगामी (Regressive) होते है और इनका भार सभी व्यक्तियों को वहन करना पड़ता है परन्तु यह विचार भयपूर्ण है क्योंकि यदि आवश्यक वस्तुओं पर बहुत नीची दर (very low rate) से और विलासिता वस्तुओं (luxury goods) पर बहुत ऊंची दर से कर लगाए जावे तो परोक्ष कर भी प्रगतिशील (Progressive) हो सकते है।

इस प्रकार किसी भी अर्थव्यवस्था की कर प्रणाली को न्यायपूर्ण बनाने के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों को लगाना उचित होगा। किस वर्ष कौन सा कर अधिक लगाया जावे यह देश की आर्थिक राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पार निर्भर करता है। अत : राजस्व की सर्वोतम कर प्रणाली के लिए दोनो में समन्वय आवश्यक होता है।

15.3.2 आनुपाती, प्रगतिशील प्रतिगामी एवं अधोगामी कर:

किसी भी करदाता की आर्थिक शक्ति और करों की दर के मध्य क्या सम्बन्ध है, इसके अनुसार अनुपाती, प्रगतिशील, प्रतिगामी एवं अधोगामी कर हो सकते है। इन करों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित रूप में वर्णित की गयी है:-

(अ) आनुपाती कर (Proportional Tax) :

आनुपाती कर वह कर है जो आय के समस्त वर्गों पर एक ही दर से लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में चाहे व्यक्तियों की आय घटती हो अथवा बढ़ती हो परन्तु कर की दर हमेशा एक सी रहती है। आनुपाती कर को तालिका 15.1 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका 15.1

आनुपाती कर का आकलन

वार्षिक आय 1	कर की दर 2	कर से प्राप्त धनराशि 3	कर भुगतान के बाद आय 4
5,000	10%	5000	5000-500=4,500
10,000	10%	1,000	10,000-1,000=9,000
20,000	10%	2,000	20,000-2,000=18,000

तालिका 15.1 से स्पष्ट है कि आय पर एक निश्चित दर से कर लगाया जाता है इसको "आनुपाती कर" कहते है।

अनुपाती करों के गुण अथवा पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है:

(i) कोई भी व्यक्ति आनुपाती करों को आसानी सें समझ सकता है। इस प्रकार ऐसे करों में "सरलता" का गुण पाया जाता है।

(ii) कर की दर समान होने से सभी करदाताओं की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है। दूसरें शब्दों में इस प्रकार की दर से करारोपण करने पर करदाताओं की करारोपण के पहले और करारोपण के बाद उनकी सापेक्षिक आर्थिक स्थिति एक सी बनी रहती है।

(iii) आनुपाती कर का मापदंड बहुत ही आसान है। प्रत्येक करदाता कर देय राशि को आसानी से निकाल लेता है।

आनुपाती करो में निम्नलिखित दोष पाये जाते है:-

(i) आनुपाती कर की दर एक समान होने से गरीब एवं अमीर की स्थिति पूर्ववत् बनी रहती है अर्थात् कर की समान दर होने के कारण गरीबों को कर के बदले में अधिक त्याग करना पड़ता है जबकि अमीरों को गरीबों की तुलना में कम त्याग करना पड़ता है। अत: ऐसे कर न्याय संगत नही होते है।

(ii) ऐसे कर देश में आय की असमानता को ठीक करने में असफल है क्योंकि कर की दर एक सी होने पर समाज की आय का पुन: वितरण नही हो पाता है। ऐसी स्थिति से यथावत् आय की असमानता अर्थव्यवस्था में बनी ही रहेगी।

(ब) प्रगतिशील कर (Progressive Tax) :

प्रगतिशील कर वह कर है जिसकी दर आय की मात्रा बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती है। इसके अनुसार व्यक्ति की आय को कई खण्डों या वर्गों (Slabs) में बांट दिया जाता है और आय के प्रत्येक खण्ड या वर्ग पर कर की दर बढ़ती जाती है। प्रगतिशील कर को तालिका 15.2 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका 15.2; प्रगतिशील कर का आकलन

वार्षिक आय 1	**कर की दर** 2	**व्यक्तिगत कर देय आय** 3	**कर से प्राप्त राशि** 4	**कर भुगतान के बाद आय** 5
50000 से कम	10%	5,0000	5000	5,0000-5000=4,5000
50001 से 10,0000	15%	10,0000	1,5000	10,0000-1,5000=85000
10,0001 से 15,0000	20%	15,0000	3,0000	15,0000-3,0000=12,0000
15,0001 से 20,0000	25%	20,0000	5,0000	20,0000-5,0000 =15,0000
20,0001 से 25,0000	30%	25,0000	7,5000	25,0000-7,5000=17,5000

तालिका 15.2 से स्पष्ट है कि आय वर्ग बढ़ने के साथ कर की दर में भी वृद्धि होती जाती है तो इसको "प्रगतिशील कर" कहते है।

प्रगतिशील करों के गुण अथवा पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है : -

(i) प्रगतिशील कर व्यक्ति की कर देय क्षमता के अनुसार लगाए जाते है। धनी व्यक्ति पर कर की मात्रा अधिक तथा निर्धन व्यक्ति पर कर की मात्रा बहुत कम अथवा कर मुक्त होती है। इस प्रकार प्रगतिशील कर न्याय संगत होते है। इसी कारण ये कर विश्व के समस्त देशों में प्रचलित है।

(ii) ऐसे कर निर्धन व्यक्तियों से कम दर अथवा कर मुक्त करके और धनी व्यक्तियों से ऊंची दर से कर लेकर समाज के त्याग को न्यूनतम करते है। इस प्रकार ऐसे करों से समाज को सम्पूर्ण रूप से संतुष्टि की हानि न्यूनतम होती है।

(iii) ऐसे कर धनिक वर्ग पर ऊंची दर से तथा निर्धन वर्ग पर न्यूनतम दर से (अथवा कर मुक्त) लगाए जाते है। इस प्रकार ये कर समाज की आय की असमानता को दूर करने में उपयोगी है।

(iv) ऐसे करों की दरों में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है। कर की दर में थोड़ी सी वृद्धि करके पर्याप्त अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। अत : ऐसे करों में "लोचता" का गुण विद्यमान रहता है।

(v) प्रो० जे० एम० केन्ज (J.M. Keynes) के अनुसार- "रोजगार प्रभावपूर्ण मांग (Effective Demand) पर आधारित है तथा प्रभावपूर्ण मांग उपभोग प्रवृति (Propensity to Consume) पर निर्भर करती है। " निर्धन वर्ग में उपभोग प्रवृति अधिक और धनिक वर्ग में यह कम होती है। सरकार प्रगतिशील करों के माध्यम से धनिक वर्ग पर अधिक कर लगाकर इनसे अधिक मात्रा में धन प्राप्त करती है और इस धन को निर्धन वर्ग पर व्यय करती है। इस प्रकार के आय के हस्तान्तरण उपभोग प्रवृति को बढ़ते है। इससे रोजगार वृद्धि में सहायता मिलती है। अत : ऐसे करों में "रोजगारोन्मुखी" होने का गुण पाया जाता है।

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पी० ई० टेलर (P.E. Taylor) ने प्रगतिशील करों को सभी दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण एवं उपयोगी होने की संज्ञा दी है।

प्रगतिशील करों के दोष अथवा विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है। -

(i) प्रगतिशील करों के निर्धारण का कोई मापदण्ड नहीं होता है। ऐसी स्थिति में सरकार करों की दर का निर्धारण अपने मनमाने ढंग से करती है। अत : ऐसे करों के निर्धारण में "मनमानी" का दोष पाया जाता है।

(ii) प्रगतिशील करों के अन्तर्गत धनिक वर्ग पर ऊंची दर से कर लगाये जाते है तथा निर्धन -वर्ग पर कम दर से। अत : इस प्रकार के करारोपण से धनिक वर्ग की काम करने एवं बचत करने की इच्छा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत : ऐसे कर धनिक वर्ग की काम एवं बचत करने की क्षमता को हतोत्साहित करते है।

(iii) जो व्यक्ति परिश्रमी तथा मितव्ययी है उनमें अधिक आय प्राप्त करने की लगन होती है परन्तु अधिक आय पाने वाले व्यक्तियों पर अधिक कर लगाए जाते है। इस प्रकार सरकार ऐसे कर लगाकर इन्हें हतोत्साहित करती है।

प्रगतिशील करों में दोष होते हुए भी ये इतने उपयोगी है कि संसार के सभी देशों में इसका प्रचलन है।

(स) प्रतिगामी कर (Regressive Tax) :

प्रतिगामी कर वह कर है जिसकी दर आय की मात्रा बढ़ने के साथ साथ घटती जाती है। दूसरे शब्दों में आय बढ़ने पर इस कर की दर घटती है। प्रतिगामी करो के अन्तर्गत आय बढ़ने के साथ साथ कर की दर भी घटती जाती है। ऐसे करों को तालिका 15.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका 15.3

प्रतिगामी कर का आकलन

वार्षिक आय	कर की दर	व्यक्तिगत कर देय आय	कर से प्राप्त राशि	कर भुगतान के बाद आय
1	2	3	4	5
5,0000 से कम	15%	5,0000	7500	5,0000-7500 = 4,2500
5,0001 से 10,0000	12%	10,0000	12000	10,0000-12000=8,8000
10,0001 से 15,0000	10%	15,0000	15000	15,0000-1,5000 = 1,35,000
15,0001 से 20,0000	8%	20,0000	16000	20,0000-16000 = 18,4000
20,0001 से25,0000	7%	25,0000	17500	25,0000-17500 = 2,32,500

तालिका 15.3 से स्पष्ट है कि आय में वृद्धि के साथ कर की दर में की होती जाती है। इसको "प्रतिगामी कर" कहते है।

प्रतिगामी करों के गुण अथवा पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है।:-

(i) प्रतिगामी कर व्यवस्था जनहित के लिए अपनायी जाती है। यदि सरकार मद्यपान जैसे शराब पर ऐसे कर अधिक मात्रा में लगाती है तो ऐसी दशा में व्यक्ति शराब कम पीने लगेंगे जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होंगे।

(ii) ऐसे करों का भार अमीरों की अपेक्षा गरीबों पर अधिक पड़ता है। इस प्रकार ऐसे कर गरीबों की उपभोग प्रवृति को नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण योगदान करते है जिसके फलस्वरूप बाजार में कीमतों में स्थिरता बनी रहेगी।

प्रतिगामी करों के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है:-

(i) ऐसे करों के लगाने से गरीबों पर इनका भार अधिक पड़ता है। इसलिए प्रतिगामी कर न तो न्यायपूर्ण है। इसलिए प्रतिगामी कर न तो न्यायपूर्ण है और न उत्पादक

(ii) ऐसे करों की राशि को संग्रह करने से लिए बहुत व्यय करना होता है। अत: प्रतिगामी कर मितव्ययी नहीं होते है।

अनुपाती, प्रगतिशील तथा प्रतिगामी करों में कर के आधार (Base) तथा कर की दर (Rate of Tax) में सम्बन्ध होता है। इसको रेखाचित्र 15.2 द्वारा प्रदर्शित किया है।

कर का आधार

रेखाचित्र 15.2

कर देय राशि कर के आधार को कर की दर से गुणा करके ज्ञात की जा सकती है। आनुपाती कर में गुणक (Multiplier) समान रहता है। प्रगतिशील कर के आधार में वृद्धि होने पर गुणक बढ़ जाता है और प्रतिगामी कर कम हो जाता है।

(द) अधोगामी कर (Digressive Tax) :

ऐसे कर आय बढ़ने के साथ-साथ बढ़ते हें परन्तु एक निश्चित सीमा तक ऐसी दर प्रगतिशील रहती है। उसके बाद आनुपाती हो जाती है। अत : अधोगामी करों का भार अमीरों की तुलना में गरीबों पर अधिक पड़ता है। दूसरे शब्दों में ऐसे करों से अधिक आय वाले व्यक्तियों को उतना त्याग नहीं करना पड़ता है जितना कि वास्तव में उनको करना चाहिए दूसरी ओर कम आय वाले व्यक्तियों को अधिक त्याग करना पड़ता है।

अधोगामी कर के अन्तर्गत करदाताओं की स्थिति रेखाचित्र 15.3 में प्रदर्शित की गयी है।

रेखाचित्र 15.3

अधोगामी कर लगाने से करदाताओं की स्थिति रेखाचित्र 15.3 में प्रदर्शित LL वक्र जैसी होती है।

ऐसे करों में निम्नलिखित दोष पाये जाते है -

(i) धनिक वर्ग पर कर कम तथा निर्धन वर्ग पर कर अधिक होने से ऐसे कर न्याय संगत नही होते है।

(ii) ऐसे करों की व्यवस्था में धनिक वर्ग को अधिक त्याग करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है। कर की दर के आधार पर वर्गीकरण में से कौन सा कर सर्वोत्तम है? यह विचारणीय एवं महत्वपूर्ण प्रश्न है। जहां तक आय प्राप्ति के साधन अथवा स्त्रोत को ध्यान में रखकर करों के औचित्य पर विचार करते है तो आधुनिक राजस्व प्रणाली में "प्रगतिशील कर" सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कर की दर के आधार पर वर्गीकरण तालिका 15.1, 15.2 एवं 15.3 क्रमश : आनुपाती कर, प्रगतिशील कर एवं प्रतिगामी कर की स्थिति के बारे में जानकारी देती है। इन तालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करें तो तालिका 15.2 स्पष्ट रूप से प्रगतिशील कर सर्वश्रेष्ठ होने का संकेत देती है। 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्री "अनुपाती कर" को सर्वोत्तम मानते थे जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री प्रगतिशील कर को अन्य करों की तुलना में "सर्वोत्तम कर" मानते है। प्रो. पी. ई. टेलर (P.E. Taylor) के शब्दों में – "प्रगतिशील कर राजस्व की उत्पादकता, समाज के न्यूनतम त्याग, आर्थिक स्थिरता एवं विकास तथा साधनों के अधिकतम सामाजिक विवरण की दृष्टि से उपर्युक्त होते है।"

15.3.3 विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर

कर निर्धारण के आधार पर करों को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है -

(अ) विशिष्ट कर

(ब) मूल्यानुसार कर

इन करों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित रूप में वर्णित की गयी है -

(अ) विशिष्ट कर (Specific Tax) :

विशिष्ट कर वे कर है जो वस्तु की इकाई या परिणाम या भार के आधार पर लगाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में वे कर जो वस्तु के मूल्य के अनुसार नहीं बल्कि वस्तु के आकार के अनुसार लगाए जाते है, उनको विशिष्ट कर कहते है। उदाहरणार्थ - प्रति टन, प्रति क्विंटल, प्रति किलो अथवा प्रति इकाई या प्रति मीटर। ऐसे करों में वस्तु के मूल्य को आधार नहीं माना जाता है बल्कि वस्तु का आकार को आधार माना जाता है।

विशिष्ट करों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) ऐसे करों में 'सरलता' (Simplicity) का गुण होता है। एक साधारण व्यक्ति भी इस कर को आसानी से समझ जाता है।

(ii) ऐसे कर सुविधाजनक (convenient) होते है।

ऐसे करों के बारे में निम्नलिखित दोष बतलाये है -

(i) बहुत कम भार वाली वस्तुओं अथवा छोटे आकार वाली वस्तुओं पर ऐसे कर लगाना मुश्किल होता है।

(ii) ऐसे करों की चोरी अर्थात् कर-वंचन की सम्भावना होती है।

(ब) मूल्यानुसारकर (Ad-Valorem Tax) :

वे कर जो वस्तु की कीमत के आधार पर लगाए जाते है उनको "मूल्यानुसार कर" कहते है। उदाहरणार्थ - कपड़ों पर 10 पैसे प्रति रूपये की दर से अथवा रेडियो की कीमत पर 8% दर से।

ऐसे करों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है।

(i) ऐसे करों में 'लोच' का गुण पाया जाता है। ऐसे करों की दर में परिवर्तन करना आसान होता है।

(ii) ऐसे कर "न्यायपूर्ण" होते है। करदाता अपनी क्षमता के अनुसार वस्तुएं खरीदते है और इन के मूल्यों पर ही कर लगाये जाते है।

ऐसे करों के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है:

(i) मूल्यांकन में मतभेद के कारण ऐसे करों का निर्धारण करना कठिन हो जाता है।

(ii) ऐसे करों में कर-वंचन की प्रवृति बढ़ जाती है क्योंकि कर लगाते समय वस्तुओं के बीजकों को ही आधार मानते है। ऐसी स्थिति में करदाता झूठे बीजक बताकर करों के भुगतान से बच जाते है।

15.3.4 एकल एवं बहुकर प्रणाली:

सरकार की कर निर्धारण प्रणाली के आधार को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है –

(अ) एकल-कर प्रणाली

(ब) बहु-कर प्रणाली

ऐसी कर प्रणाली की व्याख्या निम्नलिखित रूप में विस्तार पूर्वक की गयी है -

(अ) एकल कर प्रणाली (Single Tax System) :

यह वह प्रणाली है जिसमें राज्य को एक ही कर द्वारा आय प्राप्त होती है। प्रकृतिवादी (Physiocrats) क्वैने (Quesnay) तथा तरंगोंट (Turgot) ने सरकार के लिए भूमि में एकल कर का सुझाव दिया था। इनके मत है कि उत्पत्ति का एक मात्र साधन "भूमि" है तथा राज्य को केवल "भूमि" पर ही कर लगाना चाहिए।"

एकल कर प्रणाली के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) कर का भार किस व्यक्ति पर पड़ता है इसका पता असानी से लग जाता है। अत : ऐसे करों में "सरलता" का गुण पाया जाता है।

(ii) यह कर प्रणाली मितव्ययी एवं न्यायपूर्ण है। सरकार को कर संग्रह करने में कम व्यय करना पड़ता है तथा कर देने की क्षमता वाले व्यक्तियों पर ही कर लगाए जाते हैं।

एकल कर प्रणाली में इतने दोष है कि जिसके कारण इसका प्रयोग आज किसी भी सभ्य देश में नहीं होता है। इस कर प्रणाली के निम्नलिखित दोष है -

(i) ऐसी कर प्रणाली से सरकार को अपर्याप्त आय प्राप्त होती है। आधुनिक काल में सरकारी कार्यों में अत्यधिक वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय में भी वृद्धि हो गयी है। ऐसी दशा में सरकार एकल कर प्रणाली से अपने समस्त खर्चो को पूरा नहीं कर सकती है।

(ii) ऐसी कर प्रणाली बेलोचदार होती है। सरकार अपनी वित्तीय आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन नहीं कर पाती है। अत : यह प्रणाली लोचहीन अथवा बेलोचदार होती है।

(iii) इस कर प्रणाली में एक ही वर्ग के व्यक्ति कर का भुगतान करते है। अत: देश के सभी श्रेणी अथवा वर्ग के व्यक्तियों से कर वसूल नहीं किया जाता है। इस प्रकार एकल कर प्रणाली "न्यायसंगत" नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि एकल कर प्रणाली केवल सैद्धान्तिक और काल्पनिक है।

(ब) बहु-कर प्रणाली (Multiple Tax System) :

वह प्रणाली जिसमे राज्य को विभिन्न करों से आय प्राप्त होती है उसे बहु-कर प्रणाली कहते हैं।

बहु-कर प्रणाली के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) ऐसी कर प्रणाली से सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त होती है।

(ii) ऐसी कर प्रणाली में कर-वंचन कठिन है। इसके अन्तर्गत विभिन्न कर होने के कारण व्यक्ति करों से नहीं बच सकते है।

(iii) इस प्रणाली में समाज के सब ही वर्गों पर कर लगते है। अत: इस प्रणाली में "समानता" का गुण पाया जाता है।

(iv) निर्धन वर्ग पर कम तथा धनिक वर्ग पर अधिक कर लगाए जाने से यह प्रणाली न्याय संगत कही जाती है।

बहु-कर प्रणाली के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) यह प्रणाली 'मितव्ययी' नहीं है क्योंकि विभिन्न कर लगाने से इनके संग्रह में सरकार को अधिक व्यय करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में सरकार को पर्याप्त आय तो मिलती है परन्तु करों की वसूली में अधिक व्यय होने से सरकारी कोष में धनराशि कम जमा हो पाती है।

(ii) इस कर प्रणाली के अन्तर्गत कर विविध होते है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति पर कर का भार पड़ता है। इस प्रकार यह प्रणाली जनता पर करों का भार बढ़ाती है। इस संदर्भ में डाल्टन ने कहा है कि – "यद्यपि एकल कर प्रणाली की तुलना में बहु-कर प्रणाली को प्राथमिकता दी जाती है फिर भी बहुत अधिक कर लगाना उचित नहीं है।"

उपर्युक्त विवेचन सें यह स्पष्ट है कि एकल-कर प्रणाली पूर्णतया सैद्धान्तिक है जबकि बहु-कर प्रणाली सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों है। प्रा० वेस्टवेल के शब्दों मे- "बहु-कर प्रणाली राजस्व की सबसे अच्छी एवं सुन्दर पद्धति है।" एकल-कर प्रणाली प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrats Economists) की देन है। 18वीं शताब्दी में इस प्रकार के कर का बोल बाला रहा है। आधुनिक युग में सभी देशों में बहु-कर प्रणाली प्रचलित है। इस प्रणाली के माध्यम से राज्य अपनी अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

15.3.5 वस्तुओं एवं सेवाओं पर कर (Taxes on commodities and Service)

- राजस्व प्राप्ति के लिए सरकार इस प्रकार के कर लगाती है। ये वे कर है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन के क्रय या विक्रय पर लगाए जाते है, उदाहरणार्थ-बिक्री कर, उत्पादन कर मनोरंजन कर आदि। दूसरे शब्दों में बिक्री कर तथा उत्पादन कर का सम्मिश्रण "वस्तुकर" (Commodity Tax) के नाम से जानते है।

ऐसे करों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है -

(i) करदाता ऐसे करों के भार को कम अनुभव करते है क्योंकि कर की मात्रा छोटी छोटी किश्तों में दी जाती है।

(ii) ऐसे कर बचत को प्रोत्साहन तथा होने वाले व्यय को हतोत्साहित करते है।

(iii) सरकार ऐसे कर लगाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करती है। उदाहरणार्थ - वस्तु उत्पादन एवं उपभोग पर नियंत्रण के लिए अथवा इनका उपभोग कम करने के लिए इन पर अधिक कर लगाती है और इस प्रकार सरकार अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल रहती है।

ऐसे करों में निम्नलिखित दोष है -

(i) वस्तु की मांग लोचदार है तो ऐसे कर लगाने से उद्योग एवं व्यवसाय पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ii) ऐसे कर मूल्य वृद्धि करते है। इस प्रकार औद्योगिक कच्चे माल एवं आवश्यक वस्तुओं पर ऐसे कर लगाने से मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलता है।

(iii) ऐसे कर लगाने से व्यक्ति को समान मात्रा में कर देना पड़ता है। चाहे व्यक्तियों की कर देय क्षमता कम हो अथवा अधिक। इस प्रकार ऐसे कर सामान्यत : प्रतिगामी तथा अन्यायपूर्ण होते है।

15.4 अभ्यास प्रश्न:

1. करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2. एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा इनमें और कौन से सिद्धान्त जोड़े गए है? वर्णन करो।

3. प्रत्यक्ष एवं परोक्ष के अन्तर को स्पष्ट करो। प्रत्यक्ष करों के गुण दोषों का वर्णन कीजिए।

4. "एक, न्यायपूर्ण तथा पर्याप्त कर प्रणाली के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार के करों की आवश्यकता है।' व्याख्या कीजिए।

5. आनुपाती एवं प्रगतिशील कर का अर्थ स्पष्ट करो। इन दोनों करों में आप किसे उपयुक्त समझते है और क्यों? विस्तार से समझाइये।

6. एकल-कर प्रणाली एवं बहु-कर प्रणाली का अर्थ समझाइये। इन दोनों में से आप किसे उपर्युक्त मानते है और क्यों? विस्तार से स्पष्ट करो।

7. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए -

(अ)विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर, (ब)प्रतिगामी कर, (स)वस्तु कर, तथा

(द)एडम स्मिथ के करारोपण सिद्धान्त।

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें :-

Musgrave R.A. : The Theory of Public Finance, MC graw Hill Kugiakusha Ltd. Tokyo Bhatia H.L. : Public Finance, Vikas पब्लिशिंग House P. Ltd., New Delhi, Lekhi R.K. :Public Finance Kalyani Publishers, New Delhi.

कौशिक रामशरण : राजस्व, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

15.6 शब्दावली:

प्रतिगामी कर (Regressive Tax) : प्रतिगामी कर वह कर है जिसमें आय के स्तर के साथ साथ कर की दर घटती जाती है। उदाहरणार्थ- 5,000 रुपये पर 12%, 10,000 रूपये पर 8% तथा 20,000 रूपये पर 5% है।

अधोगामी कर (Degressive Tax): अधोगामी कर वह कर है जिसमें आय स्तर बढ़ने के साथ साथ इस प्रकार के कर की दर बढ़ती है परन्तु एक निश्चित सीमा तक ऐसी दर प्रगतिशील रहती है। इसके बाद आनुपाती हो जाती है। उदाहरणार्थ 15 ,000 रूपये पर 5%, 20,000 रूपये पर 10%, 30,000 रूपये पर 8% और 40,000 रूपये पर 8% है। इस प्रकार अधोगामी कर की दर पहले बढ़ती है और फिर यह समान अर्थात स्थिर रहती है।

कर विवर्तन (Shifting of Tax) : एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर कर-भार हस्तान्तरण की किया को कर विवर्तन कहा जाता है।

कर-वंचन (Tax - Evasion) व्यक्ति आय का हिसाब गलत पेश करके कर देय आय को छिपाता है अथवा कर अधिकारी को कर से बचने के लिए रिश्वत देता है तो ऐसी अवैधानिक क्रिया को कर-वंचन कहा जाता है।

इकाई-16

करारोपण में न्याय
Justice in Taxation

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 करारोपण में न्याय के सिद्धान्त

16.3 वित्तीय सिद्धान्त

16.4 लाभ का सिद्धान्त

16.5 करदान योग्यता का सिद्धान्त

16.6 अभ्यास प्रश्न

117 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.8 शब्दावली

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप:-

- करारोपण में न्याय किस प्रकार स्थापित हो सकता है इसको समझा सकेगें।
- करारोपण में न्याय के आदर्श को प्राप्त करने वाले विभिन्न सिद्धान्तों को समझा सकेंगे।
- करदान योग्यता सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे

16.1 प्रस्तावना

व्यक्ति पर कर निर्धारण न्यायोचित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कर किससे लिया जाना चाहिए और किससे नही। किससे कितना और किस आधार पर कर लिया जाये। इन सब बातों में सरकार को न्याय की दृष्टि से काम लेना चाहिए। यदि करारोपण का वितरण न्यायपूर्ण नहीं है तो कुल सामुहिक त्याग की मात्रा आवश्यकता से बहुत अधिक होगी। यही नहीं, कर वितरण न्यायोचित नहीं है तो नागरिक में गम्भीर असंतोष अथवा विद्रोह की भावना उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के अस्त व्यस्त होने का भय रहता है।

श्रीमती हिक्स के शब्दों में – "त्रुटिपूर्ण ढंग से संगठित और वितरित कर प्रणाली ही रोम साम्राज्य के पतन का कारण थी। इसी प्रकार फ्रांसक्रांति का मुख्य कारण भी दोष पूर्ण कर प्रणाली थी जिसमें निर्धन वर्ग पर धनिकों व पादरियों की अपेक्षा कर-भार अधिक था।" अत: स्पष्ट है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से कर-भार का न्यायपूर्ण वितरण आवश्यक है।

16.2 करारोपण में न्याय के सिद्धान्त:

आप इस इकाई में करारोपण में न्याय के आदर्श को प्राप्त करने के सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगें। करारोपण में न्याय के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है-

(अ) वित्तीय सिद्धान्त

(ब) लाभ का सिद्धान्त

(स) करदान योग्यता का सिद्धान्त

उपर्युक्त सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है -

16.3 वित्तीय सिद्धान्त (Finance Theory) :

करारोपण इस प्रकार से होना चाहिए कि सरकारी कोष में अधिक धनराशि जमा हो ओर करारोपण इस प्रकार से लगाया जाना चाहिए की जनता इसका विरोध कम से कम करे। फ्रांसीसी वित्त मंत्री कालबर्ट (Calbert) के अनुसार- "बत्तख को इस प्रकार नोचो कि वह कम से कम चिल्लाये।" इस प्रकार इस सिद्धान्त का दो मुख्य उद्देश्य है- (अ) सरकारी कोष में अधिक धनराशि प्राप्ति (ब) जनता द्वारा कम विरोध। आजकल इस सिद्धान्त कि व्यवहार में साधारण परिस्थितियों में नहीं अपनाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि समाज के निर्धन व्यक्तियों पर कर का भार पड़ता है और इस वर्ग में विरोध करने की शक्ति कम होती है। इस सिद्धान्त का प्रयोग तानाशाही एवं विदेशी शासन में ही सम्भव हो सकता है। कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने वाले देशों में इस सिद्धान्त को तनिक भी महत्व नहीं दिया जाता है, क्योंकि इससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं होती है। अत : वर्तमान में इस सिद्धान्त का कोई व्यवहारिक महत्व नहीं रहा है।

16.4 लाभ का सिद्धान्त (Benefit Theory) :

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत करारोपण में कर की दर एवं राशि उस लाभ के अनुसार होनी चाहिए जो कि करदाता को सरकार द्वारा मिलता है। दूसरे शब्दों में करदाता को जितना अधिक लाभ सरकार से मिलता है उसको उतना ही अधिक कर देना चाहिए। इस सिद्धान्त को 'जैसे को तैसा सिद्धान्त' के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि सरकार अपने नागरिकों को विभिन्न वस्तुएं एवं सेवाएं प्रदान करती है और नागरिक मिलने वाले लाभ के अनुपात में कर देते है।

यह सिद्धान्त करदाता एवं सरकार के मध्य समझौते या विनिमय के सम्बन्ध की मान्यता पर आधारित है तथा यह बहुत पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष है :-

(अ) इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता है कि करदाता को मिलने वाला लाभ और कर के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है जबकि कर के आशय या अर्थ में इस प्रकार का कोई सम्बन्ध ही नहीं होता है।

(ब) करदाता को मिलने वाले लाभ को मापना कठिन है क्योंकि सरकार सार्वजनिक व्यय सामाजिक कल्याण अथवा सर्वहित के लिए करती है। अत: इस सर्वहित में यह निश्चित करना कठिन है कि प्रत्येक करदाता को अलग अलग कितना लाभ मिला है।

(स) यह सिद्धान्त अन्यायपूर्ण है क्योंकि एक ओर धनिकों की तुलना में निर्धनों को अधिक कर देना पड़ता है तो दूसरी ओर सार्वजनिक व्यय से निर्धनों को धनिकों की तुलना में अधिक लाभ मिलता है।

(द) राजस्व के मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाना है परन्तु इस सिद्धान्त द्वारा अर्थव्यवस्था में स्थायित्व या सन्तुलन लाना कठिन है। क्योंकि लाभ के अनुसार नागरिकों पर का लगाने से आय में असमानता को दूर करना मुश्किल होगा। डाल्टन के शब्दों में "लाभ का सिद्धान्त पूर्णतया असफल है क्योंकि सार्वजनिक व्यय द्वारा व्यक्ति को की गयी सेवा का निर्धारण नहीं हो पाता है और इन सेवाओं से प्राप्त लाभ निर्धारण नहीं हो पाता है।" दूसरी ओर प्रो० व्यूहलर के अनुसार – "लाभ का सिद्धान्त करारोपण में वह महत्वपूर्ण स्थान रखता है।" इस सिद्धान्त की उपयोगिता के कुछ उदाहरण इस प्रकार है जैसे-पानी, बिजली, गैस आदि की दर निर्धारण में इस सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

इटली के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डिमार्को ने लाभ के सिद्धान्त को सुधारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। डिमार्को के शब्दों में - नागरिकों और राज्यों के बीच विनिमय सम्बन्ध रहता है।" राज्य सेवाओं का उत्पादन करता है ओर नागरिक अपनी अपनी आय के अनुसार इन सेवाओं का उपयोग करते हे। ये सामान्य सेवाएं जो राज्य द्वारा प्रदान की जाती है, विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में सहायक होती है तथा इन वस्तुओं के उपभोग में भी ये सेवाएं सहायक होती है। ये सेवाएं सभी व्यक्तियों को लाभ पहुंचाती है। प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं की उत्पत्ति में सहायता करके और अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की सहायता द्वारा उत्पादित की गयी वस्तुओं के द्वारा, नागरिक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपने लाभ के अनुपात में लाभान्वित होते है। अत: जिस व्यक्ति को जितनी अधिक आय हो उससे उतना ही अधिक कर लेना चाहिए, क्योंकि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उतनी अधिक राजकीय सेवाएं प्राप्त की है, इस प्रकार करारोपण प्रत्येक व्यक्ति को आय के अनुसार निश्चित होना चाहिए।

डिमार्को के इस प्रकार के विचार भी दोष मुक्त नहीं है। आधुनिक युग के अर्थशास्त्री एवं देश के निर्माण कर्ता कल्याणकारी राज्य के समर्थक है। ऐसी स्थिति में डिमार्को के विचार बिल्कुल ही अव्यावहारिक है क्योंकि निर्धनों को उनकी आय से अधिक सुविधाएं मिलती है परन्तु इन पर कर बहुत कम मात्रा में लगाया जाती है।

इसी प्रकार इरिक लिन्डाल (Eric Lindahl) ने लाभ के सिद्धान्त को एक सुधारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। लिन्डाल के शब्दों में – "जनता की कर देय क्षमता तथा सरकार द्वारा प्रदत्त लाभों के अनुपातों के बीच कर-भार का वितरण करना सम्भव है।" इन्होंने अपने मत को कीमत प्रक्रिया पर आधारित किया है। अपने मत को स्पष्ट करने के लिए एक सरल प्रतिपादन के रूप में इस समाधान (Solution) को प्रस्तुत किया है। इन्होंने A और B केवल दो करदाताओं के समुदाय तथा केवल एक ही किस्म की वस्तु को अपने समाधान के स्पष्टीकरण मे लिया है। इस वस्तु की पूर्ति करदाता A और B दोनों को ही लाभ पहुंचाती है। इनके लाभ के हिस्सों को संयुक्त उत्पाद (Joint Product) माना जा सकता है। करदाता A एवं B संयुक्त रूप से इतना अंशदान अवश्य देंगे जो कि प्रदान की गई सामाजिक वस्तुओं की मात्रा की कुल लागत को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो। व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक को इसलिए कम भुगतान करना होगा क्योंकि दूसरे ने अधिक भुगतान कर दिया है। वस्तुओं की कुल लागत के कुछ प्रतिशतों का भुगतान करने का जो प्रस्ताव B करदाता करेगा। उसका विश्लेषण A करदाता के दृष्टिकोण से वस्तुओं की पूर्ति तालिका के रूप में किया जावेगा। अत : इसी A करदाता के प्रस्ताव का विश्लेषण, पूर्ति तालिका के रूप में, B करदाता के दृष्टिकोण से किया जावेगा। इसी तथ्य को डरिक लिन्डाल ने रेखाचित्र 16.1 द्वारा स्पष्ट किया है।

चित्र 16.1

रेखाचित्र 16. 1 में OX अक्ष पर सामाजिक वस्तुओं की इकाइयों तथा OY अक्ष पर लागत का प्रतिशत भाग प्रदर्शित किया है। OY अक्ष की बांयी ओर लम्ब रेखा (Vertical line) पर 3 करदाता जो लागत का प्रतिशत भाग देना चाहता है तथा OY अक्ष की दांयी ओर लम्ब रेखा पर (उल्टा पैमाना मानते हुए) B करदाता जो लागत का प्रतिशत भाग देना चाहता है, इसको मापा गया है। A करदाता की मांग रेखा aa तथा B करदाता की मांग रेखा bb है। सामाजिक पदार्थों की साम्य अवस्था में पूर्ति OE होगी। जहां दोनों मांग रेखा परस्पर काटती है। यहां पर लागत का शत प्रतिशत भाग समुदाय के सदस्य देने को तैयार है लागत का ED भाग A करदाता तथा DH भाग B करदाता देने को तैयार है। OE मात्रा से अधिक अथवा कम सामाजिक पदार्थों की पूर्ति नहीं की जा सकती क्योंकि OE से अधिक OG मात्रा में सामाजिक पदार्थ दिए जाते है तो इनकी लागत का GN भाग A करदाता देने को तैयार है। लेकिन लागत MN भाग ऐसा है जो न तो A करदाता देने को

तैयार है और न B करदाता। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक पदार्थो की पूर्ति कम कर दी जाती जावेगी और यह पूर्ति कम होकर OE रह जावेगी। यदि सामाजिक पदार्थ OE से कम अथवा OF मात्रा में प्रदान किए जाते है तो लागत का FJ भाग A करदाता देना चाहता है और B करदाता IK भाग देना चाहता है। इस प्रकार JK भाग अतिरिक्त रूप में मिलता है जिससे इन पदार्थों की मात्रा बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी और ये बढ़कर OE मात्रा हो जावेगी। इस प्रकार लिन्डाल का मत है कि समुदाय जितनी मात्रा में सामाजिक वस्तुओं की पूर्ति चाहता है उतनी मात्रा में की जाती है उनकी लागत व्यक्तियों से कर के माध्यम से वसूल की जाती है। ये कर इन वस्तुओं से प्राप्त लाभ के अनुसार प्राप्त किए जाते है। इस प्रकार लाभ के आधार पर तथा विनिमय की प्रक्रिया के द्वारा सरकारी सेवाओं की मात्रा का तथा कर-भार के वितरण का साथ ही साथ निर्धारण किया जा सकता है। लिन्डाल ने अपनी सम्पूर्ण राजस्व व्यय की प्रक्रिया को निश्चित आप की एक उपयुक्त दशा की मान्यता के अन्तर्गत सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि पर ही आधारित किया है।

लिन्डाल समाधान एक सर्वोत्तम विचार होते हुए भी इसमें मुख्य दोष यह है कि लिन्डाल वे इस विचार मे केवल कर-भार के न्यायोचित एवं कुशल बंटवारे को ही सम्मिलित है तथा आय के प्रभावों के वितरण पक्ष की उपेक्षा की है।

करदान योग्यता का सिद्धान्त (Ability to pay theory) :

इस सिद्धान्त के अनुसार कर-भार व्यक्तियों पर उनकी कर प्रदान करने की क्षमता अथवा सामर्थ्य के अनुसार लगाया जाता है। इस विचार प्रतिपादक एडम स्मिथ (Adam Smith) थे। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की परिभाषा दी है जो निम्नलिखित है -

एडम स्मिथ के शब्दों में – "प्रत्येक राज्य की प्रजा को अपनी योग्यता के अनुपात मे राज्य शासन के व्यय के लिए कर देना चाहिए।

बेस्टन (Beston) के शब्दों में- "कर निर्धारण व्यक्तियों की सामर्थ्य के अनुसार होना चाहिए। अत : यह एक नैतिक आदर्श सिद्धान्त है।"

कोहन (Cohan) के शब्दों में – "कर निर्धारण व्यक्तियों की क्षमता नैतिक सुन्दरता के विस्तृत सिद्धान्तों की एक विशिष्ट प्रणाली है।"

इन उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी आर्थिक क्षमता अथवा कर दान क्षमता के अनुसार ही कर लिया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त अधिक सम्पन्न व्यक्ति से अधिक कर तथा साधन हीन व्यक्ति से कोई कर नहीं की मान्यता पर आधारित है। यह सिद्धान्त बहुत ही उचित एवं न्याय संगत है परन्तु इसमें व्यावहारिक पर्याप्त कठिनाइयां है।

अत : करदान योग्यता का उचित आधार के **लिए निम्न दो दृष्टिकोणों** से विचार किया जाता है -

(अ) वस्तुगत दृष्टिकोण अथवा बाह्य दृष्टिकोण,

(ब) व्यक्तिगत दृष्टिकोण अथवा भावात्मक दृष्टिकोण।

इन दोनों दृष्टिकोण को विस्तृत व्याख्या द्वारा समझाया जा रहा है।

कर दान योग्यता या क्षमता सिद्धान्त का उचित आधार निश्चय करने के लिए अमेरिकन अर्थशास्त्रियों ने "वस्तुगत दृष्टिकोण" अपनाया है। इन विद्धानों का मत है कि कर देने की शक्ति आन्तरिक बातों द्वारा नहीं नापी जाती है बल्कि बाह्य बातों द्वारा नापी जाती है। ये बाह्य बात अथवा तथ्य निम्नलिखित है:

(अ) व्यक्ति का उपभोग अथवा व्यय स्तर,

(ब) व्यक्ति की सम्पत्ति, तथा

(स) व्यक्ति की आय।

यहां इन बाह्य तथ्यों का विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है -

(अ) **व्यक्ति का उपभोग या व्यय स्तर :** विद्वान अर्थशास्त्रियों का मत है कि व्यक्ति का उपभोग अथवा व्यय कर देने की योग्यता या क्षमता या शक्ति का एक उत्तम मापदण्ड है। दूसरे शब्दों मे, जिस व्यक्ति का जितना अधिक व्यय हो, उससे उतना अधिक कर लेना चाहिए।

कर देने की योग्यता के इस मापदण्ड में निम्नलिखित व्यावहारिक कठिनाइयां है -

(i) किसी व्यक्ति के परिवार का आकार बड़ा होता है। अत: ऐसे लोगो का व्यय स्तर भी अधिक होता है। इसी प्रकार निर्धन वर्ग में 'व्यय प्रवृति' अधिक होती है जबकि इन सबकी करे देने की क्षमता कम होती है। अत: ऐसी दशा में जितना व्यय उतना कर लगाना न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है।

(ii) व्यय के अनुसार कर लगाने से व्यक्ति अपना व्यय अथवा उपभोग कम करने लग जाते है जिसके परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा देश के रोजगार उत्पादन एवं आय पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ब) व्यक्ति की सम्पति **:** कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार कर लगाना चहिए। दूसरे शब्दों में अधिक सम्पति होने पर अधिक कर तथा कम सम्पति होने पर कम कर देना पड़ता है।

कर देने योग्यता के इस माप में निम्नलिखित कठिनाइयां है -

(i) व्यक्ति की सम्पति का मूल्य निर्धारण करना बहुत ही कठिन होता है। ऐसी स्थिति से कर निर्धारण में न्याय की समस्या जटिल हो जाती है।

(ii) यदि सम्पति के अनुसार कर लगाया जाता है तो धनिक वर्ग पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। वे कर के भय से मितव्ययी से अपव्ययी हो जावेंगे जिससे वे अपने पास सम्पति नहीं रख सकेंगे और इसका प्रभाव बुरा ही होगा।

(स) व्यक्ति की आय : कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि व्यक्ति की आय के अनुसार ही कर लगाना चाहिए। दूसरे शब्दों में अधिक आय वाले व्यक्तियों पर अधिक कर तथा कम आय वाले व्यक्तियों पर कम कर लगाना चाहिए।

कर देने की योग्यता के इस माप में निम्नलिखित कमियां है-

(i) व्यक्तियों की आय का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि अधिक आय वाले व्यक्तियों को बड़ा परिवार का पालन पोषण करना पड़ता है तो ऐसी स्थिति में अधिक कर देने की उन व्यक्तियों में क्षमता नहीं होती है। अत: जितनी आय उतना कर लगाना न्यायोचित नहीं है।

(ii) कुछ व्यक्ति अपने परिश्रम से अधिक आय पाते है तथा कुछ ऐसे व्यक्ति भी है जो बिना परिश्रम के जैसे पैतृक सम्पति से अधिक आय पाते है। ऐसे अधिक आय वालों पर अधिक कर मात्रा लगाने से बुरा असर पड़ेगा अर्थात् परिश्रम से अधिक आय पाने वले व्यक्तियों पर अधिक कर लगाने से इनकी कार्यक्षमता गिरती है। अत : इस प्रकार के लोगों पर समान दर से अधिक कर लगाना न्यायोचित नहीं है।

लार्ड स्टैम्प के शब्दों मैं- "व्यक्ति के उपभोग अथवा सम्पति आधारों की तुलना में आय का आधार कर देने की योग्यता का एक सर्वोत्तम मापदण्ड है। "इस विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि करदान योग्यता के मापदण्ड के वस्तुगत दृष्टिकोण में करदाता की आन्तरिक बातें अर्थात् व्यक्ति की भावात्मक बातें सम्मिलित नहीं की जाती है बल्कि इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत उपर्युक्त वणित बातों को ही सम्मिलित किया जाता है।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने कर देय क्षमता अथवा योग्यता का मापदण्ड के लिए "भावात्मक दृष्टिकोण" को अपनाया हैं। इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि कर देने की क्षमता अथवा योग्यता का मापदण्ड करदाता द्वारा दिए गए कर के बदले मे उसको होने वाले कष्ट या असुविधा एंव त्याग से लगाया जाता है। भावात्मक दृष्टिकोण वाले अर्थशास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक करदाता को कर देते समय कष्ट अथवा असुविधा अथवा त्याग करना पड़ता है। करारोपण करते समय प्रत्येक करदाता को कर देने पर होने वाला 'त्याग समान' होना चाहिए। इस कारण से भावात्मक दृष्टिकोण वाले अर्थशास्त्रियों ने इसे 'समान त्याग सिद्धान्त' (Equal Sacrifice Theory) की संज्ञा दी है।

समान त्याग सिद्धान्त के अनुसार करारोपण वह न्याय संगत है प्रत्येक करदाता को कर देने के बदले में "समान त्याग" करना पड़ता है। डाल्टन (Dalton) के शब्दों में- "समान त्याग के अनुसार करों का द्रव्य सम्बन्धी भार विभिन्न वर्गों पर अथवा व्यक्तियों पर इस प्रकार से वितरित करना चाहिए कि उनका वास्तविक प्रत्यक्ष भार सभी करदाताओं पर समान पड़े।" इस प्रकार इस सिद्धान्त के अन्तर्गत करो का भार करदाताओं पर समान त्याग के अनुसार हो। कोहन, स्टुअर्ट एवं एजवर्थ ने "समान त्याग" को निम्नलिखित तीन तथ्यों अथवा पहलुओं में प्रस्तुत किया है -

(i) समान कुल त्याग (Equal Absolute Sacrifice)

(ii) समान आनुपातिक त्याग (Equal Proportional Sacrifice)

(iii) समान सीमान्त त्याग (Equi Marginal Sacrifice) अथवा न्यूनतम कुल त्याग (Least Aggregate Sacrifice)

समान त्याग के उपर्युक्त पहलुओं का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है -

समान कुल त्याग का अर्थ है आय के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न करदाताओं द्वारा कर के रूप में दी जाने वाली समान राशि से है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक करदाता द्वारा कर चुकाने के पूर्व कुल उपयोगिता के बीच और कर चुकाने के बाद की आय की उपयोगिता की हानि प्रत्येक करदाता के लिए समान होती है। इस विचार के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ कर अवश्य देना पड़ता है और कोई भी व्यक्ति कर मुक्त नहीं होता है। सभी करदाताओं के आय की सीमांत उपयोगिता समान रहें इस मान्यता पर यह विचार आधारित है। यदि आय की सीमांत उपयोगिता में कमी की दर आय में वृद्धि की दर के बराबर होती है तो आनुपातिक कराधान समान कुल त्याग प्राप्त किया जा सकता है परन्तु जब आय में वृद्धि की तुलना में आय की सीमान्त उपयोगिता में घटने की दर अधिक होती है तो प्रगतिशील कर दरों के माध्यम से समान कुल त्याग प्राप्त किया जा सकता है।

डाल्टन (Dalton) के शब्दों ने - "समान आनुपातिक त्याग का अर्थ है कि प्रत्येक करदाता पर प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस अनुपात में होता है जितना कि उसे अपनी आय से आर्थिक कल्याण प्राप्त होता है। "समान आनुपातिक त्याग के अन्तर्गत प्रत्येक करदाता अपनी आय से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता का एक समान प्रतिशत से त्याग करते है। कर लगने के परिणाम स्वरूप होने वाली कुल आय से होने वाली उपयोगिता के समान अनुपात में होनी चाहिए। इस विचार के अन्तर्गत अधिक आय पाने वाले करदाता कम आय पाने वाले करदाता से की तुलना में अधिक कर देते है परंतु कर देने से उपयोगिता की हानि का अनुपात दोनों प्रकार के आय वालों के लिए समान होगी। कर निर्धारण उपयोगिता विश्लेषण में निम्न प्रकार से होता है -

(i) यदि सीमांत उपयोगिता और औसत उपयोगिता में कमी की दर समान है तो कर आनुपातिक होता है।

(ii) यदि औसत उपयोगिता में कमी की तुलना में सीमांत उपयोगिता में कभी अधिक तेजी से होती है तो कर प्रगतिशील होता है।

(iii) यदि औसत उपयोगिता में कमी की तुलना में सीमांत उपयोगिता में कमी की दर कम होती है तो कर प्रतिगामी होता है।

दूसरे शब्दों के समान आनुपातिक त्याग कर निर्धारण का आधार मानने पर करारोपण की स्थिति इस प्रकार होती है -

(अ) यदि आय बढ़ने के साथ साथ सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है तो करारोपण प्रगतिशील होगा अर्थात् अधिक आय पर कर दर अधिक तथा कम आय पर कर दर कम होगी।

(ब) यदि आय बढ़ने के साथ साथ उसकी सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है तो करारोपण प्रतिगामी होगा अर्थात् अधिक आय पर कर दर कम तथा कम आय पर कर दर अधिक होगी।

यहां ऐसी स्थिति को समझाया गया है जहां भिन्न भिन्न व्यक्तियों की आय की भिन्न भिन्न उपयोगिता तालिका होती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक करदाता की जांच उनकी अपनी उपयोगिता तालिका के अनुसार की जाती है। सामान्य तथा विभिन्न आय वर्गों में आय एवं कर मात्रा में सही सम्बन्ध स्थापित होता है लेकिन कभी कभी कुछ धनी व्यक्तियों की जिनकी उपयोगिता तालिका निम्न स्तर पर विद्यमान हो तो वे कम कर देंगे। अपेक्षाकृत ऐसे निर्धन व्यक्तियों के जिनकी उपयोगिता तालिका उच्चस्तर पर विद्यमान होती है।

डा.ए.पी. लर्नर (Dr. A.P. Lerner) ने इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है- सभी व्यक्तियों के लिए आय बढ़ने के साथ साथ आय की सीमांत उपयोगिता कम होती चली जाती है परन्तु उपयोगिता वक्रों के ढलानों में अन्तर होता है। इसके साथ ही यह मालूम नहीं होता है कि कौन सी उपयोगिता तालिका किस व्यक्ति के लिए है?

मान लीजिए X एवं Y दो व्यक्ति है और दो उपयोगिता तालिकाएं है। ये दोनो नीचे की और ढलान पर है। एक उपयोगिता तालिका दूसरी उपयोगिता तालिका के ऊपर स्थित है अर्थात् समान आय स्तर पर अलग अलग उपयोगिता प्राप्त होती है परन्तु यह ज्ञात नहीं है कि कौन सी उपयोगिता तालिका किस व्यक्ति के लिए है? ऐसी स्थिति के बारे डा. लर्नर का मत है कि बजट का कोई भी कदम जो आय के समान वितरण की ओर होता है, वह कुल कल्याण में वृद्धि करता है। और बजट का ऐसा कदम जो आय के असमान वितरण की ओर होता है, वह कुल कल्याण में कमी करेगा। इस स्थिति को यहां रेखाचित्र 16.2 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र 16.2

यहां रेखाचित्र 16.2 में OX अक्ष पर आय स्तर तथा OY अक्ष पर आय की सीमांत उपयोगिता मापी गयी है। यहां X एवं Y दो व्यक्ति है। एक व्यक्ति की ऊंची सीमांत तालिका है जो LL है तथा दूसरे व्यक्ति की निम्न सीमांत तालिका है जो II है। रेखाचित्र 16.2 में समान आय स्तर पर LL तालिका II की तुलना में ऊपर स्थित है। मान लिजिए OC आय बराबर बराबर बांट दी जावे तो एक व्यक्ति को OE आय तथा दूसरे व्यक्ति को EC आय प्राप्त होती है। चूंकि हमें यह मालूम नहीं है कि कौन सी उपयोगिता X अथवा Y व्यक्ति की है तो ऐसी परिस्थिति में सर्वोत्तम

अवस्था यह होगी कि आय का समान वितरण रहे। इस स्थिति में तनिक भी परिवर्तन कुल कल्याण में कमी करेगा। इसको रेखाचित्र 16.2 की सहायता से स्पष्ट किया है। मान लीजिए X व्यक्ति की आय T मात्रा में कमी कर दी जावे और Y व्यक्ति की आय मात्रा में वृद्धि कर दी जावे तो निम्न दो सम्भावनाएं उत्पन्न होगी-

(अ) यदि X व्यक्ति की उपयोगिता तालिका LL है तो उसकी आय OE से घटकर OD हो जावेगी। उपयोगिता में हानि क्षेत्रफल a+b के बराबर होगी और Y व्यक्ति की आय में मात्रा में T वृद्धि करने पर उसे क्षेत्र d के बराबर प्राप्ति होगी। दोनों की तुलना करने पर शुद्ध हानि क्षेत्र b के बराबर होती है।

(ब) यदि X व्यक्ति की उपयोगिता तालिका II है तो उसकी आय CE से कम होकर Dd रह जावेगी उसको क्षेत्र C के बराबर हानि होगी। Y व्यक्ति की आय बढ़कर OE से OB हो जावेगी। उसे प्राप्ति क्षेत्र C+E के बराबर होगी। शुद्ध प्राप्ति क्षेत्र C बराबर के होगी।

रेखाचित्र 16.2 से स्पष्ट है कि - शुद्ध सम्भावित लाभ C शुद्ध सम्मानित हानि b से कम है। अत: अधिक अच्छा यही होगा कि हम प्रारम्भिक अवस्था में ही रहें जब आय का समान वितरण किया जाता है। उपर्युक्त विवरण से यही स्पष्ट होता है कि ऊंचे प्रगतिशील कर लगाये जाने चाहिए ताकि आय के समान वितरण को और आगे बढ़ा जा सके।

मार्शल, पीगू, एजवर्थ आदि अर्थशास्त्रों ने समान सीमांत त्याग अथवा न्यूनतम कुल त्याग का विचार प्रदान किया है। इस विचार के अन्तर्गत कर निर्धारण इस प्रकार से होता है कि सब करदाताओं द्वारा जो कुछ त्याग किया जाता है, उसकी मात्रा कम से कम हो तथा सामाजिक लाभ भी अधिकतम हो।" कर इस प्रकार लगाया जाता है कि प्रत्येक करदाता को मुद्रा की अन्तिम इकाई अथवा सीमांत इकाई देने से समान का अनुभव होता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को कर के रूप में एक रूपया देने में उतना ही त्याग का अनुभव होता है जितना कि रुपये को देने में दूसरा व्यक्ति अनुभव करता है। इस विचार को तालिका 16.1 द्वारा स्पष्ट किया है।

तालिका 16.1 समान सीमांत त्याग तालिका

रुपये की इकाई	त्याग		
	A व्यक्ति	B व्यक्ति	C व्यक्ति
1 रु०	4	5	**8**
2 रु०	5	6	10
3 रु०	7	**8**	12
4 रु०	**8**	10	15
5 रु०	12	15	20

तालिका 16.1 द्वारा यह स्पष्ट किया गया है मान लीजिए की सरकार 8 रुपये कर के रूप वसूल करना चाहती है तो वह ऐसी स्थिति में A व्यक्ति से 4 रूपये B व्यक्ति से 3 रूपये तथा C व्यक्ति से 1 रुपया वसूल करेगी। इस स्थिति में तीनों व्यक्तियों का सीमान्त त्याग बराबर है अर्थात् यहां तीनों व्यक्तियों का सीमांत त्याग8 है।

यह सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। इसके अन्तर्गत आय अधिक होने के साथ साथ व्यक्ति विशेष के लिए इसकी उपयोगिता कम होती जाती है। अत: बहुत अधिक वाले व्यक्तियों की सीमान्त इकाईयां कर के रूप में ले ली जावे तो व्यक्तियों को कोई विशेष कष्ट नहीं होगा। इसके विपरीत न्यून आय वाले व्यक्ति जिनकी रूपये की सीमान्त उपयोगिता अधिक होती है, ऐसी अवस्था में इन पर करारोपण करने पर इन्हें विशेष ही कष्ट उठाना पड़ेगा। अत: ऐसे व्यक्तियों को कर मुक्त कर देना चाहिए।

न्यूनतम त्याग सिद्धान्त के अन्तर्गत करारोपण निम्न प्रक्रिया के अनुसार किया जाता है:

(अ) सर्वप्रथम उस व्यक्ति पर कर लगाया जाता है जिसकी आय अधिकतम हो। ऐसे व्यक्ति पर कर लगाने से इसको न्यूनतम त्याग होगा।

(ब) करारोपण के बाद उस व्यक्ति की आय में कमी हो जाने से उस कम आय वाले व्यक्ति के आय स्तर के बराबर उसका भी आय स्तर हो जाता है तब ऐसी स्थिति में इन दोनों व्यक्तियों पर कर लगाना आरम्भ कर देना चाहिए। इन दोनों व्यक्तियों से कर वसूल करनें से समान भार अथवा कष्ट होगा।

(स) उपर्युक्त क्रम उस समय तक चलता रहे जब तक सरकार को पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त नहीं हो जावे।

(द) सम सीमांत त्याग की प्रणाली को पूर्ण रूप से अपनाने पर न्यूनतम आय के ऊपर की प्रत्येक आय को कष्टकर कम कर देने का अर्थ निहित है।

न्यूनतम त्याग सिद्धान्त को रेखाचित्र 16.3 द्वारा समझाया है।

विभिन्न आय के वर्ग

रेखाचित्र 16.3

यहां रेखाचित्र 16. 3 में OX अक्ष पर विभिन्न आय के वर्गो तथा OY अक्ष पर आय स्तर मापा गया है। यहां कर निर्धारण आय सीमा 4500 रुपये रखी गयी है। अत: जिनकी आय इससे कम है उन्हें कर नहीं देना पड़ेगा अर्थात व्यक्ति से I व्यक्ति तक कर नहीं देना पड़ेगा न्यूनतम कर निर्धारण आय सीमा 4500 रुपये से अधिक आप वाले C व्यक्ति, B व्यक्ति एवं A व्यक्ति पर कर की दर प्रगतिशील होगी। रेखाचित्र 16.3 में RT रेखा करोपरान्त छोड़ी गयी सर्वाधिक आय को प्रदर्शित करती है। RT रेखा क्षैतीजीय रेखा (Horzontal Curve) न होकर बांए से दांयी ओर झुकती गयी है। यदि RT रेखा क्षैतीजीय रेखा होती तो अधिकतम आय वर्ग के व्यक्तियों की अधिक आय अर्जित करने की प्रेरणा समाप्त हो जाती है परन्तु यदि ऊंचे आय वर्ग के व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ अधिक आय शेष बचती है तो आय का यह अन्तर उनकी आय वृद्धि करने की प्रेरणा को बनाये रखता है। अत : RT रेखा कुछ बन से दाहिने झुकती हुई खींची गई है जो य स्पष्ट करती है कि करोपरान्त A आय श्रेणी वाले व्यक्तियों के पास B आय वाले व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ अधिक आय शेष रह जाती है। यथा इसी प्रकार अन्य वर्गों के सम्बन्ध में भी दिखलाया गया है।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि कर देते समय एक व्यक्ति जो अपनी आय का अंश देता है, वही उसका त्याग है। कोहन, स्टुअर्ट एवं एजवर्थ ने भी उपर्युक्त तीन तथ्य अर्थात् समान कुल त्याग, समान आनुपातिक त्याग एवं सम सीमांत त्याग प्रस्तुत किए है। इनकी यह व्याख्या निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

(अ) सभी उपभोक्ताओं की रुचियां समान है।

(ब) उपयोगिता की अन्तरवैयक्तिक तुलना सम्भव है अर्थात् उपयोगिता की अन्तर व्यक्ति तुलना की जा सकती है।

(स) सभी करदाताओं के लिए एक ही आय उपयोगिता वक्र एवं कुल उपयोगिता वक्र लागू किया जा सकता है।

कोहन, स्टुअर्ट एवं जनवर्थ के समान त्याग के उपर्युक्त वर्णित तीनों पहलुओं को मसग्रेव (Musgrave) ने रेखाचित्र 16.4 की सहायता से स्पष्ट किया है।

रेखाचित्र 16.4

रेखाचित्र 16.4 में OX अक्ष पर आय तथा OY अक्ष पर OA तक सीमांत उपयोगिता तथा AY तक कुल उपयोगिता मापी गयी है। रेखाचित्र 16.4 में सीमांत उपयोगिता के लिए OX क्षितिज अक्ष है तथा कुल उपयोगिता के लिए AI क्षितिज अक्ष है। यहां OZ अथवा AC जीवन निर्वाह योग्य आय है। CF वक्र सीमांत उपयोगिता वक्र तथा CD वक्र कुल उपयोगिता वक्र है। अब यह मान लीजिए कि A करदाता के पास निर्वाह योग्य आय से अधिक GZ के बराबर आय है। इसी प्रकार B करदाता के पास भी ZH के बराबर अधिक आय है। A करदाता को प्राप्त कुल उपयोगिता ID के बराबर होगी तथा A करदाता को प्राप्त सीमांत उपयोगिता GF के बराबर होगी। इसी प्रकार B करदाता को प्राप्त कुल उपयोगिता JK के बराबर होंगी तथा B करदाता को प्राप्त सीमांत उपयोगिता HL के बराबर होगी।

अब यह मान लीजिए कि NG के बराबर आयकर लगाया जाता है। ऐसी स्थिति में "समान कुल त्याग" के अनुसार A करदाता NG के बराबर कर अदा करेगा और B करदाता TH के बराबर कर अदा करेगा। इस प्रकार सरकार को कर की कुल राशि NG+TH = MG होगी। यदि A करदाता NG के बराबर कर का भुगतान करता है तो कुल उपयोगिता में कमी या हानि DE के बराबर होगी। अर्थात् NG=DE होगी। इसी प्रकार B करदाता द्वारा TH के बराबर कर का भुगतान किया जाता है तो उसकी कुल उपयोगिता में कमी या हानि KQ के बराबर होगी। अर्थात् TH=KQ होगी। दोनों व्यक्तियों की कुल उपयोगिता में हानि DE=KQ के बराबर होगी।

इस प्रकार "समान कुल त्याग" में कर के रूप में समाज के समस्त सदस्यों को समान मात्रा में कुल उपयोगिता का त्याग करना पड़ता है।

यदि "समान आनुपातिक त्याग" के अनुसार कर का विभाजन करना है तो कुल कर दोनों व्यक्तियों में इस बांटा जावेगा कि दोनों व्यक्तियों का आनुपातिक त्याग समान हो अर्थात् आय की कुल उपयोगिता में कर से कुल उपयोगिता में होने वाली हानि का अनुपात बराबर हो। रेखाचित्र 16.4 में यह A व्यक्ति के लिए DP/DI तथा B व्यक्ति के लिए KU/KJ के बराबर प्रदर्शित किया है। इस प्रकार "समान आनुपातिक त्याग" के अन्तर्गत समाज के समस्त सदस्यों के लिए (कुल उपयोगिता में हानि) / (आय की कुल उपयोगिता) अनुपात बराबर होना चाहिए। समान आनुपातिक त्याग के अन्तर्गत A करदाता RG के बराबर तथा B करदाता SH के बराबर कर चुकाता है तो कुल कर का भुगतान RG+SH = MG होगा। यहां पहले की भांति कुल उपयोगिता का त्याग A करदाता के लिए DP के बराबर होगा तथा B करदाता के लिए KU के बराबर होगा। इस प्रकार RG=DP और SH=KU के होंगे परन्तु यहां व्यक्तिगत करदाता के अंश DP / DI तथा KU / KJ के बराबर होंगे अर्थात् व्यक्तिगत करदाता द्वारा किए जाने वाले त्याग को कुल उपयोगिता से भाग देकर निकाला गया है।

"समान सीमान्त त्याग" अथवा न्यूनतम कल त्याग के अन्तर्गत A करदाता VG मात्रा में कर का भुगतान करता है तथा B करदाता VH मात्रा में कर का भुगतान करता है। यहां दोनों करदाता VG+VH = MG के बराबर कर का भुगतान होगा। इस प्रकार से कर का बंटवारा करने पर सीमांत उपयोगिता के संदर्भ में दोनों व्यक्तियों का त्याग समान है जो कि रेखाचित्र 16.4 में VV_1 है तथा कुल त्याग DW+KY के बराबर होगा। यह हानि अथवा त्याग न्यूनतम भी है। इसी कारण समान सीमांत त्याग सिद्धांत को'न्यूनतम कुल त्याग सिद्धांत का नाम से भी जाना जाता है'। जब सीमांत त्याग समान रखते हुए समुदाय के प्रत्येक सदस्य पर कर लगाया जाता है तो कर से समाज को 'न्यूनतम कुल त्याग' करना पड़ता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मसग्रेव (Musgrave) ने 'समान त्याग' के तीनों पहलुओं को गणितीय रूप से भी समझने का प्रयत्न किया गया है। इन तीनों पहलुओं को निम्नलिखित सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया है

(i) समान कुल त्याग UY-U (Y-T)

(ii) समान आनुपातिक त्याग UY-U (Y-T) / (Y)

(iii) समान सीमान्त त्याग dU (Y-T) / d(Y-T)

यहां Y = आय, T = कर मात्रा, U = कुल उपयोगिता, तथा

U (Y) = आय से प्राप्त उपयोगिता को प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न भिन्न सूत्र लिखकर समान त्याग की तुलना की जा सकती है।

पीगू एवं डाल्टन का मत है कि- करारोपण के प्रभावों को देखने के लिए सार्वजनिक व्यय के परिणाम का भी अध्ययन करना चाहिए। करारोपण और सार्वजनिक व्यय दोनों ही सामाजिक कल्याण को प्रभावित करते है। करारोपण से सामाजिक कल्याण कम होता है, क्योंकि करदाता को कर देने में त्याग कर पड़ता है परन्तु सार्वजनिक त्याग से सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान की जाती है जिससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। इस दृष्टिकोण से करारोपण का सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक कल्याण को भी अधिकतम करना है।

डाल्टन के शब्दों में "बजट का निर्माण कल्याण के आधार पर होता है।" डाल्टन ने बजट नीति के संदर्भ में निम्नलिखित दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है -

(i) सार्वजनिक व्यय प्रत्येक दिशा में उस सीमा तक बढ़ाते रहना चाहिए जब तक कि इस व्यय से होने वाला सन्तोष अथवा मिलने वाली उपयोगिता राज्य द्वारा लगाए गए करों से उत्पन्न होने वाले असन्तोष अथवा त्याग के बराबर नहीं हो जावे।

उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों को रेखाचित्र 16.5 द्वारा स्पष्ट किया है।

रेखाचित्र 16.5

रेखाचित्र 16.5 में OX अक्ष पर बजट का आभार अर्थात् सार्वजनिक आय तथा OY अक्ष ऊपर के भाग में EE वक्र सरकारी व्यय से समाज को प्राप्त होने वाले सन्तोष को प्रदर्शित करता है। EE वक्र में नीचे की ओर झुकने की प्रवृति है जो यह स्पष्ट करती है कि जैसे जैसे सरकारी व्यय की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे वैसे करदाता को प्राप्त होने वाला संतोष या लाभ अथवा कल्याण घटता जाता है। यह स्थिति उपयोगिता हास नियम क्रियाशील होने के कारण से आती है। रेखाचित्र 16.5 के नीचे के भाग में II वक्र करारोपण के कारण होने वाला सीमांत सामाजिक त्याग या अनुपयोगिता को प्रदर्शित किया है। II वक्र भी नीचे की ओर झुकता हुआ है जो यह स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे अधिक कर लगाया जाता है वैसे वैसे ही करदाता की त्याग की मात्रा बढ़ती जाती है। II वक्र वह शुद्ध सामाजिक लाभ (Net Social Benefit) वक्र है जो EE वक्र में से II वक्र घटाकर मालूम किया गया है। दूसरे शब्दों में सामाजिक लाभ या कल्याण में से सामाजिक त्याग घटा दिया गया है।

यहां M बिन्दु अधिकतम लाभ को प्रदर्शित कर रहा है। M बिन्दु पर शुद्ध सामाजिक लाभ अधिकतम होगा क्योंकि सीमांत सामाजिक लाभ= सीमांत सामाजिक त्याग। बजट नीति के द्वारा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना बहुत ही उपर्युक्त है। इस संदर्भ मे मसग्रेव (Musgrave) का मत है- "कर आवंटन के लिए न्यूनतम त्याग दृष्टिकोण की तुलना सार्वजनिक व्यय के निर्धारण के लिए अधिकतम लाभ के दृष्टिकोण से की जा सकती है और दोनों को मिलाकर बजट नियोजन का एक सामान्य सिद्धान्त निर्मित किया जा सकता है।"

16.5 करदान योग्यता का सिद्धान्त

यह सर्वोत्तम सिद्धान्त है फिर भी इस सिद्धान्त में निम्नलिखित कमियां है:-

(i) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती चली जाती है वैसे वैसे उसकी सीमान्त उपयोगिता कम होती चली जाती है। परन्तु उपयोगिता कम होती चल जाती है। परन्तु उपयोगिता एक भावात्मक धारणा अर्थात् मानसिक धारणा है जिसको मापना कठिन है।

(ii) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि उपयोगिता की अन्तरवैयक्तिक अथवा अन्तर व्यक्ति तुलनाएं की जा सकती है परन्तु व्यवहार में यह मान्यता गलत सिद्ध है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की रूचि भिन्न होती है, उनकी पसन्द एवं अधिमान भी भिन्न होते है। ऐसी स्थिति होने पर सीमान्त उपयोगिता की तुलना करना कठिन है।

(iii) इस सिद्धान्त के अनुसार 'अधिकतम कल्याण' पाने के लिए आय का समान वितरण होना चाहिए और इस स्थिति के लिए ऊंचे प्रगतिशील कर लगाए जाने चाहिए। परन्तु ऊंचे प्रगतिशील कर लगाए जावें तो उत्पादन, बचत एवं विनियोग पर घातक प्रभाव हो। जिसके परिणामस्वरूप दीर्घकाल में कुल कल्याण में वृद्धि नहीं हो पावेगी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि करदान योग्यता या क्षमता सिद्धान्त एक विवाद पूर्ण सिद्धान्त है। इस संदर्भ में डाल्टन के अनुसार "समता या योग्यता एक ऐसी गृहिणी है जो केवल दार्शनिकों के उत्साहपूर्ण प्रणय के योग्य है परन्तु राजनीतिज्ञों को जिस पर सावधानी से नजर रखनी चाहिए।"

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि करारोपण करदान योग्यता सिद्धान्त के अनुसार ही निर्धारित होना चहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार ही निर्धारित होना चाहिए। इस सिद्धान्त के व्यक्तियों की क्षमता के अनुसार कर विभाजन तथा सार्वजनिक व्यय का आवंटन करते समय "अधिकतम कल्याण" विचार पर जोर देने के कारण यह एक सर्वोत्तम सिद्धान्त न जाता है। इस प्रकार यह आधुनिक राजस्व प्रणाली में एक महत्वपूर्ण यंत्र है तथा अधिकांश देशों में इसका प्रयोग करारोपण में न्याय प्राप्ति के लिए किया जाता है।

16.6 अभ्यास प्रश्न:

1. "भार वितरण में समता या समानता, सामान्यत: कर प्रणाली का महत्वपूर्ण परीक्षण है।" इस कथन को सविस्तार व्याख्या कीजिए।

2. कराधान में न्याय की समस्या क्या है? इस संदर्भ में लाभ सिद्धान्त की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

3. करदान योग्यता सिद्धान्त का परीक्षण कीजिए।

4. 'समान त्याग' से आप क्या समझते है? इसके विभिन्न पहलुओं की सविस्तार व्याख्या कीजिए। जहां आवश्यक हो वहां रेखाचित्र का प्रयोग अवश्य करें।

5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:-

(अ)करारोपण में अधिकतम सामाजिक कल्याण सिद्धान्त,

(ब)न्यूनतम कुल त्याग

(स)लाभ का सिद्धान्त

(द) लिन्डाल समाधान।

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें:

Andeley and Sunderam : Public Economics and Publishing House pvt. Ltd., New Delhi.

Bhatia H.L. Public Finance, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.

Musgrave R. A.: the Theory of Public Finance, McGraw Hill Book Company.

Musgrave R.A. & P.B: Public Finance in Theory and Practice, fifth edition McGraw Hill Book Company,

जे.सी. वार्ष्णेय : राजस्व, साहित्य भवन, आगरा

रामशरण कौशिक : राजस्व, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

16.8 शब्दावली :

करारोपण में न्याय (Justice in Taxation): करारोपण न्याय के ऊपर आधारित होना चाहिए। कर किससे कितना लाया जावे अथवा नहीं तथा किस कर किससे कितना लाया जावे अथवा नहीं तथा किस मापदंड से कर लिया जावे। कर निर्धारण न्यायपूर्ण है- तो जन संतोष या शांति कायम रहती है अन्यथा यह अन्याय पूर्ण है तो नागरिकों में विद्रोह भावना अथवा असंतोष उत्पन्न हो जाता

करदान योग्यता (Ability to Pay): प्रत्येक व्यक्ति से उसकी कर प्रदान क्षमता अथवा योग्यता के अनुसार ही कर लिया जाना ही करदान योग्यता या क्षमता है।

समान त्याग (Equal Sacrifice) करों का भार विभिन्न व्यक्तियों पर समान रूप से पड़ता है, यही प्रत्येक करदाता का समान त्याग कहलाता है।

प्रगतिशील कर (Progressive Tax) : प्रगतिशील कर वह कर है जिनकी दर आय की मात्रा प्रत्येक वृद्धि के साथ कर की दर भी बढ़ती जाती है जैसे 10000 रुपये पर 10% अर्थात् 1000 रुपये कर, तथा 100000 पर 10% अर्थात् 10000 रुपये कर।

इकाई-17

आवंटन कुशलता

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2.1 आवंटन कुशलता

17.2.2 रोबिन्सन डोबिन्सन अर्थव्यवस्था

17.3 पैरेटो अनुकूलतम अथवा कुशलता

17.3.1 सापेक्ष मूल्य विकृतियां

17.4 साधन आवंटन पर प्रभाव

17.5 उपभोक्ता के अतिरेक पर प्रभाव

17.6 प्रत्यक्ष कर

17.6.1 प्रत्यक्ष कर एवं इसका कार्यशीलता एवं बचतों पर प्रभाव

17.7 सारांश

17.8 शब्दावली

17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.10 अभ्यास हेतु प्रश्न एंव उत्तर

17.0 उद्देश्य

अर्थशास्त्र को साधनों के मितव्ययतापूर्ण उपयोग का विज्ञान कहा जाता है । यह तभी सम्भव है जब साधन आवंटन श्रेष्ठतम विधि से किया जाय ताकि इनका उपयोग समाज के हित में सर्वोत्कृष्टता रूप से सम्भव हो सके। प्रत्येक समाज में एक अर्थव्यवस्था होती है। जिसे साधन तथा साध्यों के मध्य समायोजन तकनीक कह कर पुकारा जाता है । एक स्थैतिक ढांचे के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों के आदर्श आवंटन (वितरण) का ही हमको यहां अध्ययन करना है। हम विषय-वस्तु की समीक्षा अब क्रमिक रूप से करेंगे। सर्वप्रथम उस शब्दावली का भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लें जिनका प्रयोग विषय की व्याख्या करते समय प्राय : किया जाता है।

17.1 प्रस्तावना:

'साधन' शब्द से आशय किसी भी समाज में उपलब्ध वस्तुगत एवं सेवा-गत उन समस्त साधनों से है जो व्यक्तिगत रूप से अथवा सामूहिक रूप से समाज के उपयोग के लिए उपलब्ध है। इन सभी को संसाधन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रसंगवश इन्हें आदा(उत्पादन साधन), घटक, प्रदा, उत्पाद, वस्तु आदि विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया है। 'संसाधन' शब्द मानव संसाधन (अथवा श्रमिक) तथा प्राकृतिक (अथवा भूमि) संसाधन / खनिज सम्पदा सें ही (सम्बद्ध) जिसका स्पष्ट आशय यही है कि उत्पादन प्रक्रिया में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। हम प्राय : भौतिक-संसाधन तथा वित्तीय संसाधन शब्दों का भी प्रयोग करेंगे। इस इकाई के अन्तर्गत हम वित्तीय संसाधनों की व्याख्या नहीं करेंगे।

उत्पादन से हमारा आशय उस प्रक्रिया से है जो किसी भी संसाधन का उपयोग मानव संसाधन के माध्यम से किसी अन्य विशिष्ट संसाधन के रूप में रूपान्तरित करती है। सूक्ष्म रुपान्तरण द्वारा मूलरूप को भी सुरक्षित रखा जाता है। वह संसाधन जिनको उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाता है आदा (उत्पादन साधन) कहलाते है तथा जो कुछ भी उत्पादन किया जाता है उसे प्रदा कह कर सम्बोधित करते है। सूक्ष्म रूपान्तरण प्रक्रिया में आदा प्रदा एक से ही होते है।

17.2 आवंटन कुशलता

आवंटन से आशय उस वितरण (संसाधनों की) विशिष्ट व्यक्ति, उत्पादक इकाई (फर्म) अथवा घरेलू इकाई के सन्दर्भ में किया जाता है। एक स्थान पर हिक्स (1984 पृष्ठ सं. 155) ने श्रम सिद्धान्त में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि संसार में साधन आवंटन की कोई भी समस्या नहीं है समस्या तो केवल वितरण (आवंटन) मात्र की ही है। जैसे ही हम उत्पादन साधनों की विविधता को स्वीकारते है, आवंटन पर विचार कर रहा है। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण रूप से जिसे हम विभिन्न संसाधन वितरण कह कर संबोधित कर सकते है उसे वह साधन आवंटन के नाम से सम्बोधित करता है। शब्द के अर्थ को ही विशेष महत्व नहीं देते हुए व्यावहारिक उद्देश्य हेतु हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते है कि प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा अपने विशिष्ट उपभोग स्तरों की प्राप्ति हेतु उसका साधन आवंटन किसी विशिष्ट उत्पादन साधन के रूप में है (आदा) तथा उत्पादन स्तरों हेतु प्रत्येक उत्पादक द्वारा जो किया जाता है वह प्रदा है। प्रत्येक स्तर एक सदिश है, जिसमें समस्त संसाधनों (वस्तु एवं सेवाएं) को तत्वों के रूप में अनेक शून्य के रूप में सम्मिलित किया जाता है। आवंटन के समग्र स्वरूप (चित्र) को सामाजिक स्थिति के नाम से भी पुकारा जाता है। किसी भी अर्थव्यवस्था में साधन-आवंटन कुशलतापूर्वक किस प्रकार किया जाता है? यही प्रश्न हमको बारम्बार व्यथित करता है, परन्तु सहज रूप से इस प्रश्न का उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि यह स्पष्ट रूप से ज्ञात न हो कि समाज की उद्देश्य क्या है? और जो व्यक्ति सदस्य के रूप में इस समाज की संरचना करते है तो उनमें इस उद्देश्य की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकती है। इससे सम्बद्ध समस्त बिन्दुओं को स्पष्ट रूप से समझने हेतु 'रोबिन्सन क्रूसो' अभिव्यक्ति का आश्रय लेना अधिक सुविधाजनक रहेगा।

17.2.1 संसाधन

रॉबिन्सन क्रूसो अर्थव्यवस्था

किसी भी अर्थव्यवस्था के लक्षणों की व्याख्या संसाधनों के अनुरूप ही की जा सकती है, मौलिक एवं परिवर्तित, मनुष्यों के उपयोग समूह, उत्पादन इकाइयों के उत्पादन समूह आदि। किसी भी अर्थ-व्यवस्था के लक्षणों की स्पष्ट व्याख्या संसाधनों के ही माध्यम से ही होती है। रोबिन्सन क्रूसो वह अर्थव्यवस्था है जिसमें केवल व्यक्ति और परिणाम स्वरूप एक ही उत्पादन इकाई है। और भी सरलीकरण हेतु हम दो आदाओं (उत्पादन साधनों) तथा दो प्रदाओ (उत्पाद) पर विचार करेंगे। जब हम उपभोग गतिविधियों का उल्लेख करेंगे तो प्रदा हेतु 'वस्तु' शब्द का प्रयोग करेंगे, इस सरलीकरण के माध्यम से उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त पूरक आदाओं (उत्पादन साधनों के) के सम्बन्ध में विचार को तथा उपभोग में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं को सम्मिलित नहीं किया जाएगा परन्तु यह कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। इस परिणाम का किसी अधिक कठिनाई के बिना भी सामान्यीकरण करना सम्भव है। आदा एवं प्रदा सभी संसाधन है तथा इनमें नगण्य प्रकारान्तर है।

राबिन्सन क्रूसो की दोनों वस्तुओं में से ही अधिक प्राप्ति हेतु रूचि है परन्तु इसके आगत (उत्पादन के साधन) निश्चित है। उस उत्पादन संयोग का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त करना ही मुख्य ध्येय है इस समूह के तत्वों को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है, C_1 वस्तु का अधिक उत्पादन, वस्तु C_2 के प्रदत्त उत्पादन के लिए है, अथवा विकल्प के रूप में 'इस प्रकार भी प्रकट किया जा सकता है कि वस्तु C_2 का अधिकतम उत्पादन वस्तु C_1 के लिए है (स्पष्ट रूप से वह दोनों वस्तुओं को अधिकतम प्राप्त नहीं कर सकता, यह कथन स्वयं मे ही दोषपूर्ण है)। इन प्रत्येक उत्पादन संयोग हेतु रेखागणितीय विधा- जिसे एजवर्थ बाउले सन्दूक चित्र कहते है, का प्रयोग करने से आदा संयोग प्राप्त किए जा सकते है (कुछ महानुभाव जैसे वैदरवाई (1976), ने एक तथ्य का अन्वेषण किया- एजवर्थ तथा बाउले ने तो इसको केवल लोकप्रिय ही बनाया था, इसके मूल प्रतिपादक तो पैरेटो थे)।

एजवर्थ बाउले सन्दूक चित्र मे दो बिन्दु होते है। इनमें से एक बिन्दु एक वस्तु तथा दूसरा बिन्दु दूसरी वस्तु के लिए सुनिश्चित कर लें। सन्दूक की भुजाएं आदाओं के परिणाम द्वारा निश्चित की जाती है। जैसे F_1 तथा F_2 के परिमाण ही इन्हें निश्चित करेंगे। इस सन्दूक में प्रत्येक बिन्दु एक चार तत्वीय आवंटन का प्रतिनिधित्व करता है। (F^a_{11}, F^a_{21}, F^a_{12}, F^a_{22}) यह दो बिन्दुओं से सम्बद्ध है। दो मूल बिन्दुओं के सन्दर्भ में - दो समोत्पाद वक्र प्रत्येक बिन्दु पर होकर गुजरते हुए प्रकट किए जाते है। C_1 दूसरी वस्तु को प्रकट कर रहा है C_2 दूसरी वस्तु को प्रकट कर रहा है। एक वस्तु के इस प्रदत्त समोत्पाद वक्र को दूसरी वस्तु के समोत्पाद वक्र (एक के अतिरिक्त) उस प्रदत्त समोत्पाद वक्र को या तो दो बिन्दुओं पर काटते हुए प्रकट होंगे अथवा उसे स्पर्श भी नहीं करेंगे। किस प्रकार, दूसरी वस्तु का केवल एक ही और केवल एक मात्र समोत्पाद वक्र होगा जो कि प्रदत्त समोत्पाद वक्र को केवल एक ही बिन्दु पर स्पर्श करता है, अत: इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि दो वस्तुओं के दो समोत्पाद वक्रों की उभयनिष्ठ रेखा है। अत: इस बिन्दु पर दोनों वस्तुओं हेतु आदाओं के मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर एक समान है:

चित्र 17.1

MRSF,1 = MRSF,2..... (1)

चित्र संख्या एक का अवलोकन करिए, इस मान्यता को कितने आवन्टन परिपूर्ण करते है। प्रदत्त चित्र में बिन्दु A जो आदाओं (उत्पादन साधनों) के आवंटन का प्रतिनिधित्व करता है, पर विचार करें (F^a_{11}, F^a_{21}, F^a_{12}, F^a_{22},) वस्तु का उत्पादन स्तर है। C^a_1 तथा वस्तु C_2 का C^a_2 उत्पादन स्तर है। सहजरूप में, यह पूर्ण तथा दृष्टिगत होता है कि जब समोत्पाद वक्र C^a_2 बिन्दु A बिन्दु B की ओर गतिशील होता है C_1 वस्तु के उत्पादन में सुधार होता है। जबकि वस्तु C_2 का स्तर तो पूर्ववत ही स्थिर है। तथा बिन्दु B पर वस्तु C_1 का उत्पादन अधिकतम है, और जबकि वस्तु C_2 के उत्पादन में भी कमी नही हो रही है। इसी प्रकार यह भी सरलता से दृष्टिगोचर होता है कि जब समोत्पाद वक्र C^a_1 पर बिन्दु A से बिन्दु C की ओर गतिशील होता है तो वस्तु C_2 के उत्पादन में सुधार होता है। यद्यपि वस्तु C_1 का उत्पादन अधिकतम पूर्ववत ही रहता है तथा बिन्दु A पर C_2 का उत्पादन अधिकतम हो जाता है, जबकि वस्तु C_1 का उतना ही (अपरिवर्तित) रहता है। बिन्दु C पर वस्तु C_2 का उत्पादन अधिकतम है। उत्पादन C_1 के प्रदत्त स्तर के संबंध में प्रदत्त चित्र संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि बिन्दु A की तुलना में बिन्दु B तथा C बिन्दु उत्पाद कुशल है। इस संदूक चित्र में B तथा C को मिलाते हुए जो O_1 तथा O_2 वक्र है वह इस क्षेत्र की उत्पादन कुशलता प्रतिनिधित्व करते है। जैसे क्षेत्र ABC से स्पष्ट है। इस प्रकार अब हमको यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि रेखा के परे प्रत्येक बिन्दु के साथ इस रेखा पर कुशलता बिन्दुओं का एक जोड़ा है। बिन्दु A से बिन्दु B तथा बिन्दु C तक किसी भी बिन्दु पर गतिशील होने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों ही वस्तुओं की उत्पादन कुशलता गतिशील होती है और उसमें सुधार भी दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न क्या हम B तथा C की इस दृष्टि से तुलना कर सकते है कि कौन सी अधिक कार्य कुशल है?

उत्तर नहीं, हम नहीं कर सकते है।

प्रश्न जहां तक कार्य कुशलता का संबंध है बिन्दुA अथवा D में से कौन अधिक उत्तम है?

उत्तर हम तुलना नहीं कर सकते है। प्रदत्त चित्र में O_1 तथा O_2 बिन्दुओं को मिलाते हुए वक्र का विभिन्न बिन्दुओं पर तुलनात्मक अध्ययन नहीं कर सकते है क्योंकि एक वस्तु के अधिक परिमाण तथा दूसरी वस्तु के अल्प परिणामों को प्रकट करता है। अब हम जो भी कुछ कर सकते है वह है - आदा क्षेत्र चित्र को प्रदा क्षेत्र में चित्र में अनूदित कर इस उत्पादन चित्र क्षेत्र साधारण अक्षों पर प्रकट करें। चित्र संख्या 17.2 में देखिएगा। एक अक्ष पर C_1 को माना गया प्रदर्शित किया है, तथा दूसरे अक्ष पर C_2 का। ABCD का आदा संयोगों से साम्य प्रकट करने वाले उत्पादन संयोगों को क्रमशः $A^*B^*C^*D^*$ से प्रदर्शित किया गया है। अब यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि प्रदत्त C^a_2 के वस्तु C के अधिकतम परिमाण को B^* द्वारा प्रकट किया गया है। जबकि C^a_2 की सहायता से C_1 का कोई भी (परिमाण) मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। इसे $C^a_2B^*$ द्वारा सीधी रेखा पर किसी बिन्दु द्वारा प्रतिनिधित्व करते हुए प्रदर्शित किया जा सकता है (A को सम्मिलित करते हुए) अब हमको यहां यह प्रमुख रूप से विचार करना है कि O^*_1, O^*_2, वक्र कुशलता रूपान्तरण वक्र कहलाता है; इस उत्पादन सम्भावना वक्र के नाम से भी पुकारा जाता है। इससे दो वस्तुओं के मध्य व्यवहार बिन्दुओं की उत्पादन सीमा भी निर्धारित होती है।

चित्र 17.2

प्रश्न रोबिन्सन क्रूसो का उत्पादन करने हेतु वस्तुओं के किस संयोग का चयन करना चाहिए?

यदि हम रोबिन्सन क्रूसो के उदासीनता मानचित्र से परिचित है तो हमको इसका ज्ञान सहज रूप में ही प्राप्त हो जाएगा। रूपान्तरण वक्र दोनों ही एक स्थान पर दिए गए एक को चित्र सं. 3 में हमने एक रूपान्तरण वक्र को निरूपित कर एक अवरोध के रूप में प्रदर्शित किया है और इन असंख्य उदासीनता वक्रों में से तीन उदासीनता वक्रों को भी प्रदर्शित किया है। यह तो स्पष्ट ही है कि रोबिन्सन क्रूसो Y बिन्दु का ही चयन करेगा क्योंकि इस बिन्दु पर ही वस्तुओं का वह संयोग प्रदर्शित किया गया है जिससे सम्भाव्य उपयोगिता (कल्याण) अधिकतम है। सन्तुष्टि का इससे कोई और उच्च बिन्दु प्राप्त नहीं किया जा सकता है। बिन्दु R पर दोनों वक्रों की स्पर्श रेखा उभयनिष्ठ है अतः

MRPT = MRSC…… (2)

(MRPT = उत्पाद रूपान्तरण की सीमान्त प्रतिस्थापन दर)

(MRSC = वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर)

चित्र संख्या 17.3

जहां MRPT से अभिप्राय है उत्पाद रूपान्तरण की सीमान्त प्रतिस्थापन दर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर तथा MRCS से आशय है वस्तु के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर। यदि प्रथम तकनीक संबंधी अवरोधों का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरा रोबिन्सन क्रूसों की रूचि एवं वरीयताओं का द्योतक है। पुनर्विवेचन तथा सामान्यीकरण हेतु हम रोबिन्सन क्रूसों की अर्थव्यवस्था में संसाधन आवन्टन की कुशलता को प्रकट करने वाली पूर्व शर्तों का भली प्रकार उल्लेख कर सकते है। (1) आदाओं के किसी जोड़े हेतु (E,J) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समस्त वस्तुओं हेतु (योग / संख्या) वहीं है।

MRSF1=MRSF2=.....MRSF. सं

2. वस्तुओं के किसी जोड़े हेतु (R_1C) वस्तु रूपान्तरण की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उपभोग में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के बराबर है।

MRPT=MRSF

17.2.5 रोबिन्सन डोबिन्सन अर्थव्यवस्था

इसके अंतर्गत रोबिन्सन एवं डोबिन्सन दोनों मिल जाते है। और निश्चित (स्थिर) है। अब हम यह कल्पना भी कर लें कि इन साधनों का उपभोग कच्ची (अपरिपक्व / प्राथमिक) दशा में नहीं किया जा सकता है इस प्रकार वे पहले उत्पादन करते है। इनको पहले पारस्परिक उत्पादन की प्रतिक्रिया की अनुपस्थिति में ही निर्णय लेने दीजिएगा। कल्पना कर लीजिए कि रोबिन्सन R वस्तु का उत्पादन करता है तथा डोबिन्सन D वस्तु का उत्पादन करता है। उनके उदासीनता वक्रों के आधार पर ही उनके निर्णय भी निर्भर रहते है।

चित्र सं. 17.4 (a) तथा 17.4 (b) को देखिए।

चित्र सं. 4a

चित्र संख्या 4b

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि वह जिन वस्तुओं का उत्पादन कर रहे है; उन वस्तुओं के उत्पादन साधनों का पुन : आवन्टन करें तो क्या वह दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन अधिक परिमाण में कर सकते है – चूंकि उन दोनों में से कोई भी सर्वोच्च बिन्दु पर अभी नहीं पहुंच सका है। (हम यह परिकल्पना कर लेते है), अधिक उत्पादन कर श्रेष्ठतर है। इसी सभी के लिए अब हम चित्र सं. 4(B) को चित्र सं. 4(A) पर, प्रथम को (प्रतिकूल) विलोम रूप में प्रत्यारोपित करें। चित्र सं. 5 में R तथा D का प्रतिनिधित्व P द्वारा करते हुए प्रदर्शित करें - यह भी मान लें कि वस्तु B_1 की समस्त मात्रा (A'R'+B'D) A'PB' द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं, तथा वस्तु B_2 का सकल परिमाण (AB+BD) को APB से प्रदर्शित किया गया है। चित्र संख्या 4(A)तथा चित्र सं. 4(B) के दोनों वक्रों X,X तथा Y,Y तब एक दूसरे को काटते हुए दिखाई देंगे। चित्र सं. 5 को देखिए। जब इस वक्र को इस प्रकार से खिसकाइये कि दोनों की वक्र एक दूसरे की स्पर्श रेखा हो - वह बिन्दु K जहां पर

MRPT,R=MRPT,D..... (3)

अगले पृष्ठ पर चित्र संख्या 17.5 का अवलोकन करें।

चित्र 17.5

अब हम भली भांति देख सकते है कि जब रोबिन्सन वस्तु S_1 की कम मात्रा का उत्पादन करता है और डोबिन्सन S_2 की कम मात्रा में उत्पादन करता है तो प्रत्येक वस्तु के परिमाण का योग अधिक होता है।

चूंकि रोबिन्सन तथा डोबिन्सन यहां पर उत्पादन के (प्रतिनिधि) माध्यम है। परिमाणों का सामान्यीकरण करते हुए अब हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि

(3) वस्तुओं के किसी जोड़े (R,K) हेतु वस्तु के रूपान्तरण की सीमान्त दर वही है, जो कि समस्त उत्पादक इकाइयों (M) की हैं :-

$$MRPD_1=MRPD_2.....MRPD_M$$

इस पर भी दोनों वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन करना समग्र रूप से पर्याप्त नही है। रोबिन्सन तथा डोबिन्सन के मध्य उपभोक्ताओं के रूप में वस्तुओं का वितरण किस प्रकार किया जाए? क्या अभी भी दूसरी शर्त व्यवहारिक है? इसलिए हम अब ऐजवर्थ बाउले सन्दूक चित्र का प्रयोग सरलतापूर्वक कर सकते है। दोनों वस्तुओं के दोनों ही अक्षों पर प्रदर्शित करते हुए तथा उदासीनता वक्र अथवा सम सन्तुष्टि वक्र को भीतर की ओर प्रदर्शित किया जा सकता है।

O_R तथा O_S दो मूल बिन्दु है तथा प्रकटित चित्र में सन्दूक की लम्बाई तथा चौडाई चित्र सं. 5 MCKJ तथा FKG की लंबाई तथा चौड़ाई के बराबर है। यह कल्पना कर ले कि K की तुलना में S तथा R के मध्य समस्त बिन्दु कुशलता के द्योतक है क्योंकि इन बिन्दुओं पर किसी भी बिन्दु पर कुशलता मान K से अधिक भी नहीं है। तथाकथित संसविदा वक्र अथवा

चित्र 17.6

संघर्षण वक्र D_R और OS के मध्य सभी बिन्दु जो ST के मध्य होकर गतिशील होगा, निम्नलिखित शर्त को पूरा करेंगे।

$$MRCS,R=MRCS,D$$

इससे आशय है कि रोबिन्सन तथा डोबिन्सन वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान ही है। इसे सामान्य व्याख्या के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

(4) वस्तुओं के किसी जोड़े के लिए (R,S) समस्त उपभोक्ताओं हेतु वस्तुओं की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान ही रहती है (T)

MRCS,1=MRCS,2=.....MRCS,T

हम यह भली प्रकार से जानते है कि प्रसंविदा वक्र पर O_R तथा O_S के मध्य स्थित दो उपभोक्ताओं हेतु शर्तों को पूर्ण करते है (4)। परन्तु K के संदर्भ में हम यह देख चुके है कि S तथा T कुशलता को प्रकट करते है। यह तो भली प्रकार स्मरण ही होगा कि इन किसी अन्य स्थिति को स्वीकार करने हेतु आवश्यक नहीं समझ रहे है। यदि उन परिस्थितियों के अन्तर्गत इन्होंने किसी वस्तु की मी को प्रकट किया हो - चाहे अन्य वस्तुओं के कितने भी अधिक आकार को इनके द्वारा प्रकट किया हो। उनमें भी केवल वे बिन्दु ही भले स्वीकार करने योग्य हो सकते है जो कि इन शर्तों को पूरा करते है। (2) कि

MRCS=MRPT

ताकि मान्यता (3) का खण्डन (उल्लंघन) नहीं हो। यद्यपि आरम्भ से ही हम आदाओं (उत्पादन-साधन) तथा वस्तुओं के मध्य एक विशिष्ट अन्तर बनाए हुए है - तथा उस भावना का भी व्यापक रूप से भरसक प्रयोग कर रहे है जिससे यह स्पष्ट झलक मिलती है कि वह संसाधन जिनको आदाओं की संज्ञा दी गई है; अपरिपक्व (अपर्णता) अवस्था में उपभोग नहीं किए जा सकते है। वास्तव में वे ही संसाधन है। अवकाश (विश्राम) की अवस्था इस बिन्दु के अन्तर्गत एक ऐसी ही अवस्था है। इसका सुखभोग तो प्रत्यक्ष अवस्था में करना ही सम्भव है। अथवा इसको उपभोग्य वस्तु के रूप में परिणति किया जा सकता है। इसलिए किसी एक वस्तु तथा एक आदा के मध्य प्रतिस्थापन की दर वही है, जो सभी जोड़ों के लिए है, यह आदा के रूपान्तरण की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के समान ही होनी चाहिए। जो कि उस आदा की सीमान्त उत्पाद है। जिसे उस वस्तु के संदर्भ से संबोधित किया जाता है। अन्यथा किसी को इसके रूपान्तरण की आवश्यकता ही क्यों होती? इससे भी आगे बढ़कर यह कहा जा सकता है कि ये शर्तें ही सीमान्त शर्तें कहलाती है। यह द्वितीय कम की शर्तों की पूर्ति मात्र ही इस क्रम में कही जाती है। हम यह मान कर ही चलते है कि इनको पूरा किया ही जाता है फिर भी यह तो एक प्रकार से कहा ही जा सकता है कि संपूर्ण शर्तों पर तो विशेष जोर देना ही पडेगा। इससे स्पष्ट होता है कि एक अथवा अनेक व्यक्ति के कल्याण में अभिवृद्धि करना तब तक संभव ही नहीं है जब तक कि किसी एक व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्ति की संतुष्टि - मात्रा में कमी नही जाय। यह इसी प्रकार से है कि किसी एक वस्तु के उत्पादन में कटौती किए बिना किसी दूसरी एक अथवा अनेक वस्तु के उत्पादन में वृद्धि करना साधारणत : (3) दो व्यक्तियों की संतुष्टि में सीमान्त अभिवृद्धि को सीमान्त कल्याण के रूप में तुलना नहीं की जा सकती है। (क्योंकि यह सन्तुष्टियां केवल साधारण रूप में ही कम बद्ध हैं), इसलिए दोनों U_1 तथा U_2 में हुई कोई भी वृद्धि W में वृद्धि कारक होती है तथा U_1एवं U_2 में हुआ कोई भी ह्रास W के आकार (परिमाण) में हो और दूसरी में ह्रासात्मक स्थिति हो तो W के आकार में किस प्रकार का परिवर्तन होगा - इस विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में अन्तर वैयक्तिक तुलनाओं का कोई औचित्य (स्वीकृति) नहीं होता है।

चित्र की सहायता से इसे इस प्रकार भी स्पष्ट किया जा सकता है- इसका आशय यह है। कि छायादार क्षेत्र में ही हम U° बिन्दु से गतिशील हो सकते हें।

चित्र संख्या 17.7 में देखिए।

चित्र सं. 17.7

दूसरें शब्दों में, पैरेटो सुधार में कोई भी गतिशीलता किसी एक व्यक्ति की सन्तुष्टि मैं किसी भी प्रकार का ह्रास किए बिना दूसरे व्यक्ति की संतुष्टि में अभिवृद्धि का द्योतक है। जब इस प्रकार की गतिशीलता असंभव हों जाती है, तो इसे इष्टतम अवस्था कह कर पुकारा जाता है। इस स्थिति में साधन आवन्टन को भी कुशल माना जाता है। स्वाभाविक रूप से यह उत्तम अवस्था ही पैरेटो की संभव नहीं है। सामान्य रूप इसकी कल्पना कर ही ली जाती है।

17.3 पैरेटो अनुकूलतम अथवा कुशलता

हम पैरेटो महोदय के एक उदाहरण के साथ इसका उल्लेख आरम्भ करेंगे : "हम किसी भी ऐसी विशिष्ट स्थिति का चिन्तन करें तथा यह भी कल्पना कर लें कि लेशमात्र भी गतिशीलता इसके अन्तर संबंध की प्रभावित करती है। यदि इस प्रकार से इसे गतिशील करने से सभी व्यक्तियों के कल्याण में अभिवृद्धि होती, तो उन सभी के लिए यह परिवर्तित परिस्थिति पूर्णतया कल्याणकारी होगी। इससे यह भली प्रकार स्पष्ट होता है। इसके विपरीत भी, यदि किसी प्रकार से भी इसमें कभी कर भी दी जाती है तो उन सभी व्यक्तिगत कल्याण में भी गिरावट आएगी यह हो सकता है कि इन परिणामों के विपरीत कतिपय व्यक्तियों के कल्याण के स्वरूप तथा आकार पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़े। परन्तु दूसरी ओर यह परिवर्तन प्रधान साधारण सी गतिशीलता भी यदि थोड़े से व्यक्तियों के कल्याण में अभिवृद्धि करती है तो कुछ क्षणों के लिए भी यह कहना भी संभव नहीं है कि समाज के लिए समग्ररूप से इस प्रकार का परिवर्तन किसी भी रूप में (अवस्था में) लाभदायक होगा। अत : हम इसको एक ऐसी स्थिति के रूप मैं परिभाषित कर सकते है जहां श्रेष्ठतम उत्तम अवस्था मे कोई किसी भी प्रकार का सूक्ष्म-हम परिवर्तन करना भी असम्भव है, इस प्रकार सभी

व्यक्तियों की वैयक्तिक उत्तम अवस्थाएं ऊर्ध्वगामी होंगी। अथवा अधोगामी होंगी। केवल उन्हीं अपवाद स्वरूपों को छोड़ कर जो स्थिर अवस्था में हैं"

यह संस्मरण रहे कि पैरेटो ने इसे विगत शताब्दी के अन्त में अभिव्यक्त किया था। आधुनिक भाषा में उनके विचारों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार की जा सकती है।

(1) सामाजिक कल्याण (W) सामाजिक कल्याण व्यक्तिगत सन्तुष्टि (उपयोगिता) का फलन है (Ut) :

$$W=W(U_{11}U_{21}.....{}_{1}Ut)$$

(2) प्रत्येक वैयक्तिक उपयोगिताओं (सन्तुष्टि) का सामाजिक कल्याण एक बढ़ता हुआ फलन है।

$$\frac{dW}{dUt} > 0 \quad t=1,2,.....T$$

ईष्टतम अथवा उत्तम अवस्था है। तथा वह कुशलता ही पैरेटो की इष्टतम कुशलता है, क्योंकि यह पैरेटो के कल्याण फलन से ही सम्बद्ध है। और इसी पर निर्भर है।

यद्यपि इन समस्त सन्तुष्टियों की अभिव्यक्ति एवं व्याख्या से तो ऐसा प्रतीत होता है मानों पैरेटो ने केवल उपभोग पक्ष का ही विषद विवेचन किया है। परन्तु किसी भी प्रकार उनकी भाषा तथा अभिव्यक्ति से ऐसा स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि इन गतिशीलताओ का औचित्य उत्पादन के क्षेत्र में भी उन्होंने न्यायोचित ठहराया है। वैयक्तिक सन्तुष्टियां प्राय: वस्तु के उपभोग पर ही निर्भर रहती है। उत्पादन कार्यकुशलता को भी उस स्थिति के रूप में उल्लेखित एवं परिभाषित किया जा सकता है। जिस अवस्था में किसी एक मात्र वस्तु के उत्पादन को घटाए बिना किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन में वृद्धि करना असम्भव है। कुछ व्यक्ति यह सोचते है कि यह पैरेटो की विद्या में उदारता एवं नमनशीलता (लचीलापन) के कारण ही है।

फिर भी समस्त कार्यकुशलता हेतु उपभोग कौशल एवं उत्पादन कार्य कुशलता के अतिरिक्त किसी भी और तत्व की आवश्यकता है। उन सभी का हम यहां उल्लेख भी करेंगे: (i) किन्हीं वस्तुओं के, जोड़े (R,S) के लिए उन सभी उपभोक्ताओं के प्रसंग में प्रतिस्थापन्नता की सीमान्त दर वही (अपरिवर्तित) रहनी चाहिए:

$$MRCS,1=MRCS,2.....MRCS,T=MRCS$$

(ii) किन्हीं एक वस्तु के जोड़ के संबंध मैं (R,S) उत्पाद रूपान्तरण की सीमान्त दर उन समस्त इकाइयों के लिए समान ही रहनी चाहिए।

$$MRPT,F=MRPT,2.....=MRPT,M=MRPT$$

(iii) किन्हीं वस्तुओं के जोड़ के संदर्भ में (R,S) सामान्यत : 'प्रतिस्थापन का सीमान्त दर समान होनी चाहिए तथा यह उत्पाद रूपान्तर की सीमान्त दर के समान भी होनी चाहिए।

MRCS=MRPS

(iv)किन्हीं आदाओं (उत्पादन साधनों) के जोड़ों के संदर्भ में (i,j) सभी वस्तुओं के लिए स्थानापन्नता एक सी (समान) ही होनी चाहिए।

MRFS,1=MRFSD,2.....MRFS,N=MRFS

(v) आदाओं के किसी एक जोड़े के संदर्भ में (i,j) प्रत्यक्ष रूप से उपभोग की जाने वाली वस्तुओं से सम्बद्ध उपभोक्ताओं की प्रतिस्थापन्नता की सीमान्त दर समान रहनी चाहिए।

MRFSD.1=MRFSD,2=.....MRFSD,N=MRFSD

यह पूर्णतया ठीक उसी की भांति है (1) केवल वस्तुओं तथा आदाओं मात्र मध्य यहां अंतर भेद किया जा रहा है। (vi) आदाओं के किसी भी थोड़े के संदर्भ में (i,j) प्रत्यक्ष रूप से उपभोग की जाने वाली वस्तुओं जिनका आदा कहा जाता है के प्रसंग में उत्पादन की प्रस्थिापन्नता की सीमान्त दर समान होनी चाहिए।

MRFS=MRFSD

(vii) वस्तुओं के किसी जोड़े तथा आदाओं एवं एक आदा (i,r) के संदर्भ में वह वस्तु जिसका प्रत्यक्ष रूप से उपभोग हो रहा है। उस आदा की स्थानापन्नता की दर सभी उपभोक्ताओं के लिए एक समान ही होनी चाहिए :

:MRFCS

आदा द्वारा वस्तु के रूप में रूपान्तरण की दर सभी उत्पादक इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता तथा प्रत्यक्ष उपभोग की जाने वाली वस्तु के सन्दर्भ में आदा की स्थानापन्नता की दर उस आदा के जो कि वस्तु के निर्माण में प्रयुक्त की जाती है कि रूपान्तरण दर समरूप (समान) होनी चाहिए, वह है :

a) MRFCS,1=MRFCS,2=.....MRFCS,T=MRFCS—

b) MP_1=MP_2=.....MP,M=MP

c) MRFCS=MP

इन सभी के होते हुए भी, हिक्स के अनुसार, यह पूर्णतया असम्भव ही होना चाहिए कि किसी वस्तु के उत्पादन को रोक देने के कारण, किसी व्यक्ति की सन्तुष्टि के परिमाण को कम किए बिना ही, किसी दूसरें व्यक्ति की सन्तुष्टि की, मात्रा में वृद्धि हो जाएगी।

अब हम भली प्रकार से देख सकते है कि इन सभी स्थितियों कार्यकुशलता अनेक मान्यताओं पर निर्भरता रहती है - जैसे कि उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों का उत्कृष्टतम स्थिति को प्राप्त करने की परिकल्पना आदि। परन्तु उपभोक्ताओं के पारस्परिक सन्तुष्टि के सापेक्ष अध्ययन को महत्व नहीं देना तथा वस्तुओं के पारस्परिक मूल्यों का सापेक्ष अभाव इस हल को और भी साधारण

बना देता है। वितरण की प्रक्रियाओं के अनेक रूप उत्पादन कौशल के रूप मैं प्रकट होतें है, और यह उसकी आधारभूत निर्बलता (कमी) है।

एक पैरटो - कुशल वितरण स्थिति तक कैसे पहुंचे

यहां हम इस तथ्य का भली प्रकार विवेचन करेंगे कि वस्तु के प्रचलित बाजार मूल्य के अभाव मैं उत्पादन साधन (आदा) के प्रचलित मूल्य के अभाव में उत्पादन के साधनों की और वस्तुओं की भौतिक दरों के संदर्भ में पैरेटो - कुशलता को किस प्रकार प्रकट किया गया है? रूपान्तरण दर तथा प्रतिस्थापन दर का समरूप हो जाना मात्र ही कुशलता को अभिव्यक्त कसे में किस प्रकार सक्षम है। इस व्यावहारिक सत्य के - मूल्य प्रणाली का अस्तित्व है अथवा नहीं के अभाव में भी दीं का अस्तित्व तो होता ही है। विचारणीय बिन्दु तो यह है कि इन दरों को स्थिर एवं संगतियुक्त किस प्रकार बनाया जा सकता है? इसका सामान्य उत्तर तो मूल्य सिद्धान्त के प्रचलन माध्यम से ही प्राप्त होता है। मूल्य पद्धति की संरचना किस प्रकार की जाये? यह संभव हो सकता है,

a) बाजारों के एक समूह के माध्यम से

b) कम्प्यूटर के माध्यम से

c) विधान के माध्यम से

परन्तु प्राय : मनुष्य को तो यह जानने की भारी उत्सुकता होती है कि एक बाजार के विशिष्ट समूह में प्रचलित मूल्य उस मूल्य के औचित्य के अनुरूप अथवा समरूप है भी ?

क्या बाजार संगठन का वह विशिष्ट स्वरूप पैरेटो उत्तम अवस्था की ओर अग्रसर करता परन्तु प्राय : जानने के उत्सुक भी हो सकते है कि एक पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार प्रणाली पैरेटो-दक्षता को प्रकट करती है अथवा नहीं और इसका उत्तर है : हाँ। पैरेटो उत्तम अवस्था को प्राप्त करने हेतु पूर्ण प्रतियोगिता का पाया जाना पर्याप्त है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही सर्वत्र सभी उपभोक्ताओं, और सभी उत्पादकों के लिए सर्वदा ही मूल्य निश्चित होते है। कोई भी अपनी गतिविधियों के माध्यम से मूल्यों को प्रभावित नही कर सकता है। यदि उपभोक्तागण अपनी प्राप्त संतुष्टि को अधिकतम करने वाले है, तो इस अवस्था में दो वस्तुओं के मध्य (r,s) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर होगी :

$$MRCS_{rs} = \frac{Ps}{\Pr} \qquad (A)$$

इसी प्रकार से यदि उत्पादकगण अधिकतम लाभ प्राप्त करता है तो उत्पादन के दो साधनों के (i,j) मध्य प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होगी :

$$MRCS_{ij} = \frac{Pj}{Pi} \qquad (B)$$

आगे उत्पादकगण वस्तुओं के उन्हीं संयोगों को (r's) उत्पादन करना श्रेष्ठ समझेंगे जहाँ:

$$MRPT_{rs} = \frac{Ps}{\Pr} \qquad (C)$$

थोड़ा और बढ़ने पर ज्ञात होगा कि किसी उत्पादन के साधन की सीमान्त उत्पादक मूल्य उसकी कीमत के बराबर होना चाहिए। चाहे उत्पादन का स्वरूप कैसा भी हो। वह है :

$$P_r MP_{ri} = P_i$$

जिसका आशय होता है

$$M\,P_{ri} = \frac{Pi}{\Pr} \qquad (D)$$

चूंकि समस्त उत्पादकों और समस्त उपभोक्ताओं को मूल्यों के एक सामान्य समूह का ही समाना करना पड़ता है, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि प्रतिस्थापन की दरें एवं रूपान्तरण की दरें प्रत्येक दशा में समान है (आगे, किसी भी उत्पादन के साधन की इकाई का प्रयोग उस सीमा से परे कदापि नहीं किया जा सकता है जहाँ उसकी सीमान्त उत्पादकता का मूल्य उसकी कीमत की अपेक्षाकृत कम हो। अब यह सिद्ध करने के लिए पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि पैरेटो दक्षता (कौशल) के अस्तित्व के निर्वाह हेतु पूर्ण प्रतियोगिता एक समुचित मान्यता है। हम यह देख सकते है कि इन समस्त शर्तों का लागू होना भी परमावश्यक ही है उदाहरण के लिए:

$$MRPT_{rs} = MRCS_{rs}$$

यह तभी संभव हो सकता है जबकि

$$M\,P_{ri}\,\frac{Pi}{\Pr}$$

$$MRPT = \frac{dQs}{dQr}\;\frac{dQs/dFi}{dQr/dFi} = \frac{-M\Pr i}{M\Pr i}$$

$$= \frac{(Pi/Ps)}{(Pi/\Pr)} = \frac{-\Pr}{Ps} = MRCSrs$$

परन्तु उस अवस्था में उस मान्यता D का उल्लंघन (खंडन) होता है। इस प्रकार, यह परमावश्यक है कि जो मान्यताएं पूर्ण प्रतियोगिता हेतु आवश्यक हैं उन मान्यताओं को इसके लिए भी आवश्यक मान लिया जाये।

इस पर भी आग्रह पूर्वक जोर डाला जा सकता है कि द्वितीय श्रेणी की समस्त मान्यताएं भी उपभोक्ताओं तथा उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक है अन्यथा इस बिन्दु की परिणति अधिकतम स्तर के बिन्दु के स्थान पर न्यूनतम बिन्दु के रूप मे हो जाएगी। उस अवस्था में, कोणीय हल ही (सर्वोत्कृष्ट) इष्टतम हल भी होगा जिसका परिणाम होगा कुछ वस्तुओं का अभाव यदि समस्त उपभोक्ताओं में से कुछ उपभोक्ता पूर्ण सन्तुष्टि के बिन्दु को प्राप्त कर लेते है तो पूर्ण प्रतियोगिता भी पैरेटो कुशलता (दक्षता) से पूर्णतया आश्वस्त नहीं कर सकती है।

फिर भी, हमको ध्यान देना होगा कि उपर्युक्त समस्त उल्लेख के साथ-साथ हम अव्यक्त रूप से कल्पना कर रहे है कि:

(i) व्यक्तिगत उपयोगिता फलन अन्तर निर्भर नहीं होते हैं,

(ii) बाह्यताओं का कोई अस्तित्व नही होता है।

(iii) किसी सार्वजनिक वस्तु का अस्तित्व नहीं, तथा

(iv) संसाधन पूर्णतया विभाजनशील है।

अन्तिम रूप में, हम कोई विवाद न करने पर भी यह संकेत तो दे ही सकते है कि पूर्णतया विभेदात्मक एकाधिकार (एक क्रेता अधिकार) तथा द्वि-पक्षीय एकाधिकार भी पैरेटो की दक्षता की ओर ही अग्रसर करते है बशर्ते द्वितीय अवस्था में मिश्रित (संयुक्त) लाभ अधिकतम होता है।

17.3.1 सापेक्ष मूल्य विकृतियाँ

पैरेटो दक्षता के प्रसंग में सामान्य सीमान्त मान्यताओं में किसी विशिष्ट विधि से साधारणतया सुधार किया जा सकता है। यदि कल्पना करें कि सार्वजनिक वस्तुएं भी अस्तित्व में है। यह भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है कि व्यक्तिगत प्रतिस्थापना की सीमान्त दरों का योग एक सार्वजनिक वस्तु तथा एक निजी वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के समान होना चाहिए, और यह एक वस्तु की दूसरी वस्तु की प्रतिस्थापना की सीमान्त दर भी समान ही होनी चाहिए। जो कि समस्त इकाइयों के लिए समान है। वह हे :

MRCS,1+MRCS,2+.....MRCS,T=MRPT

इस सुधार के साथ पैरेटो दक्षता (कुशलता) प्राप्त की जा सकती है। स्वाभाविक रूप से पूर्ण प्रतियोगिता में;

$$MRPT = \frac{Ppub}{Pput}$$

इस प्रकार से (अत :) पूर्ण प्रतियोगिता इतने पर भी पैरेटो दक्षता (कुशलता) की ओर ले जाएगी। यह हम इस पर ध्यान से विचार करें कि सामान्यत : प्रत्येक उपभोक्ता किसी निजी वस्तु के उपभोग हेतु किसी भी बाजार मे एक समान मूल्य ही चुकाता है। परन्तु यह निश्चित रूप से पूर्ण प्रतियोगी बाजार में ही ऐसा होगा। तब:

$$MRPT = \frac{P^1 Pub}{Pput} + \frac{P^2 pub}{Ppvt} + ... + \frac{P^T pub}{Ppvt}$$

इसका आशय यह है कि सार्वजनिक वस्तुओं के मूल्यों में सभी उपभोक्ताओं का योगदान है (उनके $MRCS_i$ अनुपात में) यहां हमको एक यह ध्यान देने योग्य बात है कि कोई भी वस्तु जिसे सभी उसी मात्रा में साथ-साथ आनन्द लाभ करते है - सार्वजनिक वस्तु ऐसे बाजार का कोई अस्तित्व नहीं होता है और उपर्युक्त वर्णित हल तो केवल काल्पनिक बाजार की प्रणाली के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

यदि किसी व्यक्ति की सन्तुष्टि कुछ दूसरे अन्य व्यक्तियों के उपभोग किये जाने वाले मदों पर निर्भर रहती है तो समस्त उपभोक्ताओं को वस्तुओं के एक जोड़े से प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि समान नहीं हो सकती। अत : पूर्ण प्रतियोगिता पैरेटो उत्तम अवस्था की ओर नहीं ले जाएगी।

इसी प्रकार से, यदि किसी उत्पादन इकाई का लागत फलन कहीं दूसरी उत्पादन इकाइयों यों के उत्पादन पर निर्भर रहता है, तो ऐसी 'अवस्था-में समस्त उत्पादन इकाइयों के MRTP प्राप्त के समान होना सत्य सिद्ध नहीं होगा। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता पैरेटो उत्तम अवस्था की ओर नहीं ले जाएगी।

यदि इन तीन बाह्यताओं का भी अभाव है तो एकाधिकृत तत्वों के विद्यमान होने के कारण मूल्यों में विकृति आ जाएगी। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत निर्धारित मूल्यों को आदर्श मूल्यों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि वह एक कुशल विभाजनशीलता की ओर अग्रसर करती है। हम इस अब एक उदाहरण के माध्यम से प्रदर्शित भी कर सकते है।

हम जानते है कि MRPT अवसर लागत अथवा वास्तविक त्याग का माप करता है। किसी वस्तु की एक और इकाई के उत्पादन करने के अवसर से वंचित रहने के संदर्भ में स्पष्ट करता है। यह तो इस सिद्धान्त द्वारा F= MC के अनुसार पूर्ण अन्तर निहित है ही जोकि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन पक्ष क्षेत्र में सर्वदा सत्य ही सिद्ध होता है।

अब हम इस प्रकार की अर्थव्यवस्था की परिकल्पना करें जहां एक एकाधिकारी जो Q वस्तु का उत्पादन कर रहा है पैरेटो के ऐसे आदर्श स्वरूप का प्रयोग करें जिसके माध्यम से एकाधिकार के अन्तर्गत वस्तु का मूल्य एवं वस्तु का उत्पादन आकार (परिमाण) निर्धारित होता है। अब हम यहां यह प्रदर्शित करेंगे कि यह एक विकृति पैरेटो वितरण किस प्रकार से विकृत करती है। हम यह भी प्रदर्शित करने का प्रयास करेंगे कि उपभोक्ता के अतिरेक में किस प्रकार से प्राप्त होता है। जिस ह्रास का परिणाम होता है कल्याण का निम्नतर स्तर।

17.4 साधन आवंटन पर प्रभाव

चित्र सं. 17.8 में AD हमारा मांग वक्र है और AR सीमान्त आगम वक्र है। BCDEF एक सामान्य सीमान्त लागत वक्र है। चूंकि काम को अधिकतम करने हेतु इसकी सीमान्त लागत इसके सीमान्त आगम के समान होनी चाहिए, कल्पना कीजिए कि यह q^0 परिमाण में वस्तु का उत्पादन करता है, तथा p^0 प्रति इकाई मूल्य उस वस्तु का निर्धारित करता है। हो सकता है कि यह भी एक पूर्ण प्रतियोगिता के अंन्तर्गत कार्य q इकाई हो, इसका आशय है कि यह उन अनेक उत्पादक इकाइयों में से ही एक है जो कि उसी वस्तु का उत्पादन कर रही है। हो सकता है कि यह q^* परिमाण में उस वस्तु का उत्पादन कर रही हो तथा p^* मूल्य वस्तु की प्रति इकाई हेतु वसूल कर रही हों। हम यहां ध्यान से देखते है कि $q^*>q^0$ तथा $P^*<p^0$ चित्र संख्या 17.8 में देखिए।

चित्र सं. 17.8

कल्पना करिये कि एक वस्तु Q का उत्पादन करने वाला एकाधिकारी R नामक वस्तु का उत्पादन करता है जिसमें उसे प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। उत्पादन के साधनो को दिया हुआ मान लें और यह भी मान लें कि इसका रूपान्तरण वक्र भी ठीक इसी प्रकार का है जैसा कि चित्र सं. 17.9 में है। कल्पना करिए कि वह q वस्तु का उत्पादन कर रहा है तो प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा r^* होगी परन्तु वह तो q_0 मात्रा का उत्पादन कर रहा है। इसलिए यह r_0 होगी। इस प्रकार से वह q का उत्पादन कम करेगा तथा r वस्तु का अति उत्पादन करेगा।

चित्र सं. 17.9

वस्तु r का अति उत्पादन दूसरी प्रतियोगी वस्तु S_1 के उत्पादन मैं अत्यन्त बाध्यकारी होगा, परिणामस्वरूप, अब हमको ज्ञात होगा कि वस्तुओं के इस जोड़े (r,s) के संदर्भ मैं एक अन्य उत्पादकों का उत्पाद रूपान्तरण वक्र इसे उत्पादक की उत्पाद के रूपान्तरण वक्र को काटता हुआ दृष्टिगोचर होगा। इस प्रकार से कुछ उन वस्तुओं के सकल उत्पादन में भी कमी आएगी। यदि Q

वस्तु का उत्पादन प्रतियोगिता की अवस्था में किया गया होता तो हमको ज्ञात होगा कि उन वस्तुओं का जितना उत्पादन होना चाहिए था नहीं हो पाया।

17.5 उपभोक्ता के अतिरेक पर प्रभाव

चित्र सं. 8 जैसे चित्र की पुनरावृत्ति चित्र सं. 17.10 के रूप में कर लें। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उपभोक्ता का अतिरेक ABGE हो सकता था परन्तु वर्तमान स्थिति में तो यह केवल AHJ मात्र ही है।

चित्र सं. 17.10

अब यदि एकाधिकारी को q^* को उत्पादन करने के लिए अभिप्रेरित किया जाय तो उसको अनुदान राशि भी प्रदान करनी पड़ेगी। वांछित अनुदान राशि प्रति इकाई (औसत आगम) AR एवं (औसत मांग) AD के मध्य अन्तराल के समान (समरूप) होनी चाहिए। उत्पादन के स्तर पर qEK के समान q की मात्रा EK के समान रहती है। अत : प्रदान किए जाने वाली अनुदान राशि का योगफल बराबर होगा ELXEK के।

अब q_0 मात्रा में उत्पादन करने पर उसके लाभ का आकार ABCD द्वारा प्रकट किया गया है। q_0 पर उत्पादन करने से यदि उसको किसी प्रकार की अनुदान राशि नहीं दी जाती है तो उसका लाभ बराबर होगा।ABCD=DKE। अनुदान राशि प्राप्त होने के पश्चात् उसके लाभ के आकार में वृद्धि ($LKEP^*$-DKE) जो कि LDEPK के ही समान है। इसलिए एकमुश्त कर राशि उसके LKDEPके समान ही कर प्रदान करने हेतु निर्धारित कर देनी चाहिए। इसलिए एक एकाधिकारी का शुद्ध लागत लाभ अन्तराल के समान ही होगा। लाभ अवकलज के समान ही होगा। अब हमको यह स्पष्ट रूप से विदित होगा कि राजकोषीय नीति तंत्र होते हुए भी बाजार की अपूर्णताएं मूल्य विकृतियों को जन्म देगी तो परिणामस्वरूप इन सब के कारण उपभोक्ता के अतिरेक मे ह्रास होगा।

17.6 प्रत्यक्ष कर

प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष कर में अन्तर को तो एक प्रकार से कर विवर्तन के माध्यम से भली प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। प्रत्यक्ष कर परिवर्तनशील नहीं होता है जबकि अप्रत्यक्ष कर परिवर्तनशील होते है। टेलर (1961) द्वारा अब इस ओर संकेत भी प्राप्त हुए है कि यह तो

परिस्थितियों पर ही निर्भर रहता है कि कथित कर का विवर्तन किया जा सकता है अथवा नहीं। इसलिए इस वर्गीकरण का प्रयोग अब घटता जा रहा है।

इस श्रेणी के अन्तर्गत आयकर तथा सम्पत्ति कर दो ही मुख्य कर है। निम्नलिखित विवेचन में हमारा कार्यक्षेत्र केवल आयकर मात्र तक ही सीमित रहेगा।

17.6.1 प्रत्यक्ष कर एवं इसका कार्यशीलता एवं बचतों पर प्रभाव

आयकर का कार्यशीलता पर प्रभाव कोई भी व्यक्ति अपने समय वितरण, कार्य तथा अवकाश (काम और आराम) मे करेगा। श्रम का आशय है, आय प्राप्त करना। इसलिए मजदूरी की दर दे रखी है तो अब काम करने तथा आराम (अवकाश) करने में चयन करना है। इस तर्क की सरलता हेतु हम यह परिकल्पना कर लें कि जो भी आय प्राप्त होती है वह श्रम करके ही प्राप्त होती है। अब श्रम-आय **को (Y-asix)Y** अक्ष पर तथा अवकाश को **(X-axis)X** -अक्ष पर अंकित करें। चित्र संख्या 17.11 को देखने से स्पष्ट होगा कि AB रेखा मजदूरी दर को प्रकट करती है,E बिन्दु पर काम और आराम के संयोग के सन्तुलन को प्रदर्शित किया गया है।

क्या हम आराम पर भी कर लगाते है?

चित्र सं. 17.11

अब हम यह परिकल्पना कर लें कि कर लगाया जाता है, सरलता हेतु हम यह भी मान लें कि यह आय के अनुपात में ही लगाया जाता है। हमको सकल मजदूरी रेखा के नीचे शुद्ध मजदूरी रेखा प्राप्त होगी। इन दोनों के मध्य जो अन्तराल है वही आयकर को निर्धारित करता है। चित्र सं. 17.12 को देखिए।

चित्र सं. 17.12

अब E^1 नया साम्य बिन्दु जहां एक कर तो निम्न स्तर पर ही आय प्राप्त होती है और निम्न स्तर पर ही अवकाश सुख भी प्राप्त होता है। कार्य करने के प्रयासों में वृद्धि की जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब किसी को निम्नतर आय ही प्राप्त होती है तो उसे अधिक समय तक काम क्यों करना चाहिए? AB के समानान्तर एक A,B, रेखा की संरचना करते हुए हम यह देखते है कि उसकी आय पर एकमुश्त ही कर लगता हो। तो उसका सन्तुलन बिन्दु E^2 ही होता जहां पर उसे कुछ अधिक राशि में आय की प्राप्ति होती है तथा विश्राम में कम समय ही मिल पाता है। बिन्दु E° से बिन्दु E^2 की ओर प्रदर्शित गतिशीलता स्पष्ट रूप से आय प्रभाव को ही प्रकट करती है जो कि विश्राम के संदर्भ में भी धनात्मक है। परन्तु प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण यह संयोग। संतुलन बिन्दु E^2 से E^2 साम्यबिन्दु की ओर गतिशील होता है। न्यूनतम मजदूरी का आशय है, अधिक आराम (अवकाश)। इसका शुद्ध प्रभाव है - अधिक काम। परन्तु एक व्यक्ति के संदर्भ में भी भिन्न - 2 वरीयता तालिकाएं हो सकती हैं और जिसका परिणाम हो सकता है कम काम। चित्र संख्या 17.13 को देखिए।

चित्र सं. 17.13

यहां आय प्रभाव (L°-L^{2}) पर, प्रतिस्थापन प्रभाव (L^{1}-L^{2}) प्रधानता है। इसके परिणाम स्वरूप एक कर दाता को अधिक विश्राम मिलता है। इसका आशय है कि वह कम समय तक ही काम करता है।

संक्षेप में जब किसी एक व्यक्ति पर कर लगाया जाता है तो वह कर लगने के पश्चात् कर लगाने के पूर्व की अपेक्षा अधिक निर्धन हो जाता है। यह उसे अपने विश्राम के एक भाग के परित्याग करने हेतु प्रेरणा देता है और परिणाम स्वरूप वह अब अधिक घण्टे काम करने लगता है ताकि आंशिक रूप से उसकी आय में हुई कमी की क्षतिपूर्ति हो सके। उसी समय कर विश्राम को ओर भी अधिक सस्ता बना देता है, (आप कम मजदूरी का परित्याग करते है) और इसी लिए वह व्यक्ति अपनी आमदनी (आय) को प्रतिस्थापित करने हेतु प्रयत्नशील हो जाता है। कार्य प्रयास पर शुद्ध परिणाम अब दो प्रभावों पर निर्भर रहेगा। साथ ही कुल समय जो विश्राम के रूप में प्राप्त करता है, उस पर भी अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा (अथवा किया गया कार्य)।

जब मजदूरी मे कटौती कर दी जाती है (कर के कारण) तो इसका अन्तर्निहित आशय है अधिक कार्य; हम श्रम पूर्ति वक्र का अधोगामी ढलान देख रहे है; और जब इसकी परिणति कम काम करने की मात्रा के रूप होती है और जब श्रम पूर्ति वक्र के ऊर्ध्वगामी पर हम गतिशील होते है तो इसका आशय होता है काम का कम होना। संयुक्त रूप से इसके दो भाग झुकते हुए प्रतिगामी अवस्था के पूर्ति वक्र प्रदान करते है। कार्य प्रयासों पर कर का प्रभाव कर की दोनों रेखाओं पर भिन्न-भिन्न हैं।

आगे चल कर, इस स्थिति में उस नियोजक की MRT जो सकल मजदूरी के रूप मे भुगतान करता है। उसकी दृष्टि से तो मजदूरी दर ऊंची होगी परन्तु जो श्रमिक आय कर करने के पश्चात शुद्ध (मजदूरी) आय प्राप्त करता है। उसकी न MRS अपेक्षाकृत कम होगा। दक्षता निर्धारित करने वाली मान्यताओं में से एक मान्यता का खण्डन (उल्लंघन) होता है।

चित्र सं. 17.1

प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान तथा भविष्य के उपभोग के मध्य चयन करता है। वर्तमान मे बचाई गई आय भविष्य में प्राप्त होने वाली आय हो जाती है। Y (1+r) जहां r ब्याज की दर को प्रकट

करता है इसलिए वर्तमान आय का रूपान्तरण वक्र भविष्य की आय के रूप में परिणित होकर प्रकट होती है। इसको AB द्वारा प्रदर्शित किया गया है। जहां की वर्तमान आय का मापन करती है तथा GB अगली भविष्य में प्राप्त होने वाली आय (जैसा रूपान्तरण हो) का मापन करती है। इसके इस चयनित स्वरूप को E द्वारा प्रकट किया गया है। यहां इसके प्रासंगिक वांछित उदासीनता वक्र है।

जब आयकर लगाया जाता है तो बचतों पर होने वाली आय कम हो जाती है तथा कर दाता वर्तमान में अधिक उपभोग करना पसन्द कर सकता है। परन्तु इस सभी का एक आय प्रभाव होता है। वर्तमान में कम आय से आशय है - उपभोग तथा बचतों हेतु कम उपलब्ध धनराशि चूंकि और अधिक मंहगाई होने के कारण भविष्य में किया जाने वाला उपभोग अब और भी कम आकर्षक होने लगाता है, अत :, कर दाता को वर्तमान में अधिक उपभोग करना चाहिए इस अवस्था में आय प्रभाव ऋणात्मक होगा क्योंकि कम आय की परिणति अधिक उपभोग के रूप मे हो रही है। इस सबका फिर बचतों पर शुद्ध प्रभाव आय की सापेक्ष क्षमता पर ही पूर्णतया निर्भर रहेगा, और वर्तमान उपभोग स्तर पर प्रतिस्थापन प्रभाव भी गतिशील होगा।

17.7 सारांश

अधिकतम सामाजिक कल्याण में वृद्धि, उत्पादन कुशलता में सुधार, साधन आवंटन, आय का समाज में वितरण आदि परस्पर संबंधित है तथा एक में होने वाला परिवर्तन सभी पक्षों का प्रभावित करता है। यदि उत्पादन कुशलता में वृद्धि होती है तो वह सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने में सहायक है। उत्पादन कुशलता के उत्पादन इकाइयों की क्षमता में विकास,अपव्यय पर नियंत्रण, मितव्ययताओं को प्रोत्साहन, करा रोपण, अनुदान, कर में छूट आदि के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा सकता है। आर्थिक गतिविधियां इस प्रकार की है कि उनका दीर्घकाल में उत्पादन वृद्धि, समाज में आय वितरण असमानता का प्रश्न आर्थिक स्थिरता नवा वांछित आर्थिक विकास हेतु उपयोग हो सके। सार्वजनिक वित्त का वह रूप की देश के समग्र उत्पादन में वृद्धि कर उसके वितरण को भी सामाजिक न्याय की ओर गतिशील कर सके, प्रशंसनीय होता है। कर निर्धारण द्वारा धन की असमानता को दूर करने हेतु प्रयास किये जाते है। साथ ही निर्धनों के कल्याण हेतु अधिकतम व्यय-कर अधिक सामाजिक कल्याण के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयास किए जाते है। अत: स्पष्ट है कि अधिकतम सामाजिक लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त किया जा सकता है जहां पर राज्य द्वारा किए गये व्यय से प्राप्त सन्तुष्टि करदाता द्वारा दिए गए करों से प्राप्त असन्तुष्टि के समान हो। प्रस्तुत इकाई में वर्णित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि जैसे- 2 समाज में कर भार में वृद्धि होती है वैसे-वैसे व्यक्तिगत तथा सामाजिक त्याग के समय आकार में वृद्धि होती है। पुराने कर भार को कालान्तर में भूल जाते है परन्तु अब कोई भी नवीन कर न्यूनतम होने पर भी अधिक सीमान्त त्याग में वृद्धिकारक होता है। जैसे-जैसे सार्वजनिक व्यय राशि में वृद्धि होती है वैसे ही व्यक्तिगत एवं सामाजिक उपयोगिता में ह्रास होता है। जब सार्वजनिक व्यय की सीमान्त उपयोगिता सार्वजनिक कल्याण की सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो - तभी दोनों मदों में सकल उपयोगिता अधिकतम होंगी। प्रत्यक्ष करारोपण विशेषरूप से आयकर करदाता भी उत्प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव

डालता है। अप्रत्यक्ष कर विशेषरूप से वस्तुओं पर कराधान का प्राय : नगण्य प्रभाव डालता है। प्रत्यक्ष कर लगाने की स्थिति में वह अधिक कार्य करनें का इच्छुक नही होगा - क्योंकि उसे अपने कार्य से प्राप्त पुरस्कार के एक मुख्य मान को सरकार को कर के रूप में चुकाना पड़ेगा। वस्तु कर (अप्रत्यक्ष कर) मूल्य में भी अन्तनिर्हित होता है अत : औसत करदाता को उसका ज्ञान भी नहीं होता। प्रत्यक्ष कर काम करने की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, अप्रत्यक्ष कर (वस्तुकर) प्रेरणा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। कराधान के परिणाम स्वरूप करदाता अधिक कठिन परिश्रम करने लगेंगे, पूर्ववत काम करने लगेंगे अथवा कम काम करेंगे। यह करदाता की मूल्य सापेक्षता अथवा लोचशीलता पर ही निर्भर होगा। आय प्राप्त करने की लालसा की तीव्रता आय की मांग लोचदार, लोचहीन अथवा समान भी हो सकती है। इस प्रकार मनुष्य की कार्य कुशलता, उपभोक्ता की बचत, बचत करने की इच्छा, निवेश प्रवृत्ति, औद्योगिक, विकास, समग्र उत्पादन में वृद्धि, अधिक सामाजिक कल्याण आदि अनंत निर्भर घटक है।

17.8 शब्दावली

समोत्पाद वक्र : - उत्पादन के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जिनसे उत्पादन की एक सामान मात्रा प्राप्त होती है।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर:- सीमान्त प्रतिस्थापन दर से होता है जिस पर कोई व्यक्ति एक वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों का दूसरी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों सें विनिमय करता जिसे पर कोई व्यक्ति एक वस्तु की अतिरेक इकाइयों को दूसरी वस्तु की अतिरेक इकाइयों के साथ बदलने को तैयार हो जाता है।

पैरेटो अनुकूलतम :- वह अवस्था जिसमें किसी दूसरे व्यक्ति को पहले से बुरी स्थिति में लाये बिना किसी भी व्यक्ति की स्थिति को पहले से अच्छी बनाना सम्भव न हो।

विभेदात्मक एकाधिकार :- जब एकाधिकारी अपने एक ही उत्पाद के लिए भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं से अथवा भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न कीमत वसूल करता है तो इसे विभेदात्मक एकाधिकार कहते है।

उपभोक्ता की बचत :- किसी वस्तु को प्राप्त करने हेतु हम जो त्याग करने को.,तैयार है और वास्तव में जो कुछ दे रहे है इन दोनों के अंतर ही उपभोक्ता की बचत कहते है।

प्रत्यक्ष कर: - किसी कर का जब कराघात तथा करापात का संयोग एक व्यक्ति पर ही हो तो वह प्रत्यक्ष कर कहलाता है।

अप्रत्यक्ष कर: - वह कर जिसे सहन कोई करता हो परन्तु उसे राज्य मे जमा कराने का दायित्व किसी और पर हो उसे अप्रत्यक्ष कर कहते है।

17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

C.F. Bastable – Public Finance

Raja Chiliah – Fiscal Policy in Under developed Conutries

R.A. Musgrave – The Theory of Public Finance

R.N. Bhargava – The Working of Union Finance in India

I.S. Gulati – Capital Taxation in Developing Countries.

A.R. Prest – Pudlic Finance

Ursila Hicks – Public Finance

S. Seligman – Students in Public Finance

H. Dalton – Public Finance

E.H. Plank – Public Finance

17.10 अभ्यास हेतु प्रश्नों एवं उत्तर

(i) प्र० करारोपण का उपभोक्ता के अतिरेक पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उ० उपभोक्ता जो मूल्य चुकाने को तैयार है तथा वास्तव में जो मूल्य चुका रहा है, इन दोनों के अंतर को ही उपभोक्ता का अतिरेक कहते है। यदि कर लगाया जाता है अथवा कर की दर में वृद्धि की जाती है तो उपभोक्ता को पहले की अपेक्षा अब अधिक त्याग करना पड़ेगा अत: उपभोक्ता के अतिरेक का परिमाण कम हो जाएगा।

(ii) प्र० प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष कर में क्या अन्तर है?

उ० जिस व्यक्ति आय पर कर लगे उसकी व्यक्ति को ही कर की राशि को जमा कराने का उत्तरदायित्व भी हो तो इस प्रकार का कर प्रत्यक्ष कर कहलाएगा। यदि कर को सहन कोई कर रहा हो परन्तु कर के भुगतान का उत्तरदायित्व किसी अन्य पर हो इस अप्रत्यक्ष कहेंगे। इस प्रकार आय पर लगने वाले कर प्रत्यक्ष तथा व्यय पर लगने वाले कर अप्रत्यक्ष कर होते है।

इकाई - 18

करापात एवं कर विवर्तन

(Incidence and Shifting of Taxs)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.1.1 करापात एवं कराघात

18.1.2 करापात एवं कर विवर्तन

18.1.3 कर विवर्तन एवं कर वंचन

18.2 करापात में सन्तुलन

18.2.1 करापात में आंशिक सन्तुलन

18.2.2 करापात में सामान्य सन्तुलन

18.3 करापात के वैकल्पिक तथ्य

18.3.1 कर नीति में परिवर्तन

18.3.2 व्यय नीति में परिवर्तन

18.3.3 कर एवं व्यय दोनों नीतियों में परिवर्तन अथवा सन्तुलित बजट आपात

18.4 करापात एवं कर विवर्तन के सिद्धान्त

18.4.1 संकेन्द्रण सिद्धान्त

18.4.2 प्रसरण सिद्धान्त

18.4.3 आधुनिक सिद्धान्त

18.5 करापात एवं कर विवर्तन के तत्व

18.5.1 मांग की लोच

18.5.2 पूर्ति की लोच

18.5.3 विभिन्न बाजार-रूप एवं करापात

18.5.4 उत्पत्ति के नियम एवं करापात

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.8 शब्दावली

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप: –

- करापात का अर्थ को समझा सकेंगे,
- करापात के विभिन्न विचार बिन्दुओं को स्पष्ट कर सकेंगे,
- करापात के विभिन्न सिद्धान्तों को समझा सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि वास्तविक कर-भार अर्थ-व्यवस्था में कौन सा वर्ग उठाता है।

18.1 प्रस्तावना

करारोपण से सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव उत्पन्न होते है । इन प्रभावों को समझना जरूरी है क्योंकि किसी कर के न्यायोचित होने का अधिकांश में यही अर्थ है कि उसका भार उचित व्यक्ति पर पड़े, परन्तु करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण करना उस समय तक संभव नहीं है जब तक कि हमें यह मालूम नहीं हो जावे कि कर का भुगतान वास्तव में कौन कर रहा है। क्या कर भार सभी व्यक्तियों पर समान है अथवा भिन्न-भिन्न । इन प्रश्नों के अंतर को जानना ही कर-भार अथवा करापात की समस्या कहलाती है।

कराधान (Taxation) के संदर्भ में कर भार या करापात की समस्या का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है। जब सरकार द्वारा किसी व्यक्ति पर कर लगाया जाता है तो वह उस कर को दूसरों पर विवर्तन करने (Shifting) का हर संभव प्रयास करता है ताकि उस कर का भार उसे स्वयं वहन नहीं करना पड़े । कभी कभी ऐसा करने में वह सफल हो जाता है तो कभी असफल भी रहता है । व्यावहारिक दृष्टि से यह ज्ञात करना आवश्यक है कि कर भार किस व्यक्ति पर पड़ रहा है। विशेषकर वित्तमंत्री के लिए इस बात को जानकारी करना और भी जरूरी हो जाता है कि कर का अन्तिम भार किस व्यक्ति द्वारा वहन किया गया है। जब तक कर भार की ठीक - ठीक जानकारी नहीं हो जाती है तब तक करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण करना संभव नहीं है।

श्रीमती हिक्स के शब्दों में – "त्रुटिपूर्ण ढंग से संगठित और वितरित कर प्रणाली ही रोम साम्राज्य के पतन का कारण थी। इसी प्रकार फ्रांस क्रांति का मुख्य कारण भी दोष पूर्ण कर प्रणाली थी जिसमें निर्धन वर्ग पर धनिकों व पादरियों की अपेक्षा कर-भार अधिक था।" अत : स्पष्ट है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से कर-भार का न्यायपूर्ण वितरण आवश्यक हो पाता जो कि एक कल्याणकारी राज्य की दृष्टि सें आवश्यक है । अत : करापात की समस्या के अंतर्गत निम्न प्रश्नों पर विचार किया जाता है -

अ - कर का भुगतान कौन करता है?

ब - कर का वास्तविक भार कौन वहन कर रहा है?

स - क्या करारोपित व्यक्ति पर ही कर भार पड़ रहा है?

द - क्या कर भार सभी व्यक्तियों पर समान है अथवा असमान?

उपर्युक्त संदर्भ मे डाल्टन (Dalton) ने कहा है – "किसी कर के भार की समस्या का अध्ययन करना, सामान्यतया, इस बात की जानकारी करना है कि उस कर को कौन देता है"।

कर लगाने की क्रिया के फलस्वरूप जो परिणाम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है इनका वर्गीकरण इस प्रकार से हो सकता है : -

अ - कर भार अथवा करापात का प्रभाव मौद्रिक भार अथवा भार वास्तविक भार के रूप में होता है,

ब - मौद्रिक भार का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दिखायी देते है।

कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार का अर्थ उस भार से है जो कर चुकाने के संबंध में करदाता के ऊपर प्रभाव प्रत्यक्ष से पड़ता है। परोक्ष भार करदाता पर सीधे नहीं पड़कर अप्रत्यक्ष रूप में पड़ते है तो उस कर को उपभोक्ता को विवर्तन करने मैं कुछ समय लगेगा अत : विक्रेता उस वस्तु का मूल्य कर की राशि के अतिरिक्त उस पर हस्तान्तरण की ब्याज की अवधि को बढ़ा देता है। व्याज की हानि उपभोक्ता पर अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार होगी। करारोपण के कारण वस्तु की कीमत बढ़ जाने से उपभोक्ता को उस वस्तु पर अधिक व्यय करना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप उसका त्याग, बढ़ जाता है। यह कर का प्रत्यक्ष वास्तविक भार, कहलाता है। जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ जाने से उपभोक्ता को बाध्य होकर उसका उपयोग कम करना पड़ता है तो उसकी उपयोगिता अथवा संतुष्टि में कमी आ जाती है, यह कर का "परोक्ष या अप्रत्यक्ष वास्तविक भार" है। राजस्व के दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष मौद्रिक भार को ही करापात (Incidence of Tax) कहते है। कर भार अथवा करापात से अभिप्राय : प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से है। डाल्टन के शब्दों में – "कर का भार उन लोगों पर होता है जो उसके प्रत्यक्ष मौद्रिक) या द्राव्यिक भार को सहन करते है। "जब सरकार द्वारा कोई कर लगाया जाता है तो जो व्यक्ति उस कर का भुगतान करता है उस पर कर का दबाव अथवा कराधात (Impact) पड़ता है। किंतु जिस व्यक्ति पर अंतिम रूप से कर का भार पड़ता है इसको "करापात" कहा जाता है। इस प्रकार करापात या कर भार सैद्धान्तिक रूप में उस व्यक्ति पर पड़ा माना जाता है जो अन्तिम रूप से उसका मौद्रिक भार सहन करता है। दूसरे शब्दों में करापात कर का अन्तिम भार है तथा कराधात इसका प्रारम्भिक भार है। श्रीमती हिक्स के शब्दों में – "किसी कर का करापात, कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।" इस संदर्भ में फिण्डले शिराज ने कहा है – "करापात कर विवर्तन का अन्तिम परिणाम है और यह कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।"

करापात कर का अन्तिम भार है तथा कराधात कर का प्रारम्भिक भार है। कर के मौद्रिक भार के संदर्भ मे करापात की व्याख्या की जाती है। करापात उन आर्थिक इकाइयों पर होता है जो अन्तिम रूप से कर का मौद्रिक भार सहन करते है। डाल्टन के अनुसार – "करापात कर का प्रत्यक्ष

मौद्रिक भार है" दूसरे शब्दों में कर की वह राशि जो करदाता द्वारा सरकार को अदा की जाती है, कर के अन्य परिणामों को कर के प्रभाव में सम्मिलित करते है जैसे - उत्पादन कर लगाने से वस्तु का उपभोग कम हो जावे अथवा उत्पादन में कमी आ जावे तो ये "कर के प्रभाव" है न कि "करापात"। कर के प्रभाव सें तात्पर्य कर देने के फलस्वरूप उपभोग, बचत, उत्पादन, वितरण भार पड़ने वाले प्रभावों से होता है। श्रीमती हिक्स ने करापात को निम्नलिखित दो भागों में बांटा है : -

अ - औपचारिक कर-भार अथवा उपरिक कर भार (Formal incidence);

ब - प्रभावयुक्त कर-भार (Effective incidence)।

उपरिक कर भार का अर्थ श्रीमती हिक्स ने इस प्रकार बताया है – "हम अर्थ शास्त्र में करदाताओं पर पड़ने वाले करों या करों के भार के दो विचारों से संबंधित है। सर्वप्रथम, सांख्यिकीय गणना की उस विधि से जिसके द्वारा किसी विशिष्ट अवधि में किसी विशिष्ट कर से आय प्राप्त की जाती है। अर्थात वस्तु की उत्पादन लागत और उसका विपणी मूल्य जिस पर निश्चित किया जाता है, के बीच का अंतर नागरिकों के बीच बांटा जाता है अथवा वैकल्पिक रूप में व्यक्तियों का आय का वह अनुपात जो उन लोगों को आय प्रदान नही करता, जो उन्हें वस्तुयें अथवा सेवाऐं प्रदान करता है बल्कि प्रशासक संस्थाओं को सामूहिक उपयोगिताओं या संतुष्टियों की वित्त व्यवस्था के लिए दिया जाता है इस गणना के परिणाम को उपरिक भार (Formal burden) कहते है। परंतु इस प्रकार के भार से करों से होने वाली प्रतिक्रियाओं ओर प्रभावों का पता नहीं चलता। इसलिये प्रभावयुक्त भार (Effective burden) के अध्ययन का आवश्यकता होती है। कर के प्रभाव युक्त भार की परिभाषा के .आर. हिक्स के शब्दों में – "किसी कर के सम्पूर्ण आर्थिक परिणामों का पता लगाने के लिए हमें दो चित्र बनाने एवं उनकी तुलना करनी होगी - एक वह आर्थिक स्थिति) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, आर्यों का वितरण और साधनों का विभाजन) जो विशिष्ट कर के लागू होने से होती है और दूसरी वह आर्थिक स्थिति जो कर के अभाव में पैदा होती है। इन दोनों चित्रों के अंतर को कर का "प्रभाव युक्त – भार" कहना सुविधाजनक है।"

18.1.1 करापात एवं कराघात

करापात से अभिप्राय : कर के भार से है तथा कराघात से अभिप्राय : कर के दबाव से है। करापात अथवा कर-भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जो उस भार को अन्तिम रूप से सहन करता है। इसके विपरीत कराघात या कर का दबाव उस व्यक्ति पर होता है जो उस कर का सरकार को भुगतान करता है अर्थात् जिसे व्यक्ति से कर की राशि वसूल की जाती है। उदाहरणार्थ - मान लीजिए सरकार द्वारा चीनी के उत्पादन पर कर लगाया गया है। इस कर का भुगतान चूंकि चीनी उत्पादकों द्वारा किया जावेगा। इसलिए कराघात अर्थात् कर दबाव चीनी उत्पादकों पर पड़ेगा क्योंकि सर्वप्रथम ये लोग ही इस कर का भुगतान करते है। लेकिन उत्पादक वर्ग यदि चीनी का मूल्य बढ़ाकर उपभोक्ताओं से कर वसूल करने में सफल हो जाता है तो ऐसी स्थिति में करापात अर्थात् कर का भार उत्पादकों पर न पड़कर, उपभोक्ताओं पर पड़ेगा यही माना जावेगा क्योंकि कर का मौद्रिक भार

अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं को ही सहन करना पड़ा है । करापात एवं कराघात में अन्तर निम्नलिखित रूप में दर्शाया गया है -

(अ) कराघात उस व्यक्ति पर होता है जो अन्तिम रूप से उस भार को सहन करता है; जबकि कराधात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो कर की राशि का भुगतान करता है।

(ब) करापात से अभिप्राय: कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से है; जबकि कराघात से अभिप्राय : सरकार को किए गए कर राशि के मौद्रिक भुगतान से है।

(स) करापात या कर का भार उस व्यक्ति पर नही पड़े। अत: इसके लिए वह व्यक्ति कर का विवर्तन (Shifting) करता है; लेकिन जिस व्यक्ति पर कर लगाया जाता है कराघात सदैव उस व्यक्ति पर ही पड़ता है।

(द) करापात कर का अन्तिम भार है। यह कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार के ठहरने का स्थान है।

(य) करापात से बचने के लिए प्रयास करना सदैव वैधानिक है; जबकि कराघात से बचना अर्थात् सरकार को कर राशि का भुगतान नहीं करना कानून की अवहेलना करना है।

18.1.2 करापात एवं कर विवर्तन :

करापात के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि कर की राशि का भुगतान वास्तव में कौन करता है? इसके विपरीत कर विवर्तन वह विधि है जिसके अन्तर्गत कर का भार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर हस्तान्तरित किया जाता है। यदि कर विवर्तन नहीं होगा नो ऐसी स्थिति मैं करापात एवं कराघात दोनों एक ही व्यक्ति पर पड़ते है। सरल रूप मैं कर विवर्तन से आशय करदाता द्वारा कर के भार को दूसरों पर टाल देने (Shifting) से है। इस प्रकार कर विवर्तन वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत कर-भार एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति डाल दिया जाता है।

कर विवर्तन के संबंध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बाते है: -

(अ) कर विवर्तन के दो रूप होते है। प्रथम, कर विवर्तन "मूल्य संरचना" का परिणाम होता है अर्थात् करदाता स्वयं पर पड़ने वाले कर भार को वस्तु का मूल्य बढ़ाकर दूसरों पर टाल देता है। दूसरे शब्दों में कर की मात्रा के बराबर वस्तु का मूल्य बढ़ाकर कर -भार को ग्राहकों पर हस्तान्तरित कर देता है। द्वितीय, यदि वह इस प्रयत्न में सफल नहीं होता है तो करारोपण वस्तु में गुणात्मक कमी कर देता है अथवा वस्तु के गुण एवं मात्रा में कमी कर सकता है।

(ब) कर विवर्तन एक अथवा अनके बिन्दुओं पर होता है। जब कर का भार एक व्यक्ति से दूसरे से तीसरे एवं तीसरे से चौथे यही क्रमिक प्रक्रिया हस्तान्तरित होती रहती है तो इसे 'बहु बिन्दु विवर्तन (Multi Point Shifting) कहा जाता है। उदाहरणार्थ - मिल मालिक उत्पादन कर को वस्तु के मूल्य में सम्मिलित करके थोक विक्रेता इसको फुटकर विक्रेता पर तथा फुटकर विक्रेता इसका उपभोक्ता पर हस्तान्तरित कर देता है तो इसे 'बहु बिन्दु विवर्तन' कहते है।

(स) कर विवर्तन दोनों दिशाओं में हो सकता है अर्थात् कर के भार को आगे अथवा पीछे की ओर ले जाया जा सकता है। इस प्रकार के कर विवर्तन को अग्रगामी विवर्तन (Shifting) तथा प्रतिगामी विवर्तन (Backward Shifting) कहते है।

जब व्यापारी वस्तु पर लगे कर की मात्रा को वस्तु के मूल्य में जोड़कर उसे उपभोक्ता पर टाल देता है तो इसको कर का "अग्रगामी विवर्तन" कहते है। अग्रगामी कर विवर्तन प्राय : कीमत बढ़ाकर ही हो सकता है। परन्तु कभी कमी उत्पादक अथवा व्यापारी वह अनुभव करता है कि वस्तु की कीमत वृद्धि से बिक्री कम अथवा ग्राहकों में असंतोष बढ़ जाने की सम्भावना से वस्तु के मूल्य में कमी कर-भार को उन पर हस्तान्तरित करने का प्रयत्न करता है और यदि वह अपने प्रयत्न में सफल हो जाता है तो इस प्रकार के कर विवर्तन को "प्रतिगामी विवर्तन" कहते है।

18.1.3 कर विवर्तन एवं कर-वंचन :

कर वंचन (Tax- Evasion) से अभिप्राय : करदाता द्वारा कर की चोरी करनें से है जैसे- आयकर से बचने के लिए अपनी वास्तविक आय को सही नहीं बताना, आयात-कर से बचने के लिए चोरी छिपे रूप मे वस्तुएं मंगाना आदि। कर-वंचन कर विवर्तन से पूर्णतया भिन्न है। इन दोनों में अन्तर निम्नलिखित रूप में दर्शाया गया है: -

(अ) कर विवर्तन से सरकार के राजस्व को हानि नहीं होती है, क्योंकि कर राशि मात्रा किसी न किसी व्यक्ति :द्वारा चुका दी जाती है; जब कि कर वंचन से सरकार के राजस्व को हानि होती है।

(ब) कर विवर्तन के अन्तर्गत कर-भार किसी न किसी को वहन करना पड़ता है ; जब कि कर-वंचन में तो कर की राशि से व्यक्ति बिल्कुल बच जाता है अर्थात् कर-वंचन वाले व्यक्ति कर की देय राशि से बिल्कुल बच जाते है अर्थात् कर चोरी का पर्यायवाची रूप कर-वंचन ही है।

(स) कर विवर्तन कर के भार को टालने की एक वैधानिक क्रिया है; जबकि कर-वंचन एक गैर कानूनी क्रिया एवं भ्रष्टाचार का एक रूप है।

(द) सरकार द्वारा लगाए गए कर का समय पर भुगतान नहीं करना एक प्रकार से कानून की अवहेलना 'करना जिसके लिए आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है; जबकि कर-वंचन एक कानूनी अपराध है। इस प्रकार का व्यक्ति कर-वंचन करते समय पकड़ा जाता है तो उसको सजा भुगतनी पड़ती है।

18.2 करापात में सन्तुलन :

करापात का विश्लेषण करने में उपयोग की जाने वाली तकनीक का भी विशेष महत्व होता है। यह तकनीक निम्नलिखित प्रकार की होती है : -

(अ) आंशिक सन्तुलन;

(ब) सामान्य सन्तुलन।

उपर्युक्त तकनीक में से किसको अपनाया जावे यह इस बात पर निर्भर करता है कि गैर कर क्षेत्र. तथा इससे संबंधित क्षेत्रों का कर-युक्त क्षेत्र पर कितना प्रभाव पड़ सकेगा?

18.2.1 करापात मे आंशिक सन्तुलन:

आंशिक सन्तुलन विश्लेषण (Partial Equilibrium Analysis) में केवल कर क्षेत्र को ही सम्मिलित किया जाता हैं इसमें गैर-कर क्षेत्र तथा अन्य कर-युक्त क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। यह एक आसान तकनीक है तथा इसमें कम सूचना की आवश्यकता होती है। इस विश्लेषण को. रेखाचित्र 18. 1AB की सहायता से समझाया गया है।

आंशिक सन्तुलन में कर विवर्तन

आंशिक सन्तुलन में कर विवर्तन

चित्र 18.1 (A) चित्र 18.1 (B)

रेखाचित्र 18. 1A में X वस्तु का मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS हैं। कर लगने से पहले पूर्ति वक्र का रूप SS है तथा कर लगाने के बाद पूर्ति वक्र S'S' है जो पूर्ति वक्र SS के समानान्तर है। इन दोनों पूर्ति वक्रों के बीच की लम्बवत् दूरी QQ' प्रति वस्तु कर राशि है। कर लगने के बाद प्रति वस्तु की कीमत OP से बढ़कर OP' हो जाती है। करारोपण से पहले वस्तु की कीमत OP से बढ़कर OP' हो जाती है। करारोपण से पहले वस्तु की कीमत OP तथा वस्तु की मात्रा OX है। करारोपण के बाद वस्तु की कीमत OP से बढ़कर OP' तथा वस्तु की मात्रा OX से OX' हो गयी इससे यह स्पष्ट होता है कि वस्तु की मांग अधिक लोचदार है तो करारोपण के बाद भी वस्तु की कीमत में विशेष वृद्धि नहीं होती है। इस प्रकार की परिस्थिति के कारण कर-विवर्तन भी बहुत ही कम होगा।

रेखाचित्र 18.1 B में वस्तु का मांगवक्र DD है। यहां DD मांगवक्र कम लोचदार है। रेखाचित्र 18.1B में SS पूर्ति वक्र करारोपण के बाद पूति क्र S' S' है। दोनों पूर्ति वक्रों के बीच की दूरी प्रति वस्तु कर की मात्रा को प्रदर्शित करती है। करारोपण के बाद पूर्ति वक्र S' S' है। दोनों पूर्ति वक्रों के बीच की दूरी प्रति वस्तु कर की मात्रा को प्रदर्शित करती है। करारोपण से पहले वस्तु की कीमत OP है तथा वस्तु की मात्रा OX है। करारोपण के बाद वस्तु की कीमत OP से बढकर OP हो गयी तथा वस्तु वस्तु की मात्रा OX से घटकर OX' हो गयी। ऐसी स्थिति मै जब मांग कम लोचदार है तो Q'S कर उपभोक्ता द्वारा अदा कर दिया जाता है। शेष राशि विक्रेता स्वयं वहन करता है।

वस्तु की पूर्ति लोचदार अथवा कम लोचदार हो सकती है। यदि पूर्ति लोचदार है तो अन्य बातें यथा स्थिर रहें तो कर का भार क्रेता पर होगा। दूसरी ओर यदि कर ऐसी वस्तु पर लगाया जाता है जिसकी पूर्ति स्थिर अथवा बेलोचदार है तो करापात अथवा कर-भार विक्रेता पर पूरा पड़ेगा। यदि अन्य बातें समान रहें तो करारोपित वस्तु की पूर्ति जितनी अधिक लोचदार होगी उतना ही अधिक कर-भार क्रेता पर पड़ेगा।

मान्यताओं पर आधारित है :

18.2.2 करापात में सामान्य सन्तुलन:

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis) में सभी क्षेत्रों अर्थात् कर एवं गैर-कर क्षेत्रों को भी सम्मिलित किया जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह विश्लेषण इस क्षेत्र में प्रारम्भिक विश्लेषण माना जाता है। इस विश्लेषण को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के द्विक्षेत्रीय - द्विसाधन (Two-Sector-Two factor) प्रारुप के विश्लेषण मे उपयोग किया जाता है। इस सिद्धान्त में सामान्य सन्तुलन विश्लेषण बीजगणितीय एवं रेखागणितीय पद्धतियों पर आधारित है जो जटिलता का रूप में है। परन्तु इस विश्लेषण की मूल भूल बात यह है कि इसको बिना किसी गणितीय एवं तकनीकी पद्धतियों की सहायता से समझाया जा सकता है। इसका प्रयोग निगम-आयकर का द्धि-पक्षीय द्वि-साधन सन्तुलन रूप में किया जाता है।

मान लीजिए किसी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र है। प्रथम, निगम क्षेत्र (Corporate sector) है तो द्वितीय गैर-निगम क्षेत्र (Non- Corporate Sector) है। प्रथम क्षेत्र (यानी निगम क्षेत्र) X वस्तुओं तथा द्वितीय क्षेत्र (यानी गैर-निगम क्षेत्र)Y वस्तुओं का उत्पादन करता है। ये दोनों क्षेत्र निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है : -

(अ) श्रम तथा पूंजी का पूर्ण प्रतियोगिता के रूप में प्रयोग होता है।

(ब) दोनों क्षेत्रों का उत्पादन अधिकतम कुशलता एवं क्षमता के प्रयोग के रूप में किया जाता है।

(स) दोनों क्षेत्रों में उपयोग किये जाने वाले साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर प्रत्याय मिलता है।

जब X वस्तु के उत्पादन करने वाले क्षेत्र में पूंजी पर कर लगाया जाता है तो इस क्षेत्र में न्यूनतम पूंजी पर 'प्रत्याय' की दर कम हो जावेगी। चूंकि दोनों ही क्षेत्रों में न्यूनतम पूंजी पर 'प्रत्याय की दर' सन्तुलन की दृष्टि में समान होने तथा दोनों ही क्षेत्रों में साधनों की पूर्ण गतिशीलता संभव होने से पूंजी गैर-निगम क्षेत्र में विनियोजित हो जावेगी। इससे गैर-निगम क्षेत्र में 'प्रत्याय की दर ' कम हो जावेगी तथा इससे प्रभावित होकर निगम-क्षेत्र मे भी प्रत्याय की दर कम हो जावेगी। यह प्रक्रिया जब तक घटित होती रहेगी तब तक दोनों ही क्षेत्रों में प्रत्याय दर समन नहीं हों जावे। परन्तु यह प्रत्याय - दर कर से पहले प्रत्याय-दर से सदैव कम ही निर्धारित होगी। इसी प्रकार जब श्रम तथा पूंजी की तुलनात्मक कीमतों में परिवर्तन होने लगता है तब इन दोनों साधनों के दोनों क्षेत्रों में उपयोग में भी

अन्तर आ जाता है। इस परिवर्तन की मात्रा उत्पादन फलन एवं विशेष रूप में प्रतिस्थापन लोच पर निर्भर होती है। इसका प्रभाव दोनों क्षेत्रों में किये जाने वाले कुल उत्पादन पर भी पड़ता है। इस प्रकार जब विद्यमान संतुलन निगम-आय कर में परिवर्तन होने से बिगड़ जाता है तब उपर्युक्त सभी उत्पादन साधनों का दोनों क्षेत्रों में समायोजन होने लगता है। यह प्रक्रिया जब तक चलती रहती है कि नया संतुलन प्राप्त नहीं हो जावे। पूंजी तथा श्रम की तुलनात्मक प्रत्याय दर ही नया सन्तुलन में करापात के स्वरूप को दर्शाती है।

सामान्य सन्तुलन विश्लेषण को निर्धारित करने में करों की समान तरें निम्न प्रकार के संबध दर्शाती है :-

कर निर्धारण

श्रम (X क्षेत्र) + श्रम (Y क्षेत्र) = श्रम (सामान्य)
+ +
पूंजी (X क्षेत्र) + पूंजी (Y क्षेत्र) = पूंजी (सामान्य)
= =
X वस्तु का उत्पादन Y वस्तु का उत्पादन

किसी अर्थव्यवस्था में निगम-आयकर को द्वि-क्षेत्रीय द्वि-साधन प्रारूप में समायोजित होने की प्रक्रिया के विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट होता है कि दोनों क्षेत्रों में उत्पादकता परिवर्तन से 'नया सन्तुलन ' स्थापित हो जाता है। इससे अर्थव्यवस्था में कर लगने से कर नहीं लगने की अपेक्षा कुल उत्पादन कम हो जाता है। इस उत्पादन की हानि को 'साधनों को निष्क्रियता ' कहा जाता है। साधनों की निष्क्रियता इसलिए घटित होती है कि साधनों के कुशलतम आयोग के कारण उनकी सीमान्त उत्पादकता तथा प्रत्याय-दर में परिवर्तन हो जाता है जिसके फलस्वरूप प्रतियोगी संतुलन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार साधन की निष्क्रियता से उत्पन्न हानि किसी पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में कर-स्थापना के परिणामस्वरूप होने वाली घटना है। हांलाकि जब गैर-प्रतियोगी बाजार की स्थिति में कर लगाया जावे तो साधनों की निष्क्रियता से अर्थव्यवस्था में ऐसी हानि नहीं होगी बल्कि इससे लाभ ही होगा।

18.3 करापात के वैकल्पिक तथ्य :

करापात के वैकल्पिक तथ्यों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। करनीति, सार्वजनिक व्यय नीति एवं इन दोनों नीतियों का करापात पर क्या प्रभाव पड़ेगा? राजस्व की नीति निर्धारण के लिए इसका ज्ञान होना आवश्यक है। इनका विस्तृत विवरण 18.3.1,18.3.2 एवं 18.3.3 शीर्षकों में किया गया है।

18.3.1 कर नीति में परिवर्तन :

यदि सार्वजनिक व्यय को (वास्तविक रूप) यथास्थिर रखें और करनीति में परिवर्तन करते है तो इसके परिणामस्वरूप आय के वितरण पर प्रभाव पड़ता है। इसको विशिष्ट करापात (Specific Tax Incidence) कहते है। मान लीजिए आय-कर की दर कम कर दी जाती है तो इसके परिणामस्वरूप आयकर-प्राप्तियाँ कम हे जावेगी अर्थात् यह मौद्रिक तथा वास्तविक दोनों रूप में कम हो जावेगी। निजी व्यय बढ़ेगा, कीमत स्तर भी बढ़ेगा। चूंकि परम्परावादी व्याख्या है, इसलिए व्यय

बढ़ने के साथ साथ उत्पादन नहीं बढ़ेगा। सार्वजनिक व्यय वास्तविक रूप में समान मात्रा में बनाए रखने के साथ साथ उत्पादन नहीं बढ़ेगा। सार्वजनिक व्यय वास्तविक रूप में समान मात्रा में बनाए रखने के लिए कीमत स्तर में वृद्धि के साथ साथ, सार्वजनिक व्यय मौद्रिक रूप मे बढ़ेगा जिसके परिणामस्वरूप निजी आय बढ़ेगी, आय-बढने से आयकर प्राप्तियां बढ़ेगी। परन्तु यह इतनी नहीं बढ़ेगी कि बढ़ती हुई कीमतों की क्षतिपूर्ति कर सके। जिससे सार्वजनिक व्यय स्थिर रखने के लिए बजट मे घाटे की स्थिति उत्पन्न हो जावेगी। इसके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति (Inflation) को जन्म मिलेगा। बजट में निरन्तर घाटे की स्थिति बनी रहेगी। इस प्रकार विशिष्ट करापात में वितरण संबंधी प्रभाव ने केवल कर परिवर्तन से होगें बल्कि मुद्रास्फीति के भी आय वितरण पर प्रभाव पड़ेगा। यदि कर दर में वृद्धि की जाती है तो अन्तत : मुद्रा संकुचन (Deflation) की स्थिति उत्पन्न होंगी। वितरण पर कर परिवर्तन एवं मंदी के संयुक्त प्रभाव (Joint effect) होगें। इस प्रकार विशिष्ट करापात मे कर-भार या करापात का स्पष्ट रूप से अध्ययन नहीं हो पाता है। यही इसमें प्रमुख दोष है।

इस प्रकार की कठिनाइयां दूर हों जावे पर संतुलित बजट रखकर एक कर के स्थान पर दूसरे कर को इस प्रकार प्रतिस्थापित करते हैं कि कुल कर--प्राप्तियां समान रहती है। जब एक कर की दर में कमी कर देते है तो दूसरे कर की दर में इस प्रकार वृद्धि कर देते है कि सरकार की कुल कर-प्राप्तियां समान रहे। एक से अधिक कर में परिवर्तन से जो आय वितरण पर प्रभाव पड़ते है। इसकी विभेदक करापात (Differential tax incidence) कहते है। परम्परावादी व्यवस्था में जब कुल कर-प्राप्तियां समान रहेगी एवं समस्त प्राप्तियां खर्च कर दी जावेगी तो निजी मांग का स्तर समान रहेगा। अत: न तो स्फीतिजनक परिस्थितियां ही उत्पन्न होगी और न आय स्फीतिजनक परिस्थितियां ही उत्पन्न होगी और न स्फीतिजनक परिस्थितियां उत्पन्न होगी और न आय स्फीतिजनक परिस्थितियां ही उत्पन्न होगी। इस प्रकार 'विभेदक करापात' में कर-भार का स्पष्ट रूप से अध्ययन कर सकते हैं।

18.3.2 व्यय नीति में परिवर्तन :

यदि करों को यथास्थिर रखें और सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन करते है तो इसके परिणामस्वरूप आय के वितरण पर प्रभाव पड़ता है। इसके 'विशिष्ट व्यय आपात' (Specific expenditure incidence) कहते है। यदि कर फलन स्थिर रहें तो इस प्रकार की व्यय नीति स्फीतिकारक परिस्थितियां उत्पन्न करती है। इस प्रकार विशिष्ट व्यय-आपात में वितरण संबंधी प्रभाव मुद्रा स्फीति एवं व्यय नीति परिवर्तन दोनों के संयुक्त प्रभाव होते है। इसी प्रकार व्यय में कमी करने पर मुद्रा अपस्फीति उत्पन्न होती है और इसके भी वितरण पर प्रभाव होते है। इस प्रकार विशिष्ट व्यय आपात में कर-भार (या करापात) का स्पष्ट रूप से अध्ययन नहीं कर सकते हैं। यही इसमें प्रमुख दोष है।

यदि सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन संतुलित बजट रखकर अर्थात् एक क्षेत्र मे सार्वजनिक व्यय कम करें तो दूसरे क्षेत्र में वृद्धि करें और कुल सार्वजनिक व्यय यथा स्थिर रहें तो ऐसा करने से आय के वितरण पर प्रभाव पड़ते है। इसके विभेदक व्यय आपात' (Differential expenditure incidence) कहते है। ऐसी परिस्थिति में मुद्रा प्रसार एवं मुद्रा संकुचन के वितरण प्रभाव से पृथक

व्यय आपात का अध्ययन कर सकते है। परंतु व्यवहार में व्यय आपात की तुलना में करापात अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसलिए करापात का विस्तृत रूप में अध्ययन किया जाता है।

18.3.3 कर एवं व्यय दोनों नीतियों मे परिवर्तन अथवा संतुलित बजट आपात :

बजट मे इस प्रकार से परिवर्तन किया जाता है कि जितनी वास्तविक सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की जाती है उतनी ही कर-प्राप्तियों में वृद्धि अथवा जितनी वास्तविक सार्वजनिक व्यय में कमी की जाती है उतनी ही कर-प्राप्तियों में कमी कर दी जाती है। इस प्रकार कर एवं सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन के बाद बजट संतुलित रहता है। ऐसा करने से जो वितरण संबंधी प्रभाव होते है इसको 'संतुलित बजट आपात' (Balanced budget incidence) ऐसी स्थिति में न तो मुद्रास्फीति उत्पन्न होगी और न मुद्रा संकुचन उत्पन्न होगी। लेकिन इस स्थिति में दोष यह है कि इसमें कर व्यवस्था एवं व्यय व्यवस्था दोनों में परिवर्तन होते है। इसलिए यह ज्ञात करना कठिन होता है कि कर नीति में परिवर्तन अथवा व्यय नीति में परिवर्तन का वितरण पर कितना प्रभाव हुआ है? इन सब समस्याओं को देखते हुए 'विभेदक करापात ' (Differential tax incidence) अधिक लोकप्रिय विषय बन गया है।

उपर्युक्त विवेचन में बजट नीति में परिवर्तन से आय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों की सम्भावना परम्परावादी व्यवस्था की मान्यता के आधार पर की गयी है। अब इस तथ्य की व्याख्या 'क्षतिपूरक व्यवस्था ' (Compensatory system) के अन्तर्गत करते है। सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन से उत्पादन रोजगार एवं कीमत स्तर सभी प्रभावित होते है। परम्परावादी व्यवस्था में कर अथवा सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन से मुद्रा-प्रसार अथवा मुद्रा संकुचन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। क्षतिपूरक अर्थव्यवस्था में कर अथवा सार्वजनिक व्यय में परिवर्तन से न केवल कीमत स्तर प्रभावित होता है अपितु रोजगार स्तर भी प्रभावित होगा। इस प्रकार उत्पादन प्रभावित होगा। अनैच्छिक बेरोजगारी स्तर प्रभावित होगा और इनका भी आय के वितरण पर प्रभाव होगा। कर दर में कमी से निजी व्यय के लिए अधिक साधन प्राप्त होगें जिससे उत्पादन बढ़ेगा तथा कर दर में वृद्धि से विपरीत प्रभाव होगें। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय मे वृद्धि से निजी क्षेत्र में आय बढेगी। उत्पादन एवं रोजगार स्तर में सुधार होगा। इन सबका आय के वितरण पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार आय के वितरण पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार इसमें स्पष्ट रूप से विशिष्ट करापात एवं विशिष्ट व्यय आपात का अध्ययन नहीं कर सकते है।

विभेदक आपात (Differential incidence) में X कर के स्थान पर Y कर इस प्रकार से प्रतिस्थापित किया जाता है कि वास्तविक अर्थ में कुल कर-आय समान रहती है। सार्वजनिक व्यय स्थिर रहता है और बजट भी सन्तुलित रहता है। क्षतिपूरक अर्थव्यवस्था में ऐसा करने के पश्चात् भी मांग का स्तर प्रभावित होगा। इस प्रकार रोजगार एंव कीमत स्तर भी प्रभावित होगा। अत: यहां भी इसमें विशिष्ट करापात का दोष उत्पन्न हो जाता है। क्षतिपूरक अर्थव्यवस्था में यदि करापात का अध्ययन करना है तो करों को इस प्रकार से प्रतिस्थापित किया जावेगा जिससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता (Stabilization) रहे। चाहे कुल कर-आय में मौद्रिक, अथवा वास्तविक रूप में परिवर्तन हो जावे।

18.4 करापात एवं कर विवर्तन के सिद्धान्त :

वास्तव में कर का भुगतान कौन करता है अथवा अन्तिम रूप से कर-भार (या करापात) किस व्यक्ति पर पड़ता है? करापात के संबंध में अनेक सिद्धान्त है जिनमें निम्नलिखित सिद्धान्त महत्वपूर्ण है -

(अ) संकेन्द्रण सिद्धान्त (Concentration Theory);

(ब) प्रसरण सिद्धान्त (Diffusion Theory);

(स) आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory);

उपर्युक्त सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई के शीर्षक 18.4.1,18.4.2, एवं 18.4.3 में की गयी है।

18.4.1 संकेन्द्रण सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त को कर का एकांगीकरण सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrats) का मत है कि कर वे ही व्यक्ति अदा कर सकते हैं जिनको अतिरेक अथवा आधिक्य (Surplus) प्राप्त होता है। प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल कृषि हीं ऐसा उत्पादक उद्योग है जिसमें अतिरेक प्राप्त होता है। अत : कर केवल कृषि पर ही लगाना चाहिए। यदि अन्य क्षेत्रों पर कर लगाए जाते है तो करदाता कर नहीं दे सकते है और ऐसे करदाता कर विवर्तित करते रहेगें। जिसका भार अन्तत : कृषि पर ही पड़ेगा। अत : सर्वोत्तम विधि यही है कि कर प्रथम स्तर पर ही कृषकों अथवा भू स्वामियों पर ही लगाया जावे।

इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल कृषि ही एक मात्र उत्पादक व्यवसाय है। अन्य सभी उद्योग एवं व्यवसाय अनुत्पादक है यदि अन्य सभी वस्तुओं पर कर लगाया जावेगा तो इसका भार उस समय तक विवर्तित होता रहेगा जब तक कि वह अन्त में भूमि अथवा कृषक पर नहीं पड़े। अत : इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल भूमि की शुद्ध आय पर ही कर लगाना चाहिए।

-परम्परावादी अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने भी इस सिद्धान्त में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इनका मत है कि अर्थव्यवस्था में दो प्रकार के अतिरेक (Surplus) होते है। प्रथम अतिरेक लगान तथा द्वितीय अतिरेक लाभ है। इनका मत है कि सब प्रकार के कर इन दो प्रकार के अतिरेक में से दिया जावे।

इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष है: -

(अ) यह सिद्धान्त उचित नही है क्योंकि भूमि करारोपण का एक मात्र साधन नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता है तो अधिक आय वाले व्यक्ति करारोपण से बच जावेंगे।

(ब) यह सिद्धान्त दोष पूर्ण है क्योंकि धन का उत्पादन भूमि के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में भी होता है।

(स) यदि कर केवल भूमि पर लगाया जाता है तो इससे अन्य लोग करारोपण से बच जावेंगे जो कि न्यायपूर्ण नहीं होगा।

(द) इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि यह केवल भूमि ही उत्पादक व्यवसाय है जो कि दोषपूर्ण है। भूमि के अलावा अन्य साधन या क्षेत्र भी उत्पादक व्यवसाय है।

इस सिद्धान्त में उपर्युक्त दोष होने के बावजूद भी महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ सिद्धान्त माना जाता है क्योंकि कर का भुगतान (Surplus) से किया जाता है। यह एक औचित्य पूर्ण विचार है जिससे प्रत्येक अर्थशास्त्री सहमत है।

18.4.2 प्रसरण सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम फ्रांन्सिसी अर्थशास्त्री कैनार्ड (Canard) द्वारा किया गया था। इन्होंने प्रकृतिवादियों के सिद्धान्त (अर्थात् संकेन्द्रण सिद्धान्त) की आलोचना की। कैनार्डर्थ के शब्दों में "अतिरेक केवल भूमि से उत्पन्न नहीं होता बल्कि श्रम, पूंजी, वाणिज्य, व्यवसाय, व्यवसाय से भी कर योग्य अतिरेक हो सकता है।"

कैनार्ड ने कर के प्रसरण की तुलना कपिंग (Cupping) के चीर फाड़ (Operations) से की है। कैनाडर्थ के शब्दों में – "यदि मनुष्य के शरीर मैं से किसी नस में से रक्त (Blood) निकाल लिया जावे तो रक्त की कमी केवल उसी नाड़ी मे न होकर सारे शरीर में हो जाती है।" दूसरे शब्दों में, यदि कोई कर समाज के किसी एक व्यक्ति पर लगाया जाता है तो उसका भार समाज के सभी लोगों पर पड़ता है। लार्ड मेन्सफील्ड के शब्दों में "किसी स्थान अथवा व्यक्ति पर लगाया गया कर उस कंकड (Pebble) के समान है जो तालाब में गिरते हुए एक गोला बनता है जिसमें एक गोला उत्पन्न होकर दूसरे गोले को धक्का देता है और इस प्रकार सम्पूर्ण परिधि में हलचल उत्पन्न हो जाती है।"

सर राबर्टस् गिफिन, बेस्टबल, फिण्डले शिराज जैसे अर्थशास्त्रियों का मत है कि समाज के साथ-साथ प्रत्येक कर का भार सम्पूर्ण समाज पर फैलने की प्रवृत्ति रखता है। इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष है :-

(अ) यह सत्य है कि कुछ सीमा तक कर का प्रसार होता है परन्तु कर का प्रसार प्रक्रिया को स्वाभाविक तथा अनिवार्य मान लेना उचित नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष कर जैसे - उचित नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष कर जैसे - आय कर, सम्पत्ति कर, उत्तराधिकार कर में विवर्तन प्राय : होता ही नहीं है।

(ब) यह सिद्धान्त अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित है जैसे - बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता एवं मुक्त व्यापार की स्थिति पायी जाती है। ये स्थितियां काल्पनिक है। वास्तव में बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता एवं में बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता एवं संरक्षण की स्थिति पायी जाती है जो कर-विवर्तन की क्रिया मे सदैव बाधाएं उत्पन्न करती रहती है।

(स) इस सिद्धान्त की यह बात भी औचित्यपूर्ण नहीं है कि कर-भार का वितरण समाज के सभी व्यक्तियों पर समान रूप से होता है। बल्कि कर का विवर्तन तो करदाताओं की क्षमता (या योग्यता) के अनुसार होता है। इस प्रकार यह मान्यता भी दोषपूर्ण है।

18.4.3 आधुनिक सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त को मांग एवं पूर्ति के सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। यह सिद्धान्त इस बात पर अधिक जोर देता है कि कर का विवर्तन (Shifting of Tax) विनिमय द्वारा होता है करापात के पुराने सिद्धान्तों की तरह ही इस सिद्धान्त की मान्यता है कि कर का भुगतान केवल अतिरेक या आधिक्य में से ही किया जा सकता है और जब किसी व्यक्ति को कोई अतिरेक नही मिलता है तो वह कर-भार को सदैव विवर्तित करने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में यदि अतिरेक नहीं है तो कर का विवर्तन उस समय तक होता रहेगा जब तक कि परिस्थितियां ही ऐसी उत्पन्न नहीं हो जावे कि उसको अतिरेक या आधिक्य प्राप्त होने लगे। यदि कर वस्तु के विक्रय पर लगाया जाता है और वस्तु के क्रेता एवं विक्रेता दोनों को अतिरेक (यानी बचत) प्राप्त हो रही है तो ऐसी स्थिति में कर-भार (यानी करापात) दोनों के बीच बंट जाता है।

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार "कर उत्पादन लागत का एक अंग है।" जिस प्रकार भ्रम तथा पूंजी की सेवाओं के लिए उनको क्रमश : मजदूरी एवं ब्याज दिया जाता है ठीक उसी प्रकार सरकार द्वारा की जाने वाली सेवाओं के निष्पादन के लिए जनता को कर का भुगतान करना पड़ता है। अत : वस्तु का मूल्य इतना होना चाहिए जिससे कर की राशि का भुगतान किया जा सके। यदि वस्तु का वर्तमान मूल्य पहले से ही इतना है कि उससे कर का भुगतान किया जा सकता है (अर्थात् मूल्य से अतिरेक मिल रहा है) तो विक्रेता बिना मूल्य बढ़ाएं कर का भार स्वयं वहन कर लेगा। इसके विपरीत यदि कर का भुगतान वर्तमान मूल्य में से ही नहीं हो सकता है तो ऐसी दशा में मूल्य का बढ़ना उस समय तक चालू रहेगा जब तक कि कर का भुगतान पूरा पूरा नहीं हो जावे। यदि मूल्य में वृद्धि थोड़ी सी होती है तो कर का कुछ अंश क्रेता सहन करेगा और शेष अंश विक्रेता सहन करेगा। यह विदित है कि करारोपण से प्राय: वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते है। यदि यह मूल्य वृद्धि कर की मात्रा के बराबर होती है तो इसका अर्थ यह है कि विक्रेता कर-भार को पूरी तरह से उपभोक्ताओं पर विवर्तन करने में सफल हो गया है किन्तु यदि मूल्य में वृद्धि कर राशि से कम होती है तो कर का कुछ भाग विक्रेता स्वयं सहन कर लेता है और कुछ भाग उपभोक्ताओं पर विवर्तन कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कर-विवर्तन कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कर- विवर्तन उसी समय हो सकता है जबकि विनिमय कार्य होते है। कर-भार (यानी करापात).. क्रेता और विक्रेता पर कितना पड़ेगा, यह कई बातों जैसे - मांग लोच, पूर्ति लोच, उत्पत्ति के नियम एवं बाजार के विभिन्न रूपों पर निर्भर करता है।

कर-विवर्तन की समस्या मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है :

(अ) वस्तुओं का क्रय विक्रय (यानी विनिमय) की सम्भावनाओं पर; तथा

(ब) मूल्य में किए जाने वाले परिवर्तन पर।

किसी वस्तु पर कर लगाए जाने से उसके मूल्य मे कितनी वृद्धि होगी, यह कई तत्वों जैसे- मांग लोच, पूर्ति लोच, बाजार रूप तथा उत्पत्ति के नियमों पर निर्भर होती है इस प्रकार कर-भार अथवा करापात का आधुनिक सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों की अपेक्षा करापात का अधिक वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करता है प्रसरण सिद्धान्त की तरह यह सिद्धान्त भी कर-भार के विवर्तन की क्रिया

को आसानी से स्वीकार ही नही करता है बल्कि कर-विवर्तन के महत्वपूर्ण निर्धारक तत्वों की सफल व्याख्या भी करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि करापात का आधुनिक सिद्धान्त कर का विवर्तन एक अनिवार्य तथा समान्य रूप मे होने वाली प्रक्रिया नहीं है बल्कि मूल्य-संरचना, वस्तु-विनिमय, वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच, कर की प्रकृति, उत्पति की दशाएं, स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता, कर की मात्रा आदि तत्वों द्वारा प्रभावित होने वाली एक प्रक्रिया (Process) है।

18.5 करापात एवं कर विवर्तन के तत्व

कर भार क्रेता एवं विक्रेता पर कितना पड़ता है यह निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है:-

(अ) वस्तु की मांग लोच,

(ब) वस्तु की लोच,

(स) विभिन्न बाजार रूप,

(द) उत्पत्ति के नियम।

उपर्युक्त तत्वों की विस्तृत व्याख्या इस इकाई के शीर्षक 18.5.1,18.5.2,18.5.3 एवं 18.5.1 में की गयी है।

18.5.1 मांग की लोच :

यदि अन्य बातें समान रहे तो करारोपित वस्तु की मांग जितनी अधिक लोचदार होंगी उतना ही अधिक करापात विक्रेताओं पर होगा। यदि मांग पूर्णतया लोचदार हो तो करापात की स्थिति की वर्णन इस प्रकार है :-

रेखाचित्र 18.2

रेखाचित्र 18.2 मे मांग वक्र DD तथा कर लगने से पहिले पूर्ति वक्र SS है। साम्य कीमत MP है। कर लगने के बाद पूर्ति वक्र S'S' हो जाता है। P'P' (दोनों पूर्ति वक्रों का अन्त,प्रति इकाई दर है। चूंकि मांग पूर्णतया लोचदार है। अत : विक्रेता कीमत बढ़ने में असमर्थ है। वह जानता है कि यदि कीमत में वृद्धि की गई तो मांग शून्य अथवा बहुत कम रह जावेगी और बडी मात्रा में हानि होगी

। इसके परिणाम स्वरूप कर लगने के बाद पूर्ववत कीमत रहती है। सम्पूर्ण कर भार विक्रेता वर्ग सहन है और कर विवर्तन नहीं हो पाता है।

यदि मांग पूर्णतया बेलोचदार हो तो करापात की स्थिति का वर्णन इस प्रकार है : -

जब कीमत में परिवर्तन होते है तो ऐसी स्थिति में मांग यथावत् रहती है।

रेखाचित्र 18.3

रेखाचित्र 18.3 में मांग वक्र DD है जो लम्बवत है। कर लगने सें पहिले पूर्ति वक्र SS है। कर लगने के पश्चात पूर्ति वक्र S'S' हो जाता है। कीमत मे, कर की मात्रा के समान ही वृद्धि हों जाती है। कर से पूर्व कीमत MP तथा कर लगने के बाद कीमत MP' है। संपूर्ण का भार क्रेता वर्ग सहन करते है और इस प्रकार विक्रेता वर्ग क्रेताओं पर संपूर्ण कर भार विवर्तन कर देतें हैं।

यदि भिन्न भिन्न मांग की लोच हो तो करापात की स्थिति का वर्णन इस प्रकार है : -

उपर्युक्त वर्णित दो स्थितियों के बीच मांग लोचदार या कम लोचदार या अधिक लोचदार हों सकती है। मांग की लोच जितनी अधिक होंगी, उतना ही अधिक कर भार विक्रेताओं को सहन करना पड़ेगा और मल की लोच जितनी कम होगी उतना ही अधिक कर भार क्रेता वर्ग सहने करेगें।

इसको रेखा चित्र 18.4 में तीन मांग वक्र है : -

सबसे कम लोचदार मांग वक्र D_1 मध्यम लोचदार मांग वक्र D_2 तथा सबसे अधिक लोचदार मांग वक्र D_3 है। कर लगने से पहिले पूति वक्र SS है और कर लगने के बाद पूर्ति वक्र S_1 S_1 हो जाता है। इन दोनों वक्रों (यानी SS तथा S_1 S_1 के मध्य की दूरी प्रति इकाई कर मात्रा है। मांग वक्र D_1पर उपभोक्ता Q_1R_1कर भार सहन करता है। मांग वक्र D_2 पर उपभोक्ता Q_2Q_2 कर भार एवं मांग वक्र D_3 पर उपभोक्ता कर भार $Q_1R_1>Q_2R_2>Q_3R_3$ है I सबसे कम लोचदार मांग वक्र D_1 है। जिसके परिणाम स्वरूप क्रेता को सबसे अधिक कर भार सहन करना पड़ता है। सबसे अधिक लोचदार मांग वक्र D_3 है जिसके परिणाम स्वरूप क्रेता को सबसे कम कर भार वहन करना पड़ता है। इस प्रकार दी हुई परिस्थितियां में मांग जितनी अधिक लोचदार होगी उतना ही कर विवर्तन क्रेताओं पर कम होगा। और अधिक कर भार विक्रेता को सहन करना पड़ेगा।

18.5.2 पूर्ति की लोच :

यदि अन्य बातें यथा स्थिर रहें तो करारोपित वस्तु की पूर्ति जितनी अधिक लोचदार होगी कर का उतना ही अधिक भार क्रेता पर होगा। विक्रेता कितनी मात्र में कर विवर्तन कर सकता है यह तथ्य इस बाद पर निर्भर करेगा कि वह पूर्ति की मात्रा को कितना कम कर सकता है।

यदि पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो तो करापात की स्थिति का वर्णन इस प्रकार है : -

रेखाचित्र 18.5

रेखाचित्र 18.5 में मांग वक्र DD तथा कर लगने से पूर्व पूर्ति वक्र SS है। कर लगने के बाद पूर्ति वक्र S_1 S_1 हो जाता है। दोनों वक्रों (यानी SS तथा S_1S_1) के बीच की दूरी कर की मात्रा है। रेखाचित्र 18.5 में पूर्ति पूर्णतया लोचदार है अर्थात पूर्ति में मनोवांछित परिवर्तन किये जा सकते है। अत: विक्रेता पूरा कर भार क्रेताओं पर टालने में समर्थ हो जाता है।

यदि पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो तो करापात की स्थिति की वर्णन इस प्रकार है: -

इस रेखाचित्र 18.6

रेखाचित्र 18.6 में मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS है। चूंकि पूर्ति स्थिर एवं बेलोचदार है। अत विक्रेता पूर्ति में कमी करके कीमत को बढ़ाने मैं असमर्थ है। ऐसी स्थिति में कर लगने के बाद भी कीमत वही रहती है जो कि रेखाचित्र 18.6 में MP है। ऐसी स्थिति में कर विवर्तन संभव नहीं है तथा संपूर्ण कर भार विक्रेता ही सहन करता है।

यदि भिन्न भिन्न पूर्ति की लोच हो तो करापात की स्थिति का वर्णन इस प्रकार है : -

रेखाचित्र 18.7

उपयुक्त दो स्थितियों के बीच को लोच कम हो सकती है और अधिक भी हों सकती है। करारोपित वस्तु का पूर्ति जितनी अधिक लोचदार होगी कर का उतना ही अधिक भार क्रेता पर होगा। रेखाचित्र 18.7 में कर लगने से पहले पूर्ति वक्र SS तथा मांग वक्र DD है। कम पूर्ति कम लोचदार है तो पूर्ति वक्र S_1 S_1 होगा। इस प्रकार की परिस्थिति में कर केवल RT मात्रा में क्रेताओं पर विवर्तित होगा अधिक कर भार अथवा RQ मात्रा में विक्रेता सहन करेगा। यदि पूर्ति अधिक लोचदार है तो कर के उपरान्त पूर्ति वक्र S_2S_2 में परिवर्तित हो जावेगी जिसके परिणाम स्वरूप विक्रेता RS मात्रा में कर भार क्रेता पर डाल सकेगा और स्वयं कम कर RQ मात्रा वहन करेगा। इस संदर्भ में डाल्टन ने कहा है कि – "विक्रेता वस्तु की पूर्ति घटाकर भार विक्रेताओं पर डालना चाहते है और क्रेता अपनी मांग कम करके उसे विक्रेताओं पर रखने का प्रयास करते है। दोनों पक्षों की न्यूनतम हानि के साथ अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने की सापेक्षित क्षति ही परिणाम को निश्चित करती है। "

18.5.3 विभिन्न बाजार रूप एवं करापात :

करापात क्रेताओं व विक्रेताओं को कितने अंश में और किस प्रकार वहन करना पड़ता है यह बाजार परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। भिन्न भिन्न बाजार परिस्थितियों में मांग एवं पूर्ति की भिन्न दशायें होती है। इसी के अनुसार करापात एवं कर विवर्तन की समस्या की व्याख्या की जा सकती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा वस्तु की कीमत पूरे उद्योग के स्तर पर निश्चित होती है। एक फर्म कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती है तथा उद्योग स्तर पर निश्चित कीमत पर उसे अपनी वस्तु बेचनी होती है इस कारण फर्म कीमत नहीं बढ़ा सकती है अर्थात् वह कर नहीं टाल सकती है। परन्तु यदि कर लगाया जाता है तो लागत में वृद्धि हो जाती है। परन्तु यदि कर लगाया जाता है तो लागत में वृद्धि हो जाता है और कर राशि लागत का अंग बन- जाती है। सभी उत्पादक समान रूप से कुशल नहीं होते है। इनमें से कुछ सीमान्त उत्पादक होते है। ऐसी स्थिति मे कर लगने के बाद उनकी उत्पादन लागत इतनी हो जाती है कि उन्हें हानि होने लगती है और ये उत्पादक उत्पादन बन्द कर देते है। अन्य उत्पादक भी लागत बढ़ने के कारण अपना उत्पादन कम कर देते है। जिसके फलस्वरूप पूर्ति कम हो जाती है और इस प्रकार उत्पादक (विक्रेता) कर उपभोक्ता पर टालने मे सफल हो जाते है। परन्तु यदि पूर्ति लोचदार नहीं होगी तो कर क्रेताओं पर नहीं टाला जा सकेगा। दूसरी ओर यदि क्रेता बढ़ी हुई कीमत पर वस्तु नहीं खरीदता चाहता है और अपनी मांग कम कर देता है तो कर विवर्तन नहीं हो सकेगा। इस प्रकार यही पर किसी वस्तु पर कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार क्रेताओं तथा विक्रेताओं में वस्तु की पूर्ति की लोच तथा मांग की लोच के अनुपात में विभाजित हो जाता है

एकाधिकार के अंतर्गत करापात की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है: -

एकाधिकार वस्तु की पूर्ति पर एक उत्पादक या एक ही व्यक्ति का पूर्ण नियंत्रण होता है। एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। वह अपनी वस्तु का मूल्य उस स्थान पर निश्चित करता है। कर विवर्तन करते समय भी वह अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। एकाधिकार कर दो प्रकार से लगाया जा सकता है :- (i) एक मुश्त कर तथा (ii) विशिष्ट कर।

यदि एकाधिकारी पर एक मुश्त कर (A lumpsum tax) लगाया जरा सकता है तो कर की राशि का उत्पादन की मात्रा से संबंध नहीं होता। उत्पादन की मात्रा पर ध्यान दिये बिना ही कर की राशि निश्चित हो जाती है। इस प्रकार के कर से सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम में कोई अंतर नहीं आता। इसलिए कर लगने के बाद अधिकतम लाभ प्रदान करने वाला उत्पादन वही समान रहता है और वही पहले वाली कीमत रहती है।

रेखाचित्र 18.8

जैसा कि रेखा चित्र 18.8 में जहां MC (सीमान्त लागत रेखा) तथा MR (सीमान्त आगम वक्र) एक दूसरे को काटती है। यानि Q बिन्दु पर उत्पादन निश्चित होता है। और कीमत OP निश्चित होती है। एक मुश्त कर लगाने से औसत लागत प्रभावित होगी औसत लागत रेखा AC से परिवर्तित होकर: AC' हो जाती है। चूंकि इस प्रकार के कर से सीमान्त लागत प्रभावित नहीं होती। इसलिये कर के बाद वहां साम्य बिन्दु यानि Q ही रहेगा। वही कीमत OP रहेगी एवं वही उत्पादन OM रहेगा। इस कर से एकाधिकारी का लाभ कम हो जाता है। कर से पहिले प्रति इकाई लाभ OM (AC व AR का अन्तर) है। वाद में वह कम होकर RT हो जाता है। इस प्रकार जब एक मुश्त कर लगाया जाता है तब एकाधिकार का हित इसी में है कि वह इसका भुगतान लाभ में से करे या अन्य शब्दों में इस प्रकार के कर का विवर्तन नहीं होता है। सम्पूर्ण करापात एकाधिकारी ही सहन करता है।

यदि कर उत्पादन मात्रा के अनुसार अथवा प्रति इकाई विशिष्ट कर (Specific tax) लगाया जाता है तो उत्पादन बढ़ने के साथ कर बढ़ जाता है तथा उत्पादन कम होने के साथ कर कम हो जाता है। ऐसा कर सीमान्त लागत को प्रभावित करता है। इसलिए इसका विवर्तन भी संभव है।

रेखाचित्र 18.9

रेखाचित्र 18.9 में कर लगने से पूर्व औसत लागत एवं सीमान्त लागत रेखायें क्रमश : AC एवं MC है । AR व MR औसत आगम एवं सीमान्त आगम रेखायें है । कर लगन से पूर्व साम्य अवस्था E बिन्दु पर होती है । जहाँ सीमान्त लागत व सीमान्त आगम बराबर है । उत्पादन OQ मात्रा में होता है । तथा कीमत OP निश्चित होती है । कर लगने के बाद सीमान्त लागत वक्र एवं

औसत लागत वक्र MC_1AG के रूप में परिवर्तित हो जाती है अर्थात् लागत में उतनी ही वृद्धि हो जाती है जितनी कर मात्रा है। MC_1 व MR की समानता पर नया उत्पादन OQ_1 व कीमत OP_1 निश्चित होती है। कीमत में वृद्धि PP_1 है। कर प्रति इकाई ST (दोनों सीमान्त लागत रेखाओं का अन्तर) है। तुलना करने पर ज्ञात होता है कि PP_1=1/2ST यानि कीमत में वृद्धि कर मात्रा (अथवा लागत में वृद्धि) से आधी होती है।

रेखाचित्र 18.10

यदि एकाधिकार में मांग वक्र सीधी रेखा होती है तो कीमत में वृद्धि सामान्यतया कर मात्रा से कम होती है अर्थात् ऐसी परिस्थिति में कर भार पूर्ण रूप से उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जा सकता है। कुछ कर भार एकाधिकारी को वहन करना पड़ता है। अल्पाधिकार में करापात की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है :-

अल्पाधिकार में विकुंचित मांग वक्र (Kinked demand curve) विक्रेता प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति में जहां कीमत निश्चित होती है वहाँ सीमान्त रेखा टूट जाती है। कर लगने के बाद जब सीमान्त लागत बढ़ती है। अगर वह सीमान्त आगम रेखा के इस टूटे हुये अंश को ही काटती रहे तो न कीमत परिवर्तित होगी और न उत्पादन मात्रा अर्थात कर विवर्तन नहीं होगा।

रेखाचित्र 18.11

जैसा कि रेखा चित्र 18.11 AP AR मांग वक्र है जो P कीमत पर विकुंचित ABCD सीमान्त आगम रेखा है। MC कर से पूर्व सीमान्त लागत रेखा है जहाँ उत्पादन OQ एवं कीमत QP

निश्चित होती है। कर लगने से सीमान्त लागत रेखा MC_1 के रूप में परिवर्तित हो जाती है। चूंकि सीमान्त रेखा अब भी MR रेखा को उसके टूटे हुए अंश पर काट रही है तो साम्य उत्पादन व कीमत में परिवर्तन नहीं होगा। सम्पूर्ण' कर भार विक्रेता सहन करते है।

लेकिन अल्पाधिकार में कुछ फर्मों की कीमत नेतृत्व होता है। वे इस आशा में कीमत बढ़ा देगी कि अन्य फर्में भी कार्य का अनुसरण करेंगी और मांग रेखा पर विकुंचन हो जायेगा। इस प्रकार उत्पादन में कमी व कीमत में वृद्धि कर अल्पाधिकारी फर्में कर विवर्तित करने का प्रयत्न करती है।

एकाधिकार प्रतियोगिता में करापात की व्याख्या है :-

एकाधिकार प्रतियोगिता में सामान्यता: औसत लागत औसत आगम के बराबर होती है। जब कर लगता है तो औसत लागत बढ़ जाती है। फलस्वरूप कुछ सीमान्त फर्में उद्योग छोड़ कर चली जाती है। जिससे अवशेष फर्मों के लिस मांग व ऊपर की ओर आ जाता है और कर उपभोक्ताओं पर डाल दिया जाता है।

रेखाचित्र 18.12

जैसा कि रेखा चित्र 18.12 में कर लगने से पूर्व औसत लागत एवं सीमान्त लागत रेखा AC व MC है। मांग वक्र AR एवं सीमान्त आगम रेखा MR है। उत्पादन OQ एवं QP कीमत है।

कर लगने के बाद लागत रेखायें ऊपर की ओर AC में एवं MC_1 के रूप में प्राप्त होती है। लागत बढ़ते ही कुछ सीमान्त फर्में हानि सहन नहीं कर पाती एवं उद्योग से अलग हो जाती है। बची हुई फर्मों के लिए मांग वक्र ऊपर की ओर परिवर्तित हो जाता है। AR_1 के रूप में MR_1 व MC_1 के साम्य पर नई कीमत Q_1P_1 निश्चित होती है। इस प्रकार कीमत में कर मात्रा के अनुसार वृद्धि हो जायेगी। व्यक्तिगत फर्म का उत्पादन पूर्व में जितना भी हो सकता है ज्यादा भी या कम भी हो सकता है। लेकिन फिर से कीमत औसत लागत के बराबर हो जावेगी।

इस प्रकार बाजार की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उत्पादन में परिवर्तन की संभावना पर निर्भर करता है कि करापात का कितना अंश उत्पादक या विक्रेता वर्ग

उठाते है एवं कितना उपभोक्ताओं पर टाला जा सकता है। करापात का विभाजन मांग एवं पूर्ति की लोच के अनुपात में क्रेताओं एवं विक्रेता के मध्य होता है।

18.5.4 उत्पत्ति के नियम एवं करापात :-

उत्पादन के तीन नियम है। करारोपित वस्तु का उत्पादन किस नियम के अंतर्गत हो रहा है, यह इस बात को प्रभावित करेगा कि करापात क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य किस प्रकार वितरित होता है?

उत्पत्ति वृद्धि पर कर लगाया गया है यदि उसका उत्पादन वृद्धि नियम के अंतर्गत हो रहा है तो कीमत में वृद्धि कर लगने के बाद कर मात्रा से अधिक हो जाती है और इस प्रकार संपूर्ण करामात क्रेताओं पर पड़ता है। इसका कारण यह है कि करारोपण से कीमतें बढ़ती है जिससे मांग कम होगी। उत्पादन कम होगा। लागत बढेगी जिसके परिणामस्वरूप कीमत में वृद्धि न केवल कर मात्रा के बराबर होगी वरन् लागत बढ़ जाने से भी कीमत वृद्धि होगी।

रेखाचित्र 18.13

रेखा चित्र 18.13 में कर लगने से पूर्व DD एवं SS क्रमशः मांग वक्र पूर्ति वक्र है। कीमत QP निश्चित होती है। कर लगने के बाद पूर्ति रेखा S_1S_1 प्राप्त होती है। नई कीमत निश्चित होती है। इस स्थिति में कर मात्रा P_2P_1 यानि दोनों रेखाओं का अन्तर है जब कि कीमत में वृद्धि P_3 P_1, मात्रा में होती है जो कर मात्रा P_2P_1 से अधिक है। इस प्रकार हम कह सकते है कि उत्पादन वृद्धि नियम मे संपूर्ण करापात क्रेता पर होता है।

उत्पादन समता नियम (लागत समता नियम) के अंतर्गत करापात की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है - ऐसी स्थिति में वृद्धि कर मात्रा के समान होती है और क्रेता पर कर राशि के बराबर भार पड़ता है।

रेखाचित्र 18.14

रेखाचित्र 18.14 में कर लगने के पूर्व DD मांग वक्र एवं SS पूर्ति वक्र है। और कीमत OP है। कर लगने के पश्चात् पूर्ति वक्र S_1S_1 हो जाता है। कीमत P_1Q_1 हो जाती है। कीमत वृद्धि P_1P_2 के बराबर है जो ठीक कर राशि के बराबर है। उत्पादन समता नियम के अंतर्गत भी संपूर्ण करापात उपभोक्ता वर्ग पर पड़ता है।

उत्पत्ति ह्रास नियम (लागत वृद्धि नियम) के अंतर्गत करापात की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है:-

ऐसी परिस्थिति में कीमत में वृद्धि कर राशि से कम होती है। संपूर्ण करापात क्रेताओं पर नहीं पड़ता है। इसका कारण यह है कि करारोपण से कीमत वृद्धि होती है जिससे मांग कम होती है। कीमत में वृद्धि कर राशि से कम होती है।

रेखाचित्र 18.15

रेखाचित्र 18.15 में DD मांग वक्र है एवं SS पूर्ति वक्र है। PQ कीमत है। कर लगने के बाद पूर्ति वक्र S_1S_1 हो जाता है। कीमत बढ़ कर Q_1P_1 हो जाती है। कीमत में वृद्धि P_3P_1 है जो कर राशि P_2P_1 से कम है। इस प्रकार संपूर्ण करापात उपभोक्ताओं को नहीं उठाना पड़ता है।

करापात को प्रभावित करने वाले अन्य तत्व निम्नलिखित है -

अ - कर की मात्रा,

ब - कर की दर,

स - कर की प्रकृति,

द - कर दाताओं का वर्ग

य - स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता;

र - संयुक्त पूर्ति तथा संयुक्त मान वाली वस्तुओं पर कर।

उपर्युक्त तत्वों की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार वर्णित है -

अ - कर की मात्रा : यदि कर की मात्रा कम है तो मांग पर विशेष प्रभाव डाले बिना कीमत में वृद्धि कर, कर विवर्तन संभव है। यदि कर मात्रा अधिक है तो कीमत में वृद्धि करने पर मांग बहुत अधिक प्रभावित होगी और कर विवर्तन करना कठिन होगा।

ब - कर की दर : यदि कर की दरें ऊंची है तो क्रेताओं में कर से बचाव की प्रवृत्ति अधिक होगी तथा करों का विवर्तन कठिन होगा।

स - कर की प्रकृति : प्रत्यक्ष करों का विवर्तन नहीं किया जा सकता। केवल अप्रत्यक्ष करों को विवर्तन की संभावना होती है।

द - करदाताओं का वर्ग :- कर समाज के किस वर्ग पर लगाया गया है, उस पर कर विवर्तन निर्भर करेगा। यदि कर उपभोक्ताओं पर लगाया गया है तो इसका विवर्तन कठिन होगा। यदि उत्पादक पर लगाया गया है तो कर विवर्तन अपेक्षाकृत सरल होता है।

य - स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता : जिस वस्तु पर कर लगाया गया है यदि उसके स्थानापन्न वस्तुयें उपलब्ध है तो उस कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर नहीं किया जा सकेगा ।

र - संयुक्त पूर्ति तथा संयुक्त मांग वाली वस्तुओं पर कर: जब एक वस्तु की मांग के साथ साथ दूसरी वस्तु की मांग आवश्यक हो जाती है तो उस संयुक्त मांग वाली वरना कहते है जैसे - पैन व स्याही । इसी प्रकार एक वस्तु के उत्पादन के साथ साथ दूसरी वस्तु का उत्पा दन आवश्यक होता है । तो उसे संयुक्त पूर्ति वाली वस्तु कहते है । जैसे - रुई एवं बिनौला । संयुक्त मांग व संयुक्त पूर्ति वाली वस्तुओं में कर विवर्तन आसान होता है । विक्रेता कर राशि को दूसरी वस्तु के मूल्य में भी सम्मिलित कर सकता है ।

18.6 अभ्यास प्रश्न :

1. करापात का अर्थ स्पष्ट करो तथा इसके सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करो ।
2. कर-विवर्तन से आप क्या समझते है? इसके सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन करो ।
3. करापात संबंधी निम्न बिन्दुओं को समझाइये.

   (अ) आशिक संतुलन,

(ब) सामान्य सन्तुलन,

(स) करामात के वैकल्पिक तथ्य।

4. करापात एवं कराघात में अंतर बताओं तथा रेखाचित्रों की सहायता से करापात को निर्धारित करने वाले तत्वों को समझाइये।

5. कर-भार का क्रेता एवं विक्रेता पर कितना प्रभाव होता है, यह किन तत्वों पर निर्भर करता है? विस्तार सहित स्पष्ट करो।

6. करामात (या कर-भार) से आप क्या समझते है? रेखाचित्रों की सहायता से स्पष्ट करो कि कर-विवर्तन किस प्रकार होता है?

7. निम्नलिखित दशाओं के अंतर्गत कर-भार विवर्तन की विवेचना कीजिए -

(अ) पूर्ण-प्रतियोगिता

(ब) एकाधिकार।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें :

Bhatia H.L. : Public Finance : Vikas Publishing House Pvt.

Jain P.C. : Economics of Public Finance : Vol I Atalantic . . Publishers and Distributors, New Delhi.

Lekhi R.k. : Public Finance : Kalyani Publishers, New Delhi.

Ltd. New Delhi.

Musgrave R.A. & Musgrave P.B. : Public Finance in Theory and Practice : M.C Grave Hill Kugiakusha, Ltd. Tokyo.

कौशिक रामशरण : राजस्व. मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

18.8 शब्दावली :

कर (Tax) : कर वह अनिवार्य भुगतान है जिसको करदाता बिना किसी प्रत्यक्ष लाभ की आशा के सरकार को प्रदान करता है।

करापात (Incidence of Tax) : करारोपण से जिस व्यक्ति पर अन्तिम रूप से कर का भार पड़ता है इसको "करापात" कहा जाता है। इस प्रकार करापात से अभिप्राय: कर के अन्तिम भार से है। अथवा कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से है।

कराघात (Impact of Tax) : जिस व्यक्ति-से कर की राशि वसूल की जाती है इसे "कराघात" कहते है। कराघात से अभिप्राय: सरकार को किए गए कर राशि के मौद्रिक भुगतान से है।

कर विवर्तन (Shifting of Tax) : एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर कर-भार हस्तान्तरित किया **जाता है। इस क्रिया को "कर विवर्तन" कहा जाता है।**

कर-वंचन (Tax-Evasion) : कर-वंचन वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत करदाता की चोरी करता है जैसे - आयकर से बचने के लिए अपनी वास्तविक आय को छिपाना, चुंगी कर से बचने के लिए झूठे बिल प्रस्तुत करना या वस्तु के वजन को सही नही बताना अथवा कर अधिकारी को कर से बचने के लिए रिश्वत देना आदि।

मांग की लोच (Elasticity of Demand) : किसी वस्तु की कीमत में प्रतिशत (अथवा आनुपातिक) परिवर्तन होने के फलस्वरूप उस वस्तु की मांग में जो प्रतिशत (अथवा आनुपातिक) परिवर्तन होता है, वह 'मांग की लोच' कहलाती है। इसको निम्न सूत्र दर्शाया गया

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{X वस्तु की मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{X वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिर्वतन}}$$

इसको निम्न सूत्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है

$$E_d = \frac{\Delta Q_d}{\Delta P}$$

यहां E_d का अर्थ मांग की लोच (Elasticity of Demand) से है;

ΔP अर्थ वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से है; तथा

ΔQ_d का अर्थ वस्तु की मांग में प्रतिशत से है।

पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply) : किसी वस्तु की कीमत में प्रतिशत (अथवा आनुपातिक) परिवर्तन होने के फलस्वरूप उस वस्तु की पूर्ति में जो प्रतिशत (अथवा आनुपातिक) परिवर्तन होता है, वह "पूर्ति की लोच" कहलाती है। इसको निम्न सूत्र द्वारा दर्शाया गया है :-

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{X वस्तु की पूर्ति में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{X वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिर्वतन}}$$

इसको निम्न सूत्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है :

$$E_s = \frac{\Delta Q_s}{\Delta P}$$

यहां E_s का अर्क मांग की लोच (Elasticity of Demand) से है;

ΔP का अर्थ वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से है; तथा

ΔQ_S का अर्थ वस्तु की मांग में प्रतिशत से है।

उत्पत्ति के नियम (Laws of Returns) : अल्पकाल में एक फर्म उत्पत्ति के कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन करती है जिसके फलस्वरूप उत्पत्ति की मात्रा में जिस प्रकार के परिवर्तन होते है उस नियम को 'उत्पत्ति के नियम ' के नाम से पुकारते है। उत्पत्ति के तीन नियम है - (i) उत्पत्ति हास नियम, (ii) उत्पत्ति समता नियम, (iii) उत्पत्ति वृद्धि नियम। उत्पत्ति के नियम को अल्पकालीन उत्पादन फलन (Short run production function) भी कहते है।

इकाई - 19

राजकोषीय आपात
Fiscal Emergency

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 राजकोषीय आपात के प्रकार

19.2.1 सूक्ष्म आपात

19.2.2 व्यापक आपात

19.3 राजकोषीय नीति के विपिन आपात

19.3.1 आपात के प्रमुख विचार

19.3.2 आपात के वैकल्पिक विचार

19.4 कर भार का स्वरूप

19.4.1 कर भार तथा संसाधन हस्तान्तरण

19.4.2 कर भार का आकार

19.4.3 अतिरिक्त भार

19.4.4 आगत प्रभाव

19.4.5 रोजगार प्रभाव

19.5 राजकोषीय आपात की विभिन्न समस्याएं

19.5.1 राजकोषीय आपात का मापन

19.5.2 राजकोषीय आपात के वितरण की समस्या

19.5.3 भार प्रभाव

19.6 राजकोषीय आपात के विभिन्न रूप

19.6.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों के आपात

19.6.2 व्यय के आपात

19.6.3 बजट आपात

19.7 अभ्यास प्रश्न

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.9 शब्दावली

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप :-

- राजकोषीय आपात की व्याख्या आसानी से कर सकेगें।
- कर भार के स्वरूपों को समझा सकेगें।
- राजकोषीय आपात के विभिन्न रूपों को समझा सकेगें।
- सन्तुलित बजट आपात की व्याख्या आसानी से कर सकेगें।

19.1 प्रस्तावना :

बजट के दो प्रमुख अंग सार्वजनिक आय एवं सार्वजनिक व्यय है। कर सार्वजनिक आय का मुख्य स्त्रोत है। इस संदर्भ में सरकार द्वारा की गयी क्रियाएं "राजकोषीय क्रियाएं' कहलाती है। कर और सार्वजनिक व्यय का सीधा संबंध राजकोष अथवा सरकार के बजट से है। सरकार का दृष्टिकोण सदैव ही बजट को संतुलित[M] करने का होता है परन्तु कभी कभी आय से अधिक व्यय हो जाता है। ऐसी स्थिति में सरकार आन्तरिक अथवा वाह्य ऋण लेती है अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था कर नये नोट छाप कर दिल की पूर्ति करती है। इस प्रकार कर लगाने, ऋण लेने अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था करने की नीतियों को सामूहिक रूप में 'राजकोषीय नीति' (Fiscal Policy) कहा जाता है। वास्तव में राजकोषीय शब्द अंग्रेजी के 'Fiscal' से शब्द का अनुवाद है। 'Fiscal' शब्द 'Fisc' से बना है जिसका अर्थ है राजकोष अथवा सरकारी खजाना।

राजकोषीय नीति के मुख्यत : दो अंग है - (i) सरकार कर तथा (ii) सरकारी व्यय। आजकल सार्वजनिक ऋण (Public debt) को इस नीति का तीसरा अंग मानते है। कर लगाने से, व्यय करने से, मुद्रा उधार अर्थात् ऋण लेने से अर्थव्यवस्था पर कई प्रकार के परिवर्तन दिखाई देते है जैसे - कर लगाने से जनता का पैसा सरकार के हाथ में पहुंचता है। लोग कर अदा करते है और सरकार कर से आय प्राप्त करती है। इससे धन का हस्तान्तरण अथवा मुद्रा स्थान तक पहुंचता है। इस 'संसाधन का हस्तान्तरण' कहते है। इसी प्रकार जब सरकार धन खर्च पुन: सरकार के हाथों से हटकर लोगों के पास पहुंचता है। यह भी 'संसाधन का हस्तान्तरण' कहलाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक ऋण से भी 'संसाधनों का हस्तान्तरण' होता है। सरकार द्वारा व्यय करने से अर्थव्यवस्था के रोजगार पर प्रभाव पड़ता है तथा इसका मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ता है। इनमें परिवर्तन होता है। कर की रकम अदा करने के बाद कर देने वाले व्यक्ति के पारिवारिक बजट (Family Budget) में अंतर आ जाता है। इस प्रकार मुद्रा की अदला-बदली से देश में उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इसमें

परिवर्तन होते है। इन्हीं सब भारों अथवा परिवर्तनों को 'राजकोषीय आपात' (Fiscal Incidence) कहा जाता है।

19.2 राजकोषीय आपात के प्रकार :

राजकोषीय आपात के विभिन्न प्रकार है परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें दो भागों में बांटा गया है-

19.2.1. सूक्ष्म आपात (Micro Incidence)

19.2.2. व्यापक आपात (Micro Incidence)

यदि व्यक्ति की आय के ऊपर कर लाया गया जैसे - आयकर, तो इससे जितनी मात्रा में आयकर का भुगतान करेंगे। आपकी आय उसी के बराबर कम हो जाएगी। इसी प्रकार यदि सरकार बेकारी भत्ता' देती है तो इससे सरकार का तो व्यय बढ़ता ही है। ऐसा करने से उसके धन में कमी होती है परन्तु जिस व्यक्ति को बेरोजगारी भत्ता मिलता है उसकी आय में वृद्धि होगी। इस प्रकार के परिवर्तनों को "सूक्ष्म आपात" कहते है। इस प्रकार से आपात के अंतर्गत वे आपात आते है। जिनका संबंध व्यक्तिगत आय में परिवर्तन से है। दूसरे शब्दों में साधनों के प्रयोग की क्षमता पर इसका प्रभाव पड़ता है अथवा सरकार की राजकोषीय नीति से संसाधनों के प्रयोग की कुशलता घट-बढ़ सकती है। उस पर अच्छा या बुरा असर पड़ सकता है, इसे 'सूक्ष्म आपात' कहते है। व्यक्तिगत परिवर्तनों का ही अध्ययन करने के कारण इन्हें 'सूक्ष्म आघात 'अथवा 'व्यष्टि आघात' कहा जाता है।

संसाधनों के हस्तान्तरण का प्रभाव देश के उत्पादन पर पड़ता है। उत्पादन क्षमता पर प्रभाव देश के उत्पादन पर पड़ता है। उत्पादन क्षमता पर प्रभाव पड़ने से कुल रोजगार स्तर भी प्रभावित होता है। इसका प्रभाव वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों पर भी होता है। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास पर इसका प्रभाव पड़ता है इन सभी प्रभावों अथवा आपातों की एक दूसरे पर परस्पर प्रतिक्रिया होती है अर्थात् मूल्यों पर पड़ने वाले आपात का प्रभाव रोजगार पर पड़ता है और रोजगार आपात का प्रभाव विकास दर पर पड़ता है तथा विकास दर पुन: मूल्यों एवं रोजगार को प्रभावित करती है। उत्पादन क्षमता तथा रोजगार पर पड़ने वाले आपात से देश की वितरण व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है। ऐसे परिवर्तन को ही "वृहद् आपात अथवा व्यापक आपात" कहते है। इस प्रकार प्रत्येक आपात अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण होता है।

19.3 राजकोषीय नीति के विभिन्न आपात:

सरकार की एक ही राजकोषीय नीति अथवा राजकोषीय निर्णय का अर्थव्यवस्था पर अनेक आपात पड़ते है। इसीलिए संभव है कि कोई नीति वितरण व्यवस्था को ठीक करती है अर्थात् आय और धन की असमानता को कम करती हो परन्तु उसका उत्पादन क्षमता और रोजगार पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। उदाहरणार्थ - प्रत्यक्ष कर अथवा आयकर जब बहुत ऊंची दर से लगाया जावेगा तो धनी वर्ग पर इसका बहुत प्रभाव (या आपात) पड़ेगा। कर भुगतान के कारण धनिक वर्ग की आय घट

जावेगी जिसके परिणाम स्वरूप समाज में धन के वितरण में कुछ समानता दिखाई देगी। परंतु इससे धनिक वर्ग द्वारा विनियोग कम किया जाने लगेगा, उत्पादन भी घट जावेगा तथा रोजगार भी कम हो जावेगा। इस प्रकार हम देखते है कि एक ही वित्तीय परिवर्तन (अथवा राजकोषीय परिवर्तन) से अनेक प्रकार के आपात पड़ते है। ये आपात कुछ अच्छे हो सकते है और कुछ बुरे। अत : इनके संबंधों का अध्ययन करना अति महत्वपूर्ण है परन्तु किसी राजकोषीय आपात के विभिन्न पक्षों अथवा पहलुओं का एक साथ अध्ययन करना बहुत कठिन है।

यहां राजकोषीय नीति के विभिन्न आपातों को समझ लेना आवश्यक है। आपात के विभिन्न विचार है। ये निम्नलिखित है :-

(1) आपात के प्रमुख विचार तथा

(2) आपात के वैकल्पिक विचार।

इन उपर्युक्त आपातों के विभिन्न प्रकारों की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है -

19.3.1 आपात के प्रमुख विचार :

आपात के विचार को कर संबंधी राजकोषीय नीति के उदाहरण से आसानी से समझ सकते है। व्यक्ति पर कर का जो भार पड़ता है। उसे "कर का आपात" (Incidence of Tax) कहते है। राजकोषीय नीति के प्रमुख आपात विचार ये है -

(अ) वैधानिक आपात

(ब) आर्थिक आपात

(स) कर विवर्तन; तथा

(द) आघात एवं आपात

वैधानिक रूप से अथवा कानून के अन्तर्गत जिसे व्यक्ति पर कर लगता है उसके लिए इसका .... अनिवार्य हो जाता है। अब यह व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है कि वह कर का भुगतान करे अथवा नहीं करे। वैधानिक रूप से लगाए गए करों को प्राय: लोग अपने ऊपर से दूसरों पर टालना या विवर्तन (Shift) करना चाहते है। इस प्रकार यह वैधानिक रूप से किसी पर लगाया जाता है और वास्तव में इसका भुगतान किसी और व्यक्ति द्वारा किया जाता है। विक्रेताओं पर लगे करों का समस्त भार उपभोक्ताओं पर टाल दिया जाता है। इस प्रकार के कर के आपात को "वैधानिक आपात" (Statutory Incidence) कहते है। इस प्रकार कर का वैधानिक आपात विक्रेता पर होता है जबकि कर का आर्थिक आपात उपभोक्ता पर पड़ता है क्योंकि वही अन्तत: स्वयं उसका भुगतान करता है।

जब किसी व्यक्ति पर कर लगता है तो कर के भुगतान के कारण उसकी आय घट जाती है जिसके परिणामस्वरूप अब वह पहले की तुलना में कम बचत करेगा तथा उसके द्वारा वस्तुओं का उपभोग कम हो जावेगा। और वह बहुत सी वस्तुएं अब नहीं खरीद सकेगा। इस प्रकार वह उन

लोगों को भी प्रभावित करेगा जिनसे वह वस्तुएं खरीदता है। उन वस्तुओं के उद्योग प्रभावित होगें और उनके द्वारा जनित रोजगार प्रभावित होगा । इस प्रकार के आपात को "आर्थिक आपात" (Economic Incidence) कहते है।

कर प्राय: आय (Income) अथवा सौदों (Transactions) पर लगाया जाता है। सौदों में दो वर्ग होते है। ये दोनों ही कर के वैधानिक आपात का आधार बन जाती है। यदि कर के बारूद सौदा हो जाता है तो कर का भार क्रेता पर पड़ेगा और यदि कर-भार को ध्यान में रखकर सौदा नहीं होता तो इसका अर्थ यह हुआ कि वैधानिक और आर्थिक दोनों आपात विक्रेता पर ही आ गए। कभी कभी कर आपात का बंटवारा दोनों में होता है और तब माप की लोच सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मांग की लोच जितनी कम होगी, क्रेता पर उतना ही अधिक आपात या भार होगा और मान की लोच जितनी अधिक होगी विक्रेता पर आपात या भार बढ़ता जावेगा। कर भार के एक स्थान से दूसरे तक हस्तान्तरित होने की प्रक्रिया "कर विवर्तन" (Shifting of Tax) कहलाती है। दूसरे शब्दों में कर विवर्तन वह विधि है जिसके अन्तर्गत कर का भार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर हस्तान्तरित किया जाता है। सरकार भी इस बात से अच्छी तरह से अवगत होती है। यदि सरकार कार के निर्माण पर कर लगाती है तो इसका अर्थ सरकार यह समझती है कि इसका आपात कार क्रेताओं पर पड़ेगा न कि कार निर्माताओं पर। यदि कार निर्माताओं पर आर्थिक आपात डालना होता तो कार निर्माताओं के लाभ पर कर लगाया जाता न कि कर पर कर लगाते। वास्तव में कार पर लगाए वाले कर को वसूल करने के लिए निर्माताओं को तो 'कर एकत्रीकरण' अर्थात् कर संग्रह करने का साधन बनाया जाता है। इस प्रकार वैधानिक आपात और आर्थिक आपात के मध्य की प्रक्रिया को "कर विवर्तन" कहा जाता है।

जब कर लगाया जाता है तो वह किसी न किसी से वसूल किया जाता है । जो व्यक्ति या संस्था सर्वप्रथम सरकार को कर देती है उस पर कर का 'आघात ' (Impact) होता है। दूसरे शब्दों में कर के वैधानिक आपात बिन्दु को कर का 'आघात' कहते है। जो व्यक्ति वास्तव में कर का भार सहन करता है उस पर कर का आपात (Incidence) होता है। यहां आघात एवं आपात को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है -

मान लीजिए सरकार ने एक दुकानदार से उसके माल पर 100 रूपये कर के रूप में वसूल किए। यहां कर का आघात (Impact) दुकानदार पर हुआ। यदि दुकानदार वस्तु की कीमत बढ़ाकर क्रेता से 100 रूपये वसूल कर लेता है तो करापात (Incidence) क्रेता पर पड़ेगा। यदि दुकानदार वस्तु की कीमत नहीं बढ़ाता है तो 100 रूपये दुकानदार को ही वहन करने पड़ेगा। ऐसी स्थिति में करापात एवं कराघात दोनों ही दुकानदार पर पड़ेंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कर के वैधानिक भार को कर का आघात (Impact) तथा कर के आर्थिक भार को कर का आपात (Incidence) कहते है। इस प्रकार सरकार की राजकोषीय नीति की दृष्टि से आपात (Incidence) अर्थात् आर्थिक आपात विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि वह वास्तविक वितरण व्यवस्था से संबंधित हो जाता है और यहां तक पहुंचने में अर्थव्यवस्था को

वैधानिक भार या आपात अर्थात् कराघात (Impact) से हटकर बहुत बड़ा सामजस्य स्थापित करना पड़ता है।

19.3.2 आपात के वैकल्पिक विचार :

सरकार की राजकोषीय क्रियाओं के दो मुख्य अंग है (i) कर प्राप्त करना अर्थात् सार्वजनिक आय, तथा (ii) व्यय करना अर्थात् सार्वजनिक व्यय। सामान्य तौर से आपात (Incidence) शब्द का संबंध और इसकी व्याख्या करों से जुड़ी मानी गयी है। राजकोषीय नीति के मुख्य अंग - करों से जुड़े आपात के वैकल्पिक विचार (Alternative Concepts of Fiscal Incidence) इस प्रकार है

(अ) निरपेक्ष कर आपात

(ब) विभेदित कर आपात

(स) बजट आपात

उपर्युक्त आपात के वैकल्पिक विचारों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :-

सरकार वितरण व्यवस्था सुधारने के लिए केवल करों का सहारा लेती है और सरकार का व्यय स्थिर रहता है। अब मान लीजिए यदि अन्य बातें यथास्थिर रहे, सरकार आय पर कर अर्थात् आयकर (Income Tax) लगाती है तो इससे व्यक्ति की आय कम हो जावेगी, समग्र मांग (Aggregate Demand) क्रम हो जावेगी, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ेगी तथा मुद्रास्फीति कम होगी । ये सभी मिलीजुली क्रियाएं कर के निरपेक्ष आपात (Absolute Incidence) कहलाते है। इस प्रकार के आपात का सीधा संबंध वितरण व्यवस्था से होता है परन्तु इन सभी परिवर्तनों का अध्ययन करना बहुत कठिन काम है। अत: इसके लिए दूसरे तथ्यों का विचार करना अनिवार्य है।

कर के वितरण पर पड़ने वाले आपात को समझने के लिए कोई एक कर किसी दूसरे कर से हस्तान्तरित या प्रतिस्थापित किया जाता है और सरकार की आय एवं व्यय यथास्थिर रहे। अब मान लीजिए सरकार आयकर को सिगरेट उत्पादन शुल्क से बदल दे और सरकार को होने वाली कुल आय यथास्थिर रहे। ऐसी स्थिति में उपभोक्ताओं पर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा परन्तु विभिन्न करदाताओं के बीच भुगतान में प्रतिस्थापन होगा। इस प्रकार आयकर देने वाले व्यक्ति अन्य है तथा सिगरेट पर लगे कर को चुकाने वाले अन्य व्यक्ति है जो सिगरेट पीते है। ऐसी स्थिति में आयकर दाताओं को लाभ होगा तथा सिगरेट पीने वाले व्यक्तियों को हानि होगा। इतना ही प्रभाव नहीं होगा बल्कि समस्त मद्यपान उत्पादक जैसे तम्बाकू उत्पाद तथा सिगरेट उत्पादकों को हानि होगी जबकि इन वस्तुओं के निर्माताओं को लाभ होगा जो आय करदाता खरीदते है। इस प्रकार आयकर के बदले मे सिगरेट उत्पादन शुल्क लगा देने से वितरण में जो आमूल परिवर्तन होता है "विभेदित आपात" (Differential Incidence) कहा जाता है।

राजकोषीय नीति का संबंध कर तथा व्यय नीति के निर्धारण से है। इस प्रकार कर लगाने से तथा फिर उस कर से प्राप्त आय को व्यय करने से परिवारों की आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन होता है।

करों से उनकी आय में कमी होती है जबकि व्यय के कार्यक्रमों से उनकी आय बढ़ती है। कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से इसमें वृद्धि होती है जैसे - पेंशन, भत्ता, आर्थिक सहायता आदि तथा कभी कभी अप्रत्यक्ष रूप से इसमें वृद्धि होती है जैसे - शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं का नि शुल्क होना; आदि। इस प्रकार के होने वाले कर एवं व्यय प्रभाव को ही ' 'बजट आपात " (Budget Incidence) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कर और व्यय दोनों क्रियाओं के प्रभावों को ध्यान में रखा जाता है।

बजट की क्रियाओं का परिवारों पर निभ प्रकार से प्रभाव पड़ता है :-

(अ) निजी उपयोग के लिए किए जाने वाले उत्पादन से होने वाली आय घटती है।

(ब) सार्वजनिक उपयोग के लिए किए जाने वाले उत्पादन से आय बढ़ती है।

(स) करारोपण के कारण खर्च करने योग्य आय अथवा प्रयोज्य आय (Disposable income) घटती है।

(द) सार्वजनिक सेवाओं से नि शुल्क लाभ प्राप्त होता है।

इन्हीं प्रभावों के अध्ययन को "बजट आपात" (Budget Incidence) कहते है।

19.4 कर भार का स्वरूप :

कर-भार (Burden of Tax) से अभिप्राय: बजट क्रियाओं के परिणाम से है जिनके साथ साथ संसाधनों का हस्तान्तरण भी होता है। कर भार के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित रूप में की गयी है

19.4.1 कर भार तथा संसाधन हस्तान्तरण :

सरकार अपने व्यय को पूरा करने के लिए वस्तुओं एवं सेवाएं खरीदने के लिए कर लगाती है। उदाहरणार्थ - सरकार ने एक करोड़ रूपये के कर लगाए और इस सड़कों के निर्माण पर खर्च करती है तो यह समाज द्वारा दिया गया एक करोड़ रूपया, सड़क निर्माण की अवसर लागत है क्योंकि समाज का उपभोग एक करोड़ रूपये के बराबर घट गया होगा। कर के भुगतान के कारण वह पैसा उनके हाथ से निकल गया। इसके बदले सरकार ने समाज को सड़क निर्माण करके उसकी सेवा प्रदान की। इस प्रकार कर-भार का अर्थ है कि किस प्रकार एक करोड़ रूपये के बोझ को समाज के सब लोगों ने मिलकर उठाया। इसके विपरीत सड़के बन जाने के कारण उन्हें लाभ मिलता है। यदि सरकार का कार्यक्रम सही है तो लाभ अधिक होगा और लागत कम होगी। जब करारोपण के साथ साथ संसाधनों का हस्तान्तरण सम्मिलित नहीं हो। सरकार केवल कर लगा रही हो अपितु कुछ व्यक्तियों को सरकार अपने बजट से रूपया दे रही होगी। समाज में कुल आय ज्यों की त्यों रहेगी। क्योंकि करों के रूप में रूपया वापिस कर रही है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कर भुगतान के कारण समाज में आय का वितरण प्रभावित होगा। कुछ व्यक्तियों पर कर-भार अपेक्षाकृत अधिक पड़ेगा और कुछ व्यक्तियों पर कम पड़ेगा।

19.4.2 कर-भार का आकार (Magnitude of Tax Burden) :

सरकार जितनी मात्रा में कर आय के लिए वसूल करती है। स्पष्टत: वही "कर का भार" है। परन्तु यदि सरकार उतनी ही मात्रा में रूपया वापिस करती है जैसे - बेकारी भत्ता, आर्थिक सहायता, पेंशन आदि के रूप में, तब तो समाज पर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा। परंतु यह स्थिति इतनी आसान नहीं है। इतना होने पर भी कुछ कर भार अवश्य ही पड़ता है।

19.4.3 अतिरिक्त भार (Excess Burden) :

व्यक्तियों से एक करोड़ रूपया कर के रूप में लेने समाज में ' 'क्षमता की कमी " होती है। यही "अतिरिक्त भार" (Excess Burden) कहलाता है। उदाहरणार्थ - मान लीजिए सरकर ने एक करोड़ रूपये मोटर गाड़ियों पर कर लगाकर कर की धनराशि एकत्रित की। इस प्रकार मोटर गाड़ियों के उपभोक्ताओं अथवा क्रेताओं ने मिलकर सरकर को एक करोड़ रूपये का कर दिया होगा। परन्तु समाज पर इसका बोझ या भार केवल एक करोड़ रूपये के बराबर ही नही पड़ेगा बल्कि इससे अधिक बोझ अथवा भार पड़ेगा। हो सकता है कुछ व्यक्ति कर लग जाने की वजह से कार नही खरीद सके। यद्यपि वे कर तो नहीं देंगे परन्तु उनका उपभोग अनुकूलतम नहीं होगा। कार खरीदने से वंचित रहने के कारण उन्हें कुछ कष्ट, परेशानी एवं असंतोष होगा। कुछ व्यक्तियों को सस्ती कीमत वाली कार खरीदनी पड़ेगी जिस पर कर नहीं है अथवा कर की मात्रा कम है तो उन्हें भी कुछ असंतोष रहेगा क्योंकि कर अधिक होने के कारण वे अच्छी कार नहीं ले सकेगें। इस प्रकार ऐसे अनेक परिवार अथवा व्यक्ति होगें जो कर का तो भुगतान नही करेगें परन्तु उन्हें कष्ट एवं असंतोष व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला कर भुगतान केवल एक करोड़ रूपये का होगा परन्तु उसका वास्तविक भार इससे कहीं अधिक होगा। इस प्रकार के होने वाले भार को "अतिरिक्त-भार" (Excess Burden) कहते है।

19.4.4 आगत प्रभाव (Input Effects)

कर लगने से करदाताओं पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है - (i) वे अधिक 'परिश्रम करके अपनी आय बढ़ाना चाहते है अथवा (ii) वे कम परिश्रम करके कम में ही संतोष करके रहते है। इसी प्रकार उनकी बचत एवं विनियोग पर अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों पर प्रभाव पड़ सकते है। वे अधिक बचत के लिए प्रेरित हो सकते है तथा नही भी हो सकते है। इन सबका विकास पर प्रभाव पड़ेगा तथा रोजगार पर भी प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार के होने वाले प्रभाव को ही "आगत प्रभाव" (Input Effect) कहते है।

19.4.5 रोजगार प्रभाव (Employment Effects) :

करारोपण से आय में कमी हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप मांग कम हो जाती है। ऐसी स्थिति के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं की बिक्री कम हो जाती है। इनका उत्पादन कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप रोजगार में कमी आ जाती है। इस प्रकार के होने वाले प्रभाव के ही "रोजगार प्रभाव"' (Employment Effects) कहा जाता है।

वास्तव में करों के आपात बहुत जटिल होते है। इनके प्रभावों समझ पाना तथा उनका पता लगाना कता लगाना बहुत कठिन है क्योंकि ये सारे प्रभाव एक दूसरे से जुड़े हुए है और इनमें परस्पर प्रतिक्रिया होती रहती है।

19.5 राजकोषीय आपात की विभिन्न समस्याएं :

राजकोषीय आपात की विभिन्न समस्याएं हैं। इनको इस प्रकार से हल किया जाता है जिससे की धन अथवा आय के वितरण की असमानता कम होती चली जाये। राजकोषीय आपात की समस्याएं इसका मापन, इसका वितरण एवं भार प्रभाव को मालूम करना आदि है। इन समस्याओं की विस्तृत रूप से व्याख्या शीर्षक 19.5. 1, 19.5.2 एवं 19.5.3 में की गयी है।

19.5.1 राजकोषीय आपात का मापन (Measurement of Incidence : आपात का सम्बन्ध इस समस्या से है कि राजकोषीय भार का वितरण किस प्रकार होता है और कौन-कौन से व्यक्ति उस भार को अन्त: वहन करते हैं। यह बात स्मरणीय है कि कर किसी पर भी क्यों नही लगे, चाहे कोई भी आधार हो परन्तु उनका भुगतान अंतत : व्यक्तियों द्वार ही किया जाता है। उदाहरणार्थ- निगम (Corporation) पर लगने वाले कर उसके व्यक्ति ही चुकते हैं जो उसके मालिक अथवा कर्मचारी होते हैं। निगम एक वैधानिक व्यक्ति (Legal Person) है। वह स्वयं को अदा नही कर सकता है। कर का तो भुगतान व्यक्ति ही द्वारा किया जाता है।

राजकोषीय आपात पर केवल प्रत्यक्ष करों का ही प्रभाव नही पड़ता है बल्कि परोक्ष का भी इस पर उतना ही प्रभाव पड़ता है। "मौद्रिक आपात" से अभिप्राय : किसी व्यक्ति द्वारा मुद्रा की मात्रा कर के रूप में भुगतान करने से है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति द्वार जितनी मुद्रा कर के रूप में दी जाती है वही उसका मौद्रिक आपात (Money Incidence) है परन्तु वास्तविक आपात का तो पता लगाना बहुत ही कठिन है क्योंकि वास्तविक आपात (Real Incidence) का सम्बन्ध कर अदा करने से होने वाले कष्ट, पीड़ा तथा त्याग से है। एक ही मात्रा में कर अदा करने पर धनी व्यक्ति पर वास्तविक आपात कम होगा तथा निर्धन व्यक्ति पर वास्तविक आपात अधिक होगा। इसीलिए सरकार प्रगतिशील दर (Progressive rate) से कर लगाती है अर्थात् आप का स्तर बढ़ने से कर की दर में भी वृद्धि कर दी जाती है। ऐसी स्थिति से त्याग और वास्तविक आपात बराबर रहे परन्तु यदि आय की असमानता को दू करना है तो प्रगतिशील कर लगाना उत्तम रहता है।

19.5.2 राजकोषीय आपात के वितरण की समस्या (Distribution Problem of Incidence): आपात के वितरण की समस्या का सम्बन्ध इस बात का पता लगाने से है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) को विशेषकर डेविड रिकार्डो का मत है कि 'कर का आपात संसाधनों के स्वामियों पर पड़ता है। "इस प्रकार उत्पति के साधन श्रम, पूंजी एवं भूमि के मालिक पर कर का भार पड़ता है। इससे पूर्व प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrate Economists) का मत है कि "कर कही पर क्यों नही लगाया जावे। उसका भार हस्तान्तरित होते हुए अंत में भूस्वामी पर जाकर ठहरता है।" इसे प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने "करापात क संकेन्द्रण" कहा है जो भूस्वामी की ओर जाता है। तत्कालीन स्थिति से देखते हुए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस

प्रकार के विचार कत तर्क संगत थे क्योंकि उद्योग, श्रमिक तथा कृषि मुख्य आधार थे। इन्ही पर करापात होता था परन्तु आज कई परिस्थितियां बदल चुकी है और समस्याएं भी अधिक जटिल हो गयी है। इस समय सरकर इस बात पर अधिक ध्यान देती है कि करापात का वितरण इस प्रकार हो कि "सामाजिक न्याय" प्राप्त किया जा सके। वर्तमान अर्थव्यवस्था में कोई व्यक्ति यह अध्ययन सना चाहे कि बिक्री कर को हटाकर कोई अन्य कर लगा दिया जावे तो इस परिवर्तन का देश की सम्पूर्ण जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह मालूम करना बहुत कठिन है । यदि ऐसा करना ही है तो देश के परिवारों को खण्डों में विभाजित करना होगा जो आय के स्तर आधारित होगा । इसके साथ ही साथ परिवार का आकर का बहुत ध्यान रखना कत महत्वपूर्ण होगा ।

19.5.3 भार प्रभाव (Burden Impact) :- यदि किसी अमुक कर के स्थान पर कोई अन्य कर लगाया जावे तो इससे बहुत से परिवारों की स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी हो जावेगी तथा बहुत से परिवार की स्थिति पहले की अपेक्षा खतम हो जावेगी। किसी परिवार पर इसका क्या आपात होगा, इसका मापन उसकी वास्तविक आय में होने वाले परिवर्तन से किया जा सकता है । वास्तविक आय मे दो कारणों से अन्तर आ सकता है। प्रथम तो यह है कि मूल्यों मे उतार/ चढ़ाव हो । किसी परिवार की खर्च करने योग्य आय अथवा प्रयोज्य आय (Disposable Income) को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :-

$$DRY = \frac{E - Ty}{P + TS} = \frac{Dy}{GP}$$

यहां DRY का अर्थ खर्च करने योग्य वास्तविक आय (Disposable Real Income) से है.

E का अर्थ आय या आमदनी (Earning) से है;

TY का अर्थ-आयकर (Income Tax) से है;

P का अर्थ कीमत स्तर (Price level) से है;

TS का अर्थ बिक्री कर (Sales Tax) से है;

DY खर्च करने योग्य मौद्रिक आय (Disposable Money Income) सें है;

GP का अर्थ कुल बाजार मूल्य (Gross Market Price) से है ।

इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण से मालूम होता है कि खर्च करने योग्य वास्तविक आय (Disposable Real Income) पर प्रत्यक्ष कर जैसे- आय का तथा परोक्ष कर जैसे बिक्री कर दोनों का प्रभाव पड़ता है।

प्रत्यक्ष करारोपण का आपात आय की तरफ बढ़ता है और आय कर (TY) प्रभावित होता है जबकि परोक्ष करों का आपात बिक्री कर (ST) पर पड़ता है जो कि व्यय का पक्ष है। इस प्रकार करों का आपात दोनो पक्षों पर: पड़ता है। इन प्रमुख आपातों के अतिरिक्त इनके कुछ अन्य प्रभाव भी

पड़ते हैं जो अर्थव्यवस्था के सामन्जस्य को प्रभावित करते हैं क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अर्थव्यवस्था का ही अंग है। अत: यदि उसकी स्थिति बदलती है तो समस्त अर्थव्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ेगा।

19.6 राजकोषीय आपात के विभिन्न रूप :

राजकोषीय आपात के निम्न रूप हैं :-

(अ) कर का आपात (Incidence of Tax)

(ब) व्यय के आपात (Incidence of Expenditure)

(स) बजट आपात (Incidence of Budget)

राजकोषीय आपात के उपर्युक्त रुपों की विस्तृत व्याख्या शीर्षक 19.6.1,19.6.2 एवं 19.6.3 में की गयी है ।

19.6.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करो के आपात :- कर के आपात का अध्ययन करते समय प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष कर इन दोनों के प्रभावों को देखते हैं।

प्रत्यक्ष कर में आय का एवं सम्मति कर मुख्य हैं। आय कर का प्रभाव वितरण पर अनुकूल रूप में पड़ता है। दूसरे शब्दों में धनी एवं निर्धन के बीच की खाई कम हो जाती है अर्थात् समाज के दोनों वर्गो के बीच आय की असमानता कम हो जाती है परन्तु हम आय को ध्यान से देखें तो हमें दो प्रकार की आय प्राप्त होती है, प्रथम मजदूरी से होने वाली आय तथा दूसरी , पूंजी एवं लाभसे प्राप्त आय।

यदि पूंजी से अर्जित आय पर कर लगाया जाता है तो यह अधिक प्रगतिशील कर लेगा। यदि मजदूरी की आय पर कर लगाया जाता है इसका प्रभाव प्रतिगामी पड़ता है क्योकि मजदूरी से आय प्राप्त करने वाले लोग प्राय: निर्धन व्यक्ति होते हैं। सम्पत्ति कर (Wealth Tax) अधिक प्रगतिशील माने जाते हैं क्योंकि इस प्रकार के कर केवल धनी व्यक्तियों पर ही अपना आपात डालते हैं।

परोक्ष करों में बिक्री का एवं उत्पादन कर मुख्य हैं। यदि विलासिता वस्तुओं पर उत्पादन कर अथवा बिक्री कर लगाया जाता है इस प्रकार का कर प्रगतिशील (Progressive) माना जाता है जैसे-सिगरेट, शराब आदि । परन्तु यदि आवश्यक वस्तुओं पर उत्पादन कर अथवा बिक्री कर लगाया जाता है तो यह प्रतिगामी (Regressive) होता है जैसे-चीनी, चाय, साबुन आदि पर लगाया गया कर जो आम उपभोग की वस्तुएँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि करों का आपात करों को प्रगतिशील रूप दे सकता है तथा वितरण को प्रतिगामी रूप दे सकता है।

19.6.2 व्यय के आपात :

सार्वजनिक व्यय को अनेक प्रकार जैसे- क्रय मूल्य एवं अनुदान में विभाजित किया जाता है। सरकर का वह व्यय है जिसके बदले में उसको कुछ प्राप्त होता है। उसे "क्रय मूल्य" (purchase price) कहते हैं। जैसे उदाहणार्थ सरकर कत सा धन अपने कर्मचारियो को वेतन एवं भत्ते के रूप

भुगतान करती है परन्तु इसके बदले में उसे कर्मचारियों की सेवाएं प्राप्त होती है। इसी प्रकार सरकर अपने काम के लिए बाजार सें वस्तुएं खरीदती है। इसके बदले में सरकर के सेवाएं प्राप्त होती है जैसे- सरकारी कर्मचारियों की वर्दी के लिए कपड़ा खरीदना फिर इसकी सिलाई करवाना। इस प्रकार के सरकारी व्यय के बदलें में कपड़ा व्यापारी एवं दर्जी की सेवाएं प्राप्त होती है। इस प्रकार के किए गए व्यय का प्रत्यक्ष आपात (Direct Incidence) कम पड़ता है और परोक्ष आपात (Indirect Incidence) अधिक पड़ता है। सरकार द्वारा कपड़ा खरीदने से इसका उत्पादन बढ़ता है जिसके फलस्वरूप इसके मालिक को अधिक लाभ मिलता है तथा उत्पादन अधिक बढ़ जाने से पहले की अपेक्षा अधिक लोगो को रोजगार मिलता है।

"अनुदान व्यय" वह व्यय है जिसके बदलें में सरकार को कुछ नही प्राप्त लेता है जैसे निर्धन सहायता, बाढ़ पीड़ितों को सहायता, विधवा पेन्शन, बेकारी भत्ता आदि । यह केवल एक तरफ भुगतान है। इस प्रकार के अनुदान व्यय से अनुदान पाने वाले व्यक्तियों को बहुत लाभ होता है। यदि सरकर धनिक वर्ग पर कर लगाकर इसकी धनराशि को निर्धन वर्ग पर व्यय करे तो इस प्रकार के "कर एवं व्यय" दोनों का आपात" वितरण व्यवस्था को ठीक करने में सहायता करेगा। इस प्रकार कर एवं व्यय दोनों का आपात समाज में फैली हुई आय की असमानता या धन की विषमता को दूर कर देंगे।

इसके विपरीत यदि सरकार आम जनता पर का लगाकर इससे प्राप्त होने वाली धनराशि को धनिक वर्ग पर व्यय किया जाता है तो दोनों प्रकार के करापात (प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर आघात) वितरण व्यवस्था को और विषम करेगा अर्थात इस प्रकार का वितरण धनिक एवं निर्धन वर्ग के बीच की दूरी और बढ़ेगी।

कभी-कभी सरकार के उस व्यय अर्थात् क्रय मूल्य में भी अनुदान का अंश सम्मिलित होता है। यदि सरकार कल्याण को ध्यान में रखकर बाजार में वस्तुएं एवं सेवाएं प्रचलित मूल्यों की तुलना में अधिक मूल्य पर खरीदती है तो इस क्रय मूल्य मे भी अनुदान विद्यमान होगा । ऐसे व्यय का आपात अधिक महत्वपूर्ण एवं दूरगामी होगा तथा इस प्रकार के व्यय वितरण पर अधिक स्पष्ट प्रभाव पड़ेगा। इसके प्रमुख उदाहरण कृषि वस्तुओं के क्रय मूल्य, सरकारी कर्मचारियो के वेतन एवं भत्ता इत्यादि हैं। इन व्ययों के आपात प्राप्त कर्त्ता की दृष्टि से लाभदायक होते हैं। परन्तु अन्तिम निर्णय तभी दिया जा सकता है जब हमें यह मालूम हो जावे कि इन व्ययों को पूरा करने के लिए किस प्रकार की कर प्रणाली को अपनाया जा रहा है।

इन दोनों का मिला-जुला आपात निम्न तीन प्रकार के परिणाम प्रदान कर सकता है :-

(i) प्रगतिशील परिणाम

(ii) प्रतिगामी परिणाम

(iii) आनुपातिक परिणाम।

वितरण की दृष्टि से प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष करों का मिला-जुला आपात उपर्युक्त तीन प्रकार के परिणाम प्रदान कर सकता है। यदि दोनों का मिला-जुला आपात प्रगतिशील परिणाम

(Progressive resule) प्रदान करे तो इसका अभिप्राय: यह हुआ कि "समानता" बढ़ रही है। इसी प्रकार यदि दोनो का मिला-जुला आपात प्रतिगामी परिणाम (Regressive result) प्रदान करे तो इसका अभिप्राय : यह हुआ कि "विषमता" बढ़ रही है। यदि दोनों का मिला-जुला आपात आनुपातिक परिणाम (Propostional result) प्रदान में तो इस का अभिप्राय : यह हुआ कि "तुलनात्मक स्थिति पूर्ववत्" है अर्थात् तुलनात्मक स्थिति में कोई परिवर्तन नही हो रहा है।

लाभ कभी आपात को ध्यान में रखकर सार्वजनिक व्यय की निम्नलिखित दो प्रमुख श्रेणियां हैं-

(i) सरकर का वह व्यय जिसका लाभकारी आपात पूरे समाज पर समान रूप से पड़ता है। इसमें किसी के साथ कोई भेदभाव नही अपनाया जाता है जैसे- रक्षा व्यय, प्रशासनिक व्यय, न्याय व्यवस्था पर व्यय आदि।

(ii) सरकार का वह व्यय जिसका लाभकारी आपात कुछ विशेष व्यक्तियों पर पड़ता है जैसे- विधवा पेन्शन, बेकारी भत्ता, बाढ़ पीड़ित सहायता, आदि।

कभी-कभी सरकर सामाजिक कार्यों पर इस प्रकार भी व्यय करती है जिसका आपात कुछ व्यक्तियों पर तो विशेष रूप से पड़ता है तथा पूरे समाज पर सामान्य रूप से पड़ता है जैसे चिकित्सा, शिक्षा, शोध कार्य पर किया जाने वाला व्यय, आदि।

4.6.3 बजट आपात : बजट आपात के अन्तर्गत हम इस बात पर विचार करेंगे कि यदि सरकर अपने किसी कार्य को पूरा करने के लिए कर और व्यय में एक साथ परिवर्तन से तो अर्थव्यवस्था पर इसका आपात क्या होगा। सरकर "कर एवं व्यय" के विभिन्न संयोगों का प्रयोग कर सकती है जिससे वास्तविक व्यय में परिवर्तन लाया जा सके तथा जनता से सरकार को "वास्तविक संसाधनों के हस्तान्तरण" में परिवर्तन लाया जा सके। कर व्यवस्था एवं व्यय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वितरण पर जो प्रभाव पड़ता है उसे "सन्तुलित बजट आपात" (Balanced Budget Incidence) कहते हैं। दूसरे शब्दों में कर एवं सार्वजनिक व्यय दोनों के आपात का एक साथ अध्ययन किया जाना चाहिए। इसे ही "सन्तुलित बजट आपात"' कहते हैं।

इस प्रकार सार्वजनिक व्यय का आपात भी करों के आपात से कम व्यापक नही है। कर एवं सार्वजनिक व्यय का आपात का मिश्रण प्रभाव होगा जो "विभेदित आपात" के समन होगा। साथ ही साथ ऐसी स्थिति होने पर मुद्रास्फीति एवं मुद्रा संकुचन का दुष्परिणाम भी नही मालूम पड़ेगा। यह बात एक सामान्य व्यक्ति के समझ में भी आ सकती है कि सरकार का कोई काम करने के लिए कर एवं सार्वजनिक व्यय दोनों का सहाय लेना पड़ता है और उस "सार्वजनिक क्रिया का आपात" कर और व्यय आपात का मिश्रण होता है। ऐसी स्थिति में करों एवं व्ययों के आपात को अलग-अलग करके देखना सम्भव नही होगा। इसीलिए हम सम्पूर्ण राजकोषीय आपात की बात करते हैं जो अधिक व्यावहारिक तथा युक्तिसंगत है।

19.7 अभ्यास प्रश्न :

1. राजकोषीय आपात का अर्थ बताते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करो।
2. करापात के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए इसके होने वाले प्रभावों को स्पष्ट करो
3. 'व्यय आपात' के आशय को स्पष्ट करो तथा इसके होने वाले प्रभावों को समझाइये।
4. 'सन्तुलित बजट आपात' से आप क्या समझते हैं। इसकी सविस्तार व्याख्या कीजिए।

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तके :

Bhatia H.J. Public Finance, Vikas Publishing House Pvt. Ltd, New Delhi.

Musgrave R.A. & Musgrave F.B. : Public Finance in Theory and Practice, Fifth Edition, Mc Graw-Hill Book Hill Book Company.

Musgrave R.A. The Theory of Public Finance Mc GrawHill Book Company,

माहेश्वरी के०एल० : राजस्व सिद्धांत एवं व्यवहार, एस० चांद एण्ड कम्पनी, नयी दिल्ली, वार्ष्णेय जे० सी० राजस्व, साहित्य भवन, आगरा

19.9 शब्दावली :

आपात (Incidence): इसके अन्तर्गत केवल करों के प्रत्यक्ष द्राव्यिक भार का अध्ययन किया जाता है। जो व्यक्ति कर भार सहन करता है उस पर ही कर का आपात या करापात होता है। उदाहरणार्थ यदि सरकार दुकानदार पर 100 रुपये का कर लगाती है और दुकानदार वस्तुओं की कीमत बढ़ाकर क्रेताओं से 100 रुपये वसूल कर लेता है तो कर का आपात अथवा करापात क्रेता पर पड़ेगा।

आधात (Impact) : करारोपण के उपरांत जो व्यक्ति अथवा संस्था सरकार को सर्वप्रथम कर देती है उस पर ही कर का आघात (Impact) अथवा कराघात होता है। उदाहरणार्थ यदि सरकार दुकानदार पर 100 रुपये का कर लगाती है और वह दुकानदार से 100 रुपये वसूल करती है तो कर का आघात अथवा कराधात दुकानदार यानी विक्रेता पर होगा।

राजकोषीय आघात (Fiscal Incidence) : सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण के करण मुद्रा की अदला बदली से देश में आय अथवा उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है तथा इसमें परिवर्तन होते हैं। इन्ही सब भारों अथवा परिवर्तनों को राजकोषीय आपात" कहते हैं।

सन्तुलित बजट आपात (Balanced Budget Incidence) **:** सरकर द्वारा कर एवं सार्वजनिक व्यय के विभिन्न संयोग के प्रयोग करने से वास्तविक व्यय में परिवर्तन लाया जा सकता है तथा वास्तविक संसाधनों के हस्तान्तरण में परिवर्तन लाया जा सकता है। इस प्रकार कर व्यवस्था

एवं व्यय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वितरण पर जो प्रभाव पड़ता है, इसे "सन्तुलित बजट आपात" कहते हैं।

प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) : प्रत्यक्ष कर वह कर है जिसका कराघात (Impact of Tax) एवं करापात (Incidence of Tax) एक ही व्यक्ति पर पड़ता हो। उदाहरणार्थ आयकर, सम्पत्ति कर आदि।

परोक्ष कर (Indirect Tax) : परोक्ष कर वे कर हैं जिसका निवर्तन (shifting) सम्भव होता है। कर किसी व्यक्ति पर लगाया जाता है तो कर का भुगतान कोई अन्य व्यक्ति करता है। दूसरे शब्दों में ये वे कर हैं जिनका कराघात किसी व्यक्ति पर तो करापात किसी अन्य पर होता है। उदाहरणार्थ बिक्री कर, मनोरंजन कर आदि।

प्रयोज्य आय (Disposable Income) : प्रयोज्य आय किसी व्यक्ति अथवा संस्था की वह आय है जो सब प्रकार के प्रत्यक्ष करों को चुकने के बाद खर्च करने के लिए (या स्वयं के उपभोग के लिए) शेष रह जाती है। यह निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट किया गया है :-

$$DI = Pi - Dt$$

यहां DI का अर्थ- प्रयोज्य आय (Disposable Income) से है;

Pi का अर्थ वैयक्तिक आय (Personal Income) से है; तथा

Dt का अर्थ प्रत्यक्ष कर (Direct tax) से है।

इस प्रकार जो आय वैयक्तिक आय (Pi) में से प्रत्यक्ष कर (Dt) जैसे आय कर, सम्पत्ति कर आदि घटाने पर व्यक्ति के पास शेष रहती है, वही प्रयोज्य आय (Dt) कहलाती है।

इकाई 20

भारतीय सार्वजनिक वित्त- I
Indian Public Finance- I

रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 भारत में कराधान की भूमिका

20.3 भारतीय कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताऐं

20.4 भारतीय कर प्रणाली का ढाँचा

20.5 सारांश

20.6 शब्दावली

20.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.8 अभ्यासों के हल (उत्तर)

20.0 उद्देश्य

इस इकाई तथा अगली इकाई मे आपको भारतीय कर-ढाँचा इसके क्रमिक विकास, योगदान, प्रकृति तथा प्रवृत्ति के समग्र स्वरूप से अवगत कराया जाएगा।

इस इकाई के पठन पश्चात आप

* भारतीय सार्वजनिक वित्त के सन्दर्भ में कर के योगदान को समझ सकेंगे;
* भारतीय कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं की अभिव्यक्ति कर सकेंगे; एवं
* भारतीय कर प्रणाली के सम्पूर्ण ढाँचे का विवेचना कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

इन पाठ्यक्रम में 10 सें 14 तक की इकाइयों के खण्ड 3 में आपने करामात व कराघात के कुछ सैद्धान्तिक पक्षों का अध्ययन पूरा कर लिया है। इस इकाई तथा अगली इकाई में हम भारतीय कर-ढाँचे का विवेचन करेंगे तथा इसके सैद्धांतिक पक्षों की वास्तविकताओं से सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए वर्तमान कर-ढाँचे का मूल्यांकन करेंगे।

आप अनेक अवरोध, जिनके अन्तर्गत भारतीय कर प्रणाली कार्यरत है, तथा भारतीय कर प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे। इस इकाई में आपको भारत के कराधान ढांचे के सम्पूर्ण स्वरूप का चित्र भी प्राप्त होगा।

इस सन्दर्भ में, कुछ बिन्दुओं का वर्णन इस इकाई में किया जा रहा है तथा कतिपय बिन्दुओं का स्पष्टीकरण अगली इकाई में किया जायेगा। प्रस्तुत इकाई में उन्हीं जानकारियों का समावेश है जिनका विवेचन इस इकाई के बिन्दुओं का प्रमुख आधार है।

20.2 भारत में कराधान की भूमिका

किसी भी देश की सरकार को साधारणतया आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा; बाह्य आक्रमण सें संरक्षण तथा समाज के हित सम्पादन हेतु अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों की व्यवस्था हेतु साधनों की सदैव ही आवश्यकता होती है। सार्वजनिक-व्यय के भार-वहन हेतु कर, परम्परागत रूप से वित्त व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण साधन रहा है।

भारत के साहित्य में आदि-काल से ही चाहे वह पुरातन-कालीन महर्षि मनु का युग हों, चाहे कालान्तर से कौटिल्य का मौलिक प्रयास (उनका प्रमुख मूल ग्रन्थ अर्थशास्त्र) हो; स्मृतियां हो, चाहे मुगल कालीन मूल-संरचना हो- कर का उल्लेख हर युग में है। प्रत्येक युग में, प्रतीक स्वरूप कुछ कर अथवा समस्त कर किसी न किसी प्रकार कर-व्यवस्था में कर के निम्नलिखित स्वरूप विद्यमान थे - (अ) भूमि-राजस्व, (ब) सम्पत्ति कर, (स) व्यवसाय कर (द) सीमा शुल्क (य) विक्रय कर एवं (फ) चुंगी। कराधान में सम्यकता (करदेय क्षमता) का सर्वदा ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि समय-समय पर इसके लोक-अपवाद भी रहे हैं यथा औरंगजेब द्वारा जजिया कर वसूल करना।

सन् 1857 ई. में सैनिक विद्रोह एवं ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी से युद्ध के परिणामस्वरूप भारत के ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन जाने के पश्चात भी यहाँ के कर प्रणाली में कोई बहुत गम्भीर रूपान्तरण नहीं हुआ। सर 1935 के "गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्ट" द्वारा ही वर्तमान कर प्रणाली की नींव पड़ी। इसके अन्तर्गत अनेक कर लगें और कर रोपड़ के अधिकारों को संघ सरकार तथा अर्द्ध स्वायत्तशासी प्रान्तीय सरकारों के मध्य वितरित किया। ऑटोनियेयर आयोग के पंच निर्णय में इन प्रावधानों की समर्पित कर दी थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति तथा संविधान के लागू होने के कारण परिवर्तनों ने कर प्रणाली के मूल स्वरूप को इतना प्रभावित नही किया जितना कि इसके तत्व पक्ष को। सरकार के आर्थिक दर्शन तथा सोच में आमूल चूल परिवर्तन हुआ जिसका प्रभाव कर प्रणाली पर भी आवश्यक रूप सें पड़ा। पूर्णतया, एक प्रशासक तथा शोशण करने वाली सरकार के स्थान पर एक लोक-कल्याणकारी सरकार की प्रतिस्थापना हुई जो कि अर्थव्यवस्था के नियोजित आर्थिक विकास समर्पित थी। इस सबके कारण अब सरकार की गतिविधियों में बहुत ही प्रसार एवं विस्तार की आवश्यकता हुई, परिणामस्वरूप साधन गतिशीलता के प्रयत्नों में भी तदरूप गतिशीलता परिलक्षित हुई, इसका अधिकांश भार करारोपण पर ही पड़ा। इस प्रकार यद्यपि कर का ढाँचा तो न्यूनाधिक उसी स्वरूप का रहा परन्तु इन करों की राजस्व क्षमता का पूर्ण उपयोग किया गया। करों के राजस्व महत्व को

कर-नीति ने कुछ सीमा तक अवरूद्ध किया । सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में उपलब्ध जानकारी निम्नलिखित है।

विकास के प्रारम्भिक चरणों में एक अर्थव्यवस्था के विकास हेतु जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की पहल को महत्व दिया जाता हो, सरकार को दोनों मदों-बजट में पूंजीगत मद तथा दैनिक चालू व्यय मद पर विशाल राशी व्यय करनी पड़ती है । प्रथम मद व्यय' राशी इसलिए अधिक होनी है क्योंकि न्यूनतम भौतिक आधारभूत सेवाओं की आपूर्ति व्यवस्था करनी पड़ती है । निर्धनता उन्मूलन, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाऐं प्रदान करना तथा शिक्षा प्रदान करने को वरीयता दी जानी है। दूसरे मद पर भी व्यय राशि अधिक है क्योंकि आधारभूत उद्योगों को मौलिक ढाँचा प्रदान करने हेतु 'विपुल धनराशि विनियोजित की जानी है ताकि विकास प्रक्रिया गतिशील हो सकें। यह सार्वजनिक व्यय निम्नलिखित कोषों के सामूहिक वित्तीयकरण द्वारा सम्भव हो पाता है। (अ) कर (ब) राजस्व प्राप्तियां, (स) ऋण, (द) बाह्य इतर ऋण उपलब्धियाँ जैसे विदेशी सहायता (य) हीनार्थ वित्त प्रबन्धन । भारत में व्यावहारिक रूप से कोष संग्रहण हेतु उपर्युक्त वर्णित सभी साधनों में केवल करारोपण को छोड़ कर, अनेक अवरोध तथा (सीमा) कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । इतर कर राजस्व प्राप्तियों में ब्याज प्राप्तियां, सार्वजनिक उद्यमों से लाभ, कुछ अंशों में वस्तु तथा सेवा आपूर्ति से प्राप्त राशियां ही मुख्य रूप से सम्मिलित की जाती है । ब्याज प्राप्तियों का जब उसी शीर्षक के अन्तर्गत होने वाले व्यय के सन्दर्भ में आकलन एवं विवेचन करते हैं तो शत होता है कि यह प्राप्तियां ऋणात्मक हो जाती है प्राय : राज्य द्वारा (वसूल) प्राप्त की गई ब्याज दर कम होती है और उसी मद पर सरकार द्वारा (चुकाई जाने वाली) दी जाने वाली व्याज दर ऊँची होती है । राजकोष को सार्वजनिक उपक्रमों से कभी भी विशेष प्राप्तियां नहीं होती बल्कि यह प्राय राजकोष पर भार ही होते हैं । यहां इनके भार होने के कारणों का उल्लेख करना आवश्यक नही है । भारत में, वस्तु तथा सेवाओं की आपूर्ति राजस्व प्राप्ति का कभी भी महत्वपूर्ण माध्यम नहीं हो सकता, किसी भी वस्तु तथा सेवा की पूर्ण लागत (वसूलना) प्राण करना इसलिए अनुचित होगा कि जन साधारण, जिसे सामान्यतः आवश्यकता है इस भार को वहन नही कर सकेगा। इस प्रकार इतर कर-राजस्व प्राप्तियों का साधन गतिशीलता में योगदान कुल मिलाकर प्राय न्यूनतम ही रहता है।

ऋण (उधार) की स्वयं की अनेक समस्या होनी हैं। प्रारम्भ में ही, यदि ऋण राशि को ऋण ब्याज दर की अपेक्षा ऊंची ब्याज दर पर विनियोजित नहीं किया जाएगा तो ऋण पर ब्याज दायित्व ही कालान्तर में-बहुत अधिक हो जाएगा और इसे सुव्यवस्थित करना संभव नहीं होगा। ऋण जाल में फंसने अथवा लकुवा मारने की भयावह स्थिति अभी भारत की नहीं हुई है। इस ओर मनन करनें योग्य अन्य बिन्दु भी हें। बाह्य ऋण संग्रहण क्षमता ऋणदाताओं की इच्छा तथा स्वीकृति पर ही निर्भर करती है कि वह किन शर्तों पर ऋण प्रदान करने को तैयार हो । घरेलू ऋण से प्राप्ति वित्त-बाजार में उपलब्ध कोषों तक ही सीमित रहती है।

विदेशों से प्राप्तियाँ, यथा विदेशी ऋण आदि की भी अपनी सीमाएं होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय बाजार के उतार चढाव तथा शोषण से सुरक्षित रहने हेतु भारत ने प्राय अपनी बन्द अर्थव्यवस्था का विकला ही सोचा है। परिणामस्वरूप विदेशी विनियोजन अधिक नहीं हो गाया है। आर्थिक सुधार

कार्यक्रमो के अपनाने के बाद अब भारत ने अपने द्वार. खोल दिए हैं। सहायता का जहां तक प्रश्न है भारत को सहायता मिली भी है परन्तु कटु सत्य यह है कि इस सहायता की राजनैतिक कीमत चुकानी पड़ती है और भारत इन कीमतों को चुकाने मैं अन्य मनस्क है। इसी लिये भारत को नगण्य सहायता मिली। थोड़े समय के लिए 1975 - 1985 के दशक में विदेशों से मुद्रा भेजने के कारण भारत इस विशाल मुद्रा प्रवाह से बहुत ही लाभान्वित हुआ (मुख्य रूप सें मध्य पूर्व में कार्यरत भारतीयों के धन राशि भेजने के कारण) परन्तु यह पैट्रोल आयात के बढ़ते हुए मूल्य को (प्रति नियंत्रित) सन्तुलित नही कर सका। पैट्रोल की अत्यधिक मूल्य वृद्धि से ही दोनों स्थिति उत्पन्न हुई।

हीनार्थ वित्त प्रबन्धन जनित समस्याऐं स्पष्ट ही है। प्राय थोड़ी-थोड़ी मात्रा तो इसे हानि रहित मान लिया जाए क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को लाभदायी है परन्तु इसकी अधिक मात्रा मुद्रा प्रसार के ताण्डव नृत्य को अर्थव्यवस्था के विनाश हेतु निमंत्रण देना है।

उपर्युक्त विवेचन सें यह पूर्णतया स्पष्ट है कि भारत में साधन गतिशीलता के भार वहन करने की क्षमता केवल करो के कंधों में ही है और वास्तव में उन्होंने इसे सिद्ध भी किया है। कराधान पर होने वाली समस्त व्यय राशि का आकलन तो कभी नही किया है। (अतिरिक्त भार को सम्मिलित करते हुए) परन्तु ऐसा विश्वास है कि यह सापेक्ष रूप से कम ही है। कर की भी सीमा होनी चाहिए, परन्तु इसके भी कोई प्रमाण नहीं है कि भारत में अभी तक ऐसी भी सीमा आ चुकी है।

साधन गतिशीलता के प्रमुख उद्देश्य के अतिरिक्त भी भारत में अन्य कार्यों हेतु करो का बहुत अधिक महत्व है। विकासोन्मुख अर्थव्यवस्थाओं का नकसे के कथानानुसार जिसे उसने "निर्धनता का कलुषित चक्र" कहा को तोड़ने हेतु विनियोजन वृद्धि कर पूंजी निर्माण की ऊंची दर ही परम्परागत उपचार है। भारत में इस महान उत्तरदायित्व का भार सार्वजनिक क्षेत्र के कंधों पर ही है। परन्तु यह क्षेत्र स्वयं, अपेक्षित अभीष्ट उद्देश्यों की उपलब्धि में अभी महत्वपूर्ण योगदान नहीं कर सका है। करों के माध्यम से ही निजी क्षेत्र आवश्यक उत्प्रेरक प्रदान कर उपभोग व्यय में कटौती कर विनियोजन वृद्धि को प्रोत्साहन दिया जाता है। करों से एक ओर महत्वपूर्ण भूमिका की अपेक्षा प्रत्याशित हैं; इनके द्वारा सामाजिक रूप से कम उत्पादक क्षेत्रों से अधिक उत्पादक क्षेत्रों की ओर विनियोजन प्रक्रिया का दिशा निर्देशन किया जाता है। जबकि भारत की करों प्रणाली में प्रत्यक्ष करों में इन उद्देश्यों की पूर्ति के गुणों का पूर्ण समावेश है । परन्तु निम्नलिखित कारणों से इनकी महत्वपूर्ण भूमिका के प्रभावों में शिथिलता भी आई है।

करों सें प्रत्याशित अन्य उद्देश्यों की पूर्ति है- सम्यकता का प्रादुर्भाव करना। भारत में आय (और सम्पत्ति की) वितरण की भीषण विषमता पायी जाती है, इसके निराकरण हेतु प्रगतिशील कर प्रणाली राजकीय व्यय में निर्धनों के अधिक अनुकूल पायी जाती है। दुर्भाग्यवश, इस सम्बन्ध कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु उपलब्ध तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय कर प्रणाली में अभीष्ट की उपलब्धि हेतु कुछ और करना शेष है।

बोध प्रश्न 1

1. भारत में सरकारी व्यय वास्तव में बहुत ऊँचे क्यों प्रत्याशित हैं?

2. सरकारी व्यय के वित्तीयकरण के कौन-कौन से साधन हैं?

3. विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु भारत में करों की क्या भूमिका रही है?

20.3 भारतीय कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं

भारत की कर प्रणाली तथा उसके मूल्यांकन के प्रयास करने के पूर्व यहां की सामाजिक एवं आर्थिक तथा कानूनी कमियों का, जिनके अन्तर्गत यह कर प्रणाली प्रचलित है, का ज्ञान परमावश्यक है। ऐसी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित है।

i) भारत में एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था है जहाँ प्रति व्यक्ति आय सन्तुष्टि के स्तर से बहुत नीची ही कही जा सकती है। यह उन निरीह निर्धनों की प्रतिशत बहुत अधिक है जिनको जीवनयापन हेतु भोजन की भी अनिवार्य-सुविधा (अवसर) बहुत अंशों में, उपलब्ध नही है। और वह भी जो निर्धनता की रेखा से ऊपर है, अधिकांशत: इस श्रेणी में नहीं आते जो अपना दैनिक जीवन-यापन पश्चात कर रोपण के उद्देश्य से कर प्रदान करने के निर्धारित आदर्श लक्ष्य की पूर्ति की क्षमता-क्षेत्र में आते है, क्योंकि उनकी आय आधारभूत आवश्यकतापूर्ति से तनिक ही ऊपर है। इस प्रकार वास्तव में यह सत्य भारत में कर लगाने हेतु कुल जनसंख्या के एक बहुत ही छोटे भाग को कर लगाने हेतु छोड़ पाती है। विवश होकर सरकार को उन पर भी कर लगाना पड़ता है जिन पर कोई भी कर नही लगना चाहिए।

ii) एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में अल्प विकास के वह अनेक पक्ष है जो किसी भी कर प्रणाली के सहज सम्पादन को बहुत ही अधिक कष्ट--प्रद बना देते है। बहुत अंशों में अदल-बदल प्रणाली के विद्यमान रहने के कारण मजदूरी भुगतान तथा अन्य कार्य सम्पादन विमुद्रीकृत क्षेत्र का आकार सहज रूप में बहुत बड़ा पाया जाना है। मजदूरी के भुगतान हेतु वस्तु, सेवाओं के बदने वस्तु, तथा वस्तु एवं सेवाओं के लिए वस्तु तथा सेवाओं का ही प्रयोग वृहदरूप में गाया जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था का एक भाग करारोपण के क्षेत्र से महज में मुक्त रहता है। लेखा-जोखा प्रणाली का पूर्णतया लोप होना है अथवा इस प्रकार की पुरातन स्वरूप में प्राप्त होती है कि वह कर-प्रशासन के एक विकट समस्या बन जाती है। कर के नियम सम्पूर्ण संसार में ही बहुत उलझन प्रधान है और विशेष रूप में भारत के सन्दर्भ में तो यह और भी कंटकाकीर्ण हो जानते है; सामान्य नागरिक के लिए उनका समझ पाना और उनकी अनुपालन और भी टेढ़ी हो जाने है, सामान्य नागरिक के लिए उनका समझापाना और उनकी अनुपालन और भी टेढ़ी खीर है। तकनीकी रूप से कर प्रशासन भी अभी पिछड़ा हुआ ही है; आधुनिक विकसित तकनीक का यह सीमित (अल्प) प्रयोग ही कर पाता है और प्रशासन तथा कर-संरचना क्षेत्र में शोधकार्य आधुनिक व्यवस्था में अति अल्प ही हो पाया है.।

iii) कभी जभी यह जानते हुए भी यह प्रक्रिया अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिगामी होगी, अधिक से अधिक धन राशि कर के रूप में प्राप्त करने हेतु बहुत अधिक दबाव के कारण साधन गतिशीलता का प्रश्रय लेना ही पड़ता है। अल्पकालीन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राय: दीर्घकालीन उद्देश्यों की अवहेलना करनी पड़ती है। भारतीय कर प्रणाली बहुत लोचदार भी नहीं है, और साधन-

वृद्धि की सतत आवश्यकता जो राजनैतिक कारणों से भी उत्पन्न होती है इस पेचीदा कर प्रणाली को बारम्बार अनेक परिवर्तन कर और भी अधिक पेचीदा बना देती है।

iv) भारत में सरकार द्वारा तीन स्तरों पर कर लगाये जाते हैं; केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार/संघ शासित राज्य सरकार तथा स्थानीय निकाय। स्थानीय निकाय, जिनका कार्य-क्षेत्र राज्य सरकार द्वारा निर्धारित स्थानीय सीमाऐं मात्र ही होती हैं को छोड़कर, एक स्तर पर कर-नीतियां एक दूसरे का (खण्डन) विरोधाभास अथवा दूसरे स्तर पर अवश्य ही विसंगतियुक्त होंगी। कुछ राज्यों में उसी स्तर पर समानान्तर सरकारों की प्रतियोगी गतिविधियां भी पायी जाती हैं।

v) कर-प्रवचन (चोरी) भी भारत में बहुत अधिक है। अन्य देशों से इसकी आनुपातिक तुलना बहुत ही जोखिम भरा है; किन्तु सम्भवतया यह उल्लेख करना निर्विवाद रूप से सत्य है कि इसका अंश जितना सरकार सहन कर सकती है उससे कहीं अधिक है। वास्तव में किसी सीमा तक तो कर नीति ही इसकी दोषी है और किसी सीमा तक कर प्रशासन की निर्बलता।

vi) उपयुक्त कर प्रशासन सुनिश्चित करने की एक राजकीय विधा (मशीनरी) है। अनुपयुक्त कर प्रशासन पर अंकुश एक दृष्टि रखने हेतु राजस्व अंकेक्षण होता हे जिसे भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक सम्पादित करता है तथा अनुपयुक्तता का परीक्षण (छानबीन) सार्वजनिक लेखा समिति द्वारा किया जाता है।

vii) न्यायपालिका कर रोपण की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाने हेतु अपना निर्णय दे सकती है। विभिन्न कर संगठनों के मध्य प्राय कानूनी परिवादों के निष्पादन हेतु अर्द्ध-न्यायिक समिति का गठन होता है, परन्तु इसके विफल होने पर न्यायपालिका अधिग्रहण कर लेती है। न्यायपालिका पर कार्य भार की अधिकता तथा न्यायिक निर्णय होने में अधिक समय लगने के कारण कर प्रशासन तथा कर दाता को अनेक उलझन का सामना करना पड़ता है।

बोध प्रश्न 2

1. एक विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था होने के कारण भारत में कराधान की कौन-कौन सी सीमाऐं हैं?
2. कराधान की शक्तियों के (विभाजन) वितरण का कर-नीति पर का प्रभाव पड़ता है?
3. कर प्रशासन पर कौन-कौन से नियंत्रण हैं?

20.4 भारतीय कर प्रणाली का ढाँचा

तालिका 20.1 में भारत के कर-ढाँचे की 30 वर्ष की अवधि की वृहद रूप-रेखा प्रदर्शित की गई हैं और इसकी मुख्य प्रवृत्तियों को प्रकट करती है (अ) प्रत्यक्ष करो के अंश की बढती हुई प्रवृत्ति,(ब)अप्रत्यक्ष करों की घटती हुई प्रवृति (स) गैर कर राजस्व का बढ़ना

तालिका 20.1

केन्द्र तथा राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की राजस्व प्राप्तियाँ

(बिलियन में)

सकल कर राजस्व	1990-91	2000-01	2010-11	2013-14(B.E.)
(अ) सकल कर राजस्व	876.27	3009.72	12500.67	19919.95
प्रत्यक्ष कर	142.67	811.63	5087.19	7736.66
अप्रत्यक्ष कर	733.6	2198.09	7413.48	12183.29
(ब) गैर कर राजस्व.	181.3	734.43	3417.17	3778.53

वास्तव में, प्रत्यक्ष कर अंश ही नहीं अपितु अप्रत्यक्ष कर के प्रत्येक अंग में गिरावट आई है। भारत में 1990-91 में 16% प्रत्यक्ष करों से आ रहा था जो की बढ़ कर 2010-11 में 40% तक जा पंहुचा है। गैर कर राजस्व में भी बढोतरी हुई है जो 1990-91, 17% था बढ़ कर 2010-11 में 21% हो गया । कर प्रणाली की यह प्रवृत्ति भारत को विश्व के अन्य देशों से विलग करती है। हिनरिच ने संकेत दिया है कि संक्रमण काल में विकासोन्मुख देशों में जब विकास प्रक्रिया गतिशील होती है तो भूमि पर आधारित प्रत्यक्ष करों से भार अप्रत्यक्ष करों की ओर हट जाता है (विदेशी व्यापार क्षेत्र में विशेष रूप से) तत्पश्चात् प्रत्यक्ष करों की ओर। यह परिकल्पना अनेक अध्ययन एवं अभिनव प्रयोग से सत्य सिद्ध हुई है; इसमें मसग्रेव (1969) राजा चैल्लैहा 1971 एवं 1986 के अध्ययन भी सम्मिलित हैं। बाद के अध्ययन में चालिहा वर्णन करते है कि, "भारतीय अनुभव के आधार पर यह तथ्य प्रकट किया जा सकता है कि प्रत्यक्ष करों का अंश अथवा आय-कर,' प्रति व्यक्ति आप वृद्धि होने के साथ-साथ बढ़ेगा और यह क्रम तब तक सत्य रहेगा, जब तक कि प्रति व्यक्ति आय एक विशिष्ट स्तर तक न पहुंच जाए और तत्पश्चात् इसमें तीव्रतर गति से वृद्धि होती रहे।" उत्पाद शुल्क के इतिहास में 1 मार्च 1985 से MADVET लागु किया गया । न्यूनतम वैकल्पिक कर की शुरुवात 1997-98 में वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने की।

महत्व की दृष्टि से कृषि पर प्रत्यक्ष करों में शोचनीय गिरावट आई है। राजस्व संग्रहण की दृष्टि से कृषि-गत आय-कर कभी भी विशेष राजस्व प्रदायक नहीं रहा। यह परम्परागत करों में से एक कर था; प्रतीत होता है कि इसका लोप हो जाएगा। समग्ररूप में कृषि पर प्रत्यक्ष कर धन सकल राजस्व का केवल 0.94 प्रतिशत मात्र ही है। वास्तव में अनेक अध्ययन अपनी जानकारी में और भी आगे बढ़ गए है और यह दावा करते हैं कि कुछ अर्थों कृषि क्षेत्र पर अभी बहुत कम कर लगा है परन्तु एक मात्र अध्ययन (लिप्टन : 1978) इस प्रकार का भी है जो इस विचार का प्रतिरोध करता है। कृषि पर प्रत्यक्ष कर का पुनर्गठन करने का प्रस्ताव भी 'Committee on Taxation of Agricultural Wealth and Inc Income (के.एन. राज की अध्यक्षता में) का प्रस्ताव भी इसी के

समान है; सन् 1972 में कृषि जोत पर कर लगाने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया है। मूल प्रस्ताव के सुधार भी निर्णय निर्माताओं ने स्वीकार नहीं किये।

भारत में चुंगी शुल्क से प्राप्त राजस्व वास्तव में राजकोषीय सोचों पर निर्भर नही है। यह तो व्यवहार में प्रयुक्त विदेशी व्यापार नीति की उप-उत्पाद मात्र ही है। जब तटकर अवरोधों को आवश्यक रूप से वास्तविक नियंत्रण से अधिक संगतियुक्त माना जाने लगा, अथवा जन प्रयुक्त तटकर अवरोधों से न्यून मूल्य-लोच के आधात पर आयतों में वृद्धि की जाती है तो चुंगी शुल्क से राजस्व में वृद्धि होती है। जब खुले सामान्य अनुज्ञा पत्र के अन्तर्गत मदों में वृद्धि की जाती है तब भी यही परिणाम निकलते हैं।

20.1 तालिका में कर राजस्व से एकत्रित सकल राशि में राज्य तथा संघ प्रशासित राज्यों के प्रत्यक्ष रूप से बढ़ते हुए अंशों का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है; यद्यपि राज्य सरकारों द्वारा अलग से आरोपित करों का योग लगाने से एक संकेत मिल सकता है। उनके इस अंश का कुल कर-राजस्व में स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। प्रत्युत, यह निर्विवाद सत्य है कि सन् 1960 - 61 तथा सन् 2011-12 के अन्तर्गत राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित राज्यों के स्वयं के कर-राजस्व संग्रहण में कुल राजस्व-संग्रहण के सन्दर्भ में सीमान्त अभिवृद्धि हुई है जो कि लगभग 30 से 33 प्रतिशत है। इस सबके होते हुए भी यह निर्विवाद सत्य है कि कुल करों में जिनमें राजस्व लोच उच्चतर तथा जिनके व्यापक एवं विस्तृत आधार है, वे केन्द्र के ही समकक्ष है। राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित राज्यों की कर-संग्रहण की विकास-दर केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा उच्चतर है। इस सबसे यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि राज्य सरकारी ने संविधान द्वारा आवंटित आधारों का केन्द्र सरकार की अपेक्षाकृत अधिक कुशलता से उपयोग किया है। केन्द्र सरकार आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप सम्पत्ति तथा आय के बढ़ते हुए आकार के एक बहुत बड़े भाग पर कर लगाने में पूर्णतया अनिच्छुक था अथवा अयोग रहा।

राजस्व की दृष्टि से दो कर (i) निगम कर तथा (ii) चुंगी कर बहुत ही महत्वपूर्ण है तथा जिनका आर्थिक प्रभाव भी व्यापक रूप से पड़ता है, परन्तु सम्पूर्ण देश में इनसे सम्बन्धित विधिवत विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त नहीं हो सकने के कारण तालिका 20.1 कहीं भी इनका उल्लेख नहीं किया गया है। भारत मे इनका कराधान स्थानीय निकायों द्वारा होता है। निगम कर कम्पनीयों के लाभ पर लगाया जाता है तथा यह केंदीय सरकार राज्य में जहां कहीं भी चुंगी-कर लगाया जाता है वहां यह उन वस्तुओं विक्रय, उपभोग तथा उपयोग पर ही लगता है जिनका प्रयोग स्थानीय क्षेत्र विशेष में ही होता है। कुछ राज्यों ने इसे प्रवेश-शुल्क के नाम से भी प्रतिस्थापित किया है। वास्तव में कर के आधार में कोई परिवर्तन नही होता केवल अन्तर इसकी प्रशासनिक प्रयोग विधि में ही है। वस्तुओं के लाने ले जाने को नाकों पर भौतिक जांच पड़ताल कर चुंगी कर लगानों के स्थान पर खातों के लेखे जोखो के आधार पर ही, विक्रय कर की भांति प्रवेश-शुल्क वसूल किया जाता है। वास्तव में प्रवेश शुल्क राज्य के विक्रय-कर-विभाग द्वारा ही वसूल किया जाता है और इसकी शुद्ध आय को सम्बन्धित स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। अनेक कारणों से सम्पत्ति कर की पूर्ण गर्भित शक्ति तथा व्यापकता का तो अभी उपयोग भी नही हो पाया है जबकि अनेक आर्थिक

विश्लेषणकर्ता चुंगी कर के प्रयोग को पूर्णतया निषिद्ध करने के पक्ष में है क्योकि इसके माध्यम से राजस्व की प्राप्ति तो कम होती है परन्तु दोषों का प्रभाव व्यापक रूप से बढ़ता है। इस प्रकार इसके माध्यम से मुख्य उद्देश्य अधिक राजस्व की प्राप्ति नहीं होती है।

1991के बाद के कर सुधार

4. चैलाया समिति की सिफ़ारिशें

1991 में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करो की सरंचना का अध्ययन करने के लिए राजा जे चेलाया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन हुआ। जिसने सुझाव दिए

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करो की लोच में वृद्धि लाना तथा कर राजस्व व सकल घरेलू उत्पाद में प्रत्यक्ष करो की वृद्धि करना। व्यक्तिगत आयकरो को कम करना , आयकर छूट की एक उच्च सीमा बनाना। कंपनियों के कराधान की व्यवस्था पंजीकृत और अपंजीकृत फर्मों सभी पर 35 प्रतिशत का कर के एक फ्लैट दर निर्धारित करना और उनके बीच करो के अंतर को नष्ट करना तथा उनको युक्तिसंगत बनाना ।इसके अलावा, अधिभार ईंधन के विकास के लिए व्यापार कटौती को प्रभावित करने के लिए कॉर्पोरेट्स और प्रत्यक्ष करों और सीमा शुल्क के मामले में गैर कॉर्पोरेट्स पर कर को समाप्त कर जाना । बजट में प्रत्यक्ष कर प्रस्तावों का जोर देना व कर की दरों में स्थिरता की नीति को अपनाना। कर कानूनों के कर आधार , सरलीकरण को व्यापक करने , बुनियादी ढांचे के विकास और विशेष रूप से पूंजी बाजार को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना। बुनियादी ढांचे के विकास के लिए कर छूट के रूप में कर प्रोत्साहन को युक्तिसंगत बनाना।

अप्रत्यक्ष करों :

अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में दर में कमी, युक्तिकरण और प्रक्रियाओं का सरलीकरण करने की प्रक्रिया आगे बढ़ाना। सीमा शुल्क के शिखर स्तर पर 10 प्रतिशत अधिभार के उन्मूलन के साथ 35 प्रतिशत से नीचे पहुंचा दिया गया था। बजट भी सरकारों उत्तरोत्तर तीन साल के भीतर 20 प्रतिशत की एक उच्च दर के साथ कम से कम करने के लिए कर दरों को कम करने के लिए हल करने का सुझाव दिया। सूचना प्रौद्योगिकी और दूरसंचार क्षेत्र के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए, इन वस्तुओं पर शुल्क में 15 प्रतिशत तक कमी की बात की गयी ।बेसिक सीमा शुल्क कृषि वस्तुओं के एक नंबर के लिए ऊपर समायोजित किया गया। 2000-01 में एक समान दर 16 प्रतिशत सेनवैट (सेंट्रल वैल्यू एडेड टैक्स) को युक्तिसंगत बनाया गया था जो उत्पाद शुल्क संरचना आगे एक समान दर करने के लिए तीन विशेष उत्पाद शुल्क दरों (8 प्रतिशत , 16 प्रतिशत और 24 प्रतिशत) की 16 प्रतिशत की करने का सुझाव दिया ।राष्ट्रीय आपदा नामक एक अतिरिक्त कोष के लिए सिगरेट, पान मसाला, बीड़ी आदि पर आकस्मिक ड्यूटी लगाकर राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक कोष के लिए धन जुटाने की व्यवस्था की । फलों और सब्जियों पर आधारित खाद्य तैयारी पूरी तरह से उत्पाद शुल्क से छूट दी गई थी। जो पेट्रोल पर उत्पाद शुल्क को आगे और बढ़ाया गया था। कर योग्य सेवा के मूल्य में 5 प्रतिशत की दर से सेवा कर की कवरेज पंद्रह नई सेवाओं का विस्तार भी शामिल किया गया था।

1. सेवा कर

सेवा कर की शुरुवात 1994-95 में टेलीफ़ोन, साधारण बीमा, और शेयर दलाली पर लगाया गया और इसे अन्य सेवाओ में भी बढ़ाया गया 2011-12 में सेवा कर से 97579 करोड़ का राजस्व प्राप्त हुआ।

2. केन्द्रीय बिक्री कर सुधार

सीएसटी, निहित इनपुट टैक्स क्रेडिट वापसी के साथ लगाया जा रहा हे जो वैल्यू एडेड टैक्स के साथ असंगत है। केन्द्रीय बिक्री कर कानून में संशोधन से 3% से 4% से पंजीकृत डीलरों के बीच अंतर राज्य बिक्री के लिए केन्द्रीय बिक्री कर की दर में कमी लाने के लिए 1 अप्रैल 2007 से लागु किया गया था। इस संशोधन के माध्यम से, फार्म- डी के खिलाफ रियायती सीएसटी दर पर सरकारी विभागों द्वारा इंटर- स्टेट खरीद की सुविधा वापस ले लिया गयी है। इस संशोधन के बाद, सरकार को अंतर राज्य बिक्री पर सीएसटी की दर वैट / बिक्री कर की दर के रूप में ही किया जाएगा। केन्द्रीय बिक्री कर की दर आगे 2 % से 3% तक कम हो गयी है।

3. वस्तु एवं सेवा कर

वस्तु और सेवा कर - जीएसटी - एक राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं और सेवाओं के निर्माण, बिक्री और खपत पर एक व्यापक कर लेवी है। एक टैक्स क्रेडिट तंत्र के माध्यम से, इस कर आपूर्ति श्रृंखला में बिक्री या खरीद के हर चरण में मूल्य वर्धित वस्तुओं और सेवाओं पर एकत्र किया जाता है।

प्रस्तावित जीएसटी के तहत कर - दर नीचे आ जाएगी , कर संग्रह 5-6 गुना से वृद्धि होगी। करो की दरों में कमी होगी। 2007-2008 के केंद्रीय बजट के दौरान पी चिदंबरम, केंद्रीय वित्त मंत्री, द्वारा भारत में जीएसटी की शुरूआत के लिए एक रोड मैप तैयार करने की बात की गयी थी किन्तु अभी तक राज्यों में इसके लिए समान सहमति नहीं बन पाई है किन्तु भविष्य में यह लागु किया जाना प्रस्तावित है।

बोध प्रश्न

1. भारतीय कर ढांचे की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?
2. भारतीय कर-ढांचे की विशिष्ट प्रवृत्ति (विशेषता) क्या है?
3. चुंगी शुल्क से राजस्व किस आधार पर निर्धारित होता है?
4. कर-संग्रहण (वसूली) के सन्दर्भ राज्यों की समय रूप से सापेक्षिक उपलब्धि क्या है?
5. भारत में स्थानीय निकायों द्वारा कौन से दो महत्वपूर्ण कर लगाये जाते हैं?.

20.5 सारांश

भारत में बहुत समय पूर्व से ही करों के क्षेत्र में प्रत्यक्ष करों पर पूर्ण विश्वास के साथ निर्भरता पायी जाती है। इन करों का मुख्य आधार प्रारंभिक समय में स्थाई सम्पत्ति ही थी। परन्तु कालान्तर में कुछ अप्रत्यक्ष कर भी लगाये गए। यह वर्तमान कर-ढांचा विशेष रूप से अंग्रेजों की ही देन है;

तथा इसका विशेष श्रेय भारत सरकार के 1935 के अधिनियम को है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सार्वजनिक व्यय में हुई आशातीत वृद्धि के कारण करों का महत्व और भी बढ़ गया; साधन गतिशीलता हेतु प्रयुक्त अन्य माध्यमों की अपेक्षा करों मे कम लागत आने के कारण इनका महत्व और भी बढ़ गया। साथ ही इनसे बचता को प्रोत्साहित करने की आशा की जाती है; या साधन आबंटन में भी विशेष उपयोगी है तथा इनसे सम्यकता को भी प्रोत्साहन मिलता है। यद्यपि करों के माध्यम से बहुत से उद्देश्यों की व्यापक रूप से पूर्ति तो अवश्य हुई है परन्तु अन्य माध्यमों के समान करों को रहत अधिक सफलता नहीं मिली है।

भारत एक विकासोन्मुख देश है, यहां को कर प्रणाली को व्यापक रूप से प्रचलित सामान्य स्थितियों में ही कार्य करना है। इसके अन्तर्गत प्रतिव्यक्ति आय का न्यून होना, अल्प मुद्रीकरण, लेखा जोखों का अभाव, कर उत्तरदायित्व के सोच का -प्रभाव, दोषपूर्ण कर प्रशासन आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। भारत सरकार ने कर के विभिन्न आधारों को तीन भागों में आवंटित किया है, इनकी कर-नीति एक दूसरे से संगीत लिए हो आवश्यक नहीं है! कर की चोरी बहुत व्यापक है।

कर प्रशासन की कार्यक्षमता की देख-रेख तथा इन पर अंकुश (लगाए रखने की भी संस्थाऐं हैं। यद्यपि उनकी प्रभावशीलता विवादास्पद है।

भारत के कर ढांचे मैं चार महत्वपूर्ण लक्षण विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने है: प्रत्यक्ष करों के अंशदान में निरन्तर गिरावट- व्यक्ति रूप से तथा समय रूप से, दोनो ही कर राजस्व मैं- कृषि क्षेत्र मैं राजस्व का गिरना हुआ महत्व तथा चुंगी शुल्क मै राजस्व का बढता हुआ महत्व तथा समग्र कर-वसूली में राज्य तथा केन्द्र-शासित राज्यों के अंश में धीमी बुद्धि।

स्थानीय निकायों द्वारा दो महत्वपूर्ण कर लगाये जाते है- सम्पति कर तथा चुंगी कर

20.6 शब्दावली

साधन गतिशीलता (Resource Mobilization) : - विभिन्न प्रावधानों द्वारा जैसे कर तथा सरकारी ऋण, निजी क्षेत्र सें सार्वजनिक क्षेत्र को कोषों का हस्तान्तरण करना साधन गतिशीलता कहलाता है।

चालू खाता (Current Account) :- यह किसी व्यापारिक इकाई के लाभ-हानि खाते के समान ही होता है, जिसमें वर्ष भर की आय तथा बजट-गत उन प्रविष्टियां का लेखा-जोखा होता है जिनके अतिरिक्त अन्य उत्तरदायित्व नही होगे।

पूंजीगत खाता (Capital Account) : बजट का वह भाग होता है जिनकी स्थिति वित्त-वर्ष के अन्त में उल्लेखित की जाती है और जो आगामी उत्तरदायित्व के द्योतक होती है आयों का लेखा जोखा होता है

इतर-कर राजस्व प्राप्तियां (Non-tax revenue receipts) :- करों के अतिरिक्त वह प्राप्तियां होती हैं जिनकों चालू खाते (अथवा राजस्व) में सम्मिलित किया जाता है।

उधार (Public Debt) :- इसमें सरकार द्वारा किए गए उन समस्त कणों को सम्मिलित किया जाता है जिनकों व्यय करने हेतु सरकार लेगी है । रिजर्व बैंक आफ इंडिया से लिया ऋण या जोकि हीमार्थ वित्त प्रबन्धन की श्रेणी में आता है। जिसका सृजन अनिवार्य रूप से रिजर्व बैंक आफ इंडिया ही करता है- सम्मिलित नहीं किया जाता है।

एक संवृत्त अर्थव्यवस्था (A closed Economy) :- वह है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा पूंजी गतिशीलता का अभाव होता है।

विदेशों से धन राशि भेजना (Foreign Remittances) : - रुपया में परिवर्तन करने हेतु विदेशी मुद्रा के रूप में प्राप्त धन राशि जो प्राय: विदेशों में कार्यरत भारतीयों द्वारा भारत में भेजी जाती है और जिसका भुगतान बिना किसी परिणाम-व्यय के किया जाता है- विदेशों से धन राशि भेजना कहलाता है।

पूंजी-निर्माण (Capital Formation) :- निर्धारित अवधि प्राय: एक वर्ष के अन्तर्गत जो घोषित पूंजी में अभिवृद्धि होती है उसे पूंजीनिर्माता कहते हैं।

प्रति व्यक्ति आय (Per-capital income) :- राष्ट्रीय आय में उस देश की जनसंख्या का भाग देने से जो आय आती है उसे प्रति व्यक्ति आय कहते हैं।

निर्धनता रेखा (Poverty-line) :- न्यूनतम भरण पोषण की आवश्यकता हेतु आधारभूत जीवन यापन हेतु आय की एक धुंधली सी गणना निर्धनता रेखा कहलाती है।

वस्तु विनिमय (Barter System) :- जहां बिना मुद्रा प्रयोग के वस्तु तथा सेवाओं की वस्तु तथा सेवाओं का परस्पर आदान-प्रदान होता है।

विमुद्रीकृत क्षेत्र : - अर्थव्यवस्था का वह भाग जहां मुद्रा का कोई योगदान नहीं होता।

कर पालना - कर दाताओं द्वारा स्वयं ही अपने दायित्व अनुसार कर का भुगतान करना।

कर-लोच (Elasticity of Tax) :- कराधार में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कर राजस्व के आकार में होने वाला परिवर्तन।

कर चोरी (Tax Evasion) : - (प्राय: कर आय की अवधारणा को लिए होता है) कर दाता द्वारा कर दायित्व का भुगतान न करना कर चोरी है। यह गैर कानूनी, कराधार को छुपाना तथा कर-दायित्व को प्रकट नहीं करना गैरकानूनी और कर की चोरी है।

प्रशुल्क अवरोध (Tariff-Barriers) : - साधारणत: यह चुंगी शुल्क ही है जिनको विदेशी व्यापार में प्रयुक्त कर वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि कर आयात -व्यापार के आकार को कम किया जाता है।

भौतिक नियंत्रण (Quota Restrictions) - वह नियंत्रण विधाऐं है जिनको विदेशी व्यापार में प्रयुक्त कर विदेशी व्यापार के परिमाण को प्रत्यक्ष रूप से, नियंत्रित कर दिया जाता है जैसे अभ्यांश।

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Bhargava R.N. (1977) The Theory and working of Union Finance in India (5th Edn.) Chaitanya Publishing-Allahabad.
2. Chelliah, R.J. (1969) Fiscal policy in Underdeveloped Coun-tries (2nd Edn.) George Allen and Unwin (India) Bombay.
3. Machiraju H.R. (1977) Fiscal Policy for Equitable Growth – Macmillan; Delhi
4. Patil J.F (1983), Taxation for Development in Maharasta, Continental Prakashan; Pune.
5. Sarma, J.V.M and M. Govinda Rao (1988) Financing Public Sector Development Expenditure in Selected Countries: India, Asian Development Bank : Manila
6. Hinrichs (1966) A General Theory of Tax Structure Change during Economic Development, Harward Law School, Massa- chusetts.
7. Musgrave, R.A (1969) Fiscal System, Yale University Press, New Haven, Connecticat.
8. Chelliah R.J. (1971) Trends in Taxation in Developing Countries. IMF Staff Papers Vol.18.
9. Chelliah R.J. (1986) Changes in Tax Revenue Structure : A case Study of India . A Paper presented at 42 nd Congress of International Institute of Public Finance at Athens, Greece.
10. Lipton, Michael, (1978) Transfer of Resources from Agricultural to Non Agricultural Activities; The case of India in J.F.J.

    Toya (ed) Taxation & Economic Development.

20.8 अभ्यासों के हल

बोध प्रश्न 1

1. यह आशा की जाती है कि सरकारी व्यय अधिक होते हैं और वास्तव में भारत में ऊंचे हैं भी क्योंकि (अ) आधारभूत सामाजिक आवश्यकताऐं जैसे स्वास्थ्य तथा सस्ती दर निर्धनों का शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है। तथा (ब) सार्वजनिक क्षेत्र में भारी उद्योगों को आधारभूत ढांचा

प्रदान करने हेतु भारी विनियोजन करना है। कोषों के विभिन्न साधन हैं (अ) कर, (ब) इतर 2. कर-राजस्व प्राप्तियां (स) उधार (द) बाह्य-इतर-क्या-प्राप्तियां तथा (य) हीनार्थ-वित्त-प्रबंधन।

2. भारतीय कर प्रणाली द्वारा साधन गतिशीलता का मुख्य उद्देश्य वृहदरूप से पूर्ण हो गया है। बचतों को प्रोत्साहन तथा विनियोजनों का पुन: वितरण आशिक रूप से प्राप्त हुआ है। कर प्रणाली के कारण फिर भी किसी न किसी प्रकार सम्यकता में बहुत कम सुधार हुआ है।

बोध प्रश्न 2

1. प्रतिबन्ध है : जनसंख्या के अधिकांश भाग पर पर्याप्त कर नहीं लग पाना- प्रति व्यक्ति कम आय होने के कारण है।

2. राज्य सरकार तथा केन्द्र के मध्य समन्वय हेतु कुछ किए बिना ही भारतीय संविधान द्वारा कर रोपण की शक्ति का केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विभिन्न राज्य सरकारों के मध्य वितरण सें केन्द्र-नीतियां प्रतियोगितात्मक परस्पर विरोधी, तथा विसंगतिपूर्ण हो सकती हैं।

3. कर प्रशासन पर तीन अवरोध हैं: नियंत्रक एवं महालेखा निरीक्षक द्वारा राजस्व अंकेक्षण, सार्वजनिक लेखा समिति तथा उच्चतर न्याय-पालिका,

बोध प्रश्न 3

1. प्रमुख लक्षण हैं : (अ) सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का गिरता हुआ अंश (ब) कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर के अंश का गिरना (स) चुंगी शुल्क के अंश का बढ़ना (द) सकल कर संग्रहण राशि में राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित राज्यों के अंश में वृद्धि

2. सकल-कर राजस्व में प्रत्यक्ष करो के अंश में गिरावट की प्रवृत्ति भारतीय कर प्रणाली की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है।

3. विदेशी व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त से सम्बन्धित नीतियां- सामूहिक रूप से (महत्वपूर्ण) बड़े निर्णायक है।

4. कर संग्रहण में केन्द्र की अपेक्षा राज्य सरकारों की उपलब्धियों श्रेष्ठतर रही हैं।

5. सम्पत्ति कर तथा चुंगी कर।

इकाई 21

भारतीय सार्वजनिक वित्त- II

रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 प्रमुख कर

21.2.1 प्रत्यक्ष कर

21.2.2 अप्रत्यक्ष कर

21.2.3 सामान्य

21.3 कराधान की प्रवृत्तियां

21.4 वर्तमान प्रवृतियां

21.5 सारांश

21.6 शब्दावली

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.8 अभ्यासों के हल

21.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में भारतीय कर प्रणाली का वृहद-स्वरूप प्रस्तुत किया था जिसमें इसका संक्षिप्त इतिहास, प्रमुख लक्षण तथा ढांचे का दिग्दर्शन कराया था। इस इकाई में अब हम कुछ महत्वपूर्ण कर तथा कर प्रणाली के अन्य पक्षों के सन्दर्भ में कर प्रणाली का विषद विवेचन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन पश्चात आपको भली प्रकार ज्ञात हो जाएगा :

* भारत में प्रमुख करों वर्णन एवं उनकी संगणना,
* उपर्युक्त करों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवेचन ,
* कराधान की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन, तथा
* कुछ आधुनिक विकास का उल्लेख

21.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत भारत के प्रमुख करों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, इसमे आपको. इन करों के प्रमुख बिन्दुओं को स मझाने का प्रयास किया गया है। भारत में इन प्रमुख करों की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों की भी व्याख्या की गई है। अन्त में, कर निर्धारण के क्षेत्र में कुछ आधुनिक विकासों का भी उल्लेख किया जायेगा ताकि कर सुधारों की दिशा का संक्षेप मे स्पष्ट संकेत मिल सके। जहां कहीं आवश्यक होगा वहां सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं का भी उपर्युक्त व्याख्याओं को स्पष्ट करते समय ध्यान रखा जायेगा।

21.2 प्रमुख कर

लगाये जाने वाले करों को वृहदरूप से दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। जबकि इन दो प्रकार के करों की परम्परागत विशिष्टता को अब कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है फिर भी कर के आधार पर अब भी एक प्रकार का भेद किया जाता है। यदि कर का निर्धारण किसी वैध-व्यक्ति की आय अथवा सम्पदा (सम्पतियों) के आधार पर किया जाता है तो इसे प्रत्यक्ष कर समझा जाएगा जबकि वह कर जो वस्तुओं के सौदे के आधार पर यथा उत्पादन तथा विक्रय, पर किया जाता है तो इसे अप्रत्यक्ष कर की श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा। इन्हीं दो वृहद समूहों के अन्तर्गत अब हम प्रमुख करों की विस्तृत व्याख्या करेंगे।

21.2.1 प्रत्यक्ष कर (Direct Tax)

राजस्व के सन्दर्भ में भारत में केवल दो ही प्रमुख प्रत्यक्ष कर हैं, जिन्हें व्यक्तिगत आयकर तथा निगम आयकर के नाम से जाने जाते हैं। इन दोनों करों को ही केन्द्रीय सरकार लगाती (वसूल करती) है। केन्द्र द्वारा अन्य प्रत्यक्ष कर भी लगाये जाते हैं जैसे, उपहार कर परन्तु वह राजस्व की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। राज्य सरकारों को महत्वपूर्ण शक्तिशाली प्रत्यक्ष-कर आबंटित किए गए हैं जैसे कृषि आयकर, भू राजस्व तथा व्यवसाय कर (कुछ राज्यों ने स्थानीय निकायों को व्यवसाय कर लगाने हेतु अधिकृत कर दिया है), परन्तु व्यवहार में इन करों से प्राप्त राजस्व सापेक्षिक रूप से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

व्यक्तिगत आयकर (Personal Income Tax) - यह कर व्यक्तियों तथा अविभाजित हिन्दू परिवारों की गैर-कृषिगत आय पर ही नही लगाया जाता, बल्कि साझेदारी फर्म, एवं एकल--स्वामित्व-फर्म जैसे गैर-निगम उद्यमों पर भी लगाया जाता है। इसका ढांचा प्रगतिशील दर पर आधारित है परन्तु वर्तमान में 250000 रु० की राशि प्रतिवर्ष कर मुक्त है। वांछित क्षेत्रों में विशिष्ट रूप से बचतों को प्रोत्साहन देने हेतु कर से अनेक प्रकार की छूट का प्रावधान है। यही एक मात्र ऐसा प्रमुख कर है जिससे सम्यकता (समानता) तथा बचत जैसे गुरूतर भार को वहन करने को आशा की जाती है। लगभग 55 वर्ष से पूर्व निकोलास कैल्डोर को भारत सरकार ने कराधान के एक अध्ययन समूह का नेतृत्व करने हेतु आमंत्रित किया था। उनका मत था कि दोनों प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति व्यय कर द्वारा भली प्रकार की जा सकती है। तत्पश्चात् भारत सरकार ने व्यय कर उनके अनुसार

लगाया भी था परन्तु यह कैल्डोर द्वारा सुझाए गए रूप से पूर्णतया भिन्न था। यह कर भारत के लिए उपयुक्त नहीं समझा गया। फिर भी व्यय कर तथा आयकर के मध्य उठा विवाद अभी तक पूर्णतया मृत-प्राय नहीं हुआ है यदा कदा यह बीच-बीच बार-बार फिर सजीव हो उठता है। इस समस्या का परीक्षण करने हेतु कुछ ही वर्ष पूर्व भारत में आर० जे० चालिहा की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति हुई थी। इस समिति ने आयकर के स्थान पर व्यय कर को प्रतिस्थापित करने की अनुशंसा नहीं की। इस प्रकार आयकर का प्रत्याशित योगदान (अपरिवर्तनीय) पूर्ववत् ही रहा।

व्यवहार में, किसी प्रकार यद्यपि व्यक्तिगत आयकर आशाओं के अनुकूल उपयुक्त सिद्ध नहीं हुआ है। कुछ सीमा तक राजस्व के उद्देश्य तथा अन्य उद्देश्य सर्वदा एक दूसरे के पूरक ही रहे हैं। क्योंकि, यदि कर राजस्व अल्प मात्रा है तो यह आवश्यक रूप से स्पष्ट होता है कि या तो इसका आधार अत्यन्त संकुचित है अथवा इसका कर दाता पर कराघात महत्वहीन है; अथवा दोनों ही। हर अवस्था में इसके समग्र प्रभाव को आर्थिक निर्णयों के परिवर्तन हेतु प्रभावशाली बनाने में कर में कमी का आभास कुछ सीमा तक स्पष्ट होता है। व्यक्तिगत आयकर की यह सबसे प्रमुख समस्या रही है।

इसमें कुछ सुधार परलक्षित हुआ। तालिका क्रम सं 15.1 में भी इसके राजस्व महत्व की निरन्तर। गिरती हुई प्रवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है। आयकर अधिनियम मे किए अनेक परिवर्तन राजस्व में धारा-कारक ही सिद्ध हुए। राजस्व की आयगत-कर लोच इकाई के बराबर ही बनी रही जो कि प्रगतिशील कर के लिए बहुत ही कम है। इस कर की चोरी भी बहुत होती है।

यह सत्य है कि कर से छूट के रूप में बचतों का आकार (आन्तरिक/घरेलू बचत) बहुत अधिक है और इस सन्दर्भ में यह तर्क दिया जा सकता है कि इस क्षेत्र में आयकर नीति बहुत ही सफल रही है। परन्तु यह भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं है कि यह सब कुछ आय-कर की नीति की ही देन है अथवा अन्य तत्वों का योगदान। इन बढ़ी हुई बचतों हेतु चुकाई गई कीमत का त्यागे राजस्व (लोई अनुमान प्राप्त नही) से तुलना की जाए तो उसकी कीमत बहुत अधिक होगी। से, यदि उन्हीं परिणामों को प्राप्त करने हेतु वैकल्पिक नीतियों को भी विचाराधीन रखा जाये तो यह कीमत ऊंची ही होगी। यह घरेलू बचतें (आन्तरिक बचत) उन्हीं व्यक्तियों द्वारा की जाती है जो वास्तव में निर्धनता रेखा से ऊपर हैं; कर से मुक्त रहने के लाभस्वरूप जो बचत होती हैं सचमुच उन्होंने तो कर के प्रगतिशील (शायद उनसे भी अधिक) स्वरूप को ही नकार दिया।

आयकर अधिनियम निगम आय-कर (Corporate Income Tax) सन् 1961 के पूर्व आयकर द्वारा निगम (कम्पनी) तथा व्यक्ति के साथ एक सा ही व्यवहार किया जाता था। इसके अतिरिक्त निगमों पर कुछ विशिष्ट कर और लगा दिया जाता था जिसे निगम आयकर के नाम से पुकारा जाता था। तत्पश्चात निगमों पर करारोपण पूर्णतया दूसरा ही रूप धारण कर चुका है और इसी के परिणामस्वरूप निगम-कर के वर्तमान रूप की परिणति हुई है।

---

1. कृपया देखिए D. Walker "The Direct Indirect Tax Problems : Fifteen years of controversy". Public fiancé fiancé, Vol. 10, P.P 153-77.

अब यह आयकर. अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निगमों के लाभ पर लगाया (संगणित) गया कर है। कुछ उन देशों की भांति जहां निगम कर तथा व्यक्तिगत निर्धारण करने की एकीकृत प्रणाली प्रचलित है और जहां व्यक्तिगत

कर का उत्तरदायित्व निर्धारित करते समय निगम द्वारा पूर्व में चुकाये गए कर का लाभ दिया जाता है, उस प्रकार भारत में पूर्व प्रदत्त कर का करदाता को व्यक्तिगत रूप से कोई लाभ नहीं दिया जाता है।

तालिका 16

केन्द्र तथा राज्य की देनदारियां (सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में)

	2010-11	2000-01	1990-91	1989-90	1980-81
केन्द्र की घरेलु देनदारियों	48.51	50.64	48.28	47.79	32.38
केन्द्र की बाहरी देनदारियां	3.58	8.73	11.31	13.15	9.01
केंद्र की कुल देनदारियां	52.08	59.36	59.59	60.94	41.39
राज्य की कुल देनदारियां	23.46	27.29	21.86	21.89	17.9
केंद्र व राज्य की कुल देनदारियां	61.95	64.94	57.54	56.91	38.93
केंद्र व राज्य संयुक्त देनदारियां	65.53	73.67	68.85	70.06	47.94

वर्तमान में प्रत्यक्ष करों में सर्वाधिक राजस्व निगम आयकर से ही प्राप्त होता है। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में व्यक्तिगत कर की तुलना इससे कम ही राजस्व प्राप्त होता था परन्तु अल्पकाल में ही व्यक्तिगत आय-कर की अपेक्षा इससे अधिक राजस्व प्राप्त होने लग गया। परन्तु इस सबसे यह आशय कदापि नहीं निकलता कि इसकी राजस्व क्षमता बहुत अच्छी रही है वास्तव में, इसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती जा रही है। सर्वप्रथम, आधा राजस्व तो राजकीय उपक्रमों से ही प्राप्त है, जो साधन गतिशीलता का सच्चा स्वरूप नहीं है. । द्वितीय; सार्वजनिक उपक्रमों में भी मुट्ठीभर तेल उपक्रमों का विशालतम योगदान रहा है। इन तेल उपक्रमों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमत चुकाने तथा घरेलू (आन्तरिक) बाजार में तेल की बहुत ऊंची कीमत वसूलने के कारण ही इतने विशालकाय लाभ प्राप्त होते हैं। यह अनुकूल स्थिति बहुत समय तक नही बनी रह सकती और कभी न कभी (देर-सबेर) यह विशालकाय लाभ समाप्त (लुप्त) हो जाएंगे। निजी क्षेत्र के उपक्रमों से राजस्व-प्राप्ति साधारणत एक सी रही है। इस प्रकार निगम कर से उच्चतर-राजस्व प्राप्ति के अवसर पूर्णतया धूमिल होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

दोनों ही प्रकार से, निरपेक्ष रूप में, तथा राजस्व की आय-लोच के रूप में; कोई भी स्वाभाविक रूप से निगम आयकर की इस निकृष्ट उपलब्धि का कारण अवश्य ही जानना चाहेगा। राजस्व की आय लोच का ब्यौरा आयकर में कर के आधार पर, तथा कर का आधार राजस्व के रूप में यह प्रकट करता है कि कर आधार राजस्व के रूप बहुत ऊंचा है परन्तु राजस्व की आय-लोच बहुत नीची है। इस सबसे यह अर्थ निकलता है कि निगम लाभों में वृद्धि राष्ट्रीय आय के अनुपात में भी नहीं बढ सकी है। निगम क्षेत्र के सापेक्षिक धीमे विकास के कारण तथा व्यापार के अन्य क्षेत्रों में भी कम लाभदायकता निगम-क्षेत्र के कारण ही रही है। निगम आयकर शायद स्वयं ही व्यापार में दूसरे क्षेत्र की स्थिति हेतु उत्तरदायी है। यह स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है कि निगम कर आयोजन तथा मुद्रा-प्रसार के संयुक्त प्रभाव के कारण इस भयंकर अतिकर-रोपण के परिणामस्वरूप ही निगम लाभों पर आघात पहुंचा है।

निगम आयकर से सम्बन्धित दूसरी समस्या लाभों पर दोहरे कर लगने की है; जिसका रूझान ऋण-पूंजी की ओर है, इसका प्रभाव विनियोजन तथा अन्य उद्देश्यों पर भी पड़ता है। चूंकि अंश पूंजी के लाभांशों पर जो कर लगता हें वह निगम आयकर के रूप मे आय का ही एक भाग है तथा प्राप्त कर्ता के रूप में व्यक्तिगत आय पर आयकर देना पड़ता है। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि कर प्रणाली में इस प्रकार देय लाभांश में भेदभाव बरता जाता है। क्या यह इस प्रकार का है अथवा नहीं, यह तो वाद-विवाद का विषय है और अकाट्य तो कुछ भी नहीं है। वास्तव में, भारत में निगम क्षेत्र का भुगतान अनुपात फिर भी बहुत कम है। इसी से सम्बन्धित यह तर्क भी दिया जाता है कि लाभांश पर दो बार कर लगाया जाता है। निगम आयकर के अन्तर्गत ब्याज के भुगतान को निगम क्षेत्र में घटाये जाने वाले लागत-व्यय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है; ऋणात्मक पूंजी तथा अंशपूंजी पर व्यय परिणामत: इस प्रकार कम हो जाता हैं। साथ ही इस प्रकार पूंजी के दो स्त्रोतों पर विभेदात्मक व्यवहार की छाप छोड़ता है। पूंजी के दो स्त्रोत हैं-. ऋण तथा अंश। जबकि यह सत्य हो सकता है; वर्तमान वर्षो में चढ़ते हुए पूंजी-बाजार में (अंश बाजार में) यह एक महत्वपूर्ण सोच पक्ष चाहे न हो।

विनियोजन पर निगम आय कर का प्रभाव एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु है। कोई भी कर जो पूंजी-प्रदा को घटाता हो विनियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उसी समय ऐसी विनियोजन छूट का भी प्रावधान है जिसके कारण कर का प्रभाव अचल (स्थाई) पूंजी-निर्माण पर, कम हो जाता है। हास नियमों की संरचना भी इसी प्रभाव हेतु होती है। मुद्रा प्रसार की अवधि में प्रतिस्थापन लागत के स्थान पर मूल कीमत पर हास काटने से विनियोजनों पर कुठाराघात होता है। और वह निरुत्साहित होते है। इस प्रकार ऐसे अनेक आयाम है जो कर के विभिन्न प्रावधानों के कारण विनियोजनों को प्रभावित करते हैं, परन्तु इनका कुल मिलाकर प्रभाव अनिश्चित ही होता है।

इस कर की सबसे गम्भीर समस्या यह है कि किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु (कर) अधिनियम बनता है और तत्पश्चात अनेक अभीष्टों की उपलब्धि हेतु इसमें अनेक प्रावधानों का अन्तर मिश्रण कर दिया जाता है। "जिन कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की उपलब्धि पर जोर दिया जाता है वह हैं, राजस्व की उत्पादकता में वृद्धि करना, औद्योगिक विकास की पुन: संरचना, एकाधिकारों पर

प्रतिबन्ध, क्षेत्रीय विषमताओं में सुधार, तथा ग्रामीण विकास का प्रोत्साहन। इसके परिणामस्वरूप, निगम क्षेत्र के संदर्भ में राजकोषीय नीति का व्यापक उद्देश्य धूमिल होता जा रहा है और सम्बद्ध कर-कानून भी पेचीदा होता जा रहा है।' (शर्मा तथा राव (1988) पृष्ठ 27)

21.22. अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax) :- आपके विगत इकाई के अध्ययन से जैसे अवगत हुआ कि भारत मैं अप्रत्यक्ष करों पर साधन गतिशीलता का भर बढ़ता ही जा रहा है। यह स्वाभाविक ही है कि अप्रत्यक्ष करों से सम्बद्ध विभिन्न विषयों के महत्व में भी तदरूप अभिवृद्धि हो। उसी क्रम में आपको सर्वप्रथम उन महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष करों का संक्षिप्त विवरण, उनसे सम्बन्धित विशिष्ट विषय, तथा उन विषयों का जो अप्रत्यक्ष करों से सामान्य रूप से सम्बन्धित है विषद विवेचन किया जायेगा।

तीन महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष कर हैं, (i) केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, (ii) सीमा शुल्क, तथा (iii) विक्रय कर। राज्य स्तर पर लगाए जाने अन्य अप्रत्यक्ष कर भी है (उदाहरणार्थ राज्य उत्पाद

(शुल्क) जिनसे महत्वपूर्ण राजस्व प्राप्त होता है। उपरोक्त उल्लेखित तीन अप्रत्यक्ष कर अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अप्रत्यक्ष करों से संग्रहीत सकल राजस्व का 80 प्रतिशत भाग साधारण रूप से इन्हीं करों से प्राप्त होता है।

केन्द्रीय उत्पाद शल्क (Union Excise Duty) :- मूलरूप से यह उत्पादन पर लगा एक कर है जिसका भार अन्ततोगत्वा उपभोक्ता हो पर पड़ता है। इसका ढांचा बहुत ही पेचीदा है क्योंकि यह अनेक करों से सम्बन्धित है: जैसे उत्पाद शुल्क, विशिष्ट उत्पाद कर, विक्रय कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद कर (तम्बाकू, चीनी तथा वस्त्र) अन्य अतिरिक्त शुल्क तथा विशिष्ट वस्तुओं पर विशिष्ट उपकरण आदि। प्रायोज्य दर के साथ-साथ अनेक दरें प्रयुक्त की जाती हैं; किसी-किसी विशिष्ट अवसर पर तो वस्तु समूह के आधार पर कर लगाया जाता है, कहीं उत्पादन की प्रणाली के अनुसार तो कही उत्पादित इकाइयों के आधार पर, कहीं वस्तु के अन्तिम उपयोग पर तो कहीं कर निर्धारण का कोई और ही आधार है। यह स्वाभाविक ही है कि कर-ढांचे का सरलीकरण तथा विवेकीकरण एक महत्वपूर्ण समस्या है; कर से सम्बन्धित और महत्वपूर्ण प्रश्न है इस कर की न्यून-लोच, आगतों पर कर, कर की चोरी, तथा मूल्य सम्मिलित कर का प्रतिस्थापन आदि

बहुत समय तक इस कर की राजस्व लोच सकल घरेलू उत्पाद के सन्दर्भ में एक गम्भीर समस्या रही (एक से नीचे)। यह प्रवृत्ति मूलत कर ढांचे में आरम्भ से ही विद्यमान है क्योकि इस कर का अधिकांश भाग अनेक विशिष्ट उपकरों को लगाने से प्राप्त होता है। इसके परिणामस्वरूप जब तक समय-समय पर दरों में तदरूप परिवर्तन नहीं किया जाता वस्तुओं के मूल्य परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

2. *देखिये तपस कुमार सेन (1987) "Inflation Accounting and Corporate Income Tax National Institue of Public Finance and Policy, New Delhi"*

वास्तव में इस सबका हल इसी मैं अन्तर्निहित है कि समस्त उपकरों को मूल्यानुसार उपकार में परिणीत कर दिया जाए, परन्तु प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण यह मूल्यानुसार कर निर्धारण हेतु अभी तक कोई कदम नहीं उठाया गया है (अल्प बीजक करण के कारण चोरी)। यदि मूल्य सम्मलित वस्तु कर का उत्पादन शुल्क के स्थान पर वृहद स्तर पर हो जाए तो समस्या इतनी गम्भीर नहीं होगी जैसी कि मूल्य सन्निहित कर द्वारा होती है, परिभाषा मात्र से ही यह मूल्य अनुसार कर की ध्वनि देता है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अन्तर्गत अनेक औद्योगिक आदा तथा अन्य मध्यस्थ वस्तुओं पर कर लगाये जाते है। सिद्धान्त रूप में तो जहाँ बहुस्तरीय उत्पादन प्रणाली है वहां सर्वप्रथम तो कर उत्पादन प्रक्रिया पर ही लगाया जाता है, वस्तु को निर्मित स्वरूप में आने तक तो उपभोक्ता मूल्य में बहुत अभिवृद्धि हो जाती है तथा जब तक कर लगता रहेगा कर से प्राप्त राजस्व में वृद्धि होती ही रहेगी। यह केवल इसी लिए ऐसा होता है कि पिछले किसी भी स्तर पर लगा हुआ कर उत्पादक को दूसरे स्तर पर कर-लागत का मिश्रित स्वरूप लागत ही हो जाता है और मूल्य में दूसरे उत्पादक तक पहुंचते-पहुंचने वृद्धि हो जाती है और कभी-कभी तो वस्तु के मूल्य से अधिक उस पर लगे हुए कर की ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त, आदा पर करारोपण से विभिन्न प्रकार के रिसाव को प्रोत्साहन मिलता है जिससे अनावश्यक रूप से मूल्य स्तर में वृद्धि हो जाती है।' इन सभी कारणों से आदाओं पर तथा अन्य मध्यवर्ती वस्तु पर कर लगाने को निषिद्ध करना चाहिए। फिर भी यदि, प्रशासनिक रूप से इन आदाओं तथा मध्यवर्ती वस्तुओं पर कर लगाना सुविधाजनक है तो भी कभी-कभी वस्तुओं का आदा तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के रूप में पृथक कर इनका विभाजन अत्यन्त कठिन हो जाता है (उदाहरणार्थ, खंडसारी, जौ कि एक उपभोक्ता वस्तु है, परन्तु मिष्ठान केन्द्र तथा अन्य खाद्य-उत्पादनों का आदा ही है), मूल्य सन्निहित कर ही इस समस्या का एक मात्र हल हैं; रिसाव प्रभाव से मुक्त हो प्रत्येक स्तर पर करारोपण सम्भव है, बैट प्रणाली का अध्ययन जिसका भारत में अभी श्री गणेश ही हुआ है, मोडवेट खण्ड 21.4

उत्पाद-शुल्क की चोरी भी एक गम्भीर समस्या है, "National Institute of Public Finance" के अध्ययन तथा नीतियों से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि कर-चोरी का आकार बहुत बड़ा है। इन अध्ययनों से यह भी ज्ञात होता है कि उत्पादक इन करों की' चोरी हेतु किन-किन माध्यमों (विधियों) का प्रयोग करते हैं। उत्पाद-शुल्क के स्थान पर मोडवेट (मूल्य सन्निहित कर प्रणाली) को प्रतिस्थापित करने का मुख्य उद्देश्य कर चोरी को रोकना भी है, जैसा कि आप खण्ड 21.4 में आगे अध्ययन करेंगे।

---

1. कर रिसाव कर पर ही एक कर है। उदाहरणार्थ स्पात पर कर लगाया है, कर लगने पश्चात यह स्पात बर्तन निर्माता को बर्तन निर्माण हेतु 'उत्पादन लागत ही होगी और मूल्य' में सम्मिलित भी है। इसे आसस्त्र-स्त्रोत प्रभाव अथवा करो का टीला कहलाता है।

सीमा शुल्क (Custom Duties) :- विगत इकाई में इस तथ्य को भली प्रकार समझाया जा चुका है कि सीमा शुल्क (आयात तथा निर्यात शुल्क) वास्तव में राजकोषीय नीति के माध्यम (औजार) नहीं है वह तो विदेशी व्यापार नीति के ही उपकरण हैं। विशेष रूप सें, विदेशी व्यापार नीति के तीन पक्ष ही सीमा-शुल्क का वास्तविक रूप निर्धारित करते हैं- (अ) तटकर नियंत्रण पर प्रभावशाली जोर अथवा परिमाणात्मक प्रतिबन्ध (ब) विभिन्न उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करने की प्रभावशाली गति प्रदान करना, तथा (स) तस्करी की सीमा। इस विषय में राजस्व-सोच का योगदान तो नगण्य ही होता है। उत्पादन-शुल्क तथा सीमा-शुल्क की एक समस्या तो पूर्णतया एक सी ही है- दरों की भरमार तथा कर-ढांचे का पेचीदा होना जिसके कारण अनावश्यक मुकदमेबाजी, वास्तविक असमंजस, प्रशासनिक कठिनाई तथा करों की चोरी का उदय होता है। चेलाया सीमिति की सिफारिशों को मानकर सरकार ने 1993-94, 1994-95 और 1995-96 में बजटों में सीमा शुल्क दरों में कमी की। इसके अतिरिक्त 2007-08 में बजट में सीमा शुल्क की अधिकतम दर को 12.5 प्रतिशत घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया। सीमा शुल्क 2011-12 में सीमा शुल्क से राजस्व का एकत्रित सकल घरेलु उत्पाद का मात्र 1.7 प्रतिशत था।

विक्रय कर (Sales Tax) विक्रय कर, राज्य सरकारों द्वारा लगाया जाता है तथा सभी वस्तु एवं सेवाओं पर इसे आरोपित किया जाता है (और विशिष्ट वस्तुओं के क्रय पर भी) जब तक कि यह कानून द्वारा कर-मुक्त नहीं हो। क्योंकि राज्य सरकार स्वयं ही अपने विक्रय कर कानून का निर्माण करती है। विक्रय कर के प्रभाव-क्षेत्र (कार्य-क्षेत्र), दर ढांचा तथा प्रशासन प्रक्रिया के स्वरूप में एक राज्य सरकार दूसरी राज्य सरकार से भिन्न हो सकती है। फिर भी एक तत्व तो सभी में समान है। सभी राज्य सरकारों को यह सर्वाधिक राजस्व प्रदान करने वाला माध्यम है (साधन)। यह कर, जैसा कि इसकी परिभाषा मात्र से ही सुस्पष्ट होता है यह मूल्यानुसार कर है तथा इसमें कत अधिक राजस्व-लोच की झलक स्पष्ट रूप में मिलती है। यद्यपि प्रत्येक राज्य सरकार की प्राय: सामान्य रूप से अपनी स्वयं की विशिष्ट समस्याऐं होती

---

1. NIPIF (1986) "Evaluation of Excise Duties in India". Studies of copper, plastics and cotton Textile fabrics NIPFP' New Delhi.
2. प्रत्युत अन्त राज्य व्यापार को समस्त देश भर में लोक सभा द्वारा निर्मित अधिनियम के अन्तर्गत ही कर लगाया जाता है, साधारण विक्रय कर के साथ ही सम्बन्धी राज्य में इसकी भी व्यवस्था की जाती है। विक्रय कर पर अन्य प्रतिबन्ध भी हैं जैसे किसी वस्तु के सौदे पर अनिवार्य कर-मुक्ति, प्रकृति अनुसार जो देश के निर्यात संबन्धी तथा विशिष्ट वस्तुओं पर अधिकतम कर-दर की हो।

है, विक्रय कर से सम्बन्धित कुछ समस्याऐं इस प्रकार हैं : करारोपण का मुख्य बिन्दु, आदाओं पर कर लगाना, कर-निर्यातक तथा कर प्रतिस्पर्धा,

राज्य सरकारों की एक प्रवृत्ति विशेष ध्यान देने योग्य है कि प्रशासनिक सुविधा हेतु अन्य बिन्दुओं सेकर रोपण को प्रथम बिन्दु पर परि वर्तित कर देती है। (स्थानान्तरण) एक प्राथमिक बिन्दु पर लगाया हुआ विक्रय-कर, व्यवहार में उत्पादन कर का रूप धारण कर लेता है- और उत्पादन पश्चात भी जब कोई वस्तु एक विक्रेता से अधिक विक्रेताओं के मध्य हस्तान्तरित होती है तो अनुचित मूल्य-वृद्धि का कारण बन जाती है, जैसे कि उत्पादन शुल्क के प्रारंभिक स्तर से बहुस्तरीय उत्पाद स्तर में होता है। कभी-कभी तो कृत्रिम विक्रेताओं के माध्यम द्वारा कर की चोरी भी सुविधाजनक हो जाती है। आरम्भ में विक्रय कर का उदय फुटकर व्यापार विक्रय कर के रूप में हुआ था इसका दूसरे उत्पाद शुल्क में क्रमिक सम्मेलन (विलय) भारत में उचित है अथवा नहीं, यह तो एक वाद-विवाद का विषय है।

प्राय:, आदाओं तथा मध्यवर्ती वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है; समस्त समस्याऐं जिनकी उत्पादन शुल्क के समय विवेचना की थी वास्तव में उसी प्रकार विक्रय-कर में भी उत्पन्न होती हैं। फिर भी, कर सम्मिलित वस्तु प्रणाली (मोडवेट) के माध्यम से इससे उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं का उत्पादन-शुल्क की भांति समाधान किया जा सकता है; केवल विभिन्न स्तरों पर प्रबन्धीकरण से ही विक्रय कर जनित इस समस्या का सहज निवारण किया जा सकता है। फिर भी अनेक राज्य सरकारें इस प्रकार के कर लगाने के प्रति पूर्णतया उदासीन हैं- उनके विचार में यह प्रणाली प्रशासनिक दृष्टि से पूर्णतया अव्यवहारिक है।

विक्रय कर की कर-निर्यातन एक विचित्र समस्या है। बहुत सी राज्य सरकारें अपने कर ढांचे को इस प्रकार (पुनर्गठन) की पुन: संरचना द्वारा परिवर्तित करने में प्रयत्नशील है कि कर-मुक्ति तथा विशिष्ट छूटे राज्यान्तर्गत तो प्रदान की जाऐ परन्तु राज्य के बाहर उन छूटी तथा कर मुक्तियों को (स्वीकार) नही दिया जाए। अनेक न्यायालयों ने अपने न्यायिक निर्णयों (फैसले) में इस प्रकार के भेदभाव को निरुत्साहित ही किया है, (परन्तु इन्हीं बातों को दूसरा वेष धारण कर राज्य में लागू करने के इनके उत्साह में किसी प्रकार में शिथिलता नही आई है।) परन्तु वैधानिक दृष्टि से उन वस्तुओं को जो मूलत: राज्य से निर्यात निमित्त ही है एक कर के छांटना और कर को तदरूप सुधारना और नियंत्रित करना अत्यन्त कठिन है। केवल समझाना बुझाना ही संभव है परन्तु यह सुदूर कल्पना मात्र ही है। कर प्रतिस्पर्द्धा एक इस प्रकार का व्यापक तत्व है जिससे विक्रय कर राजस्व सभी राज्य-सरकारों में प्रभावित है। प्रत्येक राज्य अनेक प्रकार की छूट तथा सुविधा देकर अधिक से अधिक व्यापार तथा विनियोजन को अपने राज्य की ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है। (कुछ मामलों में तो उपभोग को भी) इसी प्रकार की अनेक प्रतिकारात्मक आकर्षक छूट तथा प्रोत्साहन अर्द्धक माध्यमों को प्रयुक्त किया जाता है। इस चक्र के माध्यम से बहुत उच्च स्तरीय प्रोत्साहनों का उदय हुआ जिसके कारण कर की दर तथा स्तर' में भारी गिरावट आई है। इस अस्वस्थ कर प्रतियोगिता को समाप्त (स्तब्ध) करने हेतु सभी राज्य सरकारों को कुछ प्रावधानों पर सहमत होने हेतु एक साथ मिल-जुल कर बैठना चाहिये।

अप्रत्यक्ष करो के सन्दर्भ में एक और समस्या है जिसका यहां उल्लेख करना आवश्यक है। कुछ समय पूर्व विक्रय कर का केन्द्रीय उत्पादन शुल्क मे विलय करने का एक प्रस्ताव आया था (अतिरिक्त उत्पादन शुल्क विशेष रूप से विक्रय कर के स्थान पर) कर का आधार न्यूनाधिक रूप से वही था; तथा "The Indirect Taxation Enquiry Committee Report" (Part I 1977 and II 1978) का गठन स्वर्गीय एण्ड.के.झा की अध्यक्षता में हुआ। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में कुछ विशिष्ट वस्तुओं के सन्दर्भ में इस प्रकार के विक्रय की अनुशंसा की तथा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क की परिधि में खंडसारी, तम्बाकू तथा वस्त्र (उद्योग) पर लागू करने का परामर्श दिया। तत्पश्चात् विशेषज्ञों की समिति का गठन हुआ जिसमें (विक्रय कर के परिवर्तन वनस्पति, नशीली वस्तु एवं औषधियाँ, सीमेन्ट, कागज तथा कागज का पट्टा, तथा पैट्रोल उत्पादों पर विक्रय कर में परिवर्तन कर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाने की पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करना था। अधिकांश राज्य सरकारी के घोर विरोध के कारण तथा केन्द्र शासित राज्यों में कानून बन जाने के कारण इस कार्यक्रम (स्कीम) को सदैव के लिए अल्मारी में बन्द कर दिया गया।

21.2.3 सामान्य (General Points) – भारत की कर प्रणाली में कुछ ऐसे सामान्य प्रश्न हैं (विषय) जिनका उल्लेख करना परमावश्यक है। संक्षेप में इनका वर्णन निम्नलिखित है। लगभग समूचे विश्व में इस विचार का व्यापक प्रभाव है कि करों की उच्च दर राजस्व के सन्दर्भ में उत्पादकता पर प्रतिगामी प्रभाव डालती है तथा इसकी बहुत ही ऊँची आर्थिक कीमत चुकानी पड़ती है; साथ ही कर की चोरी भी बहुत होती है। इस प्रकार वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि कर-अनुपालना की स्थिति को सुधारने हेतु कर की दरों मैं सीमान्त गिरावट उपयोगी होगी; कर चोरी को रोकने हेतु कर प्रशासन द्वारा प्रभावशाली कड़े कदम उठाना भी आसान होगा। कुछ सीमा तक इस नीति ने भारतीय कर-नीति के स्वरूप को भी निर्धारित किया है तथा सत्तर के दशक के मध्य भी भारतीय कर नीति इससे प्रभावित रही है। इस प्रकार की नीति की प्रभावशीलता के अकाट्य होने का प्रदर्शन है; कर की दर में कटौती तथा राजस्व का बढ़ता हुआ आकार इन दोनों के साथ-साथ घटित होने के संयोग इस विश्वास की सत्यता को प्रमाणित नही करता है।

कर प्रशासन का कम्प्यूटीकरण तथा उपयुक्त सूचना प्रणाली का सृजन एक दूसरी समस्या है (प्रश्न)। तीव्रतर गति से कर-मूल्यांकन के अतिरिक्त भी इसके अनेक लाभ हैं. जानकारी के विभिन्न क्षेत्रों में विश्लेषणात्मक मिलान करना सम्भव है; करदाता द्वारा दी गई जानकारी में विसंगतियों को बिन्दु चिन्हित कर उपयुक्त संकेत भी दिया जा सकेगा . प्रस्तुत कर 'आवेदन पत्रों गुणात्मक दृष्टि से उत्तम परीक्षण, साथ ही प्रस्तावित परिवर्तनों के राजस्व प्रभावों का सही-सही अनुमान; तथा कर ढांचे मैं विवेकपूर्ण परिवर्तन करना भी सुविधाजनक होगा। इस सबके विरोध में प्रदत्त एक सत्य का यथार्थ बोध भी भली प्रकार भारांकित किया जाएगा- कम्प्यूटीकरण से कर प्रशासन में कुछ सीमा तक रोजगार अवसरों का अभाव होता जाएगा। जबकि भारत सरकार कम्प्यूटीकरण के क्षेत्र में आगे बढ़ने को बहुत इच्छुक है, रोजगार के अवसरों में कमी के भय का प्रश्न करते हुए कुशल प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव के कारण यह धीमी गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

इसमें अन्तर्निहित तीसरी समस्या है कर नियमों की स्थिरता प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि एक स्थाई कर-तंत्र वित्तीय-नियोजन तथा तद्नुसार विनियोजन निर्णयों मैं अत्यधिक सुविधाजनक होता है। जितनी अधिक अनिश्चितता. होगी उतनी ही अधिक जोखिम भी होगी परिणाम स्वरूप उच्च लाभ दर प्रत्याशित होगी। इसलिए आरम्भ में ही अनिश्चितता से विनियोजन एवं बचत में कमी आती है। दुर्भाग्यवश, भारतीय कर प्रणाली में प्रतिवर्ष आधारभूत सुधारात्मक परिवर्तन किये जाते हैं और करों में स्थिरता के अमूल्य महत्व का सही-सही मूल्यांकन नही किया जाता है। यद्यपि इसके बचतों तथा विनियोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का परिमाणीकरण नही किया गया है सम्भवतया यह बहुत ही अर्थपूर्ण है। इस प्रवृत्ति के प्रतिलोमकरण का प्रयास दीर्घकालीन राजकोषीय नीति को एकाकी तथा अर्थहीन कर देता है। कर अधिनियमों मैं निरन्तर हस्तक्षेप करने का मुख्य कारण कर राजस्व की कम लोच ही दृष्टिगोचर होती है। इस समस्या के दीर्घकालीन हल हेतु कर नियमों को निकट से दृष्टिपात कर उन समस्त व्यवस्थाओं की विश्लेषणात्मक जानकारी प्राप्त करें जो कम-लोच का कारक है ताकि उसको दूर किया जा सके।

चौथी तथा अन्तिम समस्या है प्रत्यक्ष नशा अप्रत्यक्ष करों में सन्तुलन बनाए रखना। यह धारणा रही है कि प्रत्यक्ष करों की स्थिति कुछ विशिष्ट लाभों के कारण अप्रत्यक्ष करो की तुलना में श्रेष्ठतर है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जाता है कि कुछ रूपों में अप्रत्यक्ष,। कर के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। उतमावस्था प्राप्त करने हेतु दोनों मैं सन्तुलन परमावश्यक है। उदाहराणार्थ, व्यक्तिगत परिस्थितियों में प्रत्यक्ष कर, नियम परिवर्तन हेतु अधिक सुगमतर है- इनके कार भार का स्वरूप भली प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है। जैसा कि आपने विगत खण्डों के अध्ययन में स्पष्ट रूप से देखा कि इस प्रकार के सन्तुलन का भारतीय-कर-प्रणाली में पूर्ण-लोप है। इसलिए, अनिवार्य रूप से यह आवश्यक है सकल-कर राशि में प्रत्यक्ष करों के अंशदान में वृद्धि हो; प्रारंभिक अवस्था में यह व्यक्तिगत तथा निगम आय कर में वृद्धि करने से संभव है।

बोध प्रश्न 1

1. इन करों की राजस्व क्षमता क्या है? व्यक्तिगत आयकर, निगम आयकर, उत्पाद शुल्क, सीमा-शुल्क तथा विक्रय कर
2. निगम कर अथवा प्रमण्डल कर के सन्दर्भ में क्या-क्या प्रमुख समस्या है?
3. कर की अजस्त्रता क्या है? इस हेतु क्या वे भारत के प्रमुख कर सार-गर्भित हैं? आप क्या उपचार सुझाएंगे?
4. कर-निर्यातन तथा कर-प्रतिस्पर्धा क्या है? किस सन्दर्भ में यह भारत में सारयुक्त हैं?
5. भारत में कराधान के सन्दर्भ में चार सामान्य समस्याऐं कौन सी हैं।

21.3 कराधान की प्रवृत्तियाँ

इस तथा अगली इकाई में उपर्युक्त विस्तृत विवेचन के अन्तर्गत उन समस्त समस्याओं

1. यदा-कदा करों मे प्राप्त कुल लाभ का परिमाण मूल विनियोजन क्षेत्र मे भी अधिक हो जाना है। यदि नीची कर-दर का प्रभाव देखना है वो दक्षिणी राज्य सरकारों द्वारा विद्युत उपकरणों के सन्दर्भ में देखिए, यद्यपि कुछ ऐसी वस्तुओं को प्राथमिक मा माना है।

का उल्लेख है जो भारत में कराधान की मुख्य प्रवृत्तियों के रूप में बहुचर्चित हैं। अब तो इन प्रवृत्तियों का सम्मेलन कर हमको यह देखना है कि हमारी कर प्रणाली किस ओर अग्रसर हो रही है।

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि 1960-61 में सफल कर राजस्व 1350 करोड़ रुपये से बढ़कर सर 2010-11 में 12371.03 बिलियन रुपये हो गई है। फिर भी यह साधारण स्थिति ही है क्योंकि यह सब कुछ मुद्रा प्रसार के कारण है विरोधाभास के रूप में सकल इतर-कर राजस्व प्राप्तियां सकल घरेलू उत्पादन के प्रतिशत रूप में 2.45 प्रतिशत से बढ़कर केवल 21 प्रतिशत ही हुई। इस प्रकार करों का महत्व राजस्व प्राप्ति में निरन्तर बढ़ी।

सकल कर राजस्व में, जैसा कि विगत इकाई में कराधान के ढाँचे का विषद विवेचन दिया गया है उससे स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्ष करो का भाग वास्तव में (ठोस रूप में) गिरता जा रहा है- सामूहिक रूप से भी और व्यक्तिगत रूप से भी। वर्तमान कर प्रणाली की यह प्रवृत्ति आरम्भ से ही रही और आज भी है; और इसमें किसी प्रकार की लौट की सम्भावना नहीं है।

कृषि पर प्रत्यक्ष कर का भाग, सकल कर राजस्व एवं प्रत्यक्ष करों से प्राप्ति में क्रमशः घटता जा रहा है। कृषि के क्षेत्र में अग्रण्य राज्य सरकारें यथा पंजाब तथा हरियाणा में भी कृषिगत आय कर के परिमाण में कमी आई है, यद्यपि कृषि क्षेत्र से ही इतर कर माध्यमों द्वारा साधन संरचना (उत्पन्न) होती है। फिर भी इतर-कर माध्यमों की यह व्यथा है कि उनमें प्रगति एवं विकास का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता, तथा वास्तव में इनके प्रतिगामी होने की आशंका है।

तटकर प्रतिबन्धों के भौतिक नियंत्रण तथा कुछ सीमा तक विदेशी व्यापार में उदारता बरतने के परिणाम स्वरूप सीमा-शुल्कों के राजस्व महत्व में वृद्धि आई है; विगत दशाब्दि मैं यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है।

समय-समय पर राजस्व वृद्धि करने हेतु बारम्बार किए गए प्रयासों के कारण उत्पादन शुल्कों के आकार में समुचित वृद्धि हुई है। राजस्व की आय-लोच बहुत न्यून रही है। इसके विपरीत, विक्रय कर प्राप्तियों का विकास तीव्र गति से हुआ है। उच्च आय लोच तथा राजस्व मैं वृद्धि कारक, माध्यमों को अपनाने के कारण दोनों ही स्थितियों में राजस्व में वृद्धि हुई है। राज्य सरकार के उत्पादन शुल्कों के साथ-साथ विक्रय कर भी राज्य कर का प्रमुख अंग बन गया है। परिणामस्वरूप, राज्य सरकारों का कर-राजस्व भी केन्द्रीय कर-राजस्व की अपेक्षा तीव्र-गति से बढ़ रहा है। कर प्रशासन में, आजकल कर-दरों में कभी, स्वकर-निर्धारण में बढ़ता हुआ विश्वास, कर चोरी के प्रशमन हेतु कठोर प्रक्रिया तथा कर आधार विविधता एवं विस्तार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। नवीन करों में वृद्धि तथा प्रचलित करों की समाप्ति का अभी कोई स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं हुआ है क्योंकि कुछ सीमा तक यह दोनों कार्यवाही की जा चुकी है।

बोध प्रश्न 2

1. भारत में प्रत्यक्ष कराधान की क्या प्रवृत्तियाँ है?
2. भारत में कर-प्रशासन की क्या प्रवृत्तियाँ हैं?

21.4 वर्तमान प्रवृतियाँ

इसमें आपको भारत की कर प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण चयनित प्रगतियों के विषय में जानकारी प्रदान की जाएगी। आपकी सुविधा हेतु इनको निम्नलिखित शीर्षकों में (समूहगत) विभक्त कर दिया है।

क्षेत्र एवं विस्तार

कुछ विगत वर्षों में कर सम्मिलित मूल्य प्रणाली (वेट) का शुभारम्भ एक महत्वपूर्ण प्रगति है। 1985 की दीर्घकालीन राजकोषीय नीति स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है कि वर्तमान में प्रचलित आन्तरिक अप्रत्यक्ष कर प्रणाली के स्थान पर (वेट) मूल्य सम्मिलित कर प्रणाली के प्रयोग से आदाओं के कराधान हेतु बहुत ही स्पष्ट रूप से विभिन्न क्षेत्रों का निर्धारण किया जायेगा, जो सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत ही आकर्षक तथा बोधगम्य है। फिर भी व्यवहार में अनेक प्रतिकूल विचारधाराएं प्रचलित हैं, जिनके अनुसार राज्य सरकारों को, केन्द्र द्वारा विक्रय कर को मूल्य सम्मिलित कर में विलय करने की गम्भीर समस्या उद्वेलित कर रही है। आदाओं पर प्रतिक्रिया मूलक उत्पादन शुल्कों के कारण प्रति सन्तुलन बनाए रखने हेतु इन प्रावधानों के क्षेत्र को और विस्तृत एवं व्यापक बनाने का विचार किया जा रहा है; प्रशासनिक दृष्टि से सम्भव बनाने हेतु उत्पादन शुल्कों को सामान्य रूप से समकारी प्रभाव द्वारा प्रति सन्तुलन का विचार है। पैट्रोल, तम्बाकू तथा वस्त्र उत्पाद के अतिरिक्त उत्पादन शुल्क की परिधि में आने वाली समस्त वस्तुओं को कुछ आधारभूत प्रयत्नों की सहायता से प्रोफोर्मा केंद्रित के कार्य-क्षेत्र का विस्तार उसके अन्तर्गत लाने का विचार है।

यह प्रयास मूल्य सम्मिलित कर प्रणाली में सुधार हेतु एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम होगा अथवा संक्षेप में इसे (मोडवेट) मूल्य सम्मिलित कर प्रणाली भी कह सकते हैं। (PP37 - 38) कर सम्मिलित मूल्य का सबसे बड़ा लाभ यह है कि करों के रिसाव को टालते हुए किसी वस्तु के उत्पादन पर जहाँ किसी भी विगत-स्तर पर कर चुकाया जा चुका है; हर स्थिति में प्रति सन्तुलन बनाए रखने हेतु सहायक होता है। उत्पादन शुल्क का एक बहुत ही महत्वपूर्ण लाभ यह है कि अन्य किसी भी राजस्व स्त्रोत की अपेक्षा इसमें लोच का गुण सर्वाधिक अंशों में विद्यमान है, तथा इसमें इस प्रकार के कर-चोरी को रोकने के तत्व भी विद्यमान है जो कि कर-दाता को उत्पादन प्रक्रिया के किसी भी स्तर पर कर चुकाये जाने के विगत स्वरूप का लेखे-जोखे से आश्वस्त भी करते हैं; अन्यथा जो प्रति-सन्तुलन उसे प्राप्त होता है वह उसकी अपेक्षा कम ही होगा जो उसे मिलना चाहिए। प्रारम्भ से ही, कर सम्मिलित मूल्य प्रणाली (मोडवेट) को उन वस्तुओं के क्षेत्र में जहाँ उत्पादन-शुल्क देय है के लगभग 30 प्रतिशत भाग में उत्पादन शुल्क संग्रह करने के हेतु प्रतिस्थापित कर दिया गया है; राजस्व में (मालगुजारी) इस तटस्थ-परिवर्तन को और अधिक वस्तुओं हेतु प्रभावशाली बनाने के लिए पिछले वर्षो में चरण-बद्ध प्रयास किए गए हैं।

इस सन्दर्भ में दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि संसद ने राज्य सरकारों को वस्तु स्थानान्तरण (फन्साइनमैन्ट) कर लगाने के अधिकार हेतु एक विधेयक पारित कर दिया है। इस विधेयक ये सम्बन्धित प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो पायी है इसलिये इस कर को अभी लागू नही किया गया है, परन्तु शीघ्र ही प्रक्रिया-पूर्ति पश्चात यह कर लागू हो जायेगा। उन वस्तुओं के हस्तान्तरण तथा शाखा-हस्तान्तरण पर जो अब तक केन्द्रीय बिक्री कर से बच जाते थे, उन वस्तुओं पर भी यह कर लगाया जा सकेगा, परन्तु बहुत सी राज्य सरकारों ने इस उपलब्धि का स्वागत नहीं किया है; यद्यपि वह राज्य सरकारें तो इस कर के प्रावधान से अत्यन्त प्रसन्न हैं जहाँ वृहद-स्तर पर शाखा स्थानान्तरण होने के कारण विक्रय कर राजस्व से वंचित रहना पड़ता था। इस कर का एक यह भी प्रभाव होगा कि वह राज्य सरकारें जो कि दूसरी राज्य सरकारों से शुद्ध आयात-कर्त्ता मात्र है- वह राज्य सरकारें इसके कारण अधिक निर्धन होती चली जाएंगी क्योंकि इस कर के कारण उनको घाटा होगा तथा निर्यातकर्ता राज्य सरकारें उन आयातकर्ता राज्य सरकारों के अधिकारियों पर इस कर को लगाने हेतु सक्षम होंगी।

कर देय आधार के अन्तर्गत विगत कुछ वर्षो में विक्रय-कर के क्षेत्र को, ठेके पर कार्य भुगतान, पट्टा तथा किराया क्रय प्रणाली आदि को सम्मिलित करते हुए विस्तृत कर दिया गया है। यह सभी कुछ विक्रय कर के दोषों को दूर करने के लिए ही किया गया था, परन्तु राज्य सरकारों ने इस अतिरिक्त कर को लगाकर तलवार की मूठ के रूप में प्रयोग कर शोषण किया है। इन आधारों पर विक्रय-कर में अनेक कानूनी व्यवधान उत्पन्न हुए हैं और विक्रय कर की सहज गतिशीलता में अनेक अवरोध उत्पन्न हुए हैं।

कुछ और कम महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए हैं। होटलों में व्यय अब दो विभिन्न करों को आकर्षित करने लगा है। कमरा किराया तथा होटलों को होने वाली प्राप्तियों पर विलास-कर लगाया है। इसी आधार पर अब केन्द्र सरकार ने भी व्यय-कर लागू कर दिया है। यह विलासिता कर उन विश्राम-गृहों (होटलों) पर ही लगाया जाता है जिनमें कमरे का किराया चार सौ रुपया अथवा इससे अधिक प्रति दिन की दर से है। दूसरी ओर यह राज्य-कर अधिकतर उन्हीं विश्राम यही पर लगाया जाता है जहाँ प्रवास किराया (कट आफ रैन्ट) प्रतिदिन बहुत कम (सुअल्प) है। विक्रय कर, की दरों में क्षत अधिक कटौती हो जाने के कारण कुछ राज्य सरकारों ने आय को प्रति सन्तुलित (अनुकूल रूप से) करने हेतु अन्य राज्य सरकारों, के साथ व्यापार को अधिक (आकर्षक) विस्तृत करने के उद्देश्य से मोटर-वाहनों पर प्रवेश-शुल्क लगा दिया है। कुछ राज्य सरकारों ने (मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक) स्थानीय निकायों द्वारा लगाये जाने वाले स्थानीय-चुँगी कर के स्थान पर राज्य-व्यापी स्तर पर प्रवेश कर को प्रतिस्थापित कर दिया है तथा राजस्व-राशि को स्थानीय निकायों की राजस्व क्षतिपूर्ति हेतु वितरित कर दिया जाता है। दूसरी राज्य सरकारें (गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान) अभी इस प्रकार का कदम उठाने का विचार कर रही हैं।

प्रत्यक्ष करों में कुछ अन्य महत्वपूर्ण (प्रगति प्रधान) परिवर्तन हुए हैं। व्यक्तिगत आय कर में यह-निर्माण गतिविधियों को प्रोत्साहन देने हेतु गृह निर्माण सम्बन्धित बचतों को गृह निर्माण व्यय में कर-गत छूट देते हुए लोकप्रिय बनाया है। निगम कर में सर 1987 में, पुस्तक लाभ पर न्यूनतम दर

30 प्रतिशत करने का शुभारम्भ किया गया है। निगम कर के क्षेत्र में सर 1990-91 में भी कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये गए हैं। अन्य छूटो के साथ-साथ दो महत्वपूर्ण छूटी,- (i) विनियोजन छूट (ii) विनियोजित जमा राशियों पर छूट को समाप्त कर दिया गया है। कर की दरों को कम कर दिया गया है तथा पुस्तक लाभ पर न्यूनतम दर को भी हटा दिया गया है। व्यवसाय कर में कुछ और समय देने की राज्य सरकारों की शिकायत कठिनाई को अब व्यवसाय कर की सीमा को 250 रुपये से बढ़ाकर 2500 तक प्रति वर्ष करके, दूर कर दिया गया है।

निरस्त किये गये करों में, सन् 1985 से सम्पत्ति कर को वापिस को लिया गया है। उसी वर्ष ब्याज पर कर को भी निरस्त कर दिया गया था।

प्रशासनात्मक परिवर्तन

वर्तमान वर्षों में प्रशासनिक परिवर्तनों को कर चोरी अवरोधक गतिविधियों के रूप में सुधारात्मक परिवर्तन हुआ है, सूचना कार्य, तलाशियाँ तथा जब्त करने की दृष्टि से बहुत ही सुधार हुआ है। कर चोरी को रोकने के क्षेत्र में सूचना प्रदान करने हेतु पुरस्कार प्रदान करने की अधिघोषणा तथा केन्द्र सरकार द्वारा राजस्व (अधिकारियों) कर्मचारियों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु अनेक कार्यक्रमों की संरचना की गई है। स्टाम्प शुल्क में कर की चोरी को रोकने हेतु राज्य सरकारों ने भी अनेक प्रयत्न किये हैं क्योंकि स्टाम्प शुल्क, कर-चोरी हेतु सबसे सरल है; यदि अचल सम्पत्ति को अधोमूल्यित करके प्रदर्शित करने का सन्देह हो जाता है तो बाजार मूल्य के आधार पर अचल सम्पत्ति के मूल्य में मूल्य समायोजन (परिवर्तन) करने का कानूनी प्रावधान अब राज्य सरकारी ने बना दिया है। व्यक्तिगत आय कर कानून में भी सुधार कर दिया गया है; यदि अचल सम्पत्ति के मूल्य को अधोमूल्यित करके प्रकट किया गया है तो इस प्रकार के क्रय को प्रतिबन्धित कर दिया गया है। उपहार कर के सन्दर्भ मे, भी कर निर्धारण का बिन्दु भी उपहारदाता के स्थान पर उपहार प्राप्त-कर्त्ता की ओर परिवर्तित कर (बदल) दिया गया है।

अपनी प्रगति की समीक्षा कीजिए

1. उत्पादन शुल्क को कर सम्मिलित मूल्य प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित करने की रूप-रेखा प्रस्तुत कीजिये। इसके प्रत्याशित लाभ (अपेक्षित) कौन-कौन से हैं?
2. वस्तु हस्तान्तरण कर क्यों लागू किया गया है?
3. वह कौन-कौन सें कर है जो हाल ही में विश्राम गृहों (होटलों) पर लगाए गए हैं?
4. कर प्रशासन में हाल ही के कौन-कौन से परिवर्तन हुए हैं?

21.5 सारांश (Summary)

बड़े करों में, व्यक्तिगत आयकर अब तक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आशानुकूल सफल सिद्ध नहीं हो सका है। सम्बद्ध अधिनियमों में परिवर्तन स्वरूप राजस्व-परिमाण में गिरावट आई है, करों की चोरी में भारी वृद्धि हुई है तथा कर: दाताओं की संख्या भी स्थिर होकर पूर्णतया गतिहीन हो गई है। प्रगतिशील कर ढाँचे के होते हुए भी राजस्व से आयगत लोच 'लगभग इकाई के बराबर ही रही है।

बचतों को प्रोत्साहित करने वाले माध्यमों (साधनों) की प्रभावशीलता पर भी सन्देह था प्रश्न चिन्ह लग गया है। अल्प राजस्व के कारण इसका पुन वितरण प्रभाव भी नगण्य रूप में सीमित रहा है।

राजस्व क्षेत्र में निगम कर की उपलब्धियाँ बहुत ही दोषपूर्ण रही हैं। आकस्मिक परिस्थितियों के कारण तेल क्षेत्र में कार्यरत सार्वजनिक उपक्रमों ने बहुत ऊँचे मूल्य निर्धारण के बल पर अत्यधिक लाभ कमाए परन्तु संग्रहीत कर-राशि में विशेष वृद्धि नही हुई। इस कर दे कराधार में कोई अभिवृद्धि नहीं हुई है, राजस्व की कम आयगत-लोच का यही कारण रहा है। लाभों पर दोहरा कर निर्धारण का निगम क्षेत्र पर कोई (विपरीत) प्रतिकूल प्रभाव (पड़ना) प्रतीत नहीं होता। कर के अन्य प्रावधान जो कि निगम क्षेत्र में विनियोजन प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हो सकते थे, ऐसा प्रतीत होता है कि विनियोजन प्रोत्साहनों के परिणामस्वरूप पूर्णतया प्रति सन्तुलित कारक रहे। इस कर की प्रमुख निर्बलता यह है कि इसके द्वारा अनेक उद्देश्यों की हित सम्पादन की अपेक्षा रही है, परिणामस्वरूप जिसकी परिणति केवल प्रावधानों के निकृष्ट रूप में हुई है।

उत्पादन शुल्क की प्रमुख आवश्यकता कर का विवेकीकरण तथा सरलीकरण है। अन्य समस्याऐं भी, (i) आदाओं पर कर लगाने के कारण कर का रिसाव (ii) प्रविशिष्ट शुल्कों के रूप में एकत्रित किया गया राजस्व जिसकी आप लोच, राजस्व के सन्दर्भ में अत्यन्त कम है, तथा (iii) कर की चोरी, इसमें समाहित हैं। कुछ सीमा तक इन तीनों ही समस्याओं का निराकरण कर सम्मिलित मूल्य प्रणाली को लागू करके सहज रूप से किया जा सकता है; क्योंकि राजस्व को प्रभावित किये बिना ही इसके द्वारा कर रिसाव का निवारण होता है और यह तो एक प्रकार से मूल्यानुसार कर है जो कुछ सीमा तक स्वयं ही नीति निर्धारक भी है।

सीमा शुल्कों में भी सरलीकरण तथा विवेकीकरण की आवश्यकता है। पिछले दशक में भौतिक नियंत्रण के स्थान तटकर प्रतिबन्धों के क्रियाशील होने के कारण इस स्त्रोत से प्राप्त राजस्व राशि में महत्वपूर्ण अभिवृद्धि हुई है- विदेशी व्यापार नीति में यह परिवर्तन मुख्य रूप से लाभदायक राहा है।

राज्य सरकारों द्वारा लगाया गये विक्रय कर की भूमिका राजस्व क्षेत्र में तो प्राय: सराहनीय रही है। बहुत सी राज्य सरकारें प्रथम बिन्दु पर कर लगाने, को बहुत वर्षो तक टालती रही- जिसका औचित्य रहा मात्र अनिश्चितता। आदा तथा मध्यवर्ती वस्तुओं पर विक्रय-कर लगने से उत्पादन शुल्क में झरण-प्रक्रिया का प्रादुर्भाव होता है परन्तु विक्रय कर में इस समस्या के निवारण हेतु कोई और उपचार भी तो दृष्टिगोचर नही होता। यद्यपि न्यायालय यथा-शक्ति योगदान प्रदान कर रहे हैं परन्तु कर निर्यातीकरण (दूसरी राज्य सरकार के अधिवासी पर कर लगाना) तथा कर प्रतिस्पर्धा जैसी दो विकट समस्याओं का विक्रय कर में कोई उपचार नहीं है। कम से कम कुछ वस्तुओं के सन्दर्भ में विक्रय कर का उत्पादन शुल्क में विलय विचाराधीन रहा परन्तु समस्या के निराकरण हेतु यह भी उपयुक्त नही पाया गया।

कर प्रणाली से सम्बन्धित सामान्य रूप से चार प्रमुख समस्याऐं है। सर्वप्रथम, यह धारणा है कि कर की न्यून दर से (यदि उत्तम रूप में सम्पादित की जाए तो) कर द्वारा एकत्रित की गई राशि में

वृद्धि होती है। इस मत (विश्वास) को अभी प्रमाणित करना है; यद्यपि इनकी सह-घटनाओ का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जा रहा है। द्वितीय है कर प्रशासन का कम्प्यूटीकरण, जिसमें वास्तव में कार्यक्षमता में तो अवश्य वृद्धि होगी परन्तु रोजगार अवसरों में भारी कमी आएगी। तृतीय है यद्यपि कर प्रणाली में स्थिरता अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त वांछनीय है परन्तु भारतीय कर प्रणाली में इसका सर्वदा अभाव ही रहा है। चतुर्थ है प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करो को में सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता, यदि कर प्रणाली को सम्यक स्वरूप प्रदान करना है तो उत्पाद के प्रतिशत के समग्र रूप से कर संग्रहण (सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में) एक ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। सरकार की राजस्व प्राप्ति के रूप में भी कुल मिलाकर करों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। परन्तु कुल कर में प्रत्यक्ष करों के अंशदान में फिर भी गिरावट ही आई है। प्रत्यक्ष करों की कृषिगत-करों का अंश एक स्तर तक अर्थहीन रहा है। कर प्रशासन में भी मूल प्रवृत्ति-कर की दरों में कमी, स्वकर निर्धारण प्रक्रिया पर बढ़ता हुआ विश्वास, कराधारों में विस्तार एवं विविधता तथा कर-चोरी प्रतिरोधक माध्यमों को अपनाना है।

आधुनिक परिवर्तनों, में कर सम्मिलित मूल्य प्रणाली की कुछ वस्तुओं के संदर्भ में क्रमशः प्रगतिमूलक स्थानापन्नता, वस्तु हस्तान्तरण कर को तुरन्त प्रभावी रूप देने मैं तत्परता, कार्य-प्रसंविदा में विक्रय-कर का प्रवेश, पट्टा तथा क्रय-किराया पद्धति में विक्रय कर का समावेश, व्यय कर का (काल्डोर नमूने पर नहीं वरन् विलासिता प्रधान विश्राम गृहों में व्यय तक ही सीमित) केन्द्र सरकार तथा विलासिता कर का कुछ राज्य सरकारों द्वारा आरम्भ, कुछ राज्य सरकारों द्वारा पंजी शुल्क के स्थान पर स्थानीय रूप में प्रवेश कर रोपण का प्रयोग, गृह निर्माण क्षेत्र में व्यक्तिगत कराधान में प्रोत्साहन, कर की दर में कटौती करना, कर छूटों को निरस्त (वापिस लेना) करना, पुस्तक लाभ पर न्यूनतम कर की समाप्ति- जो कुछ ही वर्षो पूर्व निगम-कराधान हेतु आरम्भ किया था, व्यवसाय कर दर में 2500 रु. प्रति वर्ष तक उच्चतर सीमा निर्धारण करना तथा सम्पत्ति कर की समाप्ति कर स्वरूप की मूल प्रवृत्ति रही हैं।

21.6 शब्दावली

हिन्दु संयुक्त परिवार: एक अवधारणा है जो आयकर दृष्टिकोण (उद्देश्य) से न्याय संगत है जिसमें एक परिवार के सदस्यों पर, यदि समस्त वैधानिकताओं को पूर्ण करते हैं तो संयुक्त रूप से एक ही आवेदन-पत्र के आधार पर कर लगाया जा सकता है।

छूट स्तर :- आय का वह स्तर जो कर-रोपण से मुक्त है।

अंश-पूँजी : वह पूँजी है जिसे उपक्रमों द्वारा अंशों के निर्गमन माध्यम से एकत्रित किया जाता है।

'चुकता-अनुपात :- किसी निगम द्वारा अपनी कुल चुकता पूँजी पर दिया गया लाभांश है और जिसमें सकल लाभांश राशि को कुल चुकता पूँजी से विभाजित करने पर प्राप्त होता है।

पूँजी लागत :- वास्तव में यह वह दर है जो किसी भी निगम को अपनी विभिन्न प्रकार की पूंजियों पर अवश्य ही प्रदान करनी चाहिए।

ऋण-पूँजी :- दीर्घकालीन ऋणों की वह राशि है जो निगम विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त करता है।

विनियोजन छूट :- वर्ष के अन्तर्गत निर्दिष्ट अचल सम्पत्तियों में विनियोजन किए जाने के क्रम में आयकर सन्नियम द्वारा स्वीकृत कटौतियाँ, जिनको अलग ही एक रिजर्व के अन्तर्गत प्रदर्शित किया जाता है जिसका सृजन केवल इसी उद्देश्य हेतु होता है जिसको किसी निर्दिष्ट अवधि में प्रयोग नहीं कर सकते।

मूल कीमत (आरंभिक मूल्य) : रुपयों के रूप में किसी सम्पत्ति का आरंभिक मूल्य होता है।

प्रतिस्थापन कीमत :- रुपयों के रूप में किसी सम्पत्ति का प्रतिस्थापन मूल्य होता है।

कर सम्मिलित मूल्य :- उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्येक स्तर पर मूल्य योगदान के रूप वस्तु मूल्य में सम्मिलित होता है।

अधोमूल्यिलल बीजक-करण :- वास्तविक मूल्य की अपेक्षा कम मूल्य का उल्लेख करना तथा आपस में पुस्तकों में तदरूप समायोजना का पारस्परिक आश्वासन

मूल्य-अधिमूल्यन :- मूल्य निर्धारण का एक सिद्धान्त है जहाँ इसके अंश तक भी प्रति इकाई लागत का आकलन किया जाता है।

संरक्षण की प्रभावी दर :- यह आयातित वस्तु तथा उसी वस्तु के देश में ही उत्पादन करने पर अन्तर के सकल कराधान को कहते है।

प्रथम बिन्दु कराधान :- एक पंजीकृत उद्यमी द्वारा किसी वस्तु को प्रथम बार ही विक्रय करने पर प्राप्त किया गया कर होता है।

बनावटी-विक्रेता :- किसी भी उद्यमी को सहायता करने हेतु ही पंजीकरण कराता है प्रथम बिन्दु पर ही विक्रय कर की चोरी करने हेतु। वास्तविक उद्यमी के स्थान पर यह प्रथ म विक्रेता के रूप में आचरण करता है, कर प्रदान करने के उत्तरदायित्व को वहन कर और भुगतान करने हेतु परन्तु जब कर का भुगतान करने का अवसर आता है तो यह लुप्त हो जाता है।

कम करना :- किसी कर दाता के कर उत्तरदायित्व में प्रदत्त कर राशि में से करती करना है अथवा जिसे पूर्व में ही भुगतान किया हुआ स्वीकार कर लिया जाता है।

सूचना-प्रणाली :- मस्तिष्क में किसी प्रदत्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु समंकों का संकलन, भण्डारण तथा पुनर्प्रयोग जो कि विशिष्ट विषय के सम्बन्ध में किया जाता है।

स्वयं मूल्यांकन :- आवश्यक जानकारी तथा पत्रादि प्रदान करना तथा कर दाता द्वारा स्वयं ही कर-आकलन करते हुए कर स्वयं ही कर जमा कराने की प्रक्रिया को कहते हैं।

प्रोफोर्मा क्रैडिट :- उत्पादन शुल्क के कर-उत्तरदायित्व में से वह कटौती जो किसी वस्तु के उत्पादन कर्त्ता को उस वस्तु के उत्पादन हेतु कच्चे माल की खरीद पर दिए गए कर की समान राशि का उत्पादन शुल्क में (कटौती कर) समायोजन करना होता है।

वस्तु हस्तान्तरण/शाखा हस्तान्तरण :- किसी उपक्रम की एक शाखा द्वारा दूसरी शाखा को वस्तुओं का वास्तविक भौतिक स्थानान्तरण किसी एक राज्य से दूसरे राज्य के अन्तर्गत जिस पर केन्द्रीय विक्रय कर का भुगतान नहीं हुआ है जो कि उस उपक्रम को भुगतान कर देना चाहिए था यदि एक उपक्रम द्वारा अन्तर्राज्य व्यापार प्रक्रिया में दूसरे उपक्रम को स्थानान्तरण होता तो प्रक्रिया को वस्तु हस्तान्तरण/शाखा हस्तान्तरण कहेंगे।

अचल सम्पत्ति की प्रतिबन्धात्मक खरीद :- यह एक वैधानिक अधिकार है जो कि आय-कर विभाग को प्रदत्त है ताकि वास्तविक सम्पत्ति पर कर की चोरी को रोका जा सके। यदि विभाग को सम्पत्ति के अधोमूल्यन का सन्देह हो जाता है तो उसको यह विकल्प प्राप्त है कि विभाग उस सम्पत्ति के अधोघोसित मूल्य के समान धन राशि का भुगतान करके उसे कर दाता से अधिग्रहण किया जा सकता है। इस विषय में कर दाता को कोई भी विकल्प अवशेष नहीं रह जाता है।

21.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Chelliah, R.J.(1969) Fiscal in underdeveloped countries (2nd End.) George Allen and Unwin (India) Bombay.
2. Department of Economic Affairs (1985). Long Term Fiscal Policy, Ministry of Finance-Government of India, New Delhi
3. Machiraju, H.R. (1977), Fiscal Policy for Equitable Growth, Macmillan, Delhi
4. Sarma. J.V.M. and M. Govinda Rao. (1988). Financing public sector development expenditure in selected countries-India Asian Development Bank, Manila

21.8 अभ्यासों के हल

बोध प्रश्न 1

1. एक से अधिक अर्थों में व्यक्तिगत आय-कर के राजस्व का प्रदर्शन सन्तोष से परे ही रहा है; आय-लोच इकाई के आस-पास ही रही है; साधारण अर्थों में भी इसकी राजस्व राशि में बहुत कम वृद्धि हुई है; कुल कर राजस्व राशि में गिरावट आ रही है तथा सकल गृह उत्पाद के अनुपात के रूप में भी यह अर्थहीन रही है।

जहाँ तक राजस्व का सम्बन्ध है निगम आय-कर का योगदान उत्तमतर रहा है, परन्तु वास्तव में यह ऐसा नहीं है। निजी निगम क्षेत्र में राजस्व-संग्रहण की प्रगति लगभग नगण्य ही रही है तथा आय-लोच इकाई से भी कम रही है।

आय लोच के अर्थ में उत्पादन शुल्क का सम्पादन भी अच्छा नहीं रहा है, परन्तु राजस्व में (विकास) वृद्धि सन्तोषजनक रही है। सीमा-शुल्क में, दूसरी ओर आधुनिक वर्षों में वृद्धि तव्र गति से हुई है। विक्रय मूल्य में भी इन वर्षों में तीव्र गति से वृद्धि हुई है तथा इसकी लोच भी सन्तोषजनक रही है और कुछ राज्यों में तो पर्याप्त उच्च भी रही है।

2. निगम आय कर के सम्बन्ध में प्रमुख समस्याऐं हैं : निजी निगम कर से कम राजस्व, निगम की लाभ प्रदायकता एवं विनियोजन पर कर तथा मुद्रा प्रसार का संयुक्त प्रभाव, निगम देय लाभों पर अना (दोहरा) कराधान तथा इसका प्रभाव, ऋण पूँजी की ओर भ्रान्तियां (भ्रममूलक धारणाएं), तथा उद्देश्यों की अत्यधिक अनेकता।

3. कर का झरण, उत्पादक द्वारा आदा मूल्य भुगतान करते हुए कर तत्व पर लगे हुए कर पर कर निर्धारण है। भारत में, यह दो बड़े महत्वपूर्ण करों के सन्दर्भ में सार्थक भी है। उत्पादन शुल्क तथा विक्रय कर। इसका प्रस्तावित उपचार है समस्त वस्तुओं हेतु कर सम्मिलित मूल्य का प्रतिस्थापन।

4. कर-निर्यातीकरण से आशय है एक राज्य के अधिवासी पर दूसरे राज्य द्वारा, निर्यात करने पर कर लगाना अथवा उन वस्तुओं पर कर लगाना जो कि आधारभूत रूप में राज्य से निर्यात की जाती है। कर प्रतियोगिता से आशय है बढ़ते हुए रुपये में करों की दरों में गिरावट तथा कर प्रोत्साहनों में वृद्धि विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा ताकि व्यापार तथा विनियोजन को आकर्षित किया जा सके। भारत के विक्रय कर के प्रसंग में यह अधिक सार गर्भित हैं।

5. भारत में कर के प्रसंग में सामान्य रूप से चार मुख्य मुद्दे हैं इस विश्वास की सत्यता कि कर की दर में कटौती से राजस्व राशि में वृद्धि होगी, कम्प्यूटरिकरण का औचित्य एवं सीमाऐं, कर नियमों मे स्थिरता, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों में सन्तुलन।

बोध प्रश्न 2

1. प्रत्यक्ष करों में मुख्य प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों तथा उनके अवयवों के अंशों में निरन्तर गिरावट, तथा कृषिगत प्रत्यक्ष करों के गिरते हुए अंश के कारण प्रत्यक्ष कर से राजस्व में गिरावट।

2. कर प्रशासन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं : कर की सामान्यत : न्यून दरें, स्व-कर-मूल्यांकन पर विश्वास में वृद्धि, कर-बाध्यता में अधिक दृढ़ता, तथा कर आधार को विस्तृत एवं व्यापक बनाने के प्रयास।

अपनी प्रगति की समीक्षा कीजिये 3.

1. आवश्यक रूप से यह प्रोफोर्मा कैडिट का जितनी अधिक वस्तुओं में संभव हो सके प्रयोग, तथा विशिष्ट दरों के स्थान पर मूल्यानुसार कर लगाने की प्रतिस्थापना (स्थानापन्नता) से सम्बन्धित है। इसके प्रत्याशित लाभ है झरणा के अल्प प्रभाव, कर सम्पादन में श्रेष्ठता तथा राजस्व लोच में उच्चतर अभिवृद्धि है।

2. यह राज्य सरकार के बढ़ते हुए सोच कि, *वर्तमान प्रयुक्त नियमों के कारण उपक्रमों द्वारा शाखा हस्तान्तरण के रूप में अन्तर्राज्य विक्रय के स्थान पर विक्रय कर राजस्व का बहुत बड़ा भाग उनसे छिनता जा रहा है* को दूर करने हेतु उनकी माँगों के अनुसार पहल का प्रादुर्भाव करना है।

3. दो कर- केन्द्र सरकार द्वारा व्यय कर, तथा कुछ राज्य सरकारों द्वारा विलासिता कर हाल ही में विश्राम गृहों. होटलों) पर लगाये गए हैं।

4. कर प्रशासन में हाल ही के हुए कुछ सुधारात्मक पक्ष जिनमें मूलत : कर-चोरी अवरोधक उपाय, सर्वेक्षण का अधिक बढ़ता हुआ महत्व, तलाशियाँ, जब्त करने की प्रक्रिया, कर अधिकारियों तथा अन्यों को भी (कर-चोरी सम्बन्धी सूचना देने वालों) पुरस्कार प्रदान करने की आयोजना सम्मिलित है। इसी उद्देश्य को ध्यानान्तर्गत रखते हुए अन्य सुधार एवं परिवर्तन मुख्य रूप से इस प्रकार हैं : सम्पत्ति मूल्य में अधोमूल्यन प्रक्रिया को हतोत्साहित एवं प्रतिबन्धित करने हेतु अचल सम्पत्ति का विधिवत लेखा जोखा करना ताकि स्टाम्प-शुल्क की चोरी को रोका जा सके, कर अधिकारियों को अचल सम्पत्तियों क्रय करने का प्रतिबन्धित अधिकार तथा उपहार कर के प्रसंग में उपहार दाता के स्थान पर उपहार प्राप्त कर्ता पर कर उत्तरदायित्व का विवर्तन करना सम्मिलित है।

इकाई -22

सार्वजनिक ऋण का अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 सार्वजनिक ऋण का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व

22.3 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण

22.3.1 ऋण की दृष्टि से

22.3.2 उत्पत्ति की दृष्टि से

22.3.3 समय के आधार पर

22.3.4 शोधन की दृष्टि से

22.3.5 संपत्ति के आधार पर

22.3.6 अन्य वर्गीकरण

22.4 सार्वजनिक ऋण संबंधी अन्य मुद्दे

22.5 सार्वजनिक ऋण व आर्थिक विकास

22.6 सार्वजनिक ऋण एवं स्फीति

22.7 सारांश

22.8 शब्दावली

22.9 `कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.0 उद्देश्य

आप कराधान एवं सार्वजनिक व्यय के बारे में विस्तार से अध्ययन कर चुके है। सार्वजनिक ऋण भी सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। इस इकाई का उद्देश्य सार्वजनिक ऋण के अर्थशास्त्र से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

– समझ सकेंगे कि आन्तरिक एवं बाह्य ऋणों में क्या अन्तर है?

– जान सकेंगे कि आन्तरिक एवं बाह्य ऋणों में क्या अन्तर है?

– समष्टि विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से सार्वजनिक ऋण की व्याख्या कर सकेंगे; एवं

— सार्वजनिक ऋण के वर्तमान एवं भावी पीढ़ी पर प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक ऋण के उत्पन्न होने की महत्वपूर्ण पूर्व शर्त बजट घाटा है। अर्थात् जब सार्वजनिक व्यय की राशि सार्वजनिक आय से अधिक होती है तो सरकारें व्यय की पूर्ति के माध्यम के रूप में सार्वजनिक क्या का सहारा लेती है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण विभिन्न वैकल्पिक वित्त व्यवस्थाओं में से एक रूप है जिससे यदि सरकारें हीनार्थ प्रबंधन अथवा नोट छापकर अतिरिक्त व्यय की पूर्ति न करना चाहे तो सार्वजनिक ऋण का सहारा ले सकती है। एक बार इसका सहारा लेने के बाद सरकारों को ब्याज के भुगतान एवं पुराने ऋणों के चुकाने की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। इस प्रकार यदि सार्वजनिक आय न बड़े एवं सरकारें लगातार सार्वजनिक क्या का सहारा लेने लगे तो इसके गंभीर परिणाम होते है। इस इकाई एवं अगली दो इकाइयों में हम सार्वजनिक ऋण से संबंधित इन समस्त बातों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

22.2 सार्वजनिक ऋण का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व

सार्वजनिक ऋण सरकार द्वारा देश के भीतर अथवा देश के बाहर से प्राप्त किये गये क्या है। ये ऋण राज्य सरकारें देश के नागरिकों के लिए विभिन्न कार्यों हेतु प्राप्त किये जाते है। सार्वजनिक ऋण को ब्रिटेन में राष्ट्रीय ऋण (National debt) कहा जाता है।[1] इसमें निम्नलिखित कोष सम्मिलित किए जाते है : (i) केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वयं के खर्चों की पूर्ति हेतु उधार ली गई राशि। (ii) राष्ट्रीयकृत उद्यमों को दी गई राशि, एवम् (iii) स्थानीय निकायों को उपलब्ध कराई गई राशि। यह राशि विपिन विकास कार्यों को पूरा करने के लिए ऋण के रूप में उपलब्ध कराई जाती है। सार्वजनिक ऋण दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों को बेचकर अथवा अल्पावधि के सार्वजनिक ऋण जारी करके देश के भीतर से विभिन्न वित्तीय संस्थाओं एवं व्यक्तियों से प्राप्त किए जा सकते है अथवा विदेशी निजी उद्यमियों एवं सरकारों द्वारा विदेशी बाजारों से भी प्राप्त किए जा सकते है।

आधुनिक समय में सार्वजनिक ऋण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाल्टन के मत में "सार्वजनिक अधिकारियों की आय प्राप्त करने का एक ढंग सार्वजनिक ऋण भी है।" सार्वजनिक कार्यो को पूर्ण करने हेतु जब सरकारी आय अपर्याप्त हो सरकार को ऋण का सहारा लेना होता है जो कि सार्वजनिक आय का भी स्रोत माना जाता है। सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज एवं मूलधन का भुगतान करने पर वह सार्वजनिक व्यय का भाग होती है। सार्वजनिक ऋण प्राचीन काल में युद्ध एवं संकटकाल में हुए आकस्मिक खर्चों की पूर्ति के लिए लिये जाते थे अतः इसे असाधारण वित्त भी कहा जाता था। परन्तु आजकल यह सरकार की सामान्य राजकोषीय नीति का एक अंग बन गया है। सरकार आर्थिक स्थायित्व के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से खुले बाजार की क्रियाओं के अंग के रूप में इसका प्रयोग करती है। चूंकि राजकीय ऋणों का भुगतान भी करना अनिवार्य होता है अतः इसे आय का स्रोत नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार अल्पकाल में व्यय के

बढ़ जाने पर व्यक्ति अपने खर्चों की पूर्ति क्या लेकर करता है उसी प्रकार बढे हुए राजकीय व्यय को पूरा करने के लिए एवं लोक कल्याणकारी एवं नियोजन संबंधी विकास कार्यों

---

1. National bebt is the amount of money borrowed internally or externally by the government of a country on the behalf of its citizens collectively.The money is lent in different forms and comes from a variety of sources, such as

(a). Internal loans are made by individuals, businesses or institutions within the country.

(b). External loans are advanced by individuals, businesses or institutions abroad and by foreign governments.

(c). Internal loans are external borrowings when the money is lent by international institutions such as the International Monetary Fund (IMF)

को पूरा करने के लिए सरकार ऋण का सहारा ले सकती है। सार्वजनिक ऋण लेकर खर्चो को पूरा करने का एक अन्य कारण करारोपण की सीमाएं है। एक सीमा से अधिक करारोपण जन असंतोष उत्पन्न करता है अतः ऐसे समय में ऋणों द्वारा संसाधनों की व्यवस्था बुद्धिमत्तापूर्ण मानी जाएगी। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण निजी बचतों को इकट्ठा कर विकास कार्यों की ओर मोडने संबंधी महत्वपूर्ण कार्य भी करता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ सार्वजनिक ऋण को फिजूलखर्ची बढ़ाने के लिए उत्तरदायी कारक मानते है। प्रो. बेस्टेबल का विचार है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति ऋण की सहायता से अपना काम नही चला सकता उसी प्रकार सरकार भी अपना काम नहीं चला सकती।

सार्वजनिक ऋण एवं निजी ऋणों के बीच की गई यह तुलना भ्रम पैदा करती है कि सार्वजनिक ऋण एवं निजी ऋण समान होते है परन्तु यह सत्य नहीं है। व्यक्तिगत अथवा निजी ऋणों को स्वयं के लाभ के लिए व्यय किया जाता है, जबकि सार्वजनिक ऋण कभी कभी ऋण दाता के लाभ के लिए भी व्यय किए जाते है। निजी ऋणों का भुगतान व्यक्ति को अपनी आय में से करना होता है जबकि सार्वजनिक ऋणों का भुगतान करारोपण से प्राप्त आय द्वारा किया जाता है एवं करों के भुगतान में ऋणदाता स्वयं भी सम्मिलित होते है। राज्य सरकारों के पास सार्वभौम सत्ता होती है वह दीर्घावधि ऋण प्राप्त करती है इसके विपरीत निजी ऋण इतनी लम्बी अवधि के नहीं होते। सार्वजनिक ऋणों का भुगतान हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा वित्त व्यवस्था करके भी पूरा किया जा सकता है जबकि एक निजी व्यक्ति को यह सुविधा नहीं होती। सामान्यतः राजकीय ऋणों की मात्रा अत्यधिक होती है, बड़े-बड़े ऋण प्राप्त किए जाते है, इसकी तुलना में निजी ऋण नगण्य होते है। सार्वजनिक ऋण देने के लिए सरकार बाध्य भी कर सकती है और वह कम ब्याज देकर भी ऋण प्राप्त कर सकती है। सरकार की साख अधिक होने के कारण उसे बड़े पैमाने पर ऋण उपलब्ध हो जाते है इसके विपरीत व्यक्तिगत ऋण में यह सुविधा नहीं होती।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय में सार्वजनिक ऋण को सार्वजनिक खर्चो को पूरा करने के लिए एक आय के स्रोत के रूप में नहीं देखा जाता है। आजकल सार्वजनिक ऋण सरकार के स्थिरीकरण कार्य के एक अस्त्र के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। सार्वजनिक ऋण विनियोगकर्त्ताओं के लिए आय अर्जित करता है अतः उनकी दृष्टि में यह सम्पत्ति (asset) है। सरकारों के लिए सार्वजनिक ऋण एक देनदारी (liability) है क्योंकि इस पर ब्याज देय होता है एक समयावधि पूरी होने के बाद इसका पुनर्भुगतान जरूरी है।

22.3 सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण

सार्वजनिक ऋण का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया जाता है इसे निम्नलिखित तालिका के रूप में प्रदर्शित किया गया है :

अब हम इनका संक्षेप में वर्णन करेंगे

22.3.1 ऋण की दृष्टि से –

सार्वजनिक ऋण मोटे रूप में दो भागों में बांटा जाता है

(1) आन्तरिक ऋण - देश की सीमाओं के भीतर देश के नागरिकों से जो ऋण प्राप्त किए जाते है उन्हें आन्तरिक ऋण कहते है। ये क्या देश की मुद्रा में ही प्राप्त किए जाते है। इस प्रकार ये क्या एक देश स्वयं के स्रोतों से प्राप्त करता है ऐसे ऋणों को चुकाने की क्षमता भी अनन्त होती है क्योंकि इन्हें नोट छापकर चुकाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त करारोपण द्वारा अतिरिक्त साधन संग्रह करके इन्हें चुकाया जा सकता है।

आन्तरिक ऋणों का भार किस पर पड़ता है इसके बारे में इस खण्ड की इकाई 24 में अध्ययन किया जाएगा।

(2) बाह्य ऋण - बाह्य ऋण देश की सीमाओं से बाहर से प्राप्त किये जाते है। ये ऋण वस्तुतः विदेशी मुद्रा में प्राप्त किए जाते है। आन्तरिक ऋण इच्छित अथवा बलात् भी प्राप्त किए जा सकते है परन्तु बाह्य ऋण भी इच्छित ही होते है। इन ऋणों पर ब्याज भी सामान्यतः विदेशी मुद्रा में किया जाता है एवं इसे चुकाने के लिए नागरिकों को अपने निर्यात बढ़ाने होते है।

इस प्रकार बाह्य ऋणों का भार देश के नागरिकों के आर्थिक कल्याण पर पड़ता है। ऋण चुकाते समय देश की राष्ट्रीय आय कम हो जाती है। इस बारे में और अधिक विवेचन इकाई 24 में किया गया है।

22.3.2 उत्पत्ति की दृष्टि से –

उत्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण के निम्नलिखित भेद है।

(1) उत्पादक ऋण - सार्वजनिक ऋणों का दूसरा वर्गीकरण उत्पादक ऋण एवं अनुत्पादक ऋण के रूप में किया जाता है। उत्पादक ऋण वे ऋण है जिनकी धनराशि को ऐसे व्यवसायों तथा उपक्रमों में लगाया जाय जिनकी आय से उसके ब्याज तथा मूलधन को ऋण की परिपक्वता के बाद लौटाया जा सके। वर्तमान समय में सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत विपिन परियोजनाओं के लिए ऋण प्राप्त किए जाते है इन्हें देश के औद्योगीकरण एवं सामाजिक ऊपरी पूंजी की व्यवस्था करने हेतु व्यय किया जाता है। इससे देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

(2) अनुत्पादक ऋण - दूसरी ओर सरकार कभी-कभी ऐसे कार्यों के लिए भी ऋण ले लेती है जिनसे आय में कोई वृद्धि की संभावना नहीं होती। ऐसे ऋणों के मूलधन एवं ब्याज का भुगतान करने के लिए पृथक से व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसे ऋणों को अनुत्पादक ऋण माना जाता है। मुख्यतः कुछ अर्थशास्त्रियों के मत में रक्षा पर एवं प्राकृतिक विपदाओं से निपटने पर किया गया व्यय अनुत्पादक माना जाता है परन्तु कुछ अन्य अर्थशास्त्री इन्हें भी दीर्घकाल में उत्पादक ऋण ही मानते है।

22.3.3 समय के आधार पर –

समय की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण को निम्न भागों में बांटा जाता है।

(1) अल्पकालीन ऋण - अल्पावधि के लिए प्राप्त किए गए ऋण अल्पकालीन ऋण कहलाते है। इनकी परिपक्वता अवधि 1 वर्ष से g भी हो सकती है सामान्यतः 5 वर्ष से कम की अवधि में मूलधन एवं ब्याज का भुगतान किए जाने वाले ऋणों को अल्पावधि ऋण माना जा सकता है।

(2) दीर्घकालीन ऋण - जब ऋण की अवधि सामान्यतः 15-20 वर्ष से अधिक हो तो उसे दीर्घकालीन ऋण माना जाता है। कभी-कभी ऐसे ऋणों की भुगतान तिथि के बारे में अनिश्चितता रहती है परन्तु ब्याज का भुगतान नियमित किया जाता है। ऐसे ऋणों को अनिश्चितकालीन ऋण भी कहते है। डाल्टन के अनुसार अनिश्चितकालीन (Funded) ऋण का अभिप्राय ऐसे ऋण से है जिसका मूलधन कभी भी लौटाना आवश्यक नहीं होता। परन्तु इसके ब्याज के भुगतान की गारन्टी दी जाती है। निश्चितकालीन ऋण अल्पकालीन होते है जिनका भुगतान एक वर्ष की अवधि में कर दिया जाता है।

22.3.4 शोधन की दृष्टि से –

सार्वजनिक ऋणों का एक अन्य वर्गीकरण इस प्रकार है;

(1) शोध्य (Redeemable) ऋण - इन ऋणों को सरकार एक निश्चित भावी तिथि तक ब्याज सहित चुकाने का वायदा करती है। इस दृष्टि से शोध्य क्या अस्थायी क्या भी है।

(2) अशोध्य (Irredeemable) ऋण - इन ऋणों के भुगतान का वायदा नही किया जाता। अर्थात इन ऋणों को केवल ब्याज देने की शर्त पर ही सदा के लिए प्राप्त किया जाता है। अशोध्य ऋणों में मूलधन लौटाने की गारन्टी नहीं दी जाती। आधुनिक सरकारें अशोध्य ऋणों का प्रयोग नहीं करती क्योंकि ऐसे ऋणों के. भार से मुक्ति नहीं होती।

22.3.5 सम्पत्ति के आधार पर :-

सम्पत्ति की दृष्टि से सार्वजनिक ऋण के भेद निम्न है :

(1) पुनरुत्पादक - ये ऐसे ऋण है जिनके लिए सरकार उनके मूल्य के बराबर सम्पत्ति अपने पास रखती है और इसकी आय में से ब्याज व मूलधन का भुगतान कर दिया जाता है। पुनरुत्पादक क्या ऐसे उपक्रमों में लगाए जाते है जिनकी आय से मूलधन एवं ब्याज परिपक्वता पर लौटाई जा सके।

(2) मृतकभार (Dead-weight) ऋण - इस ऋण में सरकार के पास उनके मूल्य के बराबर सम्पत्ति नहीं रखी जाती। मृत-भार ऋणों का भुगतान करारोपण द्वारा प्राप्त राशि में से किया जाता है। ऐसे ऋण सामान्यतः अनुत्पादक कार्यों पर व्यय किये जाते

22.3.6 अन्य वर्गीकरण –

सार्वजनिक ऋण के कुछ अन्य भेद इस प्रकार है।

(1) क्रय योग्य (Marketable Debt) ऋण - विपणन योग्य अथवा क्रय योग्य ऋणों में उन प्रतिभूतियों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें बाजारों में स्वतंत्रतापूर्वक खरीदा-बेचा जा सके। इसमें बिल, बान्डस व प्रतिभूतियां सम्मिलित की जाती है।

(2) अक्रय योग्य (Non Marketable) ऋण - इनमें वे ऋण आते है जिन्हें बाजार में बेचा नहीं जा सकता एवं एक निश्चित अवधि के पश्चात् सरकार पुनः खरीद लेती है। अर्थात ऐसे ऋण पत्रों को जो सर्व प्रथम खरीदता है उसी के पास वे बने रहते है ये बचत पत्रों के रूप में होते है। आधुनिक समय में इनका चलन कम हो गया है।

सार्वजनिक ऋण को उपर्युक्त वर्णित विभिन्न वर्गों में रखा जाता है। यहां पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह वर्गीकरण अन्तिम नहीं है। एक ऋण को एक से अधिक वर्गों में भी विभाजित किया जा सकता है।

22.4 सार्वजनिक ऋण संबंधी अन्य मुद्दे

(1) ऋण सीमा - सार्वजनिक क्या में वृद्धि करारोपण से प्राप्त आय एवं राज्य के खर्चों में अंतर का परिणाम है। अल्प एवं व्यय में इस अंतर के परिणाम स्वरूप बजट में बचत अथवा घाटा होता है। अमेरिका में सरकार पर एक निश्चित ऋण की सीमा तय की हुई है इससे अधिक आन्तरिक ऋणों की आवश्यकता होने पर कोष के सचिव को कांग्रेस से अनुमति लेनी होती है। भारत में भी हाल ही के वर्षों में सार्वजनिक ऋण में हो रही निरन्तर वृद्धि से कुछ अर्थशास्त्री चिन्तित है एवं समय-समय पर समाचार पत्रों आदि के माध्यम से ऋणों पर सीमा लगाने की बात उठाई जाती है। परंतु इस सीमा का कोई औचित्य नहीं है। जब सरकार का बजट पास होता है उस समय आय एवं व्यय के आँकडे संसद के सामने रखे जाते है उन्हें संसद की मंजूरी मिलने के बाद ही सरकार व्यय करती है। अतः ऋणों पर सीमा लगाने से सरकार की परेशानियां बढ़ जाएगी यही कारण है भारत में सार्वजनिक ऋणों की सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

(2) ब्याज भार - सार्वजनिक ऋण संबंधी एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा ब्याज दर निर्धारण संबंधी है। सामान्यतः सार्वजनिक ऋण पर देय ब्याज निर्धारित सीमा से अधिक नहीं हो सकता। ब्याज की दर अलग-अलग स्रोतों के लिए अलग-अलग भी हो सकती है। जैसे अल्प बचत, कर्मचारी भविष्य निधि खातों पर देय ब्याज दर व बाजार दर पर लिए जाने वाले ऋण पर देय ब्याज दर भिन्न-भिन्न है। प्रतिभूतियां एवं धारक बान्डस सम्मिलित होते है। अन्य आन्तरिक देनदारियों में अल्प बचत योजनाओं में जमा धनराशि, कर्मचारियों के भविष्य निधि खातों में जमा रकम एवं आरक्षित कोष में जमा रकम सम्मिलित होती है। भारत सरकार की आन्तरिक देनदारियां सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में जो 1980-81 में 35.6 प्रतिशत थी 1990-91 में बढ़कर 52.8 प्रतिशत हो गयी।

इसी प्रकार भारत सरकार की बाह्य देनदारियां सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में गिर रही है। 1980-81 में यह 8.3 प्रतिशत थी जो अब घटकर 1990-91 में 6 प्रतिशत रह गयी। परंतु निरपेक्ष रूप में कुल बाह्य देनदारियों में वृद्धि हुई है व यह पिछले एक दशक में 11298 करोड़ रुपये से बढ़कर 35122 करोड़ रुपये (1991-92) में हो गई। इन देनदारियों पर ब्याज जो सकल घरेलू उत्पाद का 1980-81 में 11.6 प्रतिशत था वह 1990-91 में बढ़कर 26.2 प्रतिशत हो गया।

सरकार के कुल कर्ज सितंबर 2013 को समाप्त दूसरी तिमाही में 6.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सरकार की कुल सार्वजनिक कर्ज यह एक चौथाई पर तिमाही वृद्धि का प्रतिनिधित्व जून 2013 में रुपये 42,92,870 करोड़ से सितंबर 2013 रुपये 45,80,472 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई पिछली तिमाही में 4.4 प्रतिशत की वृद्धि के साथ तुलना में 6.7 प्रतिशत की। आंतरिक ऋण पिछली तिमाही के अंत में 90.6 फीसदी की तुलना में सार्वजनिक ऋण का 90.8 फीसदी का गठन किया, यह कहा। आंतरिक ऋण चालू वित्त वर्ष के लिए राजकोषीय घाटे को पाटने के लिए बाजार से

सरकारी उधारी का गठन किया। 2013 में देश के सकल घरेलू उत्पाद का 67.72 प्रतिशत सरकारी ऋण दर्ज की गई।

22.5 सार्वजनिक ऋण एवं आर्थिक विकास

सार्वजनिक ऋण कई रूपों में आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। सार्वजनिक व्यय, करारोपण एवं ऋणों का उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है इसके साथ ही यह आय एवं धन के वितरण को भी प्रभावित करता है। भुगतान संतुलन की समस्या एवं ऋण शोधन की समस्या गलत राजकोषीय नीतियों के परिणामस्वरूप उग्र रूप से सामने आती है। अधिकांश देशों की सरकारें यह नहीं समझ पाती कि दीर्घकालीन विकास लक्ष्यों से तालमेल रखते हुए किस प्रकार अल्पकालीन स्थिरता का लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। भारत में सरकारी क्षेत्र का आर्थिक विकास में महत्व और भी अधिक है क्योंकि यहां देश के भारी एवं आधारभूत उद्योग सार्वजनिक स्वामित्व में है।

बढ़ते आन्तरिक एवं बाह्य ऋण आर्थिक क्षेत्र में अस्थिरता उत्पन्न करते है। बाह्य अस्थिरता चालू खाते में घाटे, पूंजी अन्तरण एवं बढ़ते हुए बाह्य ऋणों के रूप में उपस्थित होती है जबकि आन्तरिक अस्थिरता ऊँची वास्तविक ब्याज दर, गिरते निजी विनियोग एवं बढ़ती स्फीति के रूप में सामने आती है। इन समस्याओं को विवेकशील राजकोषीय नीति अपना कर दूर किया जा सकता है। आजकल अर्थशास्त्री इस बात से सामान्यतः सहमत नही है कि सरकार को कराधान का उपयोग तो चालू व्यय की वित्तीय व्यवस्था के लिए करना चाहिए व सार्वजनिक ऋण उपयोग पूंजीगत व्यय की वित्त व्यवस्था के लिए करना चाहिए। आजकल यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि खर्चों के वित्त के बीच कोई ऐसी कड़ी रेखा खींचना अनावश्यक है एवं कराधान एवं उधार का उपयोग किसी भी प्रकार के खर्चे के लिए किया जा सकता है ऐसा करना परिस्थितियों पर निर्भर हुआ करता है। परंतु यह बात तो तय है कि कराधान के द्वारा वित्त व्यवस्था के प्रभाव एवं ऋण द्वारा वित्त व्यवस्था के प्रभाव भिन्न-भिन्न होते है।

विकासशील देशों में सार्वजनिक ऋणों में विशेष रूप से बाह्य देनदारियों में 1974 से 1982 के बीच काफी वृद्धि हुई। इस वृद्धि का कारण तेल निर्यातक देशों के पास भारी मात्रा में उपलब्ध अतिरिक्त कोष था इस कोष को तेल निर्यातक देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के पास अल्पकालीन यूरो डालर कोषों के रूप में जमा रखा। इस अतिरिक्त तरलता एवं औद्योगिक देशों द्वारा मांग में कमी के परिणामस्वरूप वास्तविक ब्याज की दरों में गिरावट आई व उधार प्राप्त करने की लागत काफी कम हो गई इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपने परम्परागत लेनदारों को छोड़कर विकासशील देशों की ओर मुख किया। विकासशील देशों को आसानी से प्रचुर मात्रा में उधार मिलने लगा परिणामस्वरूप विकासशील देशों की देनदारियां इस अवधि में चार गुना बढ़ गई। आसानी से ऋण की उपलब्धता के परिणामस्वरूप उसके उपयोग पर ध्यान नहीं दिया गया। 1980 का प्रारम्भ में औद्योगिक देशों द्वारा अपनाई गई स्फीति निरोधक नीतियों के परिणामस्वरूप वास्तविक ब्याज की दरों में वृद्धि हो गई इसका दुष्प्रभाव उन विकासशील देशों पर पड़ा जिनकी देनदारियां अधिक थी।

1982 में मैक्सिको का ऋण संकट उल्लेखनीय है। इस संकट से देनदारों के विश्वास को, ठेस पहुंची व स्वेच्छिक देनदारों की संख्या में गिरावट आई। इसके बाद अमेरिका जैसे बड़े देश की गड़बडाती स्थिति के परिणामस्वरूप एवं तेल निर्यातक देशों की आय में कमी के कारण उपलब्ध कोष भी कम हो गए। इस प्रकार ऋण शोधन के लिए बढ़ती मांग व कोषों की कमी के परिणामस्वरूप विकासशील देशों से संसाधन का वास्तविक हस्तान्तरण विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं चरमरा गई व कई देशों ने अपनी घरेलू नीतियों में फेरबदल किए आयतों. में भारी कटौती करके इन देशों ने विदेशी व्यापार में अतिरेक जुटाया। इस प्रकार 1980 से ऋण संकट की दोहरी मार पड़ी एक तो इन देशों का प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर गिर गया एवं दूसरे कोषों की कमी के कारण भावी विकास योजनाओं के लिए कोषों की कमी आ गई व इन्हें बन्द कर देना पड़ा।

विकासशील देशों की बाह्य देनदारियों के बढ़ते रहने के बावजूद भी भुगतान संकट को टालने के प्रयास किए जाते रहे व कुछ हद तक ऋणों के भुगतान ढांचे को सुसंगत बनाकर संकट टाल दिया। फिर भी विकासशील देशों की बढ़ती बाह्य देनदारियों के कारण भुगतान संतुलन की विषम स्थिति बनी रही। निर्यातों में कमी एवं विकास दर में गिरावट से स्थिति विषम होती गई। समष्टिगत स्थिरीकरण नीतियां तथा निर्यातों में वृद्धि तथा विश्व संस्थाओं के सहयोग से अधिकांश विकासशील देश इस संकट से उबरने के लिए ढ़ांचागत सुधारवादी नीतियों एवं बाजार अर्थव्यवस्था का सहारा ले रहे है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सार्वजनिक ऋण का देश के विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

22.6 सार्वजनिक ऋण व स्फीति

सार्वजनिक ऋण लेकर सरकार जब अपने खर्चों को पूरा करती है तो ऐसे व्यय का मुद्रा स्फीति पर क्या प्रभाव पड़ता है? सार्वजनिक ऋण के स्रोत क्या है? यदि ऋण बाजार से लिया जा रहा है तो यह पता लगाना आवश्यक है कि ऋण कौन दे रहा है? यदि ऋण उपभोग में कमी करके दिये जा रहे है तो इससे देश मे बचत व पूंजी निर्माण बढ़ेगा। यह ऋण या तो विकास के लिए पूंजीगत क्षेत्रों में व्यय किया जाएगा अथवा यह सामाजिक ऊपरी पूंजी के विकास पर व्यय किया जाएगा। कभी-कभी सरकारें सार्वजनिक ऋण का उपभोग अथवा फिजूलखर्ची पर भी प्रयोग कर सकती है। प्रयोग की ये सभी अवस्थाएं स्फीतिकारक नहीं मानी जाती। क्योंकि अर्थशास्त्रियों के मत में सार्वजनिक ऋण लेने से साधनों कां निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तान्तरण मात्र होता है यह मांग में विशुद्ध वृद्धि का सूचक नहीं है। परंतु क्या यह तर्क सत्य पर आधारित है। आइए इस पर विचार करें।

प्रथम यदि सार्वजनिक ऋण से पूरे किए जाने खर्चों के परिणामस्वरूप मांग का हस्तान्तरण होता है तब भी वे स्फीतिकारी हो सकती है क्योंकि जो वस्तुएं उत्पादित की जाएगी वे भिन्न होगी। संसाधनों का हस्तान्तरण यदि पूंजीगत वस्तुओं में उत्पादन की ओर हुआ तब भी उपयोग वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। पूंजीगत वस्तुओं की परिपक्वाधि अधिक है इससे संक्रमण काल में कीमतों में वृद्धि हो सकती है।

द्वितीय यदि सार्वजनिक ऋण में सरकार ऋण केन्द्रीय बैक से प्राप्त करती है तो मुद्रा की आपूर्ति में विशुद्ध वृद्धि होती है जिससे स्फीतिकारक शक्तियों को बढ़ावा मिलता है। इसके साथ ही यदि ऋण वाणिज्यक बैंकों द्वारा दिया जा रहा है तो साख निर्माण की प्रक्रिया द्वारा देश में उपलब्ध बैक साख की मात्रा में वृद्धि होगी जो स्फीति को जन्म देगी।

इस प्रकार सार्वजनिक ऋण भी स्फीतिकारक होते है। दीर्घकाल में सार्वजनिक ऋणों की भूमिका ठीक इसके विपरीत भी हो सकती है। मान लीजिए ऋण का प्रयोग सरकार पूंजीगत साज सामान पर करती है, परिपक्वाधि की समाप्ति के बाद उत्पादन प्रारम्भ होने पर वस्तुओं की पूर्ति बढ़ जाती है इसके परिणामस्वरूप कीमतों में गिरावट आ सकती है। ऐसा होने पर सार्वजनिक कणों से स्फीतिकारी प्रवृतियों पर अंकुश लग जाएगा।

बोध प्रश्न - 1

अपना उत्तर लिखने के लिए छोड़ी गई खाली जगह का, इस्तेमाल करें।

1. आन्तरिक एवं बाह्य ऋण के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. सार्वजनिक एवं निजी ऋण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. क्या सार्वजनिक ऋण सदैव स्फीतिकारक होते है।

22.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में समष्टिगत दृष्टिकोण से सार्वजनिक ऋण के अर्थशास्त्र के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई। सार्वजनिक ऋण समग्र संसाधन आबंटन, मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों से प्रभावित होकर देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सार्वजनिक ऋण एवं निजी ऋण में तुलना करके कुछ अर्थशास्त्री जरूरत से ज्यादा ही चिन्ता करते है परन्तु सार्वजनिक ऋणों को निजी ऋणों के समान नहीं मानना चाहिये क्योंकि जहां सरकार के पास ऋण चुकाने की असीमित शक्ति है वह निजी व्यक्ति की शक्ति सीमित है। सरकारें नोट छापकर आन्तरिक ऋण का भुगतान कर सकती है यह अधिकार अन्य किसी के पास नहीं होगा। लेकिन बाह्य देनदारियों के बढ़ते रहने से सार्वजनिक ऋण विकासशील देशों के लिए चिन्ता का विषय बन गए है। बढ़ते हुए ऋण एवं भुगतान संतुलन की विषम स्थिति के कारण अपनाई जाने वाली कठोर अथवा तर्कसंगत नीतियां अर्थव्यस्था में मंदी को जन्म दे सकती है।

सार्वजनिक ऋण का कई आधारों पर वर्गीकरण किया जाता है। इस इकाई के बिन्दु 23.3 में एक तालिका के रूप में उनकी संक्षेप में चर्चा की गई है। इसके बाद सार्वजनिक ऋण का देश के आर्थिक विकास व मुद्रास्फीति के प्रभावों की संक्षेप में चर्चा की गई है।

22.8 शब्दावली

बजट घाटा	Budget Deficit
देनदारियां	Liabilities
देनदारियां	Assets
शोध्य ऋण	Redeemable Loan
अशोध्य ऋण	Irredeemable Loan
मृतकभार ऋण	Dead-weight Loan
कोषागार विपत्र	Treasury Bills

22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Musgrave and Musgrave-	Public Finance in Theroy and Practice, Mc Grow Hill 5th ed. 1989
Prest, A.R. and Barr, N.A.	Public Finance in Theory and Practice -Weiden fild and Nicholson London 1979
Musgrave, R.A.	The Theory of Public Financesh.23.
World Bank	World Development Report,1988

इकाई - 23

सार्वजनिक ऋण संस्थापित सिद्धान्त, क्रियात्मक एवं क्षतिपूरक वित्त

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 संस्थापित सिद्धान्त

23.3 सार्वजनिक ऋण एवं क्रियात्मक क्षतिपूरक वित्त

23.3.1 आर्थिक उच्चावचन एवं ऋण नीति

23.3.2 क्रियात्मक वित्त एवं विकास

23.4 सारांश

23.5 शब्दावली

23.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

23.0 उद्देश्य

आप पिछली इकाई में सार्वजनिक ऋण के बारे में प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर चुके है इस इकाई का उद्देश्य सार्वजनिक ऋण की भूमिका के बारे में प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- जान सकेंगे कि सार्वजनिक ऋण के प्रति संस्थापित अर्थशास्त्रियों के विचार क्या थे;
- सरकार के बजट घाटे को पूरा करने के एक साधन के साथ-साथ सार्वजनिक ऋण की अर्थव्यवस्था में क्या भूमिका है।
- वर्तमान समय में विकासशील देशों में इसमें क्या परिवर्तन आ रहे है।

23.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्रियों के मत में करारोपण जहाँ अनिवार्य बचत का एक तरीका है वही सार्वजनिक ऋण सार्वजनिक क्षेत्र की विकास योजनाओं के लिए वैकल्पिक बचतों को एकत्र करने की एक विधि है। संसाधन संग्रहण की ऋण विधि के कुछ ऐसे लाभ है जिन्हें करारोपण से प्राप्त नहीं किया जा सकता उदाहरणार्थ, करारोपण की एक सीमा होती है उससे अधिक करारोपण आर्थिक

प्रोत्साहनों पर विपरीत असर डालता है परन्तु सार्वजनिक ऋणों पर यह लागू नहीं होता। यद्यपि ऋण भी करारोपण की भांति निजी उपभोग को सीमित कर संसाधनों को विकासोन्मुख योजनाओं में नियोजित करने की विधि है तथापि यह आर्थिक प्रोत्साहनों पर विपरीत असर नहीं डालती विशेषकर इसलिए कि एक तो यह स्वैच्छिक है एवं दूसरे इसके पुनर्भुगतान की आशा बनी रहती है।

सार्वजनिक वित्त के संस्थापित स्वीकृत सिद्धान्त के अनुसार सरकार को अपने चालू खर्चों की पूर्ति के लिए संसाधन करारोपण के द्वारा एकत्रित करने चाहिए इसके विपरीत पूंजीगत परियोजनाओं, जिनसे उत्पन्न वस्तुओं को भविष्य में बेचकर लाभ कमाए जाने की सम्भावना हो, के लिए संसाधनों की व्यवस्था ऋण द्वारा की जा सकती है। परन्तु आज जहाँ सार्वजनिक ऋण सरकार की राजकोषीय नीति का एक अविभाज्य अंग बन चुका है। इस इकाई में संस्थापित एवं कीन्सीयन विचारधाराओं में सार्वजनिक ऋण की भूमिका से आपको अवगत कराया जाएगा। कीन्स ने सार्वजनिक ऋण को मन्दी के समय प्रभावपूर्ण मांग उत्पन्न करने के एक सशक्त साधन के रूप मे प्रस्तुत किया। इकाई के अन्त में विकासशील देशों में सार्वजनिक ऋण की भूमिका के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों का विवेचन किया जाएगा।

23.2 संस्थापित सिद्धान्त

संस्थापित अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि एक विकासशील अर्थव्यवस्था वित्त जुटाने हेतु ऋण अथवा साख का सहारा लेती है तो यह एक देश पर भार नहीं होगा बशर्ते कि ऋण के उपयोग से देश की उत्पादन क्षमता में विस्तार होता हो, क्योंकि बढ़ी हुई आय से ऋण स्वतः ही चुक जाएगा। इस प्रकार विकासशील अर्थव्यवस्था में रूढ़िवादी विचारकों द्वारा विकास योजनाओं की वित्त व्यवस्था ऋण द्वारा किए जाने का समर्थन किया है।

संस्थापित अर्थशास्त्रियों के मत में अर्थव्यवस्था सदैव पूर्ण रोजगार के स्तर पर संतुलन में रहती है इसलिए सरकारी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है। राज्य के कार्यक्षेत्र के बारे में अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का मानना था कि वह सरकार सर्वश्रेष्ठ है जो सबसे कम शासन करती है। न्यूनतम कर लगाना एवं न्यूनतम व्यय करना ही राज्य का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है। राज्य का कार्य क्षेत्र बाह्य आक्रमणों से देश की सुरक्षा करना व देश के भीतर आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखना है। न्याय एवं सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य मदों पर किया गया सार्वजनिक व्यय उनके मत में अनुत्पादक था। इसलिए संस्थापित अर्थशास्त्रियों के मत में ऋण द्वारा वित्त व्यवस्था के परिणाम स्वरूप सरकार पर ब्याज कीं देनदारियां बढ़ती है जिसकी पूर्ति करारोपण से की जाएगी। करारोपण से अर्थव्यवस्था में उपलब्ध पूंजी की कमी हो जाएगी। संस्थापित अर्थशास्त्रियों के मत में निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र अकुशल होता है अतः सार्वजनिक ऋण प्राप्त कर व्यय करने की आवश्यकता नहीं है।

संस्थापित अर्थशास्त्रियों द्वारा मुद्रा पूर्ति को स्थिर एवं बेलोचदार मानने के कारण उनके मत में देश में मूल्य स्थायित्व बना रहता है। पूर्ण रोजगार की मान्यता एवं बचतों एवं निवेशों में समानता की मान्यता के कारण संस्थापित व्यवस्था में क्षतिपूरक वित्त की आवश्यकता नही होती है। कुल मांग को कम करने में सार्वजनिक ऋण भी करारोपण की भांति प्रभावशाली है इसी प्रकार ऋण की

अदायगी का अर्थव्यवस्था में कुल मांग पर वही प्रभाव पड़ता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं की सरकारी खरीद का होता है। तब प्रश्न उठता है कि इस व्यवस्था में सार्वजनिक ऋण का क्या महत्व है।

इस तथ्य से हम सभी भली भांति परिचित है कि संस्थापित अर्थशास्त्रियों ने बचत एवं निवेश को ब्याज की दर पर आश्रित माना। कर/ऋण द्वारा वित्त व्यवस्था करने का अभिप्राय यह है कि साधन निजी उपभोग एवं विनियोग से हटकर सार्वजनिक क्षेत्र की तरफ आकर्षित हो। यदि बचत पूर्णतया ब्याज बेलोच एवं निवेश ब्याज लोचदार हो तब ऋण वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत साधन हस्तान्तरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया निजी पूंजी निर्माण से होगी अर्थात् निजी बचतों के ब्याज बेलोच होने के कारण इनका कुछ अंश सार्वजनिक ऋण द्वारा ले लिया जाएगा इसके परिणाम स्वरूप यद्यपि निजी निवेश में कमी होगी एवं बाजार में ब्याज की दरों में वृद्धि होगी लेकिन इसका बचतों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। बचत अपरिवर्तित रहेगी। इससे उपभोग अपरिवर्तित रहेगा। दूसरी ओर कर वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत साधन निजी पूंजी निर्माण व निजी उपभोग दोनों ही क्षेत्रों से हटेंगे और यह करदाताओं की सीमान्त उपभोग प्रवृति पर निर्भर करेगा।

द्वितीय, जब बचत ब्याज लोचदार है परन्तु निवेश पूर्णतया ब्याज बेलोच है तब ऋण वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत साधनों के हस्तान्तरण की संपूर्ण प्रक्रिया निजी उपभोग से होगी। ब्याज दर में तब तक वृद्धि होगी जब तक बचत में सार्वजनिक ऋण की मात्रा के बराबर वृद्धि नहीं हो जाती। कर वित्त व्यवस्था अपनाने से भी यही प्रभाव प्राप्त होगा। तृतीय, जब बचत व निवेश दोनों ब्याज लोचदार हो तब दोनों ही प्रकार की वित्त व्यवस्थाओं में साधन का हस्तान्तरण निजी पूंजी निर्माण व निजी उपभोग दोनों क्षेत्रों से होगा। कितना हस्तान्तरण पूंजी निर्माण क्षेत्र से होगा एवं कितना उपभोग क्षेत्र से यह ब्याज से बचत व निवेश की सापेक्षिक लोचशीलता पर निर्भर करेगा। परन्तु यह सच है कि कर वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोग क्षेत्र का अंशदान ऋण व्यवस्था में उपभोग क्षेत्र के अंशदान से अधिक होगा। अन्तिम परिणाम व्यय के प्रकार पर निर्भर करेगा।

गुनार मिर्डल ने संस्थापित सिद्धान्त की प्रासंगिकता का, अर्द्धविकसित देशों के विशेष संदर्भ में सावधानी पूर्वक परीक्षण किया एवं पता लगाया कि सामान्य विश्वास के विपरीत मुक्त बाजार अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक असमानताएं बढ़ी है।[1] इनका कारण बाजार शक्तियों में संस्थापित अर्थशास्त्रियों का अटूट विश्वास होना है। बाजार शक्तियां संतुलनकारी हो सकती है परन्तु एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था को गरीबी के दुष्चक्र से मुक्ति दिलाने हेतु सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। संस्थापित अर्थशास्त्रियों द्वारा संतुलित बजट पर अधिक बल दिया जाता था एवं उनके मत में राजकोषीय नीतियों को तटस्थ रहना चाहिए। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र का छोटा आकार व बजट नीति की तटस्थता से संसाधन आबंटन व वितरण अप्रभावित रहेगा। इस प्रकार संतुलित बजट होने पर क्या लेने की आवश्यकता नहीं होगी, ब्याज भुगतान में संसाधनों का क्षय नहीं होगा। संस्थापित अर्थशास्त्रियों का यह मत कि संतुलित बजट अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाते है कीन्स एवं क्रियात्मक क्षतिपूरक वित्त के समर्थक जैसे ए.पी.लर्नर के इस मत के बिल्कुल विपरीत है कि असंतुलित बजट बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इस

प्रकार संस्थापित प्रतिरूप अवास्तविक धरातल पर स्थित जान पड़ता है। कीन्स तथा क्षतिपूरक वित्त के अन्य समर्थकों ने राजकोषीय नीति को स्थिरीकरण नीति के अंग के रूप में प्रस्तुत किया एवं असंतुलित बजट को संतुलन प्राप्ति में पूर्ण सहायक माना।

संतुलित बजट रहने पर अर्थव्यवस्था प्रभावित नहीं होगी क्योंकि संस्थापित सिद्धान्त के अनुसार संतुलित बजट का कोई गुणक प्रभाव नहीं होता है। परन्तु संतुलित बजट सिद्धान्त[2] के प्रकाश में आने के बाद यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है। संतुलित बजट प्रमेय के अनुसार संतुलित बजट गुणक प्रभाव छोड़ता है और गुणक का मूल्य इकाई के बराबर अथवा करारोपण एवं व्यय के ढांचे के अनुसार कमी इकाई से अधिक अथवा इकाई से कम हो सकता है।[3] इस प्रकार संतुलित बजट की कोई विशेष उपादेयता सिद्ध नही होती। ऐसी स्थिति में असंतुलित बजट के साथ नियोजन अपना कर अर्द्धविकसित देश संसाधनों की कमी को पूरा कर सकती है। आर्थिक विकास को गति देने में अर्द्धविकसित राष्ट्रों में बजट नीति को प्रभावपूर्ण तरीके से इस्तेमाल किया जा सकता है।

---

1. Gunnar Myrdal, Economic Theory and Under-developed Regions, 1958.
2. The discussion of the concept of balance budget multiplier was begun by T.Haavelmo and H.C. Wallich. It was carried forward by G.Haberler, W.J.Baumol, A.T.Peacock etc.
3. As W.J. Baumol and M.H. Peston have put it "there is no reliable evidence on which to preclude even negative balanced budget multipliers or multipliers considerably in excess of unity."

बोध प्रश्न 1

1. संस्थापित अर्थशास्त्रियों के मत में बचत एवं निवेश किस आर्थिक चर पर निर्भर है?
2. संस्थापित अर्थशास्त्री सार्वजनिक ऋण जुटाकर व्यय करने के पक्ष में नहीं थे इसका मुख्य कारण क्या था?

23.3 सार्वजनिक ऋण एवं क्षतिपूरक वित्त

क्रियात्मक क्षतिपूरक वित्त का विचार सर्वप्रथम ए.पी. लर्नर ने दिया।[4] उनके मत में प्रथम सरकार को सदा मांग का एक तर्कसंगत स्तर बनाए रखना चाहिए, यदि अर्थव्यवस्था में पर्याप्त व्यय नहीं होने के कारण अधिक बेरोजगारी है तो सरकार को करों में कमी अथवा स्वयं के व्ययों में वृद्धि करनी चाहिए। यदि अत्यधिक व्यय के कारण मुद्रा प्रसार है तो इसे रोकने के लिए व्यय में कमी अथवा करों में वृद्धि करनी चाहिए। द्वितीय, जब ब्याज की दर बढ़ाना चाहे तो सरकार ऋण प्राप्त करे एवं जब इसे घटाना हो तो उधार दे। सरकार को ब्याज की दरों का उस स्तर पर बनाए रखना चाहिए जहाँ विनियोग अनुकूलतम हो सके। इस प्रकार सार्वजनिक ऋणों का उद्देश्य बाजार से मात्र साख

प्राप्त करना न होकर इसके आकार, संरचना एवं ब्याज दरों में परिवर्तनों द्वारा वित्त बाजारों को प्रभावित कर इच्छित लक्ष्य प्राप्त करना है। यह लक्ष्य अर्थ व्यवस्था को संतुलित स्तर पर बनाए रखना है। सार्वजनिक क्या अर्थव्यवस्था में कुल साख आपूर्ति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है एवं उसमें उपर्युक्त वर्णित परिवर्तन अर्थव्यवस्था में तरलता पर प्रभाव डालते है। रेडक्लिफ समिति ने भी अपने अनुभवों में इस तथ्य को उजागर किया है। समिति के मत में सार्वजनिक ऋणों की मात्रा एवं परिपक्वता अवधि में परिवर्तन तरलता को प्रभावित करते है इससे मांग प्रभावित होती है। परिपक्वता अवधि अर्थात ऋणों के भुगतान की अवधि में वृद्धि से तरलता में कमी एवं इसके विपरीत होने पर तरलता में वृद्धि होगी। इस प्रकार सार्वजनिक ऋण को आर्थिक नीति के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। सामान्य शब्दों में, मुद्रा स्फीति काल में ऋणों को प्राप्त कर सरकार व्यक्तियों से अतिरिक्त नकदी प्राप्त कर सकती है एवं इसके विपरीत परिस्थितियाँ होने पर ऋणों की अदायगी करके बाजार में तरलता बढ़ाकर गिरते हुए मूल्यों पर रोक लगा सकती है। इस प्रकार क्या लेने का उद्देश्य संसाधन जुटाना ही न होकर विकास को इच्छित गति 'एवं' दिशा प्रदान करना एवं स्फीतिकारी प्रवृतियों पर अंकुश लगाना है।

लर्नर के मत में सार्वजनिक क्या के बारे में अधिक चिन्ता एवं व्याकुलता का कारण उसके उद्देश्यों के बारे में अनभिज्ञता है ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्रियात्मक वित्त की नीति का पोषण करने के कारण सार्वजनिक ऋण लगातार बढ़ते जाएंगे क्योंकि (i) पूर्ण रोजगार का लक्ष्य तो अधिकाधिक मात्रा मे नोट छाप कर भी प्राप्त किया जा सकता है, (ii) स्थायी रूप से पूर्ण

---

4. The Lerner rules were as follow:
   1. The government should maintain a reasonable level of demand at all times. If there is no enough spending so that there is excessive unemployment the government shall reduce taxes or increase its own spending. If there is too much spending the government shall prevent inflation by reducing its own expenditure or by increasing taxes.
   2. By borrowing money when it wishes to raise the rate of interest and by lending money

   or repaying debt when it wishes to lower the rate of interest the government shall maintain that rate of interest which induses the optimum amount of investment. Palgraves Dictionary of Economics, Macmillian:

रोजगार की गारन्टी निजी विनियोगों से भी आकर्षक बनायेगी, (iii) जैसे-जैसे सरकारी ऋण बढते जायेंगे निजी सम्पत्ति बढ़ेगी इससे करारोपण आय बढ़ेगी (iv) राष्ट्रीय ऋणों में वृद्धि से संतुलनकारी शक्तियां क्रियाशील होकर भविष्य ऋणों की जरूरतों को कम करेगी, क्योंकि ऋणों के व्यय से निजी

सम्पत्ति बढ़ेगी उनकी आय बढ़ेगी एवं उनके व्यय बढ़ेंगे इससे सरकार के अधिक व्यय की आवश्यकता नही होगी। इस प्रकार ऋणों में लगातार वृद्धि का डर गलत है।

इसके बावजूद भी यदि ऋण बढ़ते है तो इनके ब्याज का भुगतान चालू करारोपण में से नहीं होना चाहिए; यदि चालू कर राजस्व से इसका भुगतान किया भी जाय तो ये कर उस छोटे समूह पर हो जिन्हें सरकारी व्यय से लाभ पहुँचाया गया है। इस प्रकार सार्वजनिक ऋण विनियोगों को हतोत्साहित नही करेंगे। ब्याज के ढाँचे में परिवर्तन से सार्वजनिक ऋणों की मात्रा एवं संरचना किस सीमा तक एवं किस दिशा में प्रभावित होगी इस पर अधिक शोध कई जरूरत है परन्तु ऐसा प्रभाव होगा इस पर शंका नही की जा सकती।

23.3.1 आर्थिक उच्चावचन एवं ऋण नीति

आर्थिक उच्चावचनों के समय सरकार सार्वजनिक ऋण का प्रयोग मौद्रिक नीति के एक अंग के रूप में कर सकती है। इसमें ऋण की मात्रा, ब्याज की दर एवं परिपक्वता अवधि में समयानुकूल परिवर्तन करना शामिल है। इसके लिए मुद्रा अधिकारियों का सजग होना अनिवार्य है। केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा मुद्रास्फीति एवं मन्दी के समय सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री एवं खरीद करके एवं भुगतान अवधि में परिवर्तन करके उच्चावचनों के प्रभावों की तीक्ष्णता को कम किया जा सकता है। यदि मुद्रास्फीति की स्थिति चल रही हो तो केन्द्रीय बैंक दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री व अल्पकालीन प्रतिभूतियों की खरीद कर सकता है। इससे दीर्घकालीन ऋणों में वृद्धि एवं अल्पकालीन ऋणों में कमी आएगी। इससे औसत भुगतान अवधि बढ़ जाएगी और तत्वों के यथावत् रहते ब्याज की दर में वृद्धि होगी। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा की मांग सार्वजनिक ऋण की भुगतान अवधि से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है क्योंकि दीर्घकालिक ऋण अल्पकालिक ऋणों के मुकाबले मुद्रा के अच्छे प्रतिस्थापक नहीं है। अतः यदि ऋण दीर्घकालिक होगा तो मुद्रा की मांग अधिक होगी व यदि ऋण अल्पकालिक होगा तो मुद्रा की मांग अधिक होगी व यदि ऋण अल्पकालिक होगा तो मुद्रा की मांग कम होगी इसको निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा बताया गया है।

रेखाचित्र 23.1

जैसा कि चित्र 23.1 में दर्शाया गया है ऋण अवधि ol से ol, हो जाने पर मुद्रा की मांग M से M हो जाती है और दीर्घकालीन ब्याज की दर or बढ़कर or, हो जाती है।

ऋण व्यवस्था में उपयुक्त समायोजन रखकर दीर्घकालीन, अल्पकालीन व नकद राशि की संरचनाओं में आवश्यक परिवर्तन से मुद्रा स्फीति व अवस्फीति के प्रभावों से रोका जा सकता है। यह चित्र 23.2 एवं 23.3 में दर्शाया गया है। चित्र 23.2. एवं 23.3 क्रमशः दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन ब्याज की दरों को दिखाते है। एक, दो एवं तीन के अंक क्रमशः नकद, अल्पकालीन प्रतिभूतियों व दीर्घकालीन ऋणों से दर्शाते है :

चित्र 23.2

चित्र 23.3

अर्थव्यवस्था में स्फीति की दशा विद्यमान हो तो दीर्घकालीन ऋण की ब्याज दर में परिवर्तन करके इस स्थिति पर नियंत्रण किया जा सकता है। चित्र 23.2 एवं 23.3 में बताया गया है कि जब दीर्घकालिक ब्याज दर में वृद्धि or, से or, की जाती है तब अल्पकालीन प्रतिभूतियों को दीर्घकालीन ऋण में बदलने की प्रवृति होगी इससे दीर्घकालीन ऋण बढ़ेगा व नकद राशि की मांग घटेगी। इससे व्यय शक्ति कम होगी। अवस्फीति होने पर इसके विपरीत क्रिया करनी होगी। इस प्रकार क्रियात्मक वित्त के समर्थकों के मत में सरकार ब्याज की दरों के प्रबन्धन द्वारा विनियोगों को प्रभावित करके उन्हें अनुकूलतम स्तर पर बनाए रख सकती है।

23.3.2 क्रियात्मक वित्त एवं विकास

क्रियात्मक वित्त के प्रतिपादक सार्वजनिक ऋण को स्फीति अथवा अवस्फीति कारक नही मानते बल्कि इससे ब्याज दर बढ़ती है जिससे विनियोग हतोत्साहित होते है एवं समग्र व्यय कम होता है। क्रियात्मक वित्त के समर्थक अर्थव्यवस्था के कीन्सीयन प्रतिरूप में विश्वास रखते है एवं यह मानकर चलते है कि अर्थव्यवस्था की एक दी हुई उत्पादन क्षमता होती है। लर्नर के मत में रोजगार का स्तर व्यय की दर पर निर्भर होता है। अर्थव्यवस्था में समग्र. व्यय के पाँच घटक है व्यक्तियों का उपभोग व्यय, व्यक्तियों का विनियोग व्यय, सरकार का उपभोग व्यय, सरकार का विनियोग व्यय, एवं व्यवसायियों का विनियोग व्यय। पूर्ण रोजगार की किसी भी नीति को इन पाँच में से किसी एक अथवा अधिक घटकों को प्रभावित कर समग्र व्यय स्तर को चालू उत्पादन स्तर के साथ संतुलन में लाना होगा।

क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त के अनुसार मुख्य मुद्दा स्फीति एवं अवस्फीति दोनों को नियंत्रण में रखना है। यदि अर्थव्यवस्था में रोजगार का न्यून स्तर व्यय के न्यून स्तर के कारण है तो सर्वप्रथम

व्यय के स्तर में वृद्धि करनी होगी इसके लिए उपर्युक्त वर्णित पाँच घटकों में से किसी एक अथवा अधिक घटकों को प्रभावित करना होगा। यदि व्ययाधिक्य के कारण स्फीतिकारी स्थिति विद्यमान है तो विपरीत परिवर्तन करना पड़ेगा। इस प्रकार न्यून व्यय की स्थिति को क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त में अपस्फीति माना गया है एवं इसके लिए अधिक व्यय की सलाह दी गई है। दूसरी ओर अधिक व्यय को स्फीति माना गया है इसके लिए व्यय कम करने की सलाह दी गई है।

स्फीति एवं अपस्फीति के लिए क्रियात्मक वित्त के अनुसार सरकार के पास राजकोषीय नीति के तीन युग्म विद्यमान है। प्रथम सरकार सीधे अपने व्यय में वृद्धि कर सकती है इसके लिये सरकार हस्तान्तरण भुगतानों जैसे पेंशन, अनुदान, सामाजिक सुरक्षा लाभों पर व्यय बढ़ा सकती है अथवा करारोपण द्वारा कम रूपया इकट्ठा कर सकती है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण बाजार में सरकार अपने पुराने ऋणों का भुगतान करके एवं अधिक उधार देकर व्यय बढ़ा सकती है इसके विपरीत इन्हीं तीन रीतियों से व्यय कम किया जा सकता है। संक्षेप में ये तीन युग्म: क्रय अथवा विक्रय, नागरिकों से वसूली या भुगतान, एवं साख लेना एवं उधार देना है।

क्रियात्मक वित्त का एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा करारोपण का उद्देश्य कर आय प्राप्त करना नहीं होना चाहिएं। बल्कि जनता के आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करना महत्वपूर्ण है जिससे वे कम अथवा अधिक व्यय करने को प्रोत्साहित हो। इसी प्रकार सार्वजनिक ऋण भी स्फीति अथवा अपस्फीतिकारी नही होती। इसका प्रभाव ब्याज की दर एवं विनियोगों के माध्यम से समग्र व्यय पर पड़ता है।

परंतु क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त अर्द्धविकसित देशों के लिए समर्थित राजकोषीय नीति के अनुरूप नही है। विकासशील देशों में विकास को गति देने के लिए परम्परावादी संतुलित बजट सिद्धान्त का समर्थन नही किया जा सकता। विकासशील देशों में राजकोषीय नीति को विनियोग एवं बचतों को प्रभावित करने के लिए उपयोगी माना जाता है। परन्तु क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त परम्परावादी संतुलित बजट सिद्धान्त का परित्याग अन्य कारणों से करता है। इनके मत में अर्थव्यवस्था में समग्र स्तर पर एक दी हुई उत्पादन क्षमता होती है एवं व्यय की दर को नियंत्रित करके इसे पुनः विकास के पथ पर बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार क्रियात्मक वित्त के स्थिर प्रतिरूप (Static Model) की राजकोषीय नीति आज की विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए उपयुक्त नहीं मानी जा सकती, क्योंकि विकासशील देशों की मुख्य समस्या स्फीति अथवा अपस्फीति एवं व्यय को नियंत्रित करने की नही है बल्कि विनियोगों एवं व्यय को लगातार बढ़ाने एवं उपभोग को नियंत्रित करने की है जिससे विकास को गति मिल सकें। इस प्रकार क्रियात्मक वित्त की नीति समग्र स्थैतिकी (Macro-Statics) की है जबकि कीन्स समर्थित राजकोषीय नीति समग्र प्रावैगिकी (Macro-dynamics) की है।[5] इन राष्ट्रों में करारोपण की कसौटी संसाधन संग्रह है यद्यपि यह आय वितरण एवं अर्थव्यवस्था में व्यय प्रारूप को प्रभावित करने की भूमिका भी निभाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक ऋण भी साधन संग्रह का एक माध्यम है। इस पहलू पर क्रियात्मक वित्त के समर्थक बल नही देते।

यह सही है कि विकासशील देशों में विनियोगों की मात्रा में वृद्धि से स्फीति बढ़ेगी परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होना चाहिए (जैसा कि. क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त में माना गया है) कि व्यय घटा दिए जाए क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो विकास अवरुद्ध हो जाएगा। इस प्रकार विकासशील अर्थव्यवस्था में स्फीति नियंत्रण के लिए अक्रियाशील उपभोग व अनुत्पादक व सट्टाकारी विनियोगों को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

यही नहीं क्रियात्मक वित्त द्वारा पोषित राजकोषीय नीति की आर्थिक स्थिरीकरण की भूमिका विकसित देशों में भी सन्देहास्पद है क्योंकि उन देशों में भी आर्थिक स्थायित्व राजकोषीय का लक्ष्य नहीं है। विकास की दर में स्थायित्व लक्ष्य नही है। विकास की दर में स्थायित्व ही विकास की दर में उत्तरोत्तर वृद्धि भी लक्ष्य होना चाहिए। क्रियात्मक वित्त सिद्धान्त अल्पकालीन

---

5. R.N.Tripathy (1985) "Public Finance in Under developed Countries, Sterling Publishers Pvt. Ltd. New Delhi. Pp.43-45.

उच्चावचनों के नियंत्रण के लिए तो ठीक है परन्तु यह दीर्घकालीन विकास के लिए उपयुक्त नीति नहीं है।

23.4 सारांश (Summary)

सार्वजनिक ऋण विकास योजनाओं के लिए संसाधन एकत्रित करने की एक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधि है। यह करारोपण की तरह कार्य करने की इच्छा पर विपरीत असर नहीं डालती। सार्वजनिक ऋण के संस्थापित सिद्धान्त के अनुसार चालू खर्चों की पूर्ति करारोपण एवं पूंजीगत व्यय की पूर्ति ऋण द्वारा की जा सकती है। इनके मत में सरकारी व्यय अनुपयोगी व अनुत्पादक होते है अतः सरकार को ऋण लेकर अपने व्ययों की पूर्ति नही करनी चाहिए। संस्थापित अर्थशास्त्रियों की बाजार शक्तियों में अपूर्व श्रद्धा थी एवं वे सरकारी हस्तक्षेप को अवांछनीय मानते थे।

आज अर्थशास्त्री विशेष रूप से कीन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के कारण सरकारी हस्तक्षेप को अनिवार्य मानते है एवं सरकार की राजकोषीय एवं बजट नीतियों के उपयोग अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण मांग का स्तर पूर्ण रोजगार स्तर तक ले जाने के लिए करते है। अब संतुलित बजट के स्थान पर असंतुलित बजट का समर्थन किया जाती है।

क्रियात्मक वित्त के समर्थक राजकोषीय नीति का समर्थन अर्थव्यवस्था में स्थायित्व एवं व्यय के इच्छित स्तर को बनाए रखने के लिए करते है। इनके मत में सार्वजनिक ऋण स्फीति अथवा अपस्फीतिकारी नहीं होते। आज के युग में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए क्रियात्मक वित्त के स्थान पर राजकोषीय नीति के प्रयोग का समर्थन किया जाता है यह नीति विकासशील एवं विकसित दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के हित में स्वीकार की जाने लगी है।

23.5 शब्दावली

संस्थापित सिद्धान्त	(Classical Theory)
क्रियात्मक वित्त	(Functional Finance)
संतुलित बजट प्रमेय	(Balanced Budget Theorem)
तरलता	(Liquidity)
परिपक्वता अवधि	(Maturity Period)
प्रतिभूतियाँ	(Securities)
हस्तान्तरण भुगतान	(Transfer Payments)
समग्र - स्थैतिकी	(Macro-Statics)
समग्र – प्रावैगिकी	(Macro-dynamics)

23.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Richard A. Musgrave (1959) The Theory of Public Finance.
2. H. Dalton, 1961, Principles of Public Finance.
3. Lerener (1983), Selected Economic Writings of Abba P.Lerner (Ed) D.C. Colander New York, New York University Press.
4. R.N. Tripathy(1985), Public Finance in Underdeveloped Countries, Sterling Publishers New Delhi.

इकाई - 24

आन्तरिक व बाह्य सार्वजनिक ऋणों के मुद्दे

इकाई संरचना

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 सार्वजनिक ऋण भार

24.2.1. आन्तरिक सार्वजनिक ऋण भार

24.2.2. बाह्य सार्वजनिक ऋण भार

24.3 सार्वजनिक ऋण भार व भावी संतति

24.4 सार्वजनिक ऋण व्यवस्था

24.5 सार्वजनिक ऋण - शोधन पद्धतियां

24.6 सारांश

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

24.8 अभ्यास के लिए कतिपय प्रश्न

24.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सार्वजनिक ऋणों के विपिन आर्थिक प्रभावों, इसके भार, ऋण शोधन की पद्धतियों आदि से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- समझ सकेंगे कि सार्वजनिक ऋण सिद्धान्त के मुख्य मुद्दे क्या है;
- सार्वजनिक ऋण, आन्तरिक व बाह्य दोनों, का भार समाज के किस वर्ग पर पड़ता है क्या सभी प्रकार के ऋण अनावश्यक है? एवं भावी संतति के लिए बोझ है आदि मुद्दों पर चर्चा कर सकेंगे; एवं
- सार्वजनिक ऋण की विभिन्न शोधन पद्धतियों के बारे में अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्तों से अवगत हो जाएंगे।

24.1 प्रस्तावना

सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में प्रायः सामान्य जनता एवं प्रशिक्षित अर्थशास्त्रियों के विचारों में विविधता दृष्टिगोचर होती है। एक जन सामान्य सार्वजनिक ऋण की प्रत्येक वृद्धि से चिन्तित हो जाता है एवं इसे स्वयं एवं भावी संतति पर अतिरिक्त भार के रूप में देखते है। अतः प्रत्येक ऋण

अवांछनीय है। इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों के विचार सार्वजनिक क्या के मुद्दे पर अलग अलग है। इस इकाई के अन्तर्गत आन्तरिक एवं बाह्य क्या से सम्बन्धित प्रमुख मुद्दों की चर्चा की जाएगी।

24.2 सार्वजनिक ऋण भार

सार्वजनिक ऋण का वास्तविक भार देखने हेतु हम इन्हें दो अलग अलग भागों में विभाजित करना पड़ता है। (i) आन्तरिक ऋण, एवम् बाह्य ऋण। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण भार के अन्तर्गत समानता व आर्थिक कार्य कुशलता की दृष्टि से इसके प्रभावों की व्याख्या की जाती है। जब कोई ऋण प्राप्त किया जाता है तो ऋण प्राप्त करने वाला व्यक्ति, संस्था अथवा सरकार अपने को पूर्व की अपेक्षा अधिक सम्पतिवान अनुभव करता है अतः उसके वर्तमान उपभोग का स्तर ऊँचा हो जाता है, बचत कम हो जाती है। अधिक ऋण लेने पर ब्याज की दर पर भी प्रभाव पड़ता है व निजी व्यक्तियों या संस्थाओं के लिए प्रभावी ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है।

सार्वजनिक ऋण अनुत्पादक कार्यो के लिए प्राप्त किया जाता है तो इसकी अवसर लागत निजी व्यक्ति द्वारा उसका उत्पादक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल है। सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज का भुगतान भी किया जाता है यह ब्याज करारोपण द्वारा प्राप्त राशि से किया जाता है यह ब्याज करारोपण द्वारा प्राप्त राशि से किया जगता है। यदि ऋण का अनुत्पादक प्रयोग किया गया हो तो ब्याज का भुगतान मात्र एक हस्तान्तरण भुगतान है जो करदाताओं से सरकार के बाण्ड धारकों को होता है एवं इसका भार करदाताओं पर पड़ता है। यदि कर सम्पतिवान वर्ग पर लगाया गया हो तो बाण्ड धारकों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण होता है। यदि बाण्डधारक व करदाता वर्ग एक ही है तब भी सार्वजनिक ऋण कार्य करने की प्रेरणा पर प्रभाव डालता है क्योंकि कर से बचने के लिए व्यक्ति कम कार्य कर कम आमदनी प्राप्त कर कम कर देना पसंद करेगा।

इसके विपरीत जब सार्वजनिक ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए किया जाय तो इससे अनेक वस्तुओं की मान बढ जाती है परिणामस्वरूप मूल्य बढ़ जाते है। इस प्रकार आन्तरिक ऋण के अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ते है।

दूसरी ओर, बाह्य सार्वजनिक ऋणों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मौद्रिक व वास्तविक भार अवश्य पड़ता है। प्रत्यक्ष मौद्रिक भार, ऋण का ब्याज व मूलधन के रूप में ऋणी देश से ऋणदाता देश को जो दिया जाता है- वह है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार आर्थिक कल्याण में कमी से ज्ञात किया जा सकता है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस स्थिति में कम होगा जब अधिकांश बाह्य ऋणों का परोक्ष मौद्रिक व वास्तविक भार भी पड़ सकता है - यह भार उत्पादन मे कमी के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। बाह्य ऋण से उत्पादन दो प्रकार से हतोत्साहित हो सकते है – प्रथम, बाह्य ऋणों के भुगतान के लिए भारी मात्रा में करारोपण किया जावे जिससे ऋणी देश के नागरिकों के कार्य व बचते करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। द्वितीय, बाह्य ऋणों के भुगतान के लिए अनेक सार्वजनिक व्ययों में कमी करनी पड़े जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़े।

इस प्रकार सार्वजनिक ऋणों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मौद्रिक व वास्तविक भार अनेक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इससे ऋण लेने वाले देश की मुद्रा का मूल्य भी प्रभावित होता है।

यदि समय पर ऋण भुगतान न किया जाय तो इसके दूरगामी प्रतिकूल प्रभाव पड़ते है। कभी-कभी ऋणदाता देश अथवा संस्थाएं ऋण के साथ शर्तों को जोड़ देते है इससे देश की सम्प्रभुता प्रभावित होती है।

24.2.1 आन्तरिक सार्वजनिक ऋण भार

क्या सार्वजनिक ऋण का समुदाय पर कोई भार पड़ता है? इससे संबंधित दो एक दूसरे के विपरीत सिद्धान्त है:-

प्रथम, के अनुसार एक आन्तरिक सार्वजनिक ऋण का उसी तरह से भार पड़ता है जिस तरह से एक निजी ऋण का। यह सिद्धान्त तर्क संगत नहीं है क्योंकि एक निजी ऋण में ऋणी को ब्याज व मूलधन का भुगतान ऋणदाता को करना पड़ता है और ये दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति होते है। जबकि सार्वजनिक ऋण के भुगतान में करदाता ब्याज व मूलधन का भुगतान ऋण पत्र खरीदने वालों को करते है और ये दोनों एक ही राज्य में होते है इसलिए इस रूप में सार्वजनिक ऋण इस प्रकार भार नही डालता है जिस प्रकार एक निजी ऋण ऋणी पर डालता है।

द्वितीय, के अनुसार एक आन्तरिक सार्वजनिक ऋण के द्वारा एक ही राज्य में धन का हस्तांतरण करदाताओं से ऋण पत्र के खरीदने वालों के मध्य होता है। अतः इस प्रकार के ऋण का कोई भार नहीं पड़ता है। यह विचार भी उपरोक्त विचार के ही भांति सही नहीं है। यद्यपि, करदाता व ऋणपत्र खरीदने वाले एक ही राज्य के है परंतु ये दोनों विभिन्न समूह है और एक समूह को होने वाला लाभ दूसरे समूह को होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति न कर सके। उस अवस्था में राज्य को विशुद्ध हानि ही होगी।

इस प्रकार उपयुक्त विश्लेषण से यह पता नही लगता है कि आन्तरिक ऋण का वास्तव में भार पड़ता है या नही और यदि पड़ता है तो कितना? इसके लिए निम्न अन्य कारकों को भी ध्यान रखना चाहिए-

(i) यदि आन्तरिक सार्वजनिक ऋण का भार वार्षिक रूप से करदाताओं द्वारा ऋण पत्र धारियों को दिया गया ब्याज के रूप में पाया जाता है तो निरपेक्ष ऋण की मात्रा का ऋण भार पर प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु सरकारी प्रतिभूतियों व बांड पर दी गयी ब्याज दर का ऋण भार पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, एक आन्तरिक सार्वजनिक ऋण 2% ब्याज दर है और अन्य उसी मात्रा के ऋण पर ब्याज दर 4% है तब प्रथम ऋण का मौद्रिक भार द्वितीय क्या भार का आधा है।

(ii) ऋण भार को, ब्याज के भुगतान के लिए लगाए गए करों द्वारा उत्पन्न भार (Strains) व घर्षण (frictions) के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। इसी आधार पर कुल सार्वजनिक ऋण की मात्रा भी निश्चित की जा सकती है। यह मात्रा अधिक होगी यदि एक समुदाय इन भार एवं घर्षण को (Strains & frictions) को अधिक वहन कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि ऋण पत्र अधिकतर धनी वर्ग के पास है और कर निर्धन वर्ग पर लगाए जाते है। इस अवस्था में उत्पन्न भार (Strains) व घर्षण

(frictions) उस अवस्था से कहीं अधिक होंगे जब ऋण पत्र निर्धन वर्ग के पास हो और कर धनी वर्ग पर लगाया जावे। क्योंकि निर्धन वर्ग द्वारा चुकाए गए कर की राशि की सीमान्त उपयोगिता धनी वर्ग की अपेक्षा अधिक होती है।

(iii) प्रो. डोमर ने सार्वजनिक ऋण के भार को कुल ऋण का, कुल राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया है। अर्थात् भार इन दो कारकों पर निर्भर करता है।

$$\text{ऋण भार} = \frac{\text{कुल ऋण}}{\text{कुल राष्ट्रीय आय}}$$

यदि कुल राष्ट्रीय आय स्थिर रहती है और कुल ऋण की मात्रा बढ़ती जाती है तो ऋण भार भी बढ़ता जाएगा। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की गति, ऋण मात्रा में वृद्धि की गति से अधिक है तो ऋण की मात्रा में वृद्धि होने पर भी क्या भार में कमी होगी।

डोमर के ऋण भार सिद्धान्त को निम्न रूप में बताया जा सकता है-

$$r = \frac{iD_t}{iD_t + P_tY_t} = \frac{1}{1 + \frac{1''}{1 \quad \frac{1}{\frac{Dt}{PtYt}}}}$$

यहाँ r= ऋण भार, i = ब्याज दर, Dt = t समय में ऋण, Pt = t समय में मूल्य, Yt=t समय में वास्तविक राष्ट्रीय आय।

उपरोक्त संबंध बताता है कि जैसे जैसे व्याज दर और सार्वजनिक ऋण का राष्ट्रीय आय से अनुपात बढ़ता है वैसे वैसे ऋण भार (r) भी बढ़ता है।

(iv)ए. पी. लर्नर के अनुसार सार्वजनिक ऋण के भार को बेरोजगारी के भार के द्वारा भी मापा जा सकता है। बेरोजगारी को दूर करने के लिए जब घाटे के व्यय की व्यवस्था की जाती है तब सार्वजनिक ऋण की मात्रा में वृद्धि होती है। इस प्रकार जब, घाटे का व्यय कार्यक्रम न हो तब बेरोजगारी का भार ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार से करने पर ऋण भार बहुत कम आएगा।

उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के कुछ गौण भार भी है जिनको भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है - ये निम्न है -

(1) अधिक मात्रा में सार्वजनिक ऋण होने पर उससे स्फीतिकारी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियाँ तरल मुद्रा के रूप में होती है और यदि बिल बाजार नीति स्थिर हो तो इन सरकारी प्रतिभूतियों को तुरंत ही मुद्रा के रूप में परिवर्तित करवाया जा सकता है। इससे अर्थव्यवस्था स्फीतिकारी हो जाएगी। केन्द्रीय बैक के साख नियंत्रण के तरीके इतने प्रभावपूर्ण नही रहते जिससे ब्याज दर में वृद्धि की जा सके और इन

प्रतिभूतियों के मूल्यों में गिरावट आए। इससे सरकारी प्रतिभूति बाजार में अव्यवस्था आ जायेगी।

(2) अधिक मात्रा में सार्वजनिक ऋण होने पर उतनी ही अधिक मात्रा में कर द्वारा प्राप्त साधनों की आवश्यकता होगी। इससे व्यक्तियों के कार्य करने, बचत करने, जोखिम उठाने की इच्छा व क्षमता आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इससे अर्थव्यवस्था में आर्थिक साधनों के अवांछनीय आवंटन को प्रोत्साहन मिलेगा।

इस प्रकार आपने पिछले कुछ पृष्ठों में देखा कि आन्तरिक सार्वजनिक ऋण का प्रत्यक्ष भार नही होता परन्तु वास्तविक कर अवश्य पड़ता है। सामान्य रूप से कर देने वाले व भुगतान प्राप्त करने वाले व्यक्ति भिन्न भिन्न होते है। ऋण व्यय उत्पादक या अनुत्पादक कार्यों में हो रहा है वह भी ऋण भार को निर्धारित करता है। यह अवश्य है कि कुछ समायोजनों के कारण आन्तरिक ऋण का भार कम हो सकता है। परन्तु यह कहना उचित नहीं है कि आन्तरिक ऋण के प्रभाव नहीं होते और कोई भार नहीं होता।

24.2.2 बाह्य सार्वजनिक ऋण भार – बाह्य ऋणों का भुगतान विदेशी सरकारों व संस्थाओं को करना पड़ता है। आन्तरिक ऋण की तुलना में बाह्य ऋण के अन्तर्गत ब्याज व मूल्य का भुगतान देश के भीतर ही न रहकर देश के बाहर जाता है। यह ऋणी देश से ऋणदाता देश की ओर हस्तान्तरित होता है। अर्थात् साधनों का एक देश से दूसरे देश में स्थानान्तरण होता है और देश में उपलब्ध साधनों में कमी आती है। यह भुगतान बहुधा निर्यात आधिक्य द्वारा या मूल्यवान विदेशी विनिमय द्वारा भी करना होता है।

अतः यह और भी आवश्यक हो जाता है कि बाह्य ऋणों का प्रयोग आर्थिक विकास के कार्यों में ही किया जावे जिससे उत्पादकता बढ़ेगी और ऋण के भुगतान का भार अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल नहीं पड़ेगा। यदि सरकार बाह्य ऋणों का प्रयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए करती है तो निश्चित ही आन्तरिक साधनों में कमी होती है और उत्पादन क्षमता बढ़ती नहीं है। ऐसे ऋणी की अदायगी की भी समस्या उत्पन्न होती है।

15.5 सार्वजनिक ऋण भार व भावी संतति

सार्वजनिक ऋण भार से संबंधित यह एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर अनेक अर्थशास्त्रियों ने समय समय पर अपने विचार व्यक्त किए है। यह एक विवादास्पद विचार है कि सार्वजनिक ऋण का भार आगामी संतति पर हस्तान्तरित होता है या नहीं।

इससे संबंधित परम्परावादी तर्क यह हैकि जब किसी प्रोजेक्ट की वित्त व्यवस्था कर द्वारा की जाती है तब व्यक्तियों द्वारा प्रोजेक्ट के लिए इसी समय भुगतान किया जाता है परन्तु जब वित्त मे व्यवस्था सार्वजनिक ऋण-द्वारा की जाती है तब वर्तमान संतति उस प्रोजेक्ट की लागत को वहन न करके उसका भार भविष्य संतति पर डाल देती है क्योंकि ऋण के मूलधन व ब्याज ही अदायगी

भविष्य संतति द्वारा ही की जाती है। अतः इस प्रकार सार्वजनिक ऋण का भार भविष्य संतति को हस्तान्तरित हो जाता है।

उपरोक्त तर्क निम्न आधार पर सही नहीं है - इसके अनुसार भविष्य संतति पर सार्वजनिक ऋण का वास्तविक भार नहीं पड़ता है। इस तर्क के समर्थकों का कहना है कि सरकारी क्रियाओं का वास्तविक भार उसी समय होता है जिस समय उससे संबंधित व्यय किया जाता है। क्योंकि इसी समय में साधन निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र की ओर हस्तांतरित होतें है। जब सार्वजनिक ऋण लिया जाता है तब यदि भावी संतति पर उसके कर व मूलधन को भुगतान करने का दायित्व आता है तब भावी संतति स्वयं ही ऋण पक्ष की धारक भी होती है और वही ब्याज व मूलधन का भुगतान भी प्राप्त करती है। इस प्रकार यह एक प्रकार से भावी संतति के मध्य ही हस्तांतरण है न कि वर्तमान संतति से भावी संतति को - जैसा समझा जाता है। अर्थात् इस प्रकार भावी संतति पर कोई वास्तविक भार नहीं पड़ता है।

एक अन्य पहलु और है। उपरोक्त दृष्टिकोण यह नहीं बताता है कि किसी भी प्रोजेक्ट से वित्त की व्यवस्था का वास्तविक भार निजी उपभोग के त्याग से है जो या तो वर्तमान या भावी उपभोग दोनों में से किसी का हो सकता है। दोनों तरीकों में भार सम्मान नहीं होगा।

अब हम ऋण भार व भावी संतति के बारे में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित विचारधाराओं का अध्ययन करेंगे

रिकार्डो-पीगू सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक ऋण का भार भावी संतति पर उस रूप में है यदि उसे पूंजी संचय कम मात्रा में उपलब्ध होता है। रिकार्डो व पीगू के अनुसार यदि सरकार अपने व्यय को करों के माध्यम से सम्पन्न करती है तो प्रथम संतति, द्वितीय संतति को मात्र कर प्राप्तियाँ प्रदान करती है किन्तु सरकार यदि यही व्यय बॉड जारी करके संपन्न करती है तो प्रथम संतति द्वितीय संततिको वसीयत के रूप में बाँड प्रदान करती है। द्वितीय संतति बाँड प्राप्त करने के साथ साथ भविष्य में सरकार द्वारा लिए गए ऋण के भुगतान के लिए कर देनदारी भी प्राप्त करती है। वास्तव में, द्वितीय संतति का कल्याण इस बात पर निर्भर नहीं करता कि उसे प्रथम संतति से करप्राप्तियाँ मिलती है या बॉड। बल्कि वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे वास्तविक पूंजी संग्रह के रूप में क्या मिलता है। यदि सार्वजनिक व्यय करारोपण से पूरा किया जायेगा तो उससे उपभोग में कमी होगी और अधिक मात्रा में पूंजी संग्रह द्वितीय संतति को प्राप्त होगा। परन्तु यदि यही बाँडों द्वारा किया जाएगा तो उपभोग बढ़ेगा इस आशा में कि वर्तमान समय में उसके पास बॉड है और भविष्य में उसके भुगतान के लिए किस पर कर लगेगा यह अनिश्चित है। अतः द्वितीय संतति को पूंजी संग्रह कम मात्रा में प्राप्त होगा और यही ऋण भार का भावी संततिको हस्तांतरण है।

बुकानन सिद्धान्त :

बुकानन के अनुसार राजकीय व्यय की वित्त व्यवस्था ऋण द्वारा करने पर उसका भार भावी संतति को अन्तरित होगा। उनके अनुसार भार के विचार का विवेचन व्यक्तियों के आर्थिक कल्याण संबंधी दृष्टिकोण से करना चाहिए न कि वास्तविक आय व नीति क्षेत्र के उत्पादन में परिवर्तन से। बुकानन के अनुसार जब सरकारी व्यय के लिए वित्त की व्यवस्था ऋण द्वारा की जाती है तब किसी प्रकार का भार नही पड़ता है क्योंकि व्यक्ति स्वेच्छा से बाँड खरीदते है और उनको उपभोग या विनियोग के रूप में कोई त्याग नहीं करना पड़ता है। परिणामस्वरूप, वह अपने आपको आर्थिक रूप से पहले से बुरी स्थिति में नहीं समझेगा। जब बाँड का भुगतान भावी संतति द्वारा किया जाता है तब उसका भुगतान करदाताओं से बाँड धारकों को किया जाता है। यहां करदाता को त्याग करना पड़ता है और वे अपने आपको पहले से बुरी स्थिति में पाते है जबकि बाँड धारकों के लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि वे केवल बॉड को नकदी से परिवर्तित कर लेते है जो स्वेच्छा से होता है। अतः वे लाभ का अनुभव नहीं करेंगे। इस प्रकार, परिणामस्वरूप, सम्पूर्ण समाज आगे आने वाले समय में पहले से अधिक त्याग की अनुभूति करता है। अर्थात् ऋण भार भावी संतति की ओर अन्तरित होता है। बुकानन का यह विश्लेषण एक तरह से रिकार्डो - पीगू के विश्लेषण के काफी समीप है। क्योंकि जब प्रथम संतति साधन संग्रह उपभोग में कमी के माध्यम से करेगी तो इससे भावी संतति को अधिक पूंजी संचय मिलेगा। जब यही साधन संग्रह ऋण व्यवस्था के माध्यम से किया जाएगा तो उससे पूंजी संचय कम मात्रा में होगा।

मसग्रेव का अन्तर्संततीय समानता का सिद्धान्त :(Musgrave thesis of Inter-generation Equity)

मसग्रेव के अनुसार सरकारी व्यय की वित्त व्यवस्था ऋण द्वारा करने पर उसका भार सभी संततियों पर समान रूप से विभाजित हो जाएगा। कर व्यवस्था द्वारा यह सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें भार एक ही संतति को वहन करना पड़ता है। मसग्रेव ने अपने विचार को एक उदाहरण द्वारा समझाया है। यहां यह माना है कि सरकारी व्यय द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा दीर्घकालीन है। इसकी लागत को समान रूप से विभाजित किया जाता है - उपयोग करने के आधार पर। प्रत्येक संतति का जीवनकाल भी 3 अवधियों से संबंधित है। सरकारी व्यय का जीवनकाल भी 3 अवधियों से संबंधित है। प्रथम अवधि में प्रथम संतति अपने अन्तिम काल में द्वितीय संतति द्वितीय काल व तृतीय काल व तृतीय संतति अपने प्रारम्भिक काल में होगी जो निम्न है।

	प्रथम संतति	द्वितीय संतति	तृतीय संतति	चतुर्थ संतति	पंचम संतति
प्रथम अवधि	अन्तिम काल	द्वितीय काल	प्रारम्भिक काल	-	-
द्वितीय अवधि	-	अन्तिम काल	द्वितीय काल	प्रारम्भिक काल	-
तृतीय अवधि	-	-	अन्तिम काल	द्वितीय काल	प्रारम्भिक काल

मसग्रेव के अनुसार प्रत्येक संतति द्वारा गया ऋण उसके जीवनकाल में ही वापस कर दिया जाना चाहिए। मसग्रेव के अनुसार प्रत्येक संतति द्वारा कुल लागत का निम्न भाग वसूल किया जाना चाहिए।

संतति	**लागत**
प्रथम	1/9
द्वितीय	2/9
तृतीय	3/9
चतुर्थ	2/9
पंचम	1/9

यह लागत इस संतति द्वारा सरकारी व्यय सेवा के उपयोग अवधि पर निर्भर है।

मसग्रेव के विश्लेषण के अनुसार भावी संतति की आर्थिक स्थिति पर पूर्व संतति के निर्णयों से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अर्थात् पूर्व संतति द्वारा भावी संतति को वसीयत के रूप में पूंजी संचय प्रदान करने की बात मसग्रेव के विश्लेषण में महत्व नहीं रखती है।

बॉवन, डेविस का कॉफ सिद्धान्त (B.D.K. Thesis) इनके अनुसार यदि सरकारी व्यय की सम्पूर्ण वित्त व्यवस्था यदि प्रथम संतति के उपभोग में कटौती करके की गयी हो तब भी उसका ऋण भार भावी संततियों पर अन्तरित होगा। उन्होंने यह एक उदाहरण द्वारा समझाया है। माना कि एक देश केवल लकड़ी का उत्पादन कर रहा है 1900 में। माना कि सरकार को 100 टन लकड़ी की युद्ध संबंधी कार्यो के लिए आवश्यकता है और इसकी पूर्ति प्रथम संतति द्वारा अपने उपभोग में इसी के बराबर कमी करके की है। माना कि प्रत्येक संतति का जीवन काल 44 साल है और प्रत्येक संतति द्वारा उपभोग मे कमी उस संतुति की अवधि समाप्त होने से पहले उपभोग में वृद्धि द्वारा पूरी की जाती है। तीन संततियों के मध्य लकड़ी के उपभोग का प्रारूप निम्न होगा-

वर्ष	संतति	लकड़ी का उपभोग (टन में)
1900	I	–100
1944	I	+100
	II	– 100
1988	II	+100
	III	–100

उपरोक्त विवरण बताता है कि यद्यपि सरकारी व्यय की पूर्ति प्रथम संतति द्वारा पूर्ण रूप से उस व्यय के बराबर उपभोग में कमी करके की गयी है परन्तु प्रत्येक संतति का उपभोग आगे आने वाले 44 सालों तक स्थगित कर दिया गया है। इस प्रकार प्रत्येक संतति पर इसका भार पड़ता है। यह तब तक चलता रहेगा जब तक सरकार द्वारा लिया गया ऋण भुगतान नहीं कर दिया जाता। अर्थात् प्रत्येक संतति को उपभोग को स्थगित करते रहकर त्याग करके भार वहन करना पड़ेगा। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि द्वितीय संतति यद्यपि पूंजी संचय में किसी प्रकार की कमी का अनुभव नही करती है फिर भी वह भार वहन कर रही है। यह बाँवन, डेविस व कॉफ की विचारधारा है। किन्तु वास्तव में द्वितीय संतति को कम मात्रा में पूंजी संचय मिलेगा। अर्थात् नवीन संतति को वसीयत के रूप में कम पूंजी संचय उपलब्ध होगा।

इस प्रकार, उपरोक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि पूंजी संचय की वसीयत ऋण व्यवस्था द्वारा सरकारी व्यय को करना एक महत्वपूर्ण पहलु है। ऋण भार भावी संतति पर अन्तरित होता है। यदि सार्वजनिक ऋण से पूंजी निर्माण किया जावे और उससे प्राप्त लाभ को ही ऋण की अदायगी के लिए उपयोग किया जाए तो भावी संतति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

24.4 सार्वजनिक ऋण व्यवस्था

आधुनिक समय में विशेषकर विकासशील देशों में सार्वजनिक ऋण का परिमाण व उसकी संरचना में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इन देशों को आर्थिक विकास की समस्या के साथ साथ ऋण व्यवस्था की समस्या का भी सामना करना पड़ रहा है। बड़े परिमाण में ऋण ले लिए गए है और अब उनके भुगतान की समस्या आ रही है। इसके लिए एक उपयुक्त ऋण व्यवस्था की आवश्यकता है जिससे समाज पर कम से कम भार पड़े। क्योंकि सरकार द्वारा लिए गए ऋण अन्ततोगत्वा समाज को ही करों द्वारा भुगतान करना है। अर्थात समाज के इसके लिए त्याग करना होगा। इसी त्याग को न्यूनतम करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि ऋण की संरचना, उसकी भुगतान अवधि की संरचना, दी जाने वाली ब्याज की दर आदि का उचित सामंजस्य रखा जाये।

रोल्फ ने ऋण व्यवस्था के लिए निम्न सिद्धान्तों को आवश्यक बताया है -

1. प्रतिदेय ऋण की संरचना एवं आकार तब इष्टतम होगा जबकि प्रत्येक ऋण साधन की सीमान्त उपयोगिता उसकी सीमान्त लागत के अनुपात में हो।
2. प्रत्येक प्रतिदेय ऋण की उपयोगिता व्यापार क्रिया के अनुसार परिवर्तित होती है। यदि व्यापार गतिविधि में तेजी है तो ऋण की उपयोगिता बढ़ेगी और यदि व्यापार की क्रियायें मन्द है तो ऋण की उपयोगिता घटेगी।
3. यदि ऋण की औसत भुगतान अवधि उसकी संरचना में परिवर्तन लाकर घटा दी जाए तो इसके कारण निजी व्यय में वृद्धि होगी और यही अवधि यदि बढ़ा दी जाए तो इससे निजी व्यय में कमी होगी। इसके लिए निम्न दो शर्तें आवश्यक है

(अ) यदि प्रतिभूतियों की अवधि कम है तो उसमें नकदी या तरलता का गुण अधिक होना चाहिए।

(ब) नकदी या तरलता की सीमान्त उपयोगिता धनात्मक होनी चाहिए।

4. यदि सार्वजनिक ऋण की संरचना नहीं बदली जाए किन्तु उसकी मात्रा कम कर दी जाए तो उससे निजी व्यय घटेगा। यह निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

चित्र 24.1

ए बी रेखा निरन्तर ऋण रेखा है। X अक्ष पर दीर्घकालीन ऋण व y अक्ष पर अल्पकालीन ऋण बताए गए है। P, P_1, P_2, P_3, निजी आय को व्यक्त करने वाली सम आय रेखायें है जो दीर्घकालीन व अल्पकालीन ऋणों के विभिन्न संयोगों को बताती है। माना कि P_1 वक्र पर S बिन्दु पुराने ऋण को व्यक्त करता है। अब यदि सरकार ऋण की संरचना में परिवर्तन किए बिना ऋण की मात्रा में कमी कर देती है। इससे निजी व्यय बढ़ जाएगा। अब नया बिन्दु S के स्थान पर R आएगा जो P वक्र पर है और अधिक निजी व्यय को व्यक्त करता है।

5. वाणिज्यिक बैंकों के आरक्षित कोष का भी ऋण की दीर्घकालीन या अल्पकालीन प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है।

ऋण व्यवस्था की सामान्य तकनीक

सार्वजनिक ऋण के कुशल प्रबन्ध में यह आवश्यक है कि सरकारी ऋणों पर ब्याज निम्न स्तर पर रखा जावे और विभिन्न भुगतान अवधियों की ब्याज दरों में इस तरह समायोजन किया जाए कि वे व्यक्तियों के अधिमानों के अधिक से अधिक निकट ही।

इस तरह से समायोजन करने की सबसे अधिक प्रचलित एक विधि " Swapping Operation" है। इस विधि के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक द्वारा एक साथ सरकारी प्रतिभूतियों का इस प्रकार से क्रय व विक्रय किया जाता है जिसमें कुल ऋण की मात्रा को परिवर्तित किए बिना केवल प्रतिभूतियों की संरचना में परिवर्तन किया जाता है। इसके कारण ब्याज दरों का प्रारूप परिवर्तित हो जाता है परन्तु बैंकों के आरक्षित कोषों की मात्रा में कोई परिवर्तन नही आता है।

कुल सार्वजनिक ऋणों में अल्पकालीन ऋणों का अनुपात जितना अधिक होगा उतना ही सरकार पर उनके भुगतान का दायित्व अधिक होगा अर्थात् यह या तो नए कर लगाकर किया जाएगा या फिर नया ऋण प्राप्त करके। अतः अल्पकालीन ऋणों से प्राप्त होने वाली इन हानियों की उनसे

मिलने वाले लाभों (कम ब्याज भार) से तुलना करना आवश्यक है। इसी प्रकार से अल्पकालीन ऋणों का दीर्घकालीन ऋणों से उचित सामन्जस्य आवश्यक है।

सार्वजनिक ऋण व्यवस्था की एक प्रमुख समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब ऋणदाता भुगतान अवधि से पहले ही ऋण की अदायगी ले लेता है। इससे किसी भी समय सरकार पर सार्वजनिक ऋण की अदायगी की जिम्मेदारी असीमित हो जाती है यद्यपि ऋण दीर्घकालीन ऋण ही क्यों न हो। इस समस्या के समाधान के लिए निम्न उपाय किये जा सकते है:

(i) दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर इस तरह से ब्याज दर निश्चित कर दिया जाए जिससे विभिन्न प्रकार की सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर भुगतान अवधि के साथ बढ़ती जाये। और यदि ऋणदाता समय से पहले अदायगी लेता है तो उसे बहुत कम ब्याज दर पर उसका भुगतान किए जाए।

(ii) गैर विपणीय प्रतिभूतियों की बिक्री की जावे।

(iii) उपरोक्त दोनों का सम्मिश्रण हो।

उच्चावचनों के संदर्भ में आधुनिक समय में ऋण व्यवस्था को एक उपयुक्त यंत्र के रूप में काम में लिया जा सकता है। ऋण की भुगतान अवधियों में उपयुक्त समायोजन व परिवर्तन करके उच्चावचनों के प्रभावों की तीक्ष्णता को कम किया जा सकता है।

24.5 सार्वजनिक ऋण-शोधन पद्धतियाँ

सार्वजनिक ऋण के भुगतान की अनेक विधियाँ प्रचलित है। उनमें से कुछ मुख्य निम्न है-

(i) ऋण निषेध-

इसके अन्तर्गत सरकार ऋण के भुगतान करने से इंकार कर देती है परन्तु इस विधि के बड़े घातक परिणाम निकल सकते है। आन्तरिक व बाह्य दोनों ही प्रकार के ऋणों के लिए यह विधि अनुचित है। इससे सरकार की साख को आघात लगता है। आन्तरिक रूप से भविष्य में सरकार को अन्य ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी शान्ति भंग हो जाती है। यहाँ तक कि युद्ध की परिस्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।

(ii) वार्षिक वृत्ति-

जब सरकार ऋण का भुगतान एक साथ न करके किश्तों के रूप में प्रतिवर्ष करती है तो इस विधि को वार्षिक वृति रीति कहते है। इसमें वार्षिक किश्तों की राशि समान रहती है और ब्याज व मूलधन दोनों ही सम्मिलित रहते है। यह नीति प्रायः स्थाई या दीर्घकालीन ऋणों के साक्ष्य में ही अपनायी जाती है।

(iii) ऋण परिवर्तन-

इस विधि के अन्तर्गत सरकार पुराने ऋण का वास्तव में भुगतान नहीं करती है वरन् एक प्रकार से रूप बदल देती है। ऋण की शर्तें, ब्याज दर, भुगतान अवधि आदि में परिवर्तन किये जाते

है। यह विधि प्रायः उसी समय काम में ली जाती है जब ऋण की परिपक्वता अवधि, आ जाने पर भी ऋण के भुगतान की कोई व्यवस्था नहीं हो पाती है। इस प्रकार से ऋण परिवर्तन से ऋण भार कम नहीं होता है।

(iv)ऋण परिशोध कोष-

यह कोष केवल ऋण भुगतान के लिए ही स्थापित किया जाता है। जब सरकार को किसी भारी ऋण का भुगतान एक साथ करना होता है तब ही प्रायः ऐसे कोष की स्थापना की जाती है। प्रारम्भ में इस विधि का रूप इसके वर्तमान रूप से काफी भिन्न था। प्रारम्भ में प्रतिवर्ष कुछ निश्चित धनराशि इस कोष में डाल दी जाती थी और उस राशि को किसी स्थान पर लगा दिया जाता था। वह क्रम तब तक चलता रहता था जब तक ऋण के भुगतान करने की वांछित राशि एकत्रित न हो जावे। परंतु वर्तमान समय में प्रत्येक वर्ष एक निश्चित राशि अलग से रख दी जाती है और उसी वर्ष ऋण के एक भाग का भुगतान कर दिया जाता है। यह राशि प्रायः पूर्व निश्चित होती

(v) पूंजी कर

ऋण के भुगतान के लिए सरकार पूंजी कर भी लगा सकती है। पूंजी कर लगते समय एक निश्चित कर रहित सीमा निर्धारित करके उसके ऊपर की सम्पत्तियों पर कर लगाया जाता है। यह कर प्रगतिशील होता है। इसके पक्ष व विपक्ष में अनेक तर्क दिए जाते है। इसके बारे में विस्तार से आप पिछली इकाइयों में पढ़ चुके है।

युद्धकाल के ऋण भार को कम करने में इसका विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। साधारणतया अस्थायी ऋण का भार कम करने में पूंजी कर का प्रयोग अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त सरकार कभी कभी अन्य विधियों का भी प्रयोग करती है जैसे लॉटरी द्वारा भुगतान, क्रमानुसार भुगतान आदि।

24.6 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त इकाई के अन्तर्गत आपने सार्वजनिक ऋण-आन्तरिक व बाह्य दोनों से ही संबंधित विभिन्न मुख्य मुद्दों का अध्ययन किया। आन्तरिक व बाह्य दोनों ही ऋणों का भार अवश्य ही देश के नागरिकों पर पड़ता है।

24.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ferguson, J.M.(1964) Public Debt and Future Generations, University of Nort Corolina Press

प्रेम प्रकाश शर्मा, (1987) 'सार्वजनिक वित्त के सिद्धान्त'।

तिलक नारायण हजेला, (1985), 'राजस्व के सिद्धान्त'।

S.Ganguly,'A Normative Approach to Public Finance.

24.8 अभ्यास के लिए कतिपय प्रश्न

1. आन्तरिक व बाह्य सार्वजनिक ऋण के अन्तर को स्पष्ट करिए। क्या आन्तरिक ऋण समाज पर कोई भार नहीं डालते। इस कथन की समीक्षा करिए।
2. सार्वजनिक ऋण भार भावी संतति पर अन्तरित किया जा सकता है। इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।
3. एक कुशल सार्वजनिक ऋण व्यवस्था द्वारा अर्थव्यवस्था को उच्चावचनों की तीक्ष्णता को कम किया जा सकता है। व्याख्या करिये।

इकाई -25

विकास के लिए राजकोषीय नीति : साधन गतिशीलता-विकास, वितरण तथा मूल्यों पर प्रभाव

इकाई संरचना

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 राजकोषीय नीति का अर्थ

25.2.1 व्यय पक्ष

25.2.2 राजस्व पक्ष

25.2.3 बजट के राजस्व तथा व्यय पक्ष की पारस्परिक निर्भरता

25.2.4 राजकोषीय नीति की परिभाषा

25.3 राजकोषीय नीति का आधारभूत तर्क

25.4 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

25.5 साधन गतिशीलता

25.6 राजकोषीय नीति तथा साधन गतिशीलता

25.6.1 राजकोषीय नीति तथा बचत

25.6.2 राजकोषीय नीति तथा विनियोग

25.7 विकास पर प्रभाव

25.8 वितरण पर प्रभाव

25.9 मूल्यों पर प्रभाव

25.10 सारांश

25.11 शब्दावली

25.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अन्तर्गत आपका परिचय निम्न से कराया जायेगा :

(1) राजकोषीय नीति की संकल्पना (इसे बजट नीति भी कहा जाता है)

(2) मौद्रिक नीति से अन्तर

(3) इसके पीछे आधारभूत तर्क

(4) इसके उद्देश्य

(5) साधन गतिशीलता की संकल्पना तथा विषय वस्तु

(6) साधन गतिशीलता में राजकोषीय नीति की भूमिका तथा इसकी तकनीक

(7) आर्थिक विकास की दर तथा विषय वस्तु पर साधन गतिशीलता का प्रभाव

(8) आय और धन के वितरण पर साधन गतिशीलता का प्रभाव

(9) साधन गतिशीलता का मूल्यों पर प्रभाव

(10) अर्थव्यवस्था तथा समाज को राजकोषीय नीति द्वारा किस प्रकार अधिकतम लाभ पहुंचाया जा सकता है।

25.1 प्रस्तावना

प्रत्येक अर्थ व्यवस्था कई प्रकार की विभिन्न रूप से गहन समस्याओं का सामना करती है तथापि वह सामान्यतः एक ओर विकसित देशों के लिए तथा दूसरी ओर हमारे जैसे अर्द्धविकसित देशों के लिए भिन्न होती है। एक विकसित देश को न तो भी निर्माण की, न ही अपनी उत्पादन-क्षमता में वृद्धि करने की चिन्ता होती है। उसी प्रकार इसे आय और धन के असमान वितरण की किसी गंभीर समस्या का सामना भी नहीं करना पड़ता। ऐसा इसलिए है कि ऐसे देश में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक होती है और इसमें अति गरीब परिवार भी अधिक होते है गरीब नहीं होते। बल्कि एक विकसित देश की मुख्य समस्या अर्थव्यवस्था का सुचारू रूप से कार्य सुनिश्चित करना होता है। इसका अर्थ है कि मूल्यों रोजगार, उत्पादन तथा आय के आवर्ती उतार चढ़ावों की अवस्था पर प्रहार करके इन उतार चढ़ावों को समाप्त करना है। इसके विपरीत हमारे जैसे अर्द्ध-विकसित देश को साधनों की दुर्लभता की चिरकालिक समस्या का सामना करना पड़ता है। उसके साथ ही यहां एक ओर तो आय और धन की व्यापक विषमता तथा दूसरी ओर चिरकालिक स्फीतिकारक दबाव की समस्या भी है।

आधुनिक सरकार का बजट इसके निरपेक्ष आकार तथा विस्तृत संघटकों, दोनों द्वारा अर्थ व्यवस्था के कार्य को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। तद्नुसार सरकार अपनी बजट नीति द्वारा इन समस्याओं को हल करने में बहुत महत्वपूर्ण तथा सहायक भूमिका निभा सकती है। इस इकाई में आप जान जाओगे कि असमानताओं तथा मूल्यों की समस्याओं को हल करने के लिए बजट नीति का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। आप यह भी देखेंगे कि केवल साधन गतिशीलता के लिए उठाये गये कदम ही किस प्रकार असमानताओं तथा मूल्यों के व्यवहार दोनों पर प्रभाव डालते है। इसलिए सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके बजट के बुरे प्रभाव न्यूनतम तथा लाभकारी प्रभाव अधिकतम हो।

25.2 राजकोषीय नीति का अर्थ

राजकोषीय नीति (अथवा बजट नीति) का धारणा को अच्छी प्रकार समझने के लिए हमें पहले सार्वजनिक बजट (अथवा सरकारी बजट) स्वयं का अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक बजट की भांति, सरकारी बजट के भी दो पक्ष होते है-एक व्यय पक्ष तथा दूसरा आय पक्ष। सरकार कई प्रकार की क्रियाएं करती है इसमें उसका स्वयं का रख रखाव भी शामिल है। इनके लिए वह विभिन्न तरीकों से धन इकट्ठा करती है। यह बजट के माध्यम से असंख्य सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का आयोजन करती है तथा उनके अनुसार बजटीय नीति का निर्माण करती है। जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने का सरकार आयोजन करती है उन्हें ध्यान में रखते हुए बजट के प्रत्येक पद के अनुसार विस्मृत प्रारूप तैयार किया जाता है।

25.2.1 व्यय पक्ष

आइये, पहले व्यय पक्ष को लेते है। आर्थिक महत्व तथा नीति उद्देश्यों के रूप में व्यय के मदों को कई प्रकार के वैकल्पिक तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें से कुछ वर्गीकरण व्यय के विभिन्न मदों से पड़ने वाले संभव आर्थिक प्रभावों को जानने से सहायता करते है। इससे हम जान सकते है। कि अधिकारी किसी सीमा तक व्यय की मदों और राशि में संशोधन कर सकने योग्य होते है। ऐसा एक वर्गीकरण उपार्पित व्यय (Committed) तथा (Non-Committed) अनुपार्पित (अथवा लोचशील) व्यय के रूप में होता है। स्पष्ट रूप से सरकार व्यय की (Non-committed) अनुपार्पित मदों में संशोधन कर सकती है जबकि उपार्पित मदों के संबंध में ऐसा नहीं कर सकती है कुछ उपार्पित (Committed) व्ययों में निम्नलिखित शामिल है:-

(i) ऋण-सेवा

इस मद से सरकार द्वारा भूतकाल में लिये गये ऋणों के ब्याज का भुगतान तथा मूलधन का भुगतान प्रदर्शित होता है! ऐसे ऋण आंतरिक (अथवा देश के अंदर से) अथवा बाह्य (अथवा देश के बाहर से) लिये जा सकते है।

(ii) व्यय के कुछ मद इस प्रकार के होते है जिन्हें सरकार टाल नहीं सकती जैसे सरकार का रख रखाव का व्यय। भारत में, उदाहरण के लिए भारत सरकार के संबंध में अधिकतर उप-प्रधान (वाइस-प्रेसीडेंट) मंत्रियों की सभा, महालेखा परीक्षक तथा नियंत्रक आदि के कार्यालयों पर व्यय इसी श्रेणी में आता है। आप देखेंगे कि अनुपार्पित (Non-committed) व्यय की श्रेणी में भी सरकार को असंख्य बाध्यताओं का सामना करना पड़ता है तथा उसके लिए हमेशा संभव नही होता कि वह मदों अथवा उन व्यय को जब चाहे अथवा जितना चाहे समायोजित कर सके। ऐसी अनिवार्यतायें देश की सुरक्षा, मानवीय मूल्यों, राजनीतिक दबाव तथा सरकार के आदर्शों से संबंधित होती है। उदाहरण के लिए कोई भी सरकार बाहरी आक्रमण से देश की सुरक्षा तथा आन्तरिक शान्ति व्यवस्था बनाये रखने की उपेक्षा नहीं कर सकती अथवा बाढ़ सूखा, भूचाल महामारी तथा अन्य प्राकृतिक संकट में सहायता की

व्यवस्था की उपेक्षा भी नहीं कर सकती । ऐसी मदों पर व्यय परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है जो सरकार के नियंत्रण के बाहर होता है इन मदों को सबसे उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और सरकार को ऐसे संसाधन प्राप्त करने के प्रयास करने चाहिये जिनसे इन आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। यदि आवश्यकता हो तो साधनों को दूसरे मदों से इन मदों पर हस्तांतरित करना चाहिए तथापि बड़ी संख्या में कुछ मदें पर्याप्त रूप से समायोजित की जा सकती है। सरकार कुछ सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों का अनुसरण करने के लिए नीति का चुनाव कर सकती है तथा उसके अनुसार ही व्यय की इन मदों को समायोजित कर सकती है । उदाहरण के लिए आधुनिक सरकार गुणाधारित वस्तुओं (Merit goods) की पूर्ति बढ़ाने की कोशिश करती है तथा कुछ कल्याणकारी तरीके अपनाती है। गुणाधारित वस्तुएं वह होती है, जिनका उपभोग न केवल उपभोक्ताओं के स्वयं के लिए लाभकारी होता है परन्तु शेष समाज को भी लाभ पहुंचाता है गुणाधारित वस्तुओं के उदाहरण में शिक्षा, स्वास्थ्य की देख भाल, स्वास्थ्य पास पड़ोस आदि आते है इसी प्रकार कल्याणकारी उपायों में बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन, समाज के गरीब वर्गों को रियायती दर पर राशन उपलब्ध कराना आदि । कुछ भी हो यद्यपि गुणाधारित वस्तुओं तथा कल्याणकारी उपायों पर व्यय अति वांछनीय है तथापि सरकार को अपने साधनों के अनुसार अक्सर अपने व्यय को समायोजित करना पड़ता है, लोचशील मदों की दूसरी श्रेणी आधारिक संरचना (Infrastructure) की व्यवस्था करना, अथवा सामाजिक ऊपरी सुविधाओं की व्यवस्था करना, विभिन्न प्रकार के गैर विकासात्मक और उपभोग व्यय की मदें, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की हानि को पूरा करना तथा कई प्रकार की आर्थिक सहायता की व्यवस्था करने से संबंधितव्यय आते हैं।

25.2.2 राजस्व पक्ष

बजट के आगम पक्ष में नीति उद्देश्यों के लिए बड़ी मात्रा में परिवर्तन तथा समायोजन किये जा सकते है सरकार की प्राप्तियों को (i) कर राजस्व तथा (ii) गैर कर राजस्व श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(i) कर राजस्व कर एक अनिवार्य भुगतान है, जिसमें सरकार को बिना जैसे को तैसा संबंध के भुगतान किया जाता है। इसका अर्थ है कि कर के भुगतान के बदले में किसी व्यक्ति को सरकार से किसी विशेष सेवा अथवा लाभ प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नही होता यह अधिकार कर देने के अतिरिक्त दूसरे तत्वों पर आधारित होता है। राजकोषीय नीति के दृष्टिकोण से हमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों में अंतर करना चाहिए। प्रत्यक्ष कर वह है जो करदाताओं पर उनकी करदेय क्षमता के आधार पर लगाया जाता है जिसका अनुमान प्रत्यक्ष रूप से उनकी आय, व्यय, धन, उपहारों तथा उत्तराधिकार में प्राप्त धन से लगाया जाता है । प्रत्यक्ष कर धनी वर्गों पर लगाया जाता है। तथा उनकी दरें सामान्यतः प्रगतिशील होती है अर्थात जैसे जैसे कर का आधार आय, व्यय तथा धन

आदि बढ़ता जाता है कर की दर भी बढ़ती जाती है। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष कर आर्थिक क्रिया पर लगाया जाना है जैसे किसी वस्तु के उत्पादन बिक्री, परिवहन, आयात तथा निर्यात आदि पर कर। इसलिए ऐसे कर का भुगतान करने का दायित्व अप्रत्यक्ष रूप से उन इकाइयों पर होता है जो इन क्रियाओं को करते है। राजकोषीय नीति के दृष्टिकोण से अप्रत्यक्ष करों का महत्व इस तथ्य में है कि वे वस्तुओं और सेवाओं में साधनों के आबंटन, मांग के स्वरूप तथा मूल्यों पर प्रभाव डालने है कुछ स्थितियों में, अप्रत्यक्ष कर प्रबल स्फीतिकारक प्रभाव उत्पन्न कर सकते है।

(ii) गैर-कर साधनों से राजस्व (Non-Tax-Revenue) : - इस श्रेणी में सरकार द्वारा अर्जित आय, दान तथा ऋण आदि आते है। इनमें सार्वजनिक उपक्रमों से लाभ तथा लाभांश, सम्पत्ति से आय दूसरों को दिये गये ऋणों पर प्राप्त ब्याज, पहले से दिये गये ऋणों पर ब्याज की वसूली, अपने देश तथा विदेशों से प्राप्त दान तथा अनुदान आदि शामिल है। सरकार इन मदों का प्रयोग अर्थ व्यवस्था के कार्य कलापों के लिए वित्त की व्यवस्था करने के लिए यंत्र के रूप में कर सकती है। उदाहरण के लिए सरकार लघु उद्योगों तथा ग्रामीण उद्योगों को रियायती दरों पर ऋण दे सकती है।

25.2.3 बजट के राजस्व तथा व्यय पक्ष की पारस्परिक निर्भरता

यह ध्यान रहे कि बजट के आय तथा व्यय पक्षों में घनिष्ठ संबंध है तथा आय और व्यय के अन्तर्गत व्यक्तिगत मद भी आपस में एक दूसरे पर निर्भर करते है। अधिकारियों को बजट के व्यक्तिगत पदों के बारे में निर्णय लेना होगा। इसके लिए उन्हें यह देखना होगा कि बजट के उद्देश्यों से वह कितने संगत है तथा उनका क्या प्रभाव पड़ेगा इसके अतिरिक्त सामान्य तौर पर प्रत्येक सरकार-से यह मालूम है कि दबाव के कारण उसे अधिक खर्च करना पड़ता है परन्तु, लाभ, लाभांश तथा ऋणों द्वारा कम वसूल कर पाती है।

25.2.4 राजकोषीय नीति की परिभाषा

राजकोषीय नीति (बजट नीति) उन लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का सकल परिणाम है जो संपूर्ण बजट तथा उसके संघटक अंगों के निर्माण तथा लागू करने में मार्गदर्शन करती है। इसमें करों का चुनाव, उनकी दरें, छूटें तथा रियायतें तथा उनसे संबंधित नियमों तथा विधानों का समावेश होता है। इसमें सार्वजनिक ऋणों को उनकी राशि ऋण प्रारम्भ करने की समय की दरें शोधन संरचना, कूपन की दरें तथा दूसरी अन्य शर्तें शामिल होती है इसी प्रकार इसके व्यय की मदों, परियोजनाओं तथा व्यय करने की योजनाओं का समावेश होता है अर्थात व्यय की जाने वाली राशि, उद्देश्य, विस्तार प्रारूप तथा विषय वस्तु संबंधित वर्णन होता है। आर्थिक सहायता, हस्तांतरण तथा ऋणों की अवधि बढ़ाना आदि के विषय के निर्णय भी राजकोषीय नीति के आवश्यक अंग है। उपरोक्त वर्णन से आपको ध्यान में रखना चाहिए कि सार्वजनिक ऋण का क्रियाकरण तथा निर्णय राजकोषीय नीति का अंग है तथापि याद रहे कि मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति का एक भाग नहीं है। मौद्रिक नीति देश के केन्द्रीय बैक (भारत की रिजर्व बैक आफ इंडिया) द्वारा निर्मित तथा संचालित की जाती है।

इसमें मुद्रा तथा साख की मात्रा, प्रवाह का नियमन, वह उद्देश्य जिनके लिये कोष उपलब्ध कराये जाते है, साख उपलब्ध कराने की शर्तें तथा ऋणियों का चुनाव जिन्हें साख देनी है, आदि तत्वों को समावेश होता है। मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति पर प्रभाव डाल सकती है और व्यय भी प्रभावित होती है परन्तु वह राजकोषीय नीति से भिन्न है।

हमारे जैसे अर्द्धविकसित देश के लिए आर्थिक विकास राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य है यद्यपि यह एकमात्र ही इसका उद्देश्य नही है। आर्थिक विकास व्यापक शब्द है जिसमें विभिन्न प्रकार के पहलू शामिल है। अर्थ व्यवस्था के पूंजीगत संसाधनों में स्थाई तथा पर्याप्त वृद्धि तथा श्रम की उत्पादकता में वृद्धि आदि आर्थिक विकास के आवश्यक अंगों में से है। यह देश की प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में सहायक होता है। एक अर्द्ध विकसित देश को पूंजी निर्माण की दर बढाने तथा इसकी श्रम उत्पादकता बढ़ाने में कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसकी बचत की दर बढ़ाने में सहायक होते है। अर्द्धविकसित देश को पूंजी निर्माण की दर बढाने तथा इसकी श्रम उत्पादकता बढाने कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसकी बचत की दर बढ़ानी होगी। देश के उत्पादक साधनों के अपव्यय को कम करना होगा तथा उन्हें अधिक विकासोन्मुख निवेश की ओर अन्तरित करना होगा। इस प्रकार यह साधन गतिशीलता की समस्या है। अर्थात बचत तथा पूंजी निर्माण की दर ने वृद्धि करने की समस्या। इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था अपने उत्पादक साधनों की अधिक मात्रा का उपयोग से विनियोग की ओर अन्तरण करना चाहे तो पहले अपनी सकल घरेलू उत्पात (GDP) को बढ़ाकर अथवा उपभोग कम करके या दोनों द्वारा ऐसा किया जा सकता है। इसमे यह भी निहित है कि उत्पादक साधनों को कम उत्पादक से अधिक उत्पादक विनियोगों में स्थानान्तरित किया जाये, उत्पादन की तकनीक में सुधार किया जाये, आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं में वृद्धि की जाए आदि। ऐसा देखा गया है कि यदि स्वयं पर छोड़ दिया जाये तो अर्द्धविकसित देश का बाजार संयंत्रउपयुक्त समयावधि में इस उद्देश्य को प्राप्त नही कर सकता। इसलिए इस उद्देश्य के लिए साधनों को गतिशील बनाने के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग किया जाता है

तथापि जब अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से तथा श्रम की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जब साधनों को गतिशील बनाने के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग किया जाता है तो इसका प्रभाव केवल GDP की विकास की दर तक ही सीमित रही होता। यह आय और धन के वितरण मूल्य स्तर तथा अर्थव्यवस्था के दूसरे परिमाणों को भी प्रभावित करती है। राजकोषीय नीति को बनाने तथा लागू करने में अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होता है कि वितरण तथा मूल्यों आदि पर प्रतिकूल प्रभावों को न्यूनतम किया गया है जबकि असमानताओं में कमी तथा स्फीतिकारक दबाव को समाप्त करना आदि के रूप मे लाभकारी प्रभावों को अधिकतम किया गया है।

25.3 राजकोषीय नीति का आधारभूत तर्क

इस अवस्था में हमें समन्वित तथा क्रमबद्ध राजकोषीय नीति के औचित्य को देखना है सरकार क्यों न अपने आपको कुछ आधारभूत कार्यों जैसे सुरक्षा विधि और व्यवस्था तथा न्याय तक ही सीमित रखे तथा आवश्यक साधनों को अति मितव्यतापूर्वक तरीके से जुटा ले? इसका उत्तर यही है कि आधुनिक सरकार कुछ चुने हुए सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति को एक सक्रिय तथा प्रभावी यंत्र के रूप में प्रयोग करे, इस मत का निम्न आधारों पर समर्थन किया जाता है -

प्रथम, आधुनिक अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि सरकारी बजट क्रियाओं के प्रभाव तटस्थ नहीं हो सकते। इसका अर्थ है कि सरकार की क्रियाएं जिनके द्वारा वह राजस्व प्राप्त करती है तथा व्यय करती है अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली को कई प्रकार से प्रभावित करती है चाहे सरकार का ऐसा अभिप्राय न हो तो भी यह प्रभाव अवश्य पड़ते है। सरकार की बजट संबंधी क्रियाएं मात्र उनके आकार द्वारा रोजगारमूल्यों उत्पादन बचत पूंजी निर्माण आय तथा धन के वितरण एवं साधन आबंटन आदि पर प्रभाव डालती है इसके अधिक कुछ अन्तनिर्हित अनिवार्यता भी होती है जिनके कारण आधुनिक सरकार की क्रियाएं समय के साथ बढ़ती जाती है। यह प्रवृति सामान्यतः 'राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का नियम से जानी जाती है। क्योंकि सरकार की क्रियाएं अथवा कार्य व्यापकता तथा गहनता दोनों रूपों में बढ़ती जाती है, इसलिए इसका व्यय भी बढ़ता जाता है। ऐसा भी देखा गया है कि आधुनिक समाज में अपराध विधि और व्यवस्था, शहरीकरण परिवहन, संचार तथा स्वास्थ्य आदि से संबंधित कई नई समस्याएं बढ़ती जा रही है। जिनका सामना करने के लिए सरकार को अपनी मशीनरी का विस्तार करना पड़ता है तथा उच्च वेतन पर विशेषज्ञों को नियोजित करना पड़ता है। अधिक देशों के साथ निकट सम्पर्क के कारण अस्त्र शस्त्रों की बढ़ती हुई आधुनिकता तथा किस्मों के कारण देश की सुरक्षा पर भी खर्च बढ़ गया है। कुल मिलाकर यह है कि सरकार का व्यय न केवल निरपेक्ष रूप में बल्कि GDP के अनुपात में भी बढ़ता जा रहा है। तदनुसार सरकार की बजट क्रियाओं का अर्थव्यवस्था तथा समाज पर प्रभाव बढ़ता जाता है।

दूसरे, एक बार जब यह अनुभव कर लिया जाये कि सार्वजनिक बजट (यानी सरकारी बजट) तटस्थ नहीं हो सकता, तो इसका अर्थ है कि सरकार अर्थव्यवस्था तथा समाज पर इसके प्रभावों के प्रति तटस्थ नहीं हो सकती। बिना सोचे समझे खर्च करने तथा राजस्व प्राप्त करने के परिणाम बहुत गंभीर हो सकते है। ऐसा करने की अपेक्षा सरकार को इसे सामाजिक आर्थिक उद्देश्य के अस्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहिए। विपिन बजट संबंधी उपायों के प्रभाव का विश्लेषण करना चाहिए तथा सम्पूर्ण बजट सर्वोत्तम संभव परिणाम प्राप्त करने के लिए क्रमबद्ध तथा समन्वित प्रयास को प्रदर्शित करने वाला होना चाहिए अर्थात बजट ऐसा होना चाहिए कि इससे अनुकूल परिणाम प्राप्त हों तथा समन्वित प्रयास का प्रतिनिधित्व करता हो।

25.4 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

राजकोषीय नीति का मूल्यांकन इसके प्राप्य उद्देश्यों के रूप में करना चाहिये यह उद्देश्य कई क्षेत्रों से संबंधित हो सकते है। इस संदर्भ में हमें निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

(अ) प्रत्येक मुख्य उद्देश्य के अन्तर्गत कई उप-उद्देश्य होते है। उदाहरण के लिए आर्थिक विकास के लिए बचत तथा विनियोग की दर बढ़ानी पडेगी तथा साधन आबंटन में सुधार करना होगा। इसी प्रकार उत्पादन के श्रम प्रधान तकनीक लघु तथा ग्रामीण उद्योग एवं कृषि विकास रोजगार उत्पन्न करने में सहायता करते है। राजकोषीय नीति के विभिन्न अंगों तथा यथा कर व्यय तथा आर्थिक सहायता आदि का इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए रूपांकित करना होगा।

(ब) राजकोषीय नीति के कुछ उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी है उदाहरण के लिए श्रम प्रधान तकनीक उत्पादकता तथा श्रमिकों के आय स्तर को बढ़ाने में बाधक होंगे। इसी प्रकार यदि सरकार वस्तु करों द्वारा अधिक कर राजस्व प्राप्त करती है तो मूल्य ऊंचे हो जाएंगे। इस प्रकार जब राजकोषीय नीति के उद्देश्य परस्पर विरोधी हो तो सरकार को उनके बीच अनुकूलतम संतुलन बनाना पड़ता है।

(स) यह ध्यान देने योग्य बात है कि राजकोषीय नीति ही एक मात्र उपाय नहीं है, जिसके द्वारा देश के सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। कुछ स्थितियों में वैकल्पिक यंत्र तथा विधियां अधिक प्रभावी हो सकती है। उदाहरण को लिए कुछ स्थितियों में नियंत्रित मूल्यों पर राशन की व्यवस्था द्वारा समाज के गरीब वर्ग की सहायता करना अथवा लाइसेंस द्वारा निम्न प्राथमिकता वाले क्षेत्रों मे विनियोग पर रोक लगाना अधिक अच्छा होगा आदि आदि।

ऐसा क्यों होता है कि राजकोषीय नीति हमेशा सफल नहीं हो सकती और इसे गैर राजकोषीय उपयोग से अनुपूरित किया जाता है इसका उत्तर निम्न तथ्यों से स्पष्ट है।

राजकोषीय नीति मांग, पूर्ति तथा मूल्यों की बाजार शक्तियों को नियमित करके कार्य करती है। इसके लिए वह करों अर्थ सहायता तथा दूसरे उपायों को नियामक यंत्रों (Regulatory) के रूप में प्रयोग करती है। निर्माणी, व्यापारिक तथा अन्य आर्थिक गतिविधियों की लागतों तथा लाभदायकता में परिवर्तन द्वारा यह उपयुक्त परिणाम प्राप्त करने की आशा करती है तथापि यह परिवर्तन सदैव ही सफल नहीं ले सकते। इसे एक उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है। माना कि सरकार को विश्वास है कि क्योंकि भारत एक गरीब देश है इसलिए इसके उत्पादक साधनों को वातानुकूल (Air-conditioner) के उत्पादन में विनियोजित नहीं करना चाहिए। इसलिए वह उन पर भारी उत्पादन शुल्क (उत्पादन पर कर) लगाती है तो भी यदि विनियोजकों को यह विश्वास है कि यदि ऊंचे मूल्यों पर भी वातानुकूलकों (Air-conditioners) की मांग पर्याप्त होगी तो उत्पादन शुल्क इस उद्योग में विनियोजन को रोकने में सफल नहीं हो

सकता। दूसरे शब्दों में मांग और पूर्ति की शक्तियों में परिवर्तन द्वारा राजकोषीय उपाय आवश्यकता से अधिक प्रति संतुलित हो जाते है। स्फीतिकाल में जब लगभग सभी मूल्य ऊंचे होने जाते है, अतिरिक्त कराधान अक्सर मांग और मूल्यों पर अंकुश नही लगा सकता बल्कि उससे उत्पादन लागत बढ़ती है और मूल्य और तेजी से बढ़ने लगते है। ऐसी स्थिति में, प्रत्यक्ष नियन्त्रण कोटा, लाइसेंस तथा राशनिंग आदि दूसरे उपाय अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकते है।

बोध प्रश्न

1. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्दों से पूर्ति कीजिये :-

(i) एक विकासशील अर्थ व्यवस्था की मुख्य समस्या है .....

(अ) असमानताओं में कमी करना

(ब) चक्रीय उच्चावचनों को समाप्त करना।

(ii) आधुनिक सरकार की बजट संबंधी क्रियाओं के अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव.....होते है

(अ) तटस्थ (ब) अतटस्थ

(iii) उत्पादन शुल्क वस्तु के ..... पर लगाया गया कर है।

(अ) उत्पादन (ब) बिक्री

2. सही अथवा गलत पर √ चिन्ह लगाइये

(i) सरकार व्यय की Non-Committed मदों को समायोजित करने में पूरी तरह स्वतंत्र होती है। (सही/गलत)

(ii) मौद्रिक नीति राजकोषीय नीति का एक अंग है (सही/गलत)

(iii) देश के सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति एक मात्र साधन है। (सही/गलत)

(iv)अकेली राजकोषीय नीति देश के सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती (सही/गलत)

(v) राजकोषीय नीति के विभिन्न उद्देश्यों में कोई विरोध नहीं है (सही/गलत)

3. संक्षेप में निम्न का वर्णन कीजिए

(i) राजकोषीय नीति

(ii) (गुणाधारित वस्तुएं

(iii) राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का नियम

(iv)प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों में अन्तर

25.5 साधन गतिशीलता

साधन-गतिशीलता की अवधारणा जटिल है। इसमें कई चीजें निहित है प्रथम, साधन गतिशीलता बचत की दर में वृद्धि या तो वर्तमान GDP में से उपभोग को कम करके अथवा उपभोग में वृद्धि किये बिना अधिक GDP के उत्पादन द्वारा या दोनों ही तरीकों से की जा सकती है। प्रारम्भ में यह बचतें मुद्रा के रूप मे होती है। वह वास्तविक बचत के रूप में तभी होती है जब उनके अनुरूप वास्तविक पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन हो तथा आधारिक संरचना का सृजन हो। दूसरे, साधन गति शीलता में विनियोग की ऊंची दर निहित है। इसका आशय है कि अर्थव्यवस्था की बचतों को सफलता पूर्वक इकट्ठा किया जाये और समाज की प्राथमिकताओं के अनुरूप विनियोजित किया जाये। आप देखेंगे कि इस संबध मे दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते है:-

(i) उपभोग पदार्थो का उत्पादन करने वाले उद्योगों में विनियोग करने से अल्पकाल में हमारा उपभोग स्तर बढ जायेगा। इससे पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की विकास की दर धीमी हो जायेगी और इस प्रकार दीर्घकाल में विनियोग की दर भी धीमी हो जायेगी।

(ii) पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों में विनियोग करने से अल्पकाल में उपभोग स्तर में वृद्धि रुक जायेगी, तथापि दीर्घकाल में हम पूंजी निर्माण तथा उपभोग वस्तुओं का उत्पादन दोनों की ही गति बढ़ा सकेंगे। व्यवहार में स्पष्टत दोनों सिरों की कोई भी अन्तिम स्थिति वांछनीय नहीं है क्योंकि हम अत्यन्त निर्धनता, भुखमरी, कुपोषण तथा बेरोजगारी की समस्या की उपेक्षा नही कर सकते। उसके लिए अल्प काल में उपभोग वस्तुओं की पूर्ति बढ़ानी पड़ेगी । दूसरी तरफ यह भी निश्चित करना होगा कि आने वाले समय में भी हमारा उपभोग स्तर हमेशा के लिए नीचा न रह जाय और इसके लिए पूंजीगत वस्तु क्षेत्र में विनियोग की आवश्यकता है । तीसरे, साधन गतिशीलता में विदेशों से अपने देश में साधनों का प्रवाह भी शामिल है जिसके कई रूप है यथा ऋण तथा प्रत्यक्ष विनियोग । इन तीनों रूपों में ऋण और विनियोग पर देश की राजकोषीय नीति का प्रभाव पड़ता है ।

25.6 राजकोषीय नीति तथा साधन गतिशीलता

हमारे जैसे एक अर्द्धविकसित देश में उत्पादक साधनों की कमी व्याप्त होती है । दुर्भाग्यवश बाजार संयंत्र स्वयं साधन, गतिशीलता तथा आर्थिक विकास की समस्या का समाधान नहीं कर सकता । यदि ऐसा संभव होता तो इस उद्देश्य के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग करने की आवश्यकता ही न पड़ती । वस्तुतः ऐसा देखा गया है कि यदि अर्थव्यवस्था को बाजार संयंत्र की शक्तियों पर छोड़ दिया जायें तो उसे कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है । यह बड़ी संख्या में उत्पादों के लिए एक साथ मांग उत्पन्न करने में असफल हो जायेगी जिसका परिणाम यह होगा कि विनियोजकों को लाभकारी विनियोगों के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिल पायेंगे । साथ ही प्रति व्यक्ति

आय नीची होने के कारण अर्थव्यवस्था को तीव्र आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त बचतें प्राप्त नही हो सकेंगी। साधन गतिशीलता आर्थिक विकास के लिए आवश्यक शर्त है तथा राजकोषीय नीति साधन गतिशीलता तथा आर्थिक विकास की वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण तथा प्रभावी भूमिका निभा सकती है। तथापि आपको ध्यान रखना चाहिए कि आर्थिक विकास का विचार इतना सरल नहीं है। जब एक अर्थव्यवस्था का विकास होता है तो इसमें कई आधारभूत परिवर्तन होते है। बचत और विनियोग की दरें ऊंची हो जाती है। उत्पादन के सुधरे हुए तकनीकों का प्रयोग होने लगता है तथा आर्थिक साधनों का अपव्यय कम हो जाता है। देश की उत्पादक परिसम्पतियो में इस सीमा तक वृद्धि हो जाती है कि इसकी प्रति श्रमिक उत्पादकता दीर्घकालीन तथा स्थायी आधार पर बढ़ जाती है। जिस पर विकसित अर्थव्यवस्था में पर्याप्त आधारिक संरचना (जिन्हें सामाजिक ऊपरी व्यवस्था कहते है) तथा पूंजीगत वस्तुओं के उद्योग होते है यथासमय यह तकनीकी उन्नति की अवस्था में पहुंच जाती है जिसमें इसके उत्पादों की किस्म में सुधार हो जाना है जबकि साधन लागत (श्रम तथा पूंजी दोनों के रूप में) कम हो जाती है।

25.6.1 राजकोषीय नीति तथा बचत

बचत पूंजी निर्माण का अंतिम स्त्रोत है। यदि देश का आर्थिक विकास करना है तो बचत की दर बढ़ानी चाहिए। आर्थिक सिद्धान्त बताता है कि उत्पादन से विद्यमान पूंजीगत साधनों का अवमूल्यन होता है देश के पूंजीगत साधनों में शुद्ध वृद्धि के लिए पूंजी निर्माण की दर अवमूल्यन की दर से अधिक होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास का उद्देश्य तभी पूरा होता है यदि प्राप्त व्यक्ति आय में भी वृद्धि हो इसलिए पूंजी निर्माण की दर इतनी ऊंची होनी चाहिए कि न केवल यह वर्तमान पूंजी के अवमूल्यन की क्षतिपूर्ति करे बल्कि जनसंख्या की वृद्धि तथा पूंजी उत्पाद अनुपात की भी क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। आपको याद रखना चाहिए कि पूंजी उत्पाद अनुपात एक इकाई उत्पादन के लिए आवश्यक पूंजी उत्पाद अनुपात एक इकाई उत्पादन के लिए आवश्यक पूंजी की इकाइयों को दर्शाता है, दूसरे शब्दों में राजकोषीय नीति का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि पर्याप्त रूप से ऊंची बचत की दर प्राप्त की जा सके। इस संदर्भ में बचत के स्त्रोतों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. निजी क्षेत्र जिसमें परिवार क्षेत्र और निजी निगम तथा सहकारी क्षेत्र दोनों ही शामिल
2. सार्वजनिक क्षेत्र जिसमें सार्वजनिक उद्यम शामिल है तथा
3. बाह्य स्त्रोतों का अन्तर्वाह

आइये इन पर एक एक करके विचार करें।

1. निजी क्षेत्र की बचत :

राजकोषीय नीति की रचना विनियोग के लिए कई प्रकार की प्रेरणाएं तथा उपभोग के लिए अप्रेरणाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की जा सकती है, क्योंकि इस संदर्भ में करों तथा आर्थिक सहायता का बहुत प्रभावी योगदान होता है। अप्रत्यक्ष करों का विवेकपूर्ण उपयोग

लोगों को उनका उपभोग बढ़ाने के लिए निरुत्साहित करता है। इस दृष्टि से विलासिता तथा पूंजी प्रधान वस्तुओं पर ऊंचे कर लगाये जा सकते है क्योंकि मुख्य रूप से समाज के धनी वर्ग द्वारा उपभोग की जाती है, इसलिए गरीब लोगों का उन्हें खरीदने के लिए निरुत्साहित हो जायेंगे और इस प्रकार देश में बचत में वृद्धि हो जाएगी। इसी प्रकार प्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में बचतों पर छूट तथा रियायतों की व्यवस्था इन्हें उत्साहित करेगी। भारत में इन तकनीकों का व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार वाणिज्यिक क्षेत्र पर भी उसके अपव्यय पर कर लगाया जा सकता है तथा मितव्ययता के तरीकों पर कर से छूट दी जा सकती है।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र की बचत :

क्योंकि हमारे जैसे अर्द्धविकसित देश की बचत क्षमता सीमित है तथा सरकार की राजकोषीय नीति बचत बढ़ाने वाली (Saving Oriented) होनी चाहिए इसलिए स्वयं बजट की रचना इस प्रकार की जा सकती है कि सत्ताओं को विनियोग करने योग्य अतिरेक प्राप्त हो सके। इस निवेश योग्य अतिरेक का आधारित संरचना की व्यवस्था करने, सार्वजनिक उद्यमों में विनियोग करने में तथा उच्च प्राथमिकता वाले चुने हुए निजी क्षेत्र के उद्योगों को ऋण तथा सहायता देने मे उपयोग किया जा सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम कुशलतापूर्वक चलाये जायें तो वह स्वयं बचत और निवेश का साधन बन सकते है। सामान्य तौर पर राजकोषीय नीति का दबाव निम्न की ओर होना चाहिए -

1. सरकार का गैर विकासात्मक तथा उपभोग व्यय कम करना।
2. कम तथा गैर कर राजस्व प्राप्त किया जावे। इस प्रकार कि इनसे अर्थव्यवस्था में बचत विनियोग तथा मूल्यों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कर राजस्व की प्राप्ति : -

सरकार चाहे तो कई प्रकार के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही कर लगा सकती है। उनकी दर अनुसूचियों में संशोधन कर सकती है। तथापि हमारे जैसे विकासशील देश में कर-राजस्व प्राप्त करने में कई बाधायें आती है। इनमें से कुछ निम्न प्रकार है -

(अ) सार्वजनिक आय के लिए प्रत्यक्ष करों को प्रयोग करने का क्षेत्र बहुत सीमित है। इसका कुछ तो यह कारण है कि अधिकतर लोग बहुत गरीब है, उन पर कर नही लगाया जा सकता। इसलिये प्रत्यक्ष कर देने वाली की संख्या बहुत ही कम होती है। इसके अतिरिक्त बचत को प्रोत्साहन देने के लिए कई प्रकार की कर छूटें तथा रियायतें भी देनी पड़ती है।

(ब) प्रत्यक्ष करों का क्षेत्र सीमित होने के कारण, सरकार को राजस्व की प्राप्ति के लिए अप्रत्यक्ष करों पर निर्भर करना पड़ता है। उदाहरण के लिए भारत में कुल राजस्व का

लगभग 4/5वां भाग अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होता है। परन्तु अप्रत्यक्ष करों से लागतें तथा मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। उनके प्रभाव और भी स्फीतिकारक हो जाते है। जब वह पूंजीगत उपकरणों, मशीनरी, कच्चा माल तथा अन्य उत्पादन के साधनों (आदानों) पर लगाये जाते है। इसके अतिरिक्त यदि विक्रय तथा उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर अप्रत्यक्ष कर लगाये जाएं तो मूल्य प्रपातिक (Price-cascading) प्रभाव उत्पन्न होता है (इसका अर्थ है कि संचयी मूल्य वृद्धि होती है क्योंकि न केवल विक्रय मूल्य तथा उत्पादन लागत पर ही कर दिये जाते है परन्तु पूर्व में दिये गये करों पर भी कर दिया जाता है)

(स) व्यक्तिगत क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन देने की सदा आवश्यकता होती है जैसे कृषि, लघु उद्योगों, तथा कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों आदि को। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अक्सर कई प्रकार की कर रियायतों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें कर अवकाश भी शामिल है, इसलिए इससे सम्भाव्य कर राजस्व कम हो जाता है।

गैर-कर राजस्व की प्राप्ति

गैर-कर राजस्व के अन्तर्गत कई प्रकार की सरकारी प्राप्तियां शामिल है। इनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण इस प्रकार है- (अ) सार्वजनिक उद्यमों से प्राप्त आय (ब) सार्वजनिक ऋण तथा (स) घाटे की वित्त व्यवस्था।

साधारणतया सार्वजनिक उद्यम लाभ तथा लाभांश के रूप में सार्वजनिक राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत बनने चाहिए। उनसे उत्पादन शुल्क, बिक्री कर तथा निगम कर आदि के रूप में कर राजस्व प्राप्त होना चाहिए। तथापि व्यवहार में सार्वजनिक उद्यमों को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है इसलिए वह कर-राजस्व में पर्याप्त रूप से योगदान नही दे सकते। उनमें आर्थिक प्रेरणाओं तथा अप्रेरणाओं की आधारभूत पद्धति की कमी होती है, उनमें से बहुत से उद्योगों को अपने ग्राहकों को वस्तुएं तथा सेवाएं उत्पादन लागत से भी कम मूल्य पर बेचकर सामाजिक भार सहन करना पड़ता है, उनके कर्मचारियों को निवास, बच्चों की पढ़ाई तथा परिवहन सुविधाएं उपलब्ध करानी पड़ती है तथा श्रम कल्याण के ऊंचे स्तरों का खर्च भी सहन करना पड़ता है। अक्सर उनमें अधिक कर्मचारी लगाये हुए होते है। तथा उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप तथा प्रतिरोधी (Militant) श्रम संघों का भी सामना करना पड़ता है। भारत में, कुछ को छोड़कर सभी सार्वजनिक उद्योग हानियों के लिए कुख्यात है। इनमें राज्य स्तर पर बिजली बोर्ड तथा सड़क परिवहन निगम तथा केन्द्रीय स्तर पर कोयला, स्टील तथा कई दूसरे उद्योग शामिल है।

सार्वजनिक ऋण सरकारी आय की विशेष श्रेणी में आते है उनकी विशेषता यह है कि वह अल्पकाल में सरकार को साधन उपलब्ध कराते है परन्तु भविष्य में ब्याज सहित उन्हें लौटाना होता है। इसलिए इस दृष्टि से वह कर आय से बिल्कुल भिन्न है। कर तो सरकारी कोष में केवल अन्तर्वाह है जबकि ऋण प्रारम्भ में तो अन्तर्वाह (Inflow) तथा बाद में वहिर्वाह होते है अर्थात (ऋण शुरू में तो कोष में जाते है बाद में कोष के बाहर आते है जब ऋणों का भुगतान किया जाता है) इसलिए जब

तक सार्वजनिक ऋणों को अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयोग नहीं किया जाएगा, इन्हें साधनों को अपव्यय माना जायेगा। जब सरकार घरेलू बाजार से उधार लेती है, तो क्रय शक्ति निजी क्षेत्र से इसकी ओर हस्तांतरित होता है। इससे कुल मांग में कोई शुद्ध वृद्धि नहीं होती। अतः कोई स्फीतिकारक प्रभाव भी नहीं होता। तथापि यदि सरकार देश के केन्द्रीय बैंक से उधार लेती है (अथवा यह अपने नकद शेष को कम करती है) तो जनता के पास उतनी ही मुद्रा की शर्तें बढ़ जाती है जिससे मुद्रा की साख की पूर्ति में गुणित वृद्धि हो जाती है इससे तत्काल ही अर्थव्यवस्था में कुल मांग में तो वृद्धि हो जाती है परन्तु उत्पादन में उसके अनुसार वृद्धि नहीं होती। इस प्रकार स्फीतिकारक प्रभाव उत्पन्न होते है। (आपको ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में सरकार द्वारा रिजर्व बैक आफ इंडिया से लिए गये ऋण तथा अपने नकद कोषों में कमी का कुल योग सरकारी रूप से बजट का घाटा कहलाता है)। इस कुप्रभाव को ध्यान में रखते हुए सरकार इस साधन का प्रयोग सीमित मात्रा में ही करना अच्छा समझती है। जहां तक विदेशों से ऋण लेने का संबंध है वह आर्थिक विकास में बहुत सहायक हो सकते है, यदि उधार लिये गये धन को उच्च प्राथमिकता वाले उपकरण तथा मशीनरी का आयात करने तथा अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग में लाये जायं। बाह्य ऋणों द्वारा सरकार बहुत ही आवश्यक वस्तुओं, मशीनरी तथा उपकरण प्राप्त कर सकती है तथा इससे उन्नत तकनीक का आयात करना भी सुविधाजनक हो जाता है। तथापि यह याद रखना चाहिए कि बाह्य ऋण तभी सहायक हो सकते है यदि उनका उत्पादक कार्यों में प्रयोग किया जाये तथा उधार लेने वाला देश अपनी उत्पादन क्षमता तथा निर्यातों को बढ़ाने के योग्य हो जाये। यदि ऋणी देश ऐसा नहीं कर पाता तो बाह्य ऋण बाद में उसे बहुत कठिनाई में डाल देंगे।

उपभोग तथा अन्य अनुत्पादक व्ययों में कमी

सरकारी व्यय पर यदि दृष्टि डालें तो पता चलता है कि इसमें अक्सर अपव्यय अधिक होता है जिसे रोकना चाहिऐ। सामान्य तौर पर सरकार की प्रशासनिक मशीनरी में अधिक स्टाफ लगाया हुआ होता है और कार्य प्रणाली में विलम्ब तथा कागजी कार्यवाही के कारण कुछ अन्य प्रकार के बेकार के खर्चे भी होते है। प्रत्येक निर्णय अक्सर बहुत सी अवस्थाओं में से गुजरता है तथा इसका परिपालन भी बहुत धीरे होता है। कई विभागों में परस्पर व्याप्त (Overlapping) कार्य होते है जिससे अपव्यय और भी बढ़ जाता है। प्रशासनिक व्यय के अतिरिक्त आधुनिक सरकारों की प्रवृति भी अधिक ऋणग्रस्त होने की होती है। इतनी बड़ी ब्याज की राशि के भुगतान से स्पष्ट रूप से स्थिति में परिवर्तन लाना मुश्किल हो जाता है।

हमारे जैसे विकासशील देश की प्रवृति होती है कि आर्थिक सहायता का जाल बिछाया जाये जिससे कुछ चुनी हुई आर्थिक क्रियाओं तथा उद्योगों को प्रोत्साहन मिले। समाज के विशेष वर्गों की सहायता की जाये गुणाधारित वस्तुओं (Merit goods) जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य रक्षा आदि की व्यवस्था की जाये तथा लोगों की अन्य आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जाये। अपने आप मे प्रत्येक आर्थिक सहायता न्यायोचित हो सकती है परन्तु सभी आर्थिक सहायता का कुल योग पूंजी निर्माण तथा विकास की दिशा के विपरीत जा सकता है। आर्थिक सहायता से निहित

स्वार्थों को बढ़ावा मिलता है परिणामस्वरूप यदि एक बार आर्थिक सहायता दे दी जाये तो इसे कम करना या बन्द करना बहुत कठिन हो जाता है।

वास्तव में हम कहेंगे कि गैर विकासात्मक तथा सरकारी अपव्यय को कम करना वांछनीय है जिससे सरकारी बचतें बढ़ेगी परन्तु व्यवहार में सरकारी व्यय कम करना बहुत कठिन है।

(i) बाह्य संसाधनों का अन्तर्वाह

शासकीय स्तर पर बाहरी साधनों का अन्तर्वाह, अनुदान तथा ऋणों (अवसर रियायती दरों पर) के रूप में होता है इसका निर्धारण मुख्य रूप से राजनीतिक तत्वों द्वारा निर्धारित होता है। राजकोषीय नीति की इसमें सीमित भूमिका ही रहती है। यहां याद रखने योग्य बात यही है कि यदि इन बाहरी साधनों का उपयोग, उत्पादक रूप से किया जाये तो यह देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण साधन की भूमिका निभा सकते है। दूसरी ओर यदि इन साधनों को उपभोग वस्तुओं के आयात तथा अनुत्पादक विनियोग पर लगा दिया जाय तो इसका शुद्ध परिणाम यही होगा कि ऋणी देश की विदेशी ऋणों में ऋणग्रस्तता बढ़ जायेगी। इसके विपरीत निजी विनियोगों के अन्तर्वाह (Inflow) को सरकार की राजकोषीय नीति प्रबल रूप से प्रभावित करती है। उपर्युक्त कर प्रेरणाओं अर्थ-सहायता तथा अन्य रियायतों की व्यवस्था करके निजी विनियोग को प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

25.6.2 राजकोषीय नीति तथा विनियोग

जब हम विनियोग की बात करते है तो हम कुल विनियोग के बारे में ही नहीं, बल्कि समाज के उद्देश्यों के अनुरूप इसके उपयुक्त आवंटन के बारे में भी सोचते है। दूसरे शब्दों में विनियोग से देश को विभिन्न क्षेत्रों का संतुलित विकास करने में सहायता मिलनी चाहिए ताकि वह एक दूसरे को सहारा दे सके। किसी भी क्षेत्र को आदानों (Inputs) की कमी अथवा उत्पादनों को बेचने की दीर्घकालीन समस्या का सामना नहीं करना पड़े। इसी प्रकार, जहां तक संभव हो सके विनियोग का आबंटन इस प्रकार हो कि क्षेत्रीय विषमताएं कम ही तथा सभी क्षेत्रों का विकास लगभग समान रूप से होना चाहिए। तीसरे विनियोग इस रूप से किया जाये कि इससे लोगों की अति निर्धनता को कम करने में सहायता मिले लोगों की आधारभूत उपभोग आवश्यकताओं की व्यवस्था की जा सके तथा साथ ही अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण में वृद्धि तथा तकनीक में सुधार हो सके। आपको यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अर्थव्यवस्था मे वित्तीय विनियोग द्वारा इसके अनुरूप उत्पादक साधनों का उपभोग वस्तु क्षेत्र से आधारिक संरचना (Infrastructure) तथा पूंजीगत वस्तु क्षेत्र की ओर तथा कच्चे माल तथा अन्य आदानों (Inputs) के उत्पादन की ओर हस्तांतरण होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता परिणाम यही होगा कि कुल मांग तथा मूल्यों में वृद्धि हो जाएगी। अधिकारियों द्वारा (i) सार्वजनिक क्षेत्र स्वयं द्वारा विनियोग बढ़ाने के लिए और (ii) निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग को प्रोत्साहन देने के लिये जिसमें प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग शामिल है राजकोषीय नीति को प्रयोग किया जा सकता है। आइये, हम क्रम से इन पर विचार करें :-

सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा विनियोग

सार्वजनिक विनियोग की राशि चार चीजों पर निर्भर करती है, यद्यपि प्रत्येक स्थिति में सरकार को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। -

(अ) सार्वजनिक बचतों की सीमा :- आपने ऊपर देखा है कि सार्वजनिक बचतों को बढ़ाने के लिए सरकार की बजट नीति को उसके गैर विकासात्मक व्यय तथा उपभोग व्यय को कम करके सार्वजनिक आय को बढ़ाने का लक्ष्य अपने सामने रखना चाहिए। तथापि, जैसा कि पहले देखा गया है कि अधिकारियों को एक ओर तो आगम बढ़ाने मे तथा दूसरी ओर गैर विकासात्मक व्यय कम करने में निहित कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से ब्याज के भुगतान का व्यय कुछ अर्थ सहायताओं तथा सरकारी कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ते आदि पर व्यय आसानी से कम नहीं किया जा सकता।

(ब) सरकार को विदेशी सहायता: ऐसी सहायता आंशिक रूप से अनुदान तथा आंशिक रूप से ऋणों के रूप में हो सकती है। बाह्य अनुदान देश की आर्थिक आवश्यकता पर तो कम निर्भर करती है बल्कि आर्थिक तथा राजनैतिक तत्वों पर अधिक। बाकी विदेशी सहायता ऋणों के रूप में आती है तथा उनका अन्तर्वाह (Inflow) भी राजनैतिक तत्वों द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार सरकार स्वतंत्र राजकोषीय नीति का अनुसरण करती है तो इसका विदेशी सहायता के प्रवाह पर बहुत कम नियंत्रण रह जाता है।

(स) घरेलू बाजार से ऋण :- यद्यपि इस प्रकार सार्वजनिक विनियोग की वित्त व्यवस्था करना बड़ा आकर्षण लगता है परन्तु यह निश्चित सीमाओं में ही प्रयोग मे लाया जा सकता है। कई बार सार्वजनिक ऋणों में वैधानिक प्रतिबंध होते है। भारत में उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 292 के अन्तर्गत संसद केन्द्र के ऋणों की सीमा निर्धारण कर सकती है। इसी प्रकार की सीमायें राज्य सरकारों पर भी संविधान के अनुच्छेद 293 के अन्तर्गत उनके सम्बद्ध विधानमंडलों द्वारा लगाई जा सकती है। वास्तविक व्यवहार में अभी तक कोई सीमा नही लगाई गयी है। परंतु फिर भी सरकार कई कारणों से अन्धा धुन्ध ऋणों का सहारा नही ले सकती। इनमें कुछ कारण निम्नलिखित है -

(i) सार्वजनिक ऋणों से अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र को प्राप्त होने वाले साधनों की कमी हो जाती है।

(ii) सार्वजनिक ऋणों की वृद्धि से भविष्य में ब्याज का व्यय बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त समय पर मूलधन का भी भुगतान करना पड़ता है।

(iii) सार्वजनिक ऋण ब्याज की दरों पर ऊपर की ओर दबाव डालते है अर्थात ब्याज की दर बढ़ जाती है।

(iv) घाटे की वित्त व्यवस्था की सीमा - आपने ऊपर देखा कि भारत मे बजट का घाटा (उसे आपूर्ति घाटा भी कहा जाता है) भारत के रिजर्व बैंक से लिए अल्पकालीन ऋण तथा

नकद शेषों से निकाली गई राशि के योग के बराबर होता है। इस प्रकार उधार लेने में यह कमी है कि यह अत्यन्त स्फीतिकारी होता है इसलिए इसके अत्यधिक उपयोग से बचना चाहिए। निजी क्षेत्र द्वारा निवेश जिसमें प्रत्यक्ष विदेशी सहायता भी शामिल है। निजी निवेश (DFI) की मात्रा तथा विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रभाव कई तत्वों पर निर्भर करता है। कुछ अधिक महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित है

(अ) प्रशासनिक नियन्त्रण तथा नौकरशाही कार्यप्रणाली : -

इन उपायों में लाइसेंसिंग तथा इसी प्रकार की अन्य युक्तियां सम्मिलित है तथापि वह राजकोषीय नीति का अंग नहीं है इसलिए हमें उनके विषय में यहां वर्णन नहीं करना है।

(ब) निवेश योग्य कोषों की उपलब्धि : -

निवेश योग्य कोषों की तुरंत उपलब्धि यदि उचित ब्याज दर तथा उचित शर्तों पर हो जाये तो उससे निजी विनियोग को सहायता मिलेगी तो भी यह साधन केवल सार्वजनिक ऋण तथा राजकोषीय नीति के अंगों पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि केन्द्रीय सरकार की मौद्रिक नीति पर भी निर्भर करता है।

(स) निवेश की लाभदायकता

निजी विनियोग उन क्षेत्रों में तथा रूपों में किया जाता है जिनमें सम्भावित लाभदायकता अत्यंत ऊंची होगी और लाभदायकता के स्तर को प्रभावित करने के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग किया जा सकता है। किसी निवेश की लाभदायकता बढ़ाने के लिए राजकोषीय नीति कां प्रयोग उसकी लागत कम करने के लिए तथा उत्पादन की मांग और मूल्य बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए। यह करों में कई प्रकार से छूटों तथा आर्थिक सहायता आदि द्वारा किया जा सकता है। उत्पाद की मांग बढ़ाने के लिए क्रेताओं द्वारा दिये जाने वाले करों में कमी की जानी चाहिए या आर्थिक सहायता (Subsidy) का विस्तार किया जाना चाहिए। जब निवेश को निरुत्साहित करना हो तो बिल्कुल इससे विपरीत नीति की आवश्यकता होगी ऐसी नीति का उपयोग, विशेष प्रकार के तकनीक का प्रयोग करने वाले उद्योगों अथवा विशेष पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध भेद करने आदि के लिए भी किया सकता है। जहां तक प्रत्यक्ष विदेशी सहायता (DFI) का संबंध है इसके पर्याप्त अन्तर्वाह (Inflow) के लिए पहली शर्त सरकर की अनुकूल नीति है। एक बार जब सरकार नीति के रूप में तथा अनावश्यक और अधिक समय व्यय करने वाले (Time Consuming) लाइसैसिंग तथा अन्य प्रक्रियाओं के द्वारा इसके अन्तर्वाह को नहीं रोकती तब विदेशी निवेश का देश में आगमन, अर्थ- व्यवस्था द्वारा प्रदान की जाने वाले लाभकारी निवेश के अवसरों पर निर्भर करेगी इसलिए यदि विदेशी निवेश वांछनीय नहीं हो अथवा इसे विशिष्ट प्रकार के विनियोगों से अलग रखना हो तो इसके लिए अवसरों को कम करने के लिए राजकोषीय नीति का प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार का विभेद कर की विभेदकारी दरों के माध्यम से किया जाता है इसी प्रकार यदि DFI को प्रोत्साहन देने का उद्देश्य हो तो राजकोषीय नीति द्वारा विभिन्न प्रकार की रियायतें दी जा सकती है।

बोध प्रश्न 2

1. सही अथवा गलत की जांच कीजिये

(i) एक अर्द्धविकसित देश में निवेश के अवसरों की कमी होती है। (सही/गलत)

(ii) केन्द्रीय बैंक से लिये गये सार्वजनिक ऋण अत्यन्त स्फीतिकारी होते है (सही/गलत)

(iii) विदेशी संसाधनों के अन्तर्वाह के सभी अंगों पर राजकोषीय नीति द्वारा अनुकूल रूप से प्रभाव डाला जा सकता है। (सही/गलत)

2. क्या भारत में सार्वजनिक ऋणों की सीमा निर्धारण की जा सकती है? (सही/गलत)
3. क्या इस प्रकार की कोई सीमा केन्द्रीय अथवा राज्य स्तर पर लगाई गई है? (सही/गलत)
4. प्रत्यक्ष सार्वजनिक निवेश को कौन से तत्व निर्धारित करते है?
5. राजकोषीय नीति किस प्रकार निजी निवेश को प्रोत्साहन देती है?
6. निम्न शब्दों की संक्षिप्त रूप से व्याख्या कीजिये

   1. साधन- गतिशीलता
   2. पूंजी उत्पाद अनुपात

25.7 विकास पर प्रभाव

इस इकाई के पहले भागों में आपने देखा कि साधन गतिशीलता के लिये राजकोषीय नीति को कई प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है जिसका मूल रूप से अर्थ है (i) अधिक बचतें (ii) अधिक निवेश तथा सम्भवतः (iii) विदेशी संसाधनों का अधिकतर संभव अन्तर्वाह । राजकोषीय नीति जितनी सफलतापूर्वक प्रयोग की जाती है, उतनी ही गंभीर रूप से देश के आर्थिक विकास की (i) समस्त दर तथा (ii) प्रारूप, दोनों को प्रभावित कर सकती है । आइये आर्थिक विकास के लिये राजकोषीय नीति के अन्तनिर्हित तत्वों पर विचार करें :-

1. विकास की समूची दर :

अर्थव्यवस्था की सती विकास दर को उसकी GDP में प्रतिवर्ष प्रतिशत वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जा सकता है । क्योंकि निवेश से देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है । इसलिए राजकोषीय नीति के प्रयोग द्वारा बचत और निवेश दोनों में वृद्धि करके आर्थिक विकास को प्रोत्साहन दिया जा सकता है । तो भी विकास की वास्तविक दर केवल निवेश की दर पर ही (ICOP) पर भी निर्भर करती है । ICOR पूंजी की वह मात्रा है जो प्रतिवर्ष एक रुपये मूल्य के अतिरिक्त उत्पादन को उत्पादित करने के लिए आवश्यक होती है । आप ध्यान रखें कि विनियोग की ऊंची दर का अर्थ है विकास की ऊंची दर तथा विनियोग की नीची दर का अर्थ विकास की नीची दर है । इसके विपरीत ऊंची ICOR अर्थ है विकास की धीमी गति । सामान्य रूप से पूंजीगत वस्तु उद्योग तथा आधारित संरचना (जैसे शक्ति परियोजना अथवा विश्रुत परियोजना) आदि पूंजी प्रधान है (कहने का तात्पर्य है कि उनकी ICOR ऊंची है) । तथा पक्वनावधि (Gastation Period) लम्बी

होती है । परिणाम स्वयं यदि राजकोषीय नीति इन उद्योगों के पक्ष में हो, तो अल्पकाल में अर्थव्यवस्था की दर धीमी हो जाएगी । इसके विपरीत यदि राजकोषीय नीति इन उद्योगों के पक्ष में हो, तो अल्पकाल में अर्थव्यवस्था की दर धीमी हो जाएगी । इसके विपरीत यदि राजकोषीय नीति उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के पक्ष में हो ना अल्पकाल में विकास की दर ऊंची हो सकती है क्योंकि यह उद्योग कम पूंजी प्रधान होते है तथा उनकी पक्वनावधि (Gastation Period) भी छोटी होती है । आर्थिक विकस की दर को और भी ऊंचा किया जा सकता है यदि लघु उद्योग तथा ग्रामीण उद्योगों में विनियोग किया जाय क्योंकि वह अभी भी अधिक श्रम प्रधान है । तथापि. दीर्घफल में राजकोषीय नीति का आर्थिक विकास की दर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । पूंजीगत वस्तुओं के के में क्षेत्र में पूंजी को विनियोग करने से, जिनकी-पक्वनावधि लम्बी होती है, पूंजी निर्माण में वृद्धि होता है और दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था की क्षमता बढ़ जाती है । इससे अर्थ व्यवस्था दीर्घकाल में न केवल ऊंची दर पर बचते और ही कर पाती है बल्कि उपभोग वस्तुओं का उत्पादन भी बहुत तीव्र दर से बढ़ने लगता है। इसलिए अधिकारियों को इन दोनों विकल्पों की मात्रा के संबंध में निर्णय लेना होता है इसी प्रकार आधारित संरचना (Infrastructure) की सुविधाओं की व्यवस्था करने से दीर्घकालीन विकास की दर पर प्रभाव पड़ेगा । इनकी पर्याप्त व्यवस्था के बिना न तो विकास हो सकता है और न ही इसे बनाए रखा जा सकता है । तथापि सामान्य रूप से इन सुविधाओं की रचना वाणिज्यिक दृष्टिकोण से लाभकारी नही है । इसलिए निजी क्षेत्र से यह अपेक्षा नही की जा सकती कि वह इन पर पर्याप्त रूप से विनियोग करें । तद्नुसार सरकार को इन सुविधाओं का सृजन करने तथा , उन्हें, बनाएं रखने के लिए स्वयं अपने बजटीय संसाधनों का प्रयोग करना पड़ता है ।

2. सार्वजनिक क्षेत्र बनाम निजी क्षेत्र

राजकोषीय नीति का दोनों क्षेत्रों के सापेक्षिक विकास पेर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । अधिकारी वर्ग जिस विचारधारा को अनुकूल बताते है, दोनों में से उसी का चुनाव कर लिया जाता है । यदि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के पक्ष में हो, तब यहां अपनी राजकोषीय नीति का प्रयोग सार्वजनिक बचतों को बढ़ाने में करेगी तथा उन्हें सार्वजनिक उपक्रमों में निवेश करेगी, इसके विपरीत यदि सरकार बाजार अर्थव्यवस्था तथा निजी क्षेत्र को अच्छा समझती हो तो राजकोषीय नीति बचत और विनियोग को उन क्षेत्रों में प्रोत्साहित करेगी । उस स्थिति में, कर, छूटी तथा आर्थिक सहायता आदि का, प्रयोग निजी क्षेत्र को अधिक बचत करने तथा अपनी अर्जित आय को निवेश में लगाने के लिये प्रेरित करने के लिए किया जाएगा ।

3. घरेलू बनाम विदेशी कम्पनियां

राजकोषीय नीति न लेवल अर्थव्यवस्था की समूची विकास दर में बल्कि विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देने में भी जटिल भूमिका निभा सकती है । एक अंतिम सिरे की स्थिति यह हो सकती है जिसमें सिद्धांत के रूप में, विदेशी विनियोग को रोका गया हो, अभी तक हम इसी नीति का पालन करते रहे है । ऐसी स्थिति में, आयात कर लगाकर तथा निर्यातों को आर्थिक सहायता देकर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाता है कि वह देश में आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु का उत्पादन करें। केवल उन्हीं वस्तुओं का आयात किया जाता है जिनका देश में उत्पादन नहीं किया जा सकता हो ।

इस नीति का अन्तनिर्हित अर्थ यह है कि विदेशी विनियोग बहुत ही कम होता है जिससे विकास की दर नीची हो जाती है (क्योंकि विनियोग केवल घरेलू बचतों तक ही सीमित रहता है । बाहरी संसाधनों द्वारा इसे अनुपूरित नही किया जा सकता।) इसके विपरीत यदि राजकोषीय नीति द्वारा DFI का, स्वतंत्र अन्तर्वाह (Inflow) हो तो देश में कुल निवेश में वृद्धि होगी तथा विदेशी पूंजी द्वारा देश मे आधुनिकतम तकनीक भी उपलब्ध कराई जा सकेगी । तथापि ऐसी नीति के अन्तर्गत घरेलू विनियोग विदेशी विनियोग वाली कम्पनियों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना नही कर सकती । इसलिए राजकोषीय नीति का निर्माण किस प्रकार किया जाना चाहिए कि DFI उन चुने उद्योगों की ओर प्रवाहित ही जिन्हें आधुनिकतम तकनीक तथा बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता हो, जबकि इससे दूसरे क्षेत्रों में घरेलू उद्योगों की ओर जाने से रोका जाए

4. क्षेत्रीय संतुलन

राजकोषीय नीति का अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक बनावट पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है क्षेत्रीय संतुलन की अवधारणा में विभिन्न अर्थ व्याप्त है । इससे अर्थव्यवस्था में प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों के सापेक्षिक भागों को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है । इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत इसे आर्थिक इकाइयों को इनके आकार के अनुसार (जैसे वृहद स्तर, मध्यम स्तर तथा लघु स्तर आदि) व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है । राजकोषीय नीति के विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, जैसे रोजगार में वृद्धि, पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का विकास आदि । इसकी विषय वस्तु को इस प्रकार चुना जा सकता है कि विभिन्न क्षेत्रों का समान रूप से विकास सुनिश्चित हो अथवा अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्राथमिकता के आधार पर, कुछ चुने हुए क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा मिले । भारत में, उदाहरण के लिए, कई प्रकार की कर छूटी तथा आर्थिक सहायताओं का प्रयोग किया जाता है जिससे लघु उद्योगों तथा कुटीर उद्योगों का विकास हो सके । इसी प्रकार कृषि में भी सहायता (Subsidized) खाद, विद्युत, कीट नाशक तथा सिंचाई के लिए जल प्राप्त होता है । तथा अधिकतर राज्यों में कृषि आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता । किसी विशिष्ट क्षेत्र के विकास के लिए राजकोषीय नीति को प्रयोग का अन्य उदाहरण वस्त्र उद्योग है । मिल क्षेत्र में मोटे कपड़े पर, बढिया कपड़े की तुलना में कम दर से कर लगाया जाता है । इसी प्रकार, खादी तथा हथकर्घा इकाइयों को अर्थ सहायता दी जाती है । इस नीति के द्वारा उत्पादन लागत अधिक होने पर भी वह इकाइयां बाजार में टिक पाती है ।

5. प्रादेशिक संतुलन

हमारे जैसे विशाल देश को बहुधा प्रादेशिक आर्थिक विषमता को सहन करना पड़ता है । कहने का तात्पर्य है कि कुछ प्रदेश दूसरों की तुलना में अधिक गरीब तथा पिछड़े हुए है । अक्सर एक राज्य के अन्दर भी ऐसी विषमताएं पायी जाती है । राजकोषीय नीति का मुख्य काम पिछड़े हुए क्षेत्रों में विनियोग तथा उद्योगों की स्थापना को प्रेरित करके इन विषमताओं को कम करना होना चाहिए । भारत में उद्योगों को कई प्रकार की अर्थ सहायता तथा कर छूटें प्राप्त है । यदि वह नोटीफाइड इण्डस्ट्रीज डिस्ट्रिक्ट (NID's) Notified Industries Districts और अन्य पिछड़े क्षेत्रों में स्थित है । ऐसी नीति विशेष रूप से तब सहायक सिद्ध होती है । जब यह उद्योग स्थानीय रूप में उपलब्ध

उपज को आदानों (inputs) के रूप में प्रयोग करते है जो या तो नष्ट हो जाते थे अथवा उसे नीची तथा अलाभकारी मूल्यों पर बेचा जाता था। उदाहरण के लिये पर्वतीय क्षेत्रों मे ऐसे प्लांट लगाने से जो फलों को डिब्बों में बन्द करते है, रोजगार मे बहुत वृद्धि हो सकती है। उससे आय बढ़ती है। ऐसे राहत उद्योगों से अत्यन्त निर्धनता से राहत मिलती है जिससे यह क्षेत्र ग्रस्त है।

राजकोषीय नीति शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच आर्थिक विषमताओं को कम करने में भी सहायता करती है। सामान्यतः औद्योगीकरण से शहरीकरण को बढावा मिलता है। वित्तीय तथा व्यापारिक संस्थाऐं उन शहरी क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करना अधिक अच्छा समझती है जिनमें संचार व्यवस्था तथा अन्य सुविधाएं होती है। दुर्भाग्यवश शहरीकरण की अपनी आर्थिक लागतें होती हैं? जैसे अतिरिक्त परिवहन व्यय, महंगे मकान, सड़कें तथा यातायात व्यय आदि। उपयुक्त राजकोषीय नीति ग्रामीण तथा लघु स्तरीय उद्योगों के विकास में सहायक हो सकती है। यह उपाय अर्थव्यवस्था ले तीव्र गति से आर्थिक विकास करने तथा नीची संस्थागत लागतों पर रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता करता है।

25.8 वितरण पर प्रभाव

अनियमित विकास से आय और धन के वितरण की विषमताओं के बढ़ने का खतरा रहता है। उत्पादन के साधनों का स्वामित्व भी थोड़े से लोगों के हाथ में केन्द्रित होने लगता है। एक सीमा के बाद असमानता सामाजिक और आर्थिक कल्याण के उद्देश्य के विपरीत जाने लगती है, इसीलिए इस पर अंकुश लगना चाहिए। इसके अतिरिक्त समाज का विनियोग उत्पादन तथा उपभोग का स्वरूप मांग के स्वरूप जैसा होता है, जबकि मांग का स्वरूप स्वयं समाज की सही आवश्यकताओं को प्रस्तुत नहीं करता, क्योंकि आय और धन की विषमताएं पायी जाती है। इसीलिये जहां तक संभव हो, राजकोषीय नीति का निर्देशन, असमानताओं को दूर करने के लिए किया जाना चाहिए जिससे निवेश, उत्पादन तथा उपभोग का प्रतिरूप समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

आय और धन का विषमताओं को कम करने के लिए राजकोषीय नीति द्वारा करों का व्यापक प्रयोग किया जाता है विभिन्न प्रकार की प्रत्यक्ष कर लगाये जाते है। जिनकी प्रगतिशील अनुसूचियां होती है। इसका अर्थ है कि धनी करदाता का कर दायित्व न केवल निरपेक्ष रूप से बढ़ता है बल्कि असली आय (धन-उत्तराधिकार में प्राप्त धन, व्यय आदि) के अनुपात में भी बढ़ता जाता है, जैसे-जैसे आय बढ़ती जाती है। इसी प्रकार अप्रत्यक्ष करों में विलासिता की वस्तुओं पर अधिक कर लगाये जाते है, जबकि आवश्यकताओं पर या तो बिल्कुल ही कर नही लगाया जाता अथवा उन पर कर की दर बहुत ही कम होती है। राजकोषीय नीति का प्रयोग सामाजिक सुरक्षा तथा श्रम कल्याण की अनेक योजनाओं के लिए वित्त व्यवस्था करने में भी किया जाता है तथा इसका प्रयोग गुणाधारित (मेरिट) वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने में भी किया जाता है। श्रम प्रधान उद्योगों को प्रोत्साहन देकर, राजकोषीय नीति रोजगार उत्पन्न करने तथा इस प्रकार गरीबी तथा असमानताओं को कम करने में सहायता करती है। जब श्रम को अधिक रोजगार मिलता है, तो उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे देश की स्थिति सुधरती है। इसके अतिरिक्त कुल मजदूरी आय तथा मजदूरी की दर

भी बढ़ने की प्रवृति होती है। इसलिए इस संदर्भ में राजकोषीय नीति लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने में बहुत ही सहायक भूमिका निभाती है। यह उन आर्थिक क्रियाओं को भी बढ़ावा दे सकती है जिनसे स्वयं रोजगार के अवसर उत्पन्न होते है। इस प्रकार से अर्थव्यवस्था के विकास से उत्पादक रोजगार बढ़ता है तथा आय और धन की असमानताएं प्रभावपूर्ण रूप से कम हो जाती है।

तथापि यदि राजकोषीय नीति स्फीतिकारी प्रभाव उत्पन्न करें तो आय और धन की विषमताएं और भी व्यापक हो जायेगी। बढ़ते हुए मूल्यों की अवस्था में, मुद्रा के रूप में निश्चित मजदूरी तथा अन्य आय की क्रय शक्ति कम होती जाती है इसके विपरीत, लाभ से प्राप्त आय मौद्रिक तथा वास्तविक दोनों रूपों से बढ़ती जाती है। आप अगले भाग में देखेंगे कि राजकोषीय नीति कई प्रकार से स्फीतिकारी प्रभावों में वृद्धि कर सकती है, जैसे बजट के घाटे तथा अप्रत्यक्ष करों द्वारा।

25.9 मूल्यों पर प्रभाव

कोई भी बजटीय उपाय, जिससे कुल मांग में वृद्धि होती है परंतु उसके अनुरूप वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि नहीं होती, मूल्यों में वृद्धि करता है। इसी प्रकार कुछ राजकोषीय उपाय उत्पादन परिवहन, वितरण तथा बिक्री आदि की लागत बढ़ाकर मूल्यों को ऊंचा कर देते है। इस संबंध में राजकोषीय नीति के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार किया जाएगा।

1. बजट का आकार तथा मूल्य

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि से, चाहे इसकी दिल व्यवस्था, अतिरिक्त मुद्रा तथा उसकी क्रय शक्ति के सृजन से न की गई हो बल्कि अतिरिक्त कर राजस्व द्वारा की गई हो, अर्थ व्यवस्था में कुल मांग में वृद्धि हो जाती है, जिससे स्फीतिकारी प्रभाव उत्पन्न हो जाते है। इसे सन्तुलित बजट गुणांक (Balanced Budget Multiplier) की अवधारणा द्वारा समझाया जा सकता है। माना कि सरकार अतिरिक्त कर राजस्व प्राप्त करती है जिसकी राशि A है और उसे खर्च कर देती है। इस क्रिया द्वारा सरकारी व्यय मात्रा (A) के बराबर बढ़ जायेगा। तथापि करदाताओं द्वारा व्यय में कमी मात्रा (A) से कम होगी क्योंकि उनकी उपभोग की सीमान्त प्रवृति इकाई से कम होती है। राशि A के बराबर करदाताओं की आय कम होने से उनका उपभोग व्यय AxMPC के बराबर कम हो जाएगा। परिणाम स्वरूप समूची अर्थव्यवस्था की कुल मांग में प्रारम्भिक शुद्ध वृद्धि "A"-AxMPC अर्थात A(1-MPC) के बराबर हो जाएगी इससे गुणांक क्रिया उत्पन्न होगी। आप पहले ही जानते है कि इस गुणांक का मान 1/1-MPC होता है। इसका अर्थ है कि A(1-MPC) मात्रा के समान व्यय में प्रारम्भिक शुद्ध वृद्धि होने से व्यय में कुल वृद्धि A(1-MPC)X1/1-MPC=A हो जाती है।

यह वही राशि है जिसके बराबर सरकार ने अपने बजटीय व्यय के आकार को बढ़ाया था। याद रहे संतुलित बजट गुणांक का वास्तविक मूल्य बदल सकता है यदि करदाताओं की MPC उन लोगों की MPC से भिन्न हों जिन पर सरकार कर राजस्व खर्च करती है। तथापि राजकोषीय नीति का मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है इस दृष्टिकोण से ध्यान रखने योग्य सम्बद्ध बात यह है कि किसी

घाटे के बिना बजटीय व्यय में वृद्धि मात्र से ही मांग में वृद्धि हो जाती है जिससे मूल्यों में वृद्धि हो सकती है।

2. मांग के स्वरूप में परिवर्तन

यदि हम इस तत्व की उपेक्षा भी करें कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है, तो भी इस बात की अधिक संभावना रहती है कि अर्थव्यवस्था में मूल्य ऊंचे होगे। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अर्थव्यवस्था में मांग के स्वरूप में अंतर आ जाता है। ऐसी संभावना रहती है कि सरकार को आधारित संरचना तथा ऐसी ही अन्य परियोजनाओं पर व्यय करने के लिए संसाधनों की प्राप्ति हो जाए जिनकी पक्वनावधि (Gestation Period) लंबी होती है (अर्थात जो देर बार प्रतिफल देते है)। इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जिसमें बाजार में कुल पूर्ति से कुल मांग अधिक हो जाएगी। इसका परिणाम होगा कि स्फीतिकारक प्रभाव उत्पन्न हो जाएंगे।

3. घाटे की वित्त व्यवस्था

यदि बजट के घाटे की व्यवस्था देश के केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर और / अथवा नकद शेष से धन लेकर की जाए तो इससे भी देश में कुल व्यय में तो वृद्धि हो जाती है परंतु वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि नही होती। उसी समय जनता के पास चलन मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। क्योंकि चलन मुद्रा उच्च शक्ति की मुद्रा होती है, इसलिए मुद्रा गुणांक (Money Multiplier) की प्रक्रिया द्वारा मुद्रा की तथा साख की पूर्ति में गुणित वृद्धि हो जाती है। इससे स्फीतिकारी प्रभाव और भी अधिक शक्तिशाली हो जाते है।

4. अप्रत्यक्ष कर :-

अप्रत्यक्ष करों से कर लगी वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति की लागत में वृद्धि हो जाती है। वह फिर उन वस्तुओं की उत्पादन लागत में वृद्धि करती है जिनमें वह आदानों (Inputs) के रूप में प्रयोग की जाती है। उदाहरण के लिए यदि रबड़ पर कर लगाया जाए तो टायर के निर्माताओं को लगेगा कि उनकी आदानों की लागत बढ़ गई है। इसलिए जैसे ही टायर के मूल्य बढ़ते है, सभी प्रकार के वाहनों की उत्पादन लागत बढ़ जाएगी। इस पर सामान्यतः किसी वस्तु के कुल उत्पादन मूल्य पर (पूर्व में दिये गये करों तथा उत्पादनों के लाभ को शामिल करके) उत्पादन शुल्क लगाया जाता है। इसी प्रकार किसी वस्तु के कुल विक्रय मूल्य (इस पर दिये गये उत्पादन शुल्क को मिला कर) पर बिक्री कर देना पड़ता है। इसका परिणाम यह होना हें कि पूर्व में दिये गये करों पर भी उत्पादन शुल्क तथा बिक्री कर लग जाते है। इससे उत्पादन लागतों तथा मूल्यों में संचयी वृद्धि हो जाती है विशेषकर सब आदानों (Inputs) पूंजीगत उपकरण, मशीनरी तथा अन्य मध्यवर्ती-वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगाये जाते है। मूल्य में संचयी वृद्धि की यह घटना Price Cascading Effect के नाम से जानी जाती है।

अप्रत्यक्ष करों की उपयुक्त पुनः संरचना द्वारा उनके स्फीतिकारक प्रभावों को कम किया जा सकता है। प्रथम, उन्हें केवल अंतिम उपभोक्ता वस्तुओं पर ही लगाया जाए, मध्यवर्ती तथा आदानों (Inputs)पर न लगाया जाए। दूसरे, किसी वस्तु के पूरे मूल्य पर कर लगाने की अपेक्षा केवल कुल

शुद्ध मूल्य वृद्धि (Net Value Added) पर ही लगाया जाना चाहिए अर्थात मूल्य जोड़कर पद्धति (Value Added Tax (VAT)) को अपनाया जाए। उदाहरण के लिए एक उत्पादक द्वारा दिये जाने योग्य उत्पादन शुल्क में से वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त किये गये Inputs पर पहले से दिये गये करों की राशि कम कर देनी चाहिए। इस प्रकार किसी वस्तु पर दिया गया कर उतना ही रहता है चाहे अंत में इसे एक ही बार में ले लिया जाए अथवा उत्पादन के विभिन्न चरणों में किश्तों में ले लिया जाए। तीसरे, जन समूह के उपभोग की वस्तुओं और विशेष कर उन क्स्तुओं को जिनका समाज के गरीब वर्ग उपभोग करते है, अप्रत्यक्ष करों से छूट देनी चाहिए अथवा उन पर बहुत ही हल्के कर लगाने चाहिए।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित अवधारणाओं (Concepts) की संक्षेप में व्याख्या कीजिए

(1) संतुलित बजट गुणाक (Balance Budget Multiplier)

(2) मूल्य जोड़कर पद्धति (Value Added Tax)

(3) आधारित संरचना (Infrastructure)

(4) प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (DFI) को प्रभावित करने वाले तत्व

25.10 सारांश

राजकोषीय नीति उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का कुल परिणाम है जो सार्वजनिक बजट तथा उसके अंगों को सूत्रित करने में मार्ग दर्शन करते है। सरकार की बजटीय क्रियाओं के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव अतटस्थ ही होने चाहिए। इसलिए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के लिए यह आवश्यक है कि प्राथमिकता के आधार पर सामाजिक-आर्थिक/सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्रमबद्ध राजकोषीय नीति द्वारा निर्देशन होना चाहिए। विशेष रूप से, राजकोषीय नीति का प्रयोग आर्थिक विकास के लिए साधन गतिशीलता के लिए किया जा सकता है। इसमें बचत तथा विनियोग की दर को बढ़ाना, और जहां तक संभव हो बाह्य साधनों का अन्तर्वाह तथा विकास प्रेरित रूप से साधनों का आबंटन निहित है। इस उद्देश्य के लिए आर्थिक प्रेरणाओं तथा अप्रेरणाओं की उपयुक्त प्रणाली की रचना द्वारा करों, सार्वजनिक विनियोग, अर्थ सहायता, हस्तांतरण, सार्वजनिक ऋण लेना अथवा देना, आदि का प्रभावपूर्ण प्रयोग किया जाना संभव है। आर्थिक विकास के समूचे प्रयास में सरकार की बजट नीति केवल सार्वजनिक बचत तथा विनियोग को बढ़ावा देने के लिए ही मुख्य भूमिका नहीं निभाती है, बल्कि बचत तथा विनियोग को निजी क्षेत्र में भी बढ़ाती है तथा प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग को भी प्रोत्साहन देती है। तथापि बजटीय उपायों द्वारा साधन गतिशीलता में हमारे जैसे देश को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कर तथा गैर कर राजस्व प्राप्त करना अथवा सरकार के गैर विकासात्मक व्यय पर अंकुश लगाना आसान काम नहीं है। जिस पर साधन गतिशीलता का आय और धन के वितरण तथा मूल्य स्तरों, दोनों पर प्रभाव पड़ता है। जहां प्रत्यक्ष करों की प्रगतिशील दर अनुसूचियों के माध्यम से असमानताओं को रोका जा सकता है, अप्रत्यक्ष

करों से असमानताओं में वृद्धि होती है तथा स्फीतिकारी प्रभाव भी बढ़ जाते है। इसी प्रकार जहां बजट घाटा मूल्यों तथा असमानताओं में वृद्धि करता है वहां संतुलित बजट की भी (इसके आकर में वृद्धि द्वारा) अपनी स्वयं की गुणांक (Multiplier) प्रक्रिया होती है।

25.11 शब्दावली

गुणाधारित वस्तुऐं (Merit Goods) : वह वस्तुएं है जिनका उपभोग अति वांछनीय होता है. क्योंकि वह न केवल उपभोक्ताओं को स्वयं को ही लाभ पहुंचाती है। बल्कि शेष समाज को भी लाभ पहुंचाती है। राजकोषीय नीति :- राजकोषीय नीति सामार्थिक उद्देश्यों का सकल परिणाम होता है जिनके लिए समूचा बजट तथा उसके अंगों द्वारा निर्देशन मिलता है।

ऋण सेवा (Debt Service):- यह ब्याज के भुगतान तथा पुराने ऋणों के मूल धन के भुगतान को व्यक्त करती है।

कर : कर सरकार द्वारा लगाया गया एक अनिवार्य भुगतान है। इसके भुगतान में करदाता को सरकार से किसी सेवा का अधिकार नही है। इसमें जैसे को तैसा का सम्बन्ध नहीं है।

आर्थिक सहायता (Subsidy) : यह ऋणात्मक ऋण है। यह सरकार की तरफ से एक हस्तान्तरण है न कि इसके द्वारा लगाया गया कर।

सार्वजनिक ऋण की परिपक्वता रचना। (Maturity Composition)

यह सार्वजनिक ऋण को विभिन्न परिपक्वता (Maturities) वाले ऋणों में विभाजित करने की क्रिया को प्रस्तुत करता है।

कूपन दर (Coupon Rate) : इसका अर्थ सार्वजनिक ऋण पर अंकित ब्याज की नाम मात्र दर है।

आर्थिक विकास : इसका अर्थ देश की उत्पादन क्षमता में तथा श्रम की प्रति व्यक्ति उत्पादकता में स्थायी वृद्धि से लगाया जाता है।

पूंजी निर्माण : यह अर्थव्यवस्था की उत्पादक परिसम्पत्तियों में वृद्धि को व्यक्त करता है।

बचत की दर : यह GDP अथवा GNP का वह भाग है जिसका उपभोग नहीं किया जाता।

आधारित संरचना की सुविधाएं अथवा सामाजिक उपरिव्यय (Infrastructure Facilities) इसका अर्थ, अर्थव्यवस्था की वह उत्पादक परिसम्पतियां है जो अर्थव्यवस्था की शेष उत्पादक परिसम्पत्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है। वह सामान्यतया अलाभकारी है तथा उनके लिए भारी निवेश की आवश्यकता है।

उत्पादन शुल्क : यह किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन पर लगाया गया कर है।

"राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का नियम" : यह नियम इस बात की व्याख्या करता है कि प्रत्येक सरकार की निहित प्रवृति अपनी क्रियाओं का विस्तार करने तथा सार्वजनिक व्यय बढ़ाने की होती है।

साधन आवंटन : यह उस स्वरूप की ओर संकेत करता है जिसमें अर्थव्यवस्था के उत्पादक संसाधनों को विभिन्न प्रयोगों में उपयोग किया जाता है।

साधन गतिशीलता : यह अर्थव्यवस्था के कुल विनियोग किये जाने योग्य संसाधनों में वृद्धि को व्यक्त करता है।

पूंजी उत्पाद अनुपात : इसका अर्थ एक इकाई उत्पादन के लिए आवश्यक पूंजी की इकाइयों से लगाया जाता है।

प्रगतिशील कर : यदि जिस आधार पर कर लगाया जाता है, उसकी वृद्धि के साथ कर की दर भी बढ़ती जाती है, तो यह प्रगतिशील कर कहलाता है। इसका आधार वह चल (Variable) है जिसके संदर्भ में कर लगाया जाता है। जैसे करदाता की आय।

संतुलित बजट गुणाक (Balanced Budget Multiplier) : यह अर्थ-व्यवस्था में कुल मांग में वृद्धि का सार्वजनिक व्यय में प्रारम्भिक वृद्धि से अनुपात है, जबकि सार्वजनिक व्यय से बजट के घाटे में कोई वृद्धि न हो।

Price Cascading प्रभाव : अप्रत्यक्ष कर Price Cascading प्रभाव वस्तु की लागत तथा मूल्य में संचयी वृद्धि को व्यक्त करता है। जब वस्तु उत्पादक और/अथवा बिक्री की क्रमिक अवस्थाओं में से गुजरती है।

मूल्य जोड़ कर (Value Added Tax) (VAT) : यह कर लगाने के पहले बिन्दु से अब तक कर लगी वस्तुओं के मूल्य में शुद्ध वृद्धि पर लगाया गया कर है इस कारण यह बहुस्तरीय कर होता है।

उन्नतशील पूंजी उत्पाद अनुपात (Incremental Capital Output Ratio) : यह एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए आवश्यक पूंजी की इकाइयों को व्यक्त करता है

सार्वजनिक ऋण इनका अर्थ सरकार द्वारा देश के अन्दर से तथा विदेशों से लिये गये ऋणों से है।

बजटीय घाटा (अथवा आपूर्ति घाटा) भारत में यह सरकार के भारतीय रिजर्व बैंक से लिए गये ऋण तथा नकद शेषों में कमी के योग को प्रदर्शित करता है।

पक्वनावधि (Gestation Period) किसी परियोजना की पक्वनावधि (Gestation Period) परियोजना पर विनियोग शुरू करने तथा उत्पादन शुरू होने के बीच का अन्तराल है।

स्वयं जांच हेतु कुछ प्रश्न

निम्न प्रश्नों के संक्षिप्त तथा उपयुक्त उत्तर लिखिये । उन्हें विश्वविद्यालय को न भेजें वह आपके स्वयं के प्रयोग के लिए है-

1. उचित रूप से बनाई गयी राजकोषीय नीति का औचित्य क्या है?
2. आर्थिक विकास के लिए साधन गतिशीलता से आप क्या समझते है)
3. राजकोषीय नीति किस प्रकार अर्थव्यवस्था में बचतों को बढ़ावा दे सकती है?
4. आर्थिक विकास पर राजकोषीय नीति के प्रभाव की आप किस प्रकार जांच करेंगे?
5. (संकेत: भाग 28.7 देखिये)
6. घाटे की वित्त व्यवस्था तथा अप्रत्यक्ष कराधान आय की असमानताओं को किस प्रकार बढ़ाते है?
7. घाटे की वित्त व्यवस्था तथा अप्रत्यक्ष कराधान किस प्रकार स्फीतिजनक प्रभाव उत्पन्न करते है?
8. व्याख्या कीजिए कि किस प्रकार संतुलित बजट मूल्यों को ऊंचा कर सकता है?

25.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Hugh Dalton: Principles of Public Finance. Roukledge and Kegan Paul. Chapter XXIV.
2. A.R.Prest : Public Finance in Under developed countries, Vikas Publishing House, 1973,Chapter-7.
3. G.K. Shaw:Fiscal Policy.Macmillan Series in Econoimics,1972.
4. Gerherd, Colm, Essays in Public Finance and Fiscal Policy, Oxford University Press, Chapters 4,10&11.
5. H.L. Bhatia : Public Finance, Vikas Publishing House, New Delhi-Chapter-14.

बोध प्रश्नों के. उत्तर

1. 1. (i) अ (ii) ब (iii) अ
   2. (i) गलत (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) सही
2. 1. (i) सही (ii) सही (iii) गलत
   2. हां
   3. नही

इकाई - 26

भारत में बजटीय घाटे की नीति

इकाई संरचना

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 लोक वित्त में बजटीय घाटे का अर्थ

26.2.1 सामान्य

26.2.2 सर्वप्रिय अवधारणा

26.2.3 आशिक बजटीय घाटे

बोध-प्रश्न- 1

26.3 भारत सरकार की देयताओं के स्रोत एवं रूप

26.3.1 सामान्य

26.3.2 विदेशी ऋण

26.3.3 आंतरिक ऋण

26.3.4 अन्य देनदारियां

बोध प्रश्न- 2 बजटीय घाटे के प्रमाणों का चयन

26.4.1 प्रमाण के चयन का आर्थिक आधार

26.4.2 भारत सरकार का बजटीय घाटे का प्रमाण

26.4.3 भारत में प्रयुक्त बजटीय घाटे के प्रमाण में त्रुटियां

बोध प्रश्न- 3

26.5 भारत में बजटीय घाटे के विभिन्न प्रमाण

26.5.1 राजस्व घाटा

26.5.2 पूंजी खाते का घाटा

26.5.3 बजटीय घाटा

26.5.4 राजकोषीय घाटा

26.5.5 मुद्राकृत घाटा

बोध प्रश्न-4

26.6 भारत में बजटीय घाटे का स्तर

26.6.1 मुख्य प्रवृत्तियां

26.6.2 कुछ मुख्य पहलू

बोध प्रश्न- 5

26.7 सारांश

26.8 शब्दावली

26.9 कुछ उपयोगी पाठ्य सामग्री

26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.11 कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

26.0 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य यह है कि आप को

- बजट के घाटे की सैद्धान्तिक अवधारणाओं से अवगत कराया जाए;
- इन अवधारणाओं के सैद्धान्तिक मूल्यों से अवगत कराया जाए;
- भारत सरकार की देनदारियों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया जाए;
- भारत सरकार द्वारा अपनाए गए बजट के घाटों के प्रमाणों का विवरण दिया जाए;
- भारत सरकार के बजटीय घाटों के मात्रिक स्तरों का ज्ञान हो;
- बजटीय घाटी संबंधी भारत सरकार की नीति के मुख्य पहलुओं का पता चले

26.1 प्रस्तावना

सिद्धान्त में तथा कार्यान्वयन के स्तर पर बजटीय घाटे की अवधारणा विपिन रूप ले सकती है। बजटीय नीति में घाटे का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके गहरे सामाजिक तथा आर्थिक प्रभावों के कारण उनके बारे में समुचित जानकारी अति आवश्यक है। इस इकाई में भारत में बजटीय घाटे का अध्ययन इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जा रहा है।

26.2 लोक वित्त में बजटीय घाटे का अर्थ

26.2.1 सामान्य

सरकारी बजट में घाटे की अवधारणा को भली भांति समझने के लिए एक सामान्य आर्थिक इकाई की स्थिति पर दृष्टिपात करना लाभकारी रहेगा। इस संदर्भ में एक पूर्व निश्चित काला- विधि को चुन लिया जाता है तथा उसके दौरान विचाराधीन इकाई की प्राप्तियों तथा अदायगियों के लेखे को उसके बजट की संज्ञा दी जाती है। यहां ध्यान योग्य तथ्य यह है कि बजटीय घाटे अथवा अधिशेष के प्रमाण के लिए सभी प्राप्तियों तथा अदायगियों को नही लिया जाता। केवल उन प्राप्तियों को लिया जाता है जिन्हें विचाराधीन इकाई की आय माना जा सकता है। इसी प्रकार सभी अदायगियों को न लेकर केवल उन अदायगियों को लिया जाता है जिन्हें उस इकाई का व्यय माना जा सकता है।

सरकारी बजट अर्थात लोक बजट के संदर्भ में भी यही तर्क अपनाया जाता है। सरकार को भी एक आर्थिक इकाई के रूप में लिया जाता है जिसके अंतर्गत कई मंत्रालय, विभाग एवं उद्यम आदि रहते है। सरकारी बजट का समय अंतराल बहुधा एक वर्ष होता है, यद्यपि कुछ विशेष स्थितियों में यह अंतराल कम भी हो सकता है। भारत में केन्द्र राज्य सरकारों के बजटों की कालाविधि प्राय : 1 अप्रैल से लेकर आगामी वर्ष के 31 मार्च तक होती है।

26.2.2 सर्वप्रिय अवधारणा

बजटीय घाटे की सर्वप्रिय अवधारणा के अनुसार

बजटीय घाटा = कुछ व्यय - राजस्व प्राप्तियां

ध्यान रहे कि घाटे की वास्तविक स्थिति तभी उत्पन्न होगी जब सरकर का व्यय उसकी राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो। विपरीत दशा में (अर्थात इस अंतर के ऋणात्मक होने पर) यह स्थिति बजट अधिशेष की होगी।

उपरोक्त परिभाषा देखने में सरल होते हुए भी वास्तव में अनेक कठिनाइयों से परिपूर्ण है। कारण यह है कि यहां पर यह तय करना अति आवश्यक रहता है कि सरकार की प्राप्तियों में से कौन सी "राजस्व" प्राप्तियों में शामिल की जानी चाहिए तथा कौन सी नहीं। इसी प्रकार की कठिनाई अदायगियों की मदों को "व्यय" तथा "अन्य" भागों में वर्गीकृत करने में भी आती है। अत: इन पर थोड़ा विचार करना लाभकारी रहेगा। प्राप्तियों के वर्गीकरण में मुख्य कसौटी यह रहती है कि उनमें से कौन सी सरकार के स्वामित्व में आती है तथा किन प्राप्तियों से उसकी भविष्य की देयताओं में वृद्धि होती है। बजटीय घाटे के प्रमाण में केवल उन प्राप्तियों को शामिल किया जाना चाहिए जिनके कारण सरकार की भविष्य की देयताओं में वृद्धि न हो। स्पष्ट है कि कर प्राप्तियों की सारी मदें इस कसौटी पर खरी उतरती है तथा उनकी गिनती राजस्व प्राप्तियों में की जाएगी। जहां तक कर-भिन्न प्राप्तियों का प्रश्न है, उनमें ब्याज की वसूली, लाभ तथा लाभांश, अनुदान, जुर्माने, फीस, जब्तियां तथा अन्य सभी प्रकार की हस्तांतरित राशियां आदि सभी राजस्व प्राप्तियों में वर्गीकृत होंगी। इसी प्रकार

सरकारी व्यय में प्रत्यक्ष रूप से क्रय किए जाने वाली सेवाओं तथा वस्तुओं पर खर्च, पगार, पैन्शन, सुरक्षा, न्याय तथा प्रशासन के अन्य खर्चो के अतिरिक्त, जनता की भलाई के लिए किए जाने वाले अनेक खर्च शामिल है। सरकारी व्यय की मदों में ब्याज, जुर्माने तथा करों आदि की वसूली पर किए गए खर्च के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अनुदान आदि भी आएंगे।

यहां पर एक कठिनाई युक्त टुकडा सरकारी ऋणों के लेनदेन से संबंधित है। प्रश्न यह उठता है कि क्या इनमें से भी कुछ को सरकारी बजट के प्रमाण में शामिल किया जाए और यदि हां तो उनका स्वरूप क्या हो। एक ओर सरकार विभिन्न स्रोतों से तथा विभिन्न प्रकार से उधार लेता है जिनमें कई प्रकार की जमा राशियां तथा धरोहर राशियां भी शामिल रहती है, तथा दूसरी ओर सरकार कई प्रकार के पूर्व-स्थित उधारों का पूर्ण अथवा आशिक भुगतान करती रहती है। साथ ही सरकार द्वारा दिये गये उधारों की भी आशिक अथवा पूर्ण वसूली की प्रक्रिया चलती रहती है।

लोक वित्त के किताबी सिद्धान्तानुसार बजटीय घाटे के उपरोक्त प्रमाण में राजस्व प्राप्तियों में सरकार द्वारा पहले से दिए गए उधारों की वसूलियों को तथा व्यय में सरकार द्वारा चुकाए गए ऋणों की राशियां शामिल की जानी चाहिए। ऐसा करने पर बजटीय घाटा के प्रमाण विचाराधीन अंतराल में सरकार की निवल देयताओं में वृद्धि के तुल्य हो जाता है।

अधिकतर देशों में केन्द्रीय सरकार को करेन्सी सृजन का अधिकार होता है जिसे सरकार केन्द्रीय बैंक के पास जमा रखती है। बजटीय घाटे के पूर्ण परिमापण के लिए इस रोकड़ में हुई कमी (अर्थात रोकड से किए गए खर्च) को भी जोड़ा जाना चाहिए। इस मद की व्याख्या निम्न प्रकार है जब सरकार करेन्सी (सिक्कों अथवा नोटों) का निर्माण करती है, तो उसके मूल्य तथा उसकी निर्माण लागत के अंतर को अपनी राजस्व प्राप्तियों में लाभ (सिद्धान्तानुसार यह घाटा भी हो सकता है) की मद मान लेती है, तथा करेन्सी को रोकड़ के तौर पर केन्द्रीय बैंक के पास जमा करा दिया जाता है। इस जमा रोकड़ में से सरकार द्वारा व्यय करने पर हुई कमी को भी बजटीय घाटे का अंश माना जाता है। दूसरे शब्दों में इस मद के सहित बजटीय घाटे के प्रमाण को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है

बजटीय घाटा = विचाराधीन कालावधि में सरकार की निवल देयताओं में वृद्धि + रोकड़ में निवल कमी

वैसे अधिकतर स्थितियों में यह मद काफी छोटी होती है। अत: इसे छोड़ देने पर भी प्रमाण में विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

बजटीय घाटे के इस प्रमाण को लोक वित्त में राजकोषीय घाटे के नाम से भी जाना जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि भारत में इन शब्दों को भिन्न अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है। इस बारे में इस इकाई में विस्तार पूर्वक विचार किया जाएगा।

26.2.3 आंशिक बजटीय घाटे

बजटीय घाटे के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बजट को यदि कुछ भागों में वर्गीकृत कर दिया जाए तो हरेक भाग का अपना घाटा अथवा अधिशेष प्रमाण हो सकता, है। पूंजी खाते में वे

सारी मदें आती है जिनके कारण सरकार की देयताओं तथा परिसम्पत्तियों में कमी पेशी होती है। इस प्रकार बजट के इस खाते में उधार लेने देने तथा निवेश तो शामिल रहते है परन्तु ब्याज, लाभ, लाभांश तथा अन्य प्रकार की निवेश आय मदें राजस्व खाते में गिनी जाती है। बजट के इस प्रकार वर्गीकरण पर हमारे सामने ' राजस्व घाटे " तथा "पूंजी घाटे" की अवधारणायें आती है। अत: पूंजी घाटे के प्रमाण में प्राप्तियों के अंतर्गत नए उधार लेना, पुराने उधारों की वसूली, विदेशी सहायता, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में इक्विटी धारिता का विनिवेश, अल्प बचतें, लोक भविष्य निधि, राज्य भविष्य निधि, विशेष जमा आदि शामिल है। इसी प्रकार पूंजी व्यय में पुराने उधारों को चुकाना, नए उधार लेना, निवेश तथा परिसम्पत्तियों को क्रय करना आदि शामिल है। इन तथ्यों के आधार पर पूंजी खाते के घाटे का अर्थ पूंजी व्यय की पूंजी प्राप्तियों पर अधिशेष है। इसके विपरीत पूंजी खाते का शेष घनात्मक भी हो सकता है।

परिभाषानुसार जिन मदों की पूंजी खाते में शामिल न किया जाए, उन्हें बजट के राजस्व खाते में रखा जाता है, तथा उनके. आधार पर राजस्व घाटे का प्रमाण राजस्व व्यय तथा राजस्व प्राप्तियों में अंतर है। स्पष्ट है कि राजस्व घटक का शेष घनात्मक भी हो सकता है तथा ऋणात्मक भी। इस प्रकार यदि दोनों घटक ऋणात्मक हों तो बजट का कुल घाटा (जिसे हम बजटीय घाटा अथवा राजकोषीय घाटा भी कह सकते है) इन दोनों का जोड़ होता है। तथा यदि इनमें से एक धनात्मक तथा ऋणात्मक हो, तो कुल बजट शेष इन दोनों घटकीय शेषों का अंतर रहता है। इस संदर्भ में विशेष रूप से इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि राजस्व घाटे का अर्थ यह है कि सरकार अपने साधारण खर्चो का एक अंश उधार लेकर (अथवा परिसम्पत्तियों के व्यय द्वारा) पूरा कर रही है। इसी प्रकार राजस्व घटक में शेष का अर्थ यह निकलता है कि सरकार अपने पूंजी व्यय का एक भाग अपनी देयताओं में वृद्धि किए बिना पूरा कर रही है जो कि एक सराहनीय बात है।

बोध प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन से ठीक है तथा कौन से गलत?

(क) सरकार की सभी प्राप्तियां उसके राजस्व का अंग होती है। (ठीक/गलत)

(ख) बजटीय घाटे के प्रमाण हेतु सरकार की चयित प्राप्तियों तथा व्यय मदों को ही लिया जाता है। (ठीक/गलत)

(ग) सरकारी बजट की कालावधि सदैव एक वर्ष होती है। (ठीक/गलत)

(घ) सरकार को हस्तांतरित की गई राशियां उसके राजस्व का भाग नहीं होती है। (ठीक/गलत)

(ङ) सरकार के पास जनता की विशेष जमा राशियां, अल्प बचतों की राशियां तथा धरोहर जमा उसके उधार की मदें नहीं है। (ठीक/गलत)

(च) लोक वित्त के सिद्धान्तानुसार बजटीय घाटे तथा राजकोषीय घाटे में कोई अंतर नहीं है। (ठीक/गलत)

2. लोक वित्त के सिद्धान्तानुसार बजटीय घाटे का प्रमापण क्या है?

3. जमा रोकड़ में कमी की अवधारणा का 4- 5 वाक्यों में वर्णन करें।
4. पूंजी बजट के अंतर्गत आने वाली मदों का चुनाव किस आधार पर किया जाता है?
5. क्या कुल बजटीय घाटा राजस्व घाटे से कम हो सकता है? यदि ही, तो कैसे?

26.3 भारत सरकार की देयताओं के स्रोत एवं रूप

26.3.1 सामान्य

भारत में बजटीय घाटे के विषय के अध्ययन के लिए अति आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा लिए जाने वाले ऋणों तथा उनके स्वरूप की मुख्य रूपरेखा पर दृष्टि-डाली जाए। इस विश्लेषण के आधार पर हमें बजटीय घाटे की विभिन्न अवधारणाओं पर विचार करने में सुविधा रहेगी।

26.3.2 विदेशी ऋण

हमारे विधानानुसार राज्य सरकारें विदेशों से ऋण नहीं ले सकती। यह अधिकार केवल भारत सरकार को ही है। अत: जब किसी राज्य प्रयोजन के लिए किसी विदेशी ऋण की आवश्यकता हो तो भारत सरकार वह उधार लेकर अपनी ओर से राज्य सरकार को उधार देती है। यहां पर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि इन ऋणों द्वारा सरकार को जो विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है उसके माध्यम से विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात मूल्य का भुगतान किया जा सकता है। अत: इस चरण में जहां देश में वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति में वृद्धि होती है, वही मुद्रा-रूपी क्रय-शक्ति ज्यों की त्यों बनी रहती है। फलस्वरूप विदेशों से उधार लेने का पहला प्रभाव यह पड़ता है कि कीमतों में घटने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार जब विदेशी ऋणों का भुगतान निर्यात द्वारा अर्जित मुद्रा, की अदायगी द्वारा किया जाए तो कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति आती है तथा यदि यह भुगतान केवल पूर्व, स्थित विदेशी मुद्रा के भंडार से ही कर दिया जाए तो कीमतें घटती है। यहां पर इन सभी तथ्यों का वर्णन किए जाने का कारण यह है कि भारत में अपनाई गई बजटीय घाटे की परिभाषा कीमतों पेर सम्भावित प्रभाव से सम्बद्ध है।

26.3.3 आंतरिक ऋण

इस वर्ग में देश के अंदर से लिए गए उधार शामिल है तथा उनकी मुख्य मदें निम्न प्रकार की है।

(क) बाजार उधर इस मद में वे सभी उधार आते है जिन की प्रारम्भिक कालावधि एक वर्ष अथवा इससे अधिक हों। यहां पर विशेष ध्यान योग्य बात यह है कि बाजार उधार कहलाते हुए भी ये उधार केवल बाजार से नहीं लिए जाते। इनका एक मुख्य अंग भारतीय रिजर्व बैक भारत सरकार के ऋण-संबंधी सभी कार्यों का कार्यकर्त्ता है। इसके अतिरिक्त बैक का यह दायित्व भी है कि यदि किसी कारण सरकार को बाजार से प्रस्तावित मात्रा के बराबर उधार ने मिल सके, तो उस कमी को अपनी ओर से उधार देकर पूरा करे। अर्थात् रिजर्व बैक इस दशा में भारत सरकार की उन प्रतिभूतियों को क्रय करता है जो बाजार में नहीं बिक पाती। सरकार द्वारा रिजर्व बैक से उधार लिए जाने के तथ्य की बजटीय घाटे की अवधारणा में एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

(ख) राजकोषीय हुंडियां राजकोषीय हुंडी सरकार की अल्पकालीन देयता होती है। इसकी देय तिथि जारी किए जाने की तिथि के 91 अथवा 182 दिन के पश्चात होती है, तथा इसे बट्टे पर बेचा जाता है। भारत में राजकोषीय हुंडियों का मुख्य क्रेता रिजर्व बैक है, तथा बहुत ही कम मूल्य की हुडियां अन्य क्रेताओं के पास रहती है।

इसके अतिरिक्त कई बार देय तिथि पर पहुंचने पर राजकोषीय हुंडियों को लम्बी कालावधि की प्रतिभूतियों में "जमा" कर दिया जाता है, अर्थात उनका भुगतान करने के स्थान पर उनके ऋणदाताओं को लम्बी कालावधि की प्रतिभूतियां दे दी जाती है (इस प्रक्रिया को राजकोषीय हुंडियों के. Funding की संज्ञा दी जाती है)। 31 मार्च 1992 को रिजर्व बैक के पास 91 दिवसीय राजकोषीय हुंडियों से परिवर्तित विशेष प्रतिभूतियों का भण्डार 66000 करोड़ रुपये तक पहुंच चुका था।

(ग) भारतीय रिजर्व बैक से अन्य उधार इन उधारों में रिजर्व बैंक को जारी की गई "अन्य"! तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को जारी की गई प्रतिभूतियां शामिल है। ये प्रतिभूतियां इन संस्थानों में भारत के अभिदान / अंशदान के' लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ हुए कतिपय लेनदेन के लिए जारी की जाती है।

26.3.4 अन्य देनदारियां

भारत सरकार पर अन्य कई प्रकार के उधार भी है, जिनकी कालावधि विभिन्न आधारों पर निश्चित की जाती है। इन उधारों के सृजन के मुख्य कारणों में घरेलू बचतों को प्रोत्साहन देना, उन्हें उचित निवेश मार्गों में लाना तथा सरकार के अन्य विकास कार्यो से सम्बद्ध जमा राशियां एकत्रित करना है। उधारों के इस वर्ग में अल्प स्कीमें, भविष्य निधियां, गैर-सरकारी भविष्य-निधियां आदि की विशेष जमा रकमें, 'प्रारक्षित निधियां और जमा रकमें" आदि शामिल है।

बोध प्रश्न - 2

1. निम्नलिखित में से ठीक तथा गलत वक्तव्यों का चयन करें।

(क) विदेशी ऋण मिलने पर मांग तथा कीमतों में वृद्धि होती है, क्योंकि उसके कारण सरकार का व्यय बढ़ता है। (ठीक/गलत)

(ख) विदेशी ऋणों के भुगतान से कीमतें घटती है क्योंकि अर्थव्यवस्था से एक बोझ उतरता है। (ठीक/गलत)

(ग) भारत सरकार के बाजार उधारों में भारतीय रिजर्व बैक से लिया गया उधार नहीं होता। (ठीक/गलत)

(घ) भारत में राजकोषीय हुंडियों द्वारा सरकार बाजार से उधार लेती है। (ठीक/गलत)

(ङ) भारत सरकार की राजकोषीय हुंडियां मुख्यत : वाणिज्य बैंकों तथा कम्पनियों द्वारा क्रय की जाती है। (ठीक/गलत)

2. राजकोषीय हुंडियों का लम्बी कालावधि की प्रतिभूतियों में 'जमा" किए जाने का अर्थ बताएं।

3. क्या आप इस दावे को मानते है कि प्रारक्षित निधियां और जमा रकमें सरकार द्वारा लिए गए उधारों का भाग नहीं है? कारण सहित उत्तर दें।

26.4 बजटीय घाटे के प्रमापण का चयन

26.4.1 प्रमापण के चयन का आर्थिक आधार

हम देख चुके है कि सामान्यत : लोक वित्त में बजटीय अथवा राजकोषीय घाटे का अर्थ सरकार की देयताओं में निवल वृद्धि के बराबर लिया जाता है। परन्तु आर्थिक विश्लेषण तथा उपयुक्तता के दृष्टिकोण से यह परिभाषा त्रुटिपूर्ण कही जा सकती है। कुछ वर्ष पूर्व तक हमारे देश में प्रशासनिक दृष्टिकोण यह रहा है कि पूर्वोक्त प्रमापण स्थिति के आर्थिक पहलू को ठीक प्रकार से दर्शाने में असमर्थ रहता है। इस प्रमापण से यह तो ज्ञात होता है कि सरकार की देनदारियों में कितना परिवर्तन हुआ, परन्तु यह पता नहीं चलता कि इसका प्रभाव क्या होगा।

प्रश्न यह उठता है कि बजटीय घाटे का प्रमापण 'अर्थव्यवस्था पर होने वाले किस प्रकार के सम्भावित बजटीय प्रभाव को दर्शाने में समर्थ होना चाहिए? सरकार की विचारधारा के अनुसार बजटीय घाटे (अथवा अधिशेष) का एक महत्वपूर्ण प्रभाव मांग में परिवर्तन के माध्यम से कीमतों के स्तर पर पड़ता है। भारत जैसे अल्पविकसित देश में कीमतें बढ़ने से अनेक प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक दोष उत्पन्न होते है जिनमें आय तथा धन के वितरण मे असमानताएं मुख्य है। कीमतों में वृद्धि के माध्यम से मजदूरी तथा अन्य, प्रकार की स्थिर मौद्रिक आय उतनी तीव्रता से नहीं बढ़ पाती जबकि लाभ आय बढ़ती जाती है। अत: बढ़ती कीमतों का एक पहलू यह भी है कि उद्यमकर्ता इस माध्यम से स्थिर मौद्रिक आय वाले वर्ग पर निहित करारोपण. करते है।

इस तर्क के आधार पर हम कह सकते है कि सरकार के बजट के घाटे का प्रमापण अर्थव्यवस्था. में मांग में वृद्धि का प्रतीक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में बजटीय घाटे में सरकारी प्राप्तियों की वे मदें शामिल की जानी चाहिएं जिनके व्यय से देश में मांग में निवल वृद्धि होती है, तथा जिनसे कीमतों में बढ़ोत्तरी की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए तो वे प्राप्तियां है जिनके व्यय के फलस्वरूप मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है। अत: तर्क के इस चरण पर इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में मुद्रा (अर्थात करेंसी) का सृजन भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक के हाथों में है परन्तु देश में करेन्सी जारी करने का अधिकार केवल रिजर्व बैक को है। जब सरकार रिजर्व बैंक से उधार लेकर व्यय करती है, तो रिजर्व बैक के पास परिसम्पत्तियों के रूप में भारत सरकार की प्रतिभूतियां आती है तथा बैक उनके बदले बाजार को करेंसी के रूप में अदायगियों करता है। मुद्रा की पूर्ति में इस प्रकार की वृद्धि से मांग तथा कीमतों में बढ़ोतरी होती है। इस तथ्य की इस बात से भी पुष्टि मिलती है कि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि बैक-साख के सृजन को भी बढ़ावा देती 'है।

26.4.2 भारत सरकार का बजटीय घाटे का प्रमापण

इस तर्काधार पर भारत में बजटीय घाटे की परिभाषा अथवा प्रमापण केवल दो मदों का जोड़ है, अर्थात्

बजटीय घाटा = भारत सरकार की राजकोषीय हुंडियों में निवल वृद्धि + रोकड़ जमा में निवल कमी

इसी तर्कानुसार सरकार द्वारा विदेशों से उधार लिए जाने पर वास्तविक संसाधनों की पूर्ति बढ़ती है। इसी प्रकार बाजार उधार, लघु बचतों आदि के द्वारा क्रय शक्ति बाजार से सरकार के पास हस्तांतरित हो जाती है। परन्तु इससे सकल मांग में निवल वृद्धि नहीं होती। इसके विपरीत जब सरकार रिजर्व बैक से उधार लेकर व्यय करती है तो सकल मांग में निवल वृद्धि होती है।

26.4.3 भारत मे प्रयुक्त बजटीय घाटे के प्रमापण में त्रुटियां

आप यह देख चुके है कि भारत सरकार द्वारा अपनाया गया बजटीय घाटे का प्रमापण प्रचलित पद्धति से हट कर अपनाया गया है। परन्तु यह प्रमापण स्वयं सरकार द्वारा अपनाई गई विश्लेषण-कसौटी पर भी पूरा नहीं उतरता। कारण यह है कि सरकार द्वारा लिए गए कई अन्य प्रकार के उधार भी राजकोषीय हुंडियों द्वारा लिए गए उधार की भांति ही मांग तथा कीमतों पर दबाव डालते है, तथा इस कारण उनको बजटीय घाटे के प्रमापण में शामिल किए जाने की सिफारिश की जा सकती है।.

(क)सरकार का भारतीय रिजर्व बैक से उधार राजकोषीय हुंडियों तक ही सीमित नहीं है। तथाकथित बाजार उधारों का एक मुख्य अंश भी रिजर्व बैंक से ही लिया जाता है, तथा इनके कारण भी मुद्रा की पूर्ति में उसी प्रकार वृद्धि होती है जिस प्रकार राजकोषीय हुंडियों के द्वारा।

(ख)सरकार भारतीय रिजर्व बैक से विभिन्न प्रकार की विशेष प्रतिभूतियों द्वारा भी उधार लेती है। 'उनके कारण भी मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है।

(ग) सरकार को जो उधार सचमुच में बाजार से मिलते है, वे भी मांग तथा कीमतों में बढोतरी के कारण बन सकते है। उदाहरणार्थ सरकार द्वारा लिए गए उधारों के कारण क्रय शक्ति बाजार से सरकार को हस्तांतरित होती है। सम्भावित है कि सरकार इसका अधिकतम भाग ऐसी स्कीमों पर व्यय करे जिनसे बाजार में उत्पादन में वृद्धि के बिना केवल मांग में ही वृद्धि हो, अथवा ऐसी दीर्घकालीन निवेश परियोजनाओं पर व्यय करे जिनके कारण उत्पादन मांग की उत्पत्ति के कई वर्षों बायदा बाजार में आना प्रारम्भ हो। दूसरे शब्दों में यह कहना होगा कि सरकार के बाजार उधारों द्वारा मान के ढांचे में ऐसे परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है जिससे कीमतों में वृद्धि हो।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर भारत में बजटीय घाटे के प्रमापण में परिवर्तन की आवश्यकता को मान्यता प्राप्त हुई। भारतीय रिजर्व बैक द्वारा बनाई गई चक्रवर्ती कमेटी ने प्रमापण के संशोधन पर विशेष जोर दिया। कमेटी के कथानानुसार बजटीय घाटे के प्रमापण में सरकार द्वारा रिजर्व बैक से लिए गए सभी उधार शामिल किए जाने चाहिए। भारत सरकार ने इस सिफारिश को आशिक रूप से केवल इस अंश तक माना कि बजटीय घाटे के पुराने प्रमापण के साथ साथ भारतीय रिजर्व बैक से

लिए गए उधार में निवल वृद्धि के आकड़ों को भी बजट अनुमानों में दिखाया जाने लगा। इसके अतिरिक्त विश्व बैक के सुझाव पर अब ' 'राजकोषीय घाटे " के नाम से एक प्रमापण वह भी दिया जाता है जो ऊपर खण्ड 26.4.1 में वर्णित है।

बोध प्रश्न - 3

1. लोक वित्त की सामान्य भाषा में बजटीय घाटे का अर्थ क्या है? क्या इस परिभाषानुसार बजटीय घाटा तथा राजकोषीय घाटा एक ही चीज है?
2. भारत में बजटीय घाटे का अर्थ लोक वित्त में अपनाए गए सामान्य अर्थ से किस प्रकार भिन्न है? भारत में अपनाए गए अर्थ का आर्थिक औचित्य दर्शाएं।
3. भारत में अपनाए गए बजटीय घाटे के प्रमापण की त्रुटियों का संक्षिप्त वर्णन करें।
4. भारत सरकार द्वारा रिजर्व बैक से उधार लेने पर मुद्रा सृजन की प्रक्रिया दर्शाएं।
5. भारत सरकार अपने बजटीय घाटे के प्रमापण में विदेशों से लिए गए उधार को क्यों शामिल नहीं करती?

26.5 भारत में बजटीय घाटे के विभिन्न प्रमापण

26.5.1 राजस्व घाटा (Revenue Deficit)

यह प्रमापण बजट के राजस्व खाते की मदों पर आधारित है। यह प्रमापण है

राजस्व व्यय - राजस्व प्राप्तियां

राजस्व व्यय के दो भाग है (क) आयोजना व्यय, तथा (ख) आयोजना-भिन्न व्यय। हरेक आयोजना में केन्द्र, राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों की विभिन्न योजनाएं एवं परियोजनाएं रहते है

जिन पर किया गया व्यय आयोजना व्यय कहलाता है। ध्यान रहे कि यह आवश्यक नहीं कि आयोजना व्यय सदैव विकास-मुखी ही हो।

आयोजना-भिन्न व्यय की मुख्य मदों में ब्याज की अदायगियां, रक्षा व्यय, आर्थिक सहायता / अनुदान, डाक का घाटा, पुलिस, पैंशन, सामाजिक. सेवाएं (शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रसारण आदि), सामान्य सेवाएं (जैसे सरकार के अंग, कर संग्रह, विदेश कार्य आदि) आर्थिक सेवाएं (जैसे कृषि, उद्योग,, विद्युत, परिवहन, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि) शामिल है। इनके अतिरिक्त राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के अनुदान, तथा विदेशी सरकारों को अनुदान की मदें भी आयोजना-भिन्न राजस्व व्यय का भाग है।

राजस्व प्राप्तियों को आयोजना तथा आयोजना-भिन्न भागों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इनका मुख्य वर्गीकरण कर तथा कर-भिन्न प्राप्तियों में किया जाता है। कर-भिन्न प्राप्तियों में ब्याज प्राप्तियां, लाभांश तथा लाभ, विदेशी अनुदान, आदि शामिल है। कर प्राप्तियों में से राज्यों का हिस्सा घटा दिया जाता है। केन्द्र की कर प्राप्तियों में से राज्यों का हिस्सा घटा दिया जाता है। केन्द्र की कर प्राप्तियों की मुख्य मदों में निगम कर, आय कर, व्याज कर, धन कर, सीमा शुल्क तथा संघ उत्पाद शुल्क शामिल है।

26.5.2 पूंजी खाते का घाटा (Capital Account Deficit)

बजट में पूंजी खाते के घाटे का प्रमापण है

पूंजी व्यय - पूंजी प्राप्तियां

(क) राजस्व खाते की भांति पूंजी व्यय को भी आयोजना व्यय तथा आयोजना-भिन्न व्यय में बांटा जा सकता है । आयोजना व्यय में केन्द्रीय सरकार को अपने परियोजनाओं तथा स्कीमों, के अतिरिक्त राज्य और संघ राज्य क्षेत्रों की आयोजनाओं के लिए दी गई सहायता भी शामिल रहती है। इसी प्रकार आयोजना-भिन्न पूंजी व्यय की मुख्य मदों में रक्षा पूंजी व्यय, सरकारी उद्यमों को ऋण,- राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की सरकारों को उधार, विदेशी. सरकारों को उधार तथा अन्य आयोजना-भिन्न परिव्यय शामिल है।

(ख) पूंजी प्राप्तियों को आयोजना तथा आयोजना-भिन्न मदों में वर्गीकृत करना सम्भव नहीं है। इन प्राप्तियों को पूंजी खाते में रखने का केवल एक ही आधार रहता है और वह यह कि उनके कारण सरकार की देयताओं में वृद्धि हो।

अत: पूंजी खाते में घाटे का अर्थ यह है कि सरकार की देयताओं मे उसी के बराबर वृद्धि होती है। तथा इसी प्रकार पूंजी खाते में अधिशेष का अर्थ है सरकार की देयताओं में उतनी ही मात्रा में निवल कमी।

सरकार की पूंजी प्राप्तियों की मदों में पहले से दिए हुए ऋणों की वसूली, बाजार उधार, विदेशी सहायता (जो ऋणों के रूप में हो), सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में इक्विटी धारिता का विनिवेश, अल्प बचतें, लोक भविष्य निधियां, राज्य भविष्य निधियां तथा विशेष जमा आदि शामिल है। यहां इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि पूंजी प्राप्तियों में राजकोषीय हुंडियों को छोड्कर अन्य सभी प्रकार के उधारों को शामिल किया गया है। इसी महत्वपूर्ण तथ्य के आधार पर हम बजटीय तथा राजकोषीय घाटे के प्रमाणों में भेद करेंगे।

26.5.3 बजटीय घाटा (Budgetary Deficit)

यदि हम राजस्व तथा पूंजी खाते के घाटी को जोड़ दें, तो यह भारत सरकार द्वारा अपनाया गया बजटीय घाटे का प्रमापण हो जाता है। दूसरे शब्दों में

बजटीय घाटा = (राजस्व व्यय + पूंजी व्यय) - (राजस्व प्राप्तियां + पूंजी प्राप्तियां)

यहां पर स्मरण रखें कि' 'पूंजी प्राप्तियों " में भारत सरकार द्वारा लिए गए सभी ऋण शामिल है, केवल राजकोषीय हुंडियों द्वारा लिया गया उधार शामिल नहीं है। इस कारण बजटीय घाटे के प्रमापण को परिभाषानुसार सरकार की राजकोषीय हुंडियों में निवल वृद्धि के बराबर माना जा सकता है। इसमें केवल रोकड़ में निवल कमी को और जोड दिया जाना चाहिये। सरकार द्वारा अपनाया गया बजटीय घाटे का प्रमापण भी इन्हीं दो मदों का जोड़ है। वैसे व्यावहारिक स्तर पर रोकड़ जमा में निवल कमी इतनी थोड़ी होती है कि उसे शामिल न करने से विशेष अंतर नहीं पड़ता।

26.5.4 राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit)

अब हम बजटीय घाटे का सबसे विस्तारित प्रमापण, जिसे राजकोषीय घाटे की संज्ञा दी जाती है, पर आते है। इस प्रमापण के अनुसार

राजकोषीय घाटा = कुल व्यय - (राजस्व प्राप्तियां + ऋणों की वसूली + अन्य पूंजी प्राप्तियां) = 'बजटीय घाटा' + उधार तथा अन्य देयताएं

यह अति ध्यान योग्य और महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारत सरकार द्वारा अपनायी गई "राजकोषीय घाटे" की अवधारणा तथा लोक वित्त के सिद्धान्त में तथा अनेक विकसित देशों में अपनाए गए 'बजटीय घाटे " की अवधारणा में कोई अंतर नहीं है।

यह भी ध्यान योग्य तथ्य है कि उपरोक्त राजकोषीय घाटे का प्रमापण भारत सरकार की कुल देयताओं में निवल वृद्धि के बराबर है। ऐसा इसलिए हैं कि कुल व्यय में सरकार द्वारा दिये गए उधार तथा ' प्राप्तियों " में ऋणों की वसूली को शामिल करते है तथा फलस्वरूप दोनों का अंतर सरकार की देयताओं में निवल वृद्धि के बराबर होता है।

26.5.5 मुद्राकृत घाटा (Monetised Deficit)

यह प्रमापण राजकोषीय घाटे का एक अंश है। राजकोषीय घाटे का प्रमापण सरकार की कुल देयताओं में निवल वृद्धि के बराबर है, जब कि मुद्राकृत घाटा सरकार की देयताओं में निवल वृद्धि का वह भाग है जो रिजर्व बैक से उधार लेने पर अस्तित्व में आता है। दूसरे शब्दों में

मुद्राकृत घाटा = भारतीय रिजर्व से भारत सरकार द्वारा लिए गए उधार में निवल वृद्धि

यहां पर ध्यान योग्य तथ्य यह है कि रिजर्व बैक द्वारा जारी की गई मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के कई कारण एवं सोत रहते है। इनमें सरकारी बजट द्वारा मुद्रा पूर्ति में वृद्धि सरकार द्वारा रिजर्व बैक से निवल उधार में वृद्धि के बराबर होती है। इस संदर्भ में आप को याद होगा कि जब सरकार रिजर्व बैक से उधार व्यय करती है, तो रिजर्व बैक द्वारा भुगतान किये जाने पर उसी के बराबर बाजार में करेंसी जारी करता है, तथा इसी प्रकार जब सरकार रिजर्व बैक को किसी ऋण का भुगतान करती है तो बाजार में करेंसी की पूर्ति उतनी ही मात्रा में घट जाती है।

इस आधार पर हम यह कह सकते है कि यदि मांग तथा कीमतों पर प्रभाव के आधार पर सरकार के बजटीय घाटे का प्रमापण चुनना हो तो मुद्राकृत घाटे को सर्वोत्तम माना जाना चाहिए।

बोध प्रश्न - 4

1. भारत सरकार के बजटीय संबंधी घाटे के पाँचों प्रमाणों के नाम बताएं तथा उन्हें परिभाषित करे।
2. क्या भारत सरकार का राजकोषीय घाटा उसके राजस्व घाटे से सदैव अधिक होगा? करण सहित उत्तर दे।
3. भारत सरकार के राजकोषीय घाटे तथा मुद्राकृत घाटे में अंतर दर्शाएं। मुद्राकृत घाटे को यह संज्ञा दिए जाने का कारण बताएं।

4. पूंजी प्राप्तियों के आधार पर बजटीय घाटे तथा राजकोषीय घाटे में क्या अंतर है? इस अंतर की आर्थिक महत्ता क्या है ?

26.6 भारत मे बजटीय घाटे का स्तर

26.6.1 मुख्य प्रवृत्तियां

भारत में बजटीय घाटे के एक विशिष्ट परन्तु दोषपूर्ण प्रमापण अपनाए जाने के कारण कुछ वर्ष पूर्व तक जनता को सरकार की राजकोषीय नीतियों का पूर्ण विवरण नही मिल पाता था, तथा यह भी देखने को मिलता है कि सरकार की ओर से भी ऐसी कई नीतियों अपनाई जाती रही जिनसे घाटे की प्रवृत्ति को बल मिलता रहा। कालान्तर में घाटे के स्तर में निरन्तर वृद्धि होने की प्रवृति प्रबल होती गई। यह वृद्धि घाटे के स्तर में निरन्तर वृद्धि होने की प्रवृत्ति होती गई। यह वृद्धि घाटे की मात्रा के साथ साथ सरकार के व्यय तथा राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में भी हुई है।

घाटे की नीति के दुष्परिणामों के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता के कारण इस धारणा ने जोर पकडा कि "बजटीय घाटे" के प्रमापण में यथोचित सुधार किया जाना चाहिए जिससे सरकार की बढ़ती हुई देयताओं तथा मुद्रा स्फीति में इसकी भूमिका ठीक ढंग से प्रदर्शित 'हो तथा सरकार पर संयम के लिए दबाव पड़े। इस संदर्भ में चक्रवर्ती कमेटी ने विशेष रूप से सिफारिश की कि सरकार अपने बजटीय घाटे के परिमापण में उचित संशोधन करे। सरकार ने इस सिफारिश पर यह निर्णय लिया कि बजटीय घाटे के पुराने प्रमापण के साथ साथ भारतीय रिजर्व बैंक से लिए गए उधार में निवल वृद्धि के आकड़े भी प्रकाशित करने लगे। अर्थात् बजटीय घाटे के संग मुद्राकृत घाटे के आंकडें भी प्राप्त होने लगे। इसके अतिरिक्त राजस्व तथा पूंजी घाटे के आकड़े तो पहले से ही उपलब्ध थे ? अथवा उनका अनुमान लगाया जा सकता था। 1990 के दशक प्रारम्भ से इस बात पर भी जोर दिया जाने लगा कि सरकार को ' राजकोषीय घाटे- के आंकडें भी प्रकाशित करने चाहिए राजकोषीय घाटा सरकार के वित्तीय संयम का बेहतर द्योतक है। इस विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में हमारे भुगतान शेष की कठिनाईयां तथा विश्व बैक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लेने की आवश्यकता का भी पूरा योगदान रहा है। अब भारत सरकार के बजट में राजकोषीय घाटे के आकड़े भी मिलते है।

यदि हम 1981 - 82 से लेकर 1992 -93 के बजट तक के आंकड़ो का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा राजकोषीय घाटे की मात्रा 1981 - 82 में 6247 करोड़ रुपये से बढ़कर 1990 - 91 में 44650 करोड़ रुपये हो गई थी। यह घाटा हमारे सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात के रूप में 1981 - 82 में 3.9% था, परन्तु 1990 - 91 तक बढ़कर 10.1% हो गया था। दूसरे शब्दों में, भारत सरकार हमारे राष्ट्रीय उत्पाद का 10% से भी अधिक भाग उधार लेकर व्यय कर रही थी। इस प्रवृति पर अगले दो बजटों में रोक लगाने की चेष्टा की गई। इस अनुपात को 1991 - 92 के बजट में घटा कर 6.5% तथा 1992 - 93 मे 5% पर लाया गया।

सरकार के घाटे के बजट की नीति को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है और वह यह कि सरकार के कुल व्यय के कितने भाग का वित्त-पोषण उसके निवल उधार में वृद्धि द्वारा

किया जाता है। वस्तु स्थिति के अनुसार यह अनुपात भी बहुत ऊंचा रहा है। 1981 - 87 में यह अनुपात 25.6% था, 1986 - 87 में इसका स्तर 41.9% तथा 1990 - 91 में 42.4% हो गया था। अगले दो वर्षों में इस अनुपात में कमी की गई जिसके फलस्वरूप इसका स्तर 1991 - 92 में 33.4% तथा 1992 -93 में 28.4% पर लाया गया।

इसके अतिरिक्त राजस्व घाटे के महत्व के ध्यान में रखते हुए यह जानना आवश्यक है कि भारत सरकार के बजटों में इसकी क्या स्थिति रही है। यदि हम राजस्व घाटे को राजस्व व्यय के अनुपात में देखें तो पता चलता है कि कालान्तर में सरकार अपने राजस्व व्यय का एक बढ़ता हुआ अनुपात उधार लेकर पूरा करती रही है। 1980 - 81 और 1990 - 91 के बीच यह अनुपात 2.54% से बढ़कर 25.25% तक जा पहुंचा था। अगले दो बजटों में इस अनुपात को घटाने की चेष्टा के फलस्वरूप इसका स्तर घटकर क्रमश : 20.4% तथा 14.9% हो गया। ध्यान योग्य बात यह है कि लोक वित्त के मौलिक सिद्धान्तों के अनुसार तथा वित्तीय नीति की सुचारू रूपरेखा बनाए रखने के दृष्टिकोण से राजस्व खाते का घाटा अति निन्दनीय माना जाता है।

26.6.2 कुछ मुख्य पहलू

भारत में बजटीय घाटे के विभिन्न पहलुओं को एक साथ ध्यान में रखते हुए उसके स्तर से संबंधित कुछ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य भी सामने आते है।

(1) भारत जैसे अल्पविकसित देश में बजटीय घाटे की एक रचनात्मक भूमिका रहती है, जिसके कुछ पहलू निम्न प्रकार है।

ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकास मार्ग पर अग्रसर होने के लिए मुद्रा तथा साख की बढ़ती हुई मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। इसके दो कारण: है। (क) विकास के साथ आर्थिक गतिविधियों के वित्त-पोषण की बढ़ती हुई आवश्यकता, तथा (ख) वस्तु विनिमय पद्धति के स्थान पर मुद्रा-विनिमय पद्धति का अधिक प्रयोग।

अत : इस मुद्रा तथा साख की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति हेतु केन्द्रीय बैक द्वारा जारी की गई करेंसी में यथोचित वृद्धि होनी चाहिए। सरकार का बजटीय घाटा इस प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है।

(2) अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित करना हर सरकार का बुनियादी ध्येय होना चाहिए। इस संदर्भ में भी बजटीय घाटे की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। घाटे के माध्यम से सरकार बाजार से क्रय शक्ति को एकत्रित करती है तथा संसाधनों को अपनी नीति के अनुसार निवेश कार्यों में लगाकर पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को सक्षम बनाती है।

(3) उपरोक्त दोनों लाभों के साथ घाटे के बजट का एक मुख्य दोष यह है कि इससे मांग तथा कीमतों पर दबाव पड़ता है तथा आय वितरण की असमानताओं में वृद्धि होती है। अत : घाटे की मात्रा एक नियन्त्रित सीमा से आगे नही बढ़ती चाहिए।

(4) यह आम धारणा है कि भारत में कई वर्षों में (तथा विशेषकर 1980 के बाद के दशक में) बजटीय घाटा उचित सीमाओं से काफी अधिक रहा है, जिस कारण हमारी अर्थव्यवस्था को मुद्रा-स्फीति तथा आय की बढ़ती हुई असमानताओं के दोषों को भुगतना पड़ रहा है।

(5) बजटीय घाटे की बढ़ती मात्रा का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि राजस्व बजट में भी अधिशेष के स्थान पर घाटे की स्थिति हो गई। दूसरे शब्दों में, सरकार अपने साधारण दैनिक व्यय के लिए भी पूंजी बजट में लिए गए उधारों पर निर्भर करने लगी। इससे मुद्रा स्फीति तथा आय की समानताएं बढ़ी तथा पूंजी निर्माण को धक्का पहुंचा।

(6) बजटीय घाटे पर अनुचित हद तक आश्रित होने के कारण केन्द्रीय सरकार का ऋण तेजी से बढ़ने' लगा जिस कारण उसकी ब्याज देयताओं में तीव्रता से वृद्धि होने लगी। उदाहरणार्थ 1992 - 93 के बजट में व्याज के लिए 32,500 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। इससे सरकार की सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं की पूर्ति करने की क्षमता में कमी आई है। साथ ही रोजगार बढ़ाने तथा गरीबी घटाने के कार्यक्रमों के लिए संसाधन जुटाने में दिक्कत आई है, तथा की विभिन्न मदों मे आपसी हेरफेर करने की सरकार की क्षमता में भी कमी आई है। व्याज की अदायगी एक आयोजना-भिन्न व्यय की मद है तथा इसके परिणामस्वरूप आयोजना व्यय कीमतों के लिए संसाधनों का अभाव पैदा हो गया है। इन सब दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्रियों का यह दृढ़ मत है कि बजटीय घाटे का एक सहनीय स्तर होता है तथा किसी भी अवस्था में इस सहनीय स्तर को पार नहीं करना चाहिए। यह भी आम विचार है कि भारत में इस सीमा का अब तक उल्लंघन किया जाता रहा है।

(7) यह आम धारणा है कि भारत सरकार के बजटीय घाटे की बढ़ती मात्रा के मुख्य कारणों में (क) सरकार का अपना आयोजना भिन्न व्यय (ख) व्याज की बढ़ती अदायगी तथा (ग) विभिन्न प्रकार की बढ़ती हुई गौण तथा खुली आर्थिक सहायता (Subsidies) तथा सार्वजनिक उद्यमों में होने वाले घाटी को गिना जा सकता है। विशेषकर सरकार के आयोजना-भिन्न व्यय तथा आर्थिक सहायता से सम्बद्ध अनेक गौण हित भी उत्पन्न हो गए है। सरकार के लिए यह अति वांछनीय है कि इन गौण हिलें की अवहेलना करते हुए अपने बजटीय घाटे को नियमित करे।

(8) राष्ट्रीय बचत अभियान में बजटीय घाटे की नीति के बावजूद सरकार का योगदान बढ़ने के स्थान पर निर्बल होता चला गया है, तथा इस समय सरकारी क्षेत्र की बचत ऋणात्मक है।

बोध प्रश्न - 5

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर इस इकाई में न लिखकर अलग से लिखें। चेष्टा करें कि उत्तर संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट एवं सही हों।

1. क्या सरकार के घाटे के बजट की नीति में कुछ अंतर आया है? तथ्यों सहित उत्तर दे।
2. इस समय भारत सरकार के बजट से कितने प्रकार के घाटे के प्रमापण ज्ञात किये जा सकते है?
3. बजटीय घाटों के पिछले दशक की मुख्य प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाले।

4. क्या भारत में घाटे की बजट की आवश्यकता है? यदि हां तो क्या यह घाटा अनियमित हद तक बढाया जा सकता है?
5. क्या भारत सरकार घाटे की नीति का सही उपयोग कर पाई है? तथ्यों सहित उत्तर

26.7 सारांश

लोक वित्त में बजटीय घाटे का अर्थ सरकारी व्यय का वह भाग है जिसका वित्त पोषण उधार लेकर किया गया हो (अर्थात कुल व्यय-राजस्व प्राप्तियां) । राजस्व प्राप्तियों में वे सब मदें शामिल होती है जिनके कारण सरकार की निवल देयताओं में वृद्धि न हो । इस बजटीय घाटे को राजकोषीय घाटा भी कहा जाता है । इसके अतिरिक्त बजट को राजस्व तथा पूंजी खातों में विभाजित करने पर ' 'राजस्व घाटा " तथा ' 'पूंजी घाटा " नामक दो अन्य प्रमापण भी मिलते है । परन्तु यह आवश्यक नहीं कि बजट के दोनों खण्डों में स्थिति ऋणात्मक ही हो । किसी भी खण्ड अथवा दोनों खण्डो में स्थिति धनात्मक हो सकती है ।

भारत सरकार के बजट से संबंधित घाटे के कई प्रमापण है जिनके जानने के लिए भारत सरकार द्वारा लिए जाने वाले उधारों का ब्यौरा चाहिए । इन उधारों के मुख्य वर्गों में (1) विदेशी ऋण (2) बाजार उधार, (3) राजकोषीय हुंडियां (4) अल्प बचतें, (5) रिजर्व बैक से लिए गए विशेष उधार तथा (6) अन्य देनदारियां जैसे जमा राशियां आदि शामिल है ।

एक दृष्टिकोण के अनुसार बजटीय घाटे का प्रमापण बजट के आर्थिक प्रभावों को सामने लाने में. सहायक होना चाहिए । भारत सरकार के विचारानुसार सबसे महत्वपूर्ण विचार योग्य प्रभाव मांग तथा कीमतों में वृद्धि है । इस आधार पर सरकार के बजट में राजस्व तथा पूंजी घाटे के प्रमाणों के अतिरिक्त पूरे बजट के लिए ''बजटीय घाटे" का एक संयुक्त प्रमापण अपनाया गया जो लोक वित्त में वर्णित बजटीय अथवा राजकोषीय घाटे के बराबर न होकर केवल घाटे का वह अंग है जिसका वित्त-पोषण राजकोषीय हुंडियों को जारी करके तथा जमा रोकड़ में निवल कमी के द्वारा किया जाता है । पिछले कुछ वर्षो में सरकार ने घाटे के दो अन्य प्रमाणों के आकड़े देने भी शुरू कर दिए है जिन्हें 'राजकोषीय घाटा" तथा मुद्राकृत घाटा" कहा जाता है । यह राजकोषीय - घाटा लोक वित्त के सिद्धान्तानुसार वर्णित बजटीय अथवा राजकोषीय घाटे के बराबर है, तथा मुद्राकृत घाटा वह है जो रिजर्व बैक से निवल उधार में वृद्धि से वित्त-पोषित किया जाता है ।

भारत सरकार के बजट घाटी के प्रमाणों के अध्ययन से पता चलता है कि सरकार बजट के इस आयाम का सही उपयोग नहीं कर पाई है । यदि उपयुक्त वित्तीय संयम बरता जाए तो घाटे के माध्यम से देश में पूंजी निर्माण तथा आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है । परंतु यदि घाटा एक नियन्त्रित सीमा से बढ़ जाए तो उसके अनेक दुष्परिणाम उत्पन्न होने लगते है । सरकार की घाटे की बजट नीति के सुचारू रूप से चलाए जाने के अभाव के कारण भारत से इस के दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे है ।

26.8 शब्दावली

1. बजट = किसी आर्थिक इकाई का विचाराधीन काल के लिए सम्भावित प्राप्तियों तथा उनके उपयोग का ब्यौरावार लेखा

2. बजटीय घाटा (लोक वित्त के सिद्धान्तानुसार) = राजकोषीय घाटा = कुल व्यय - राजस्व प्राप्तियां = सरकार की निवल देयताओं में वृद्धि + रोकड़ में निवल कमी

3. बजट का पूंजी खाता = बजट की वे मदें जिन से सरकार की देयताओं अथवा परिसम्पत्तियों में परिवर्तन आता है।

4. राजस्व घाटा = राजस्व खाते का व्यय - राजस्व प्राप्तियां

5. पूंजी घाटा = पूंजी खाते का व्यय - पूंजी प्राप्तियां

6. भारत सरकार का विदेशी ऋण = जो ऋण भारत सरकार ने देश के बाहर से लिया हो।

7. भारत सरकार का बाजार उधार = वे सब उधार जिनकी जारी किए जाने के समय कालावधि एक वर्ष अथवा इससे अधिक हो। इन में रिजर्व बैक से साधारण प्रतिभूतियों द्वारा लिए गए उधार शामिल है परन्तु विशेष प्रतिभूतियों द्वारा लिए जाने वाले उधार शामिल नहीं है।

8. भारत सरकार की राजकोषीय हुंडियां = यह हुंडियां सरकार की अल्पकालीन (91 अथवा 182 दिवसीय कालावधि वाली) देनदारियां है। ये बट्टे पर बेची जाती (जारी की जाती) है तथा अंकित मूल्य पर देय होती है।

9. भारत सरकार के पांच बजटीय घाटे के प्रमापण -

(क) राजस्व घाटा = राजस्व व्यय - राजस्व प्राप्तियां

(ख) पूंजी घाटा = पूंजी व्यय - पूंजी प्राप्तियां

(ग) बजटीय घाटा = राजकोषीय हुंडियों में निवल वृद्धि + रोकड़ में निवल कमी

(घ) राजकोषीय घाटा = कुल व्यय - (राजस्व प्राप्तियां + ऋणों की वसूली + अन्य पूंजी वसूलियां)

= बजटीय घाटा + अन्य पूंजी वसूलियां

= देयताओं में निवल वृद्धि + रोकड़ में निवल कमी

(ड) मुद्राकृत घाटा = रिजर्व बैक से निवल उधार में वृद्धि

26.9 कुछ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Dr. H.L.Bhatia , Public finance , Ch 20

2. भारत सरकार का नवीनतम वार्षिक बजट

3. भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा, नवीनतम वार्षिक संस्करण

26.10 बोध-प्रश्नों के उत्तर

बोध-प्रश्न - 1.

1. (क) गलत 1 (ख) ठीक 1 (ग) गलत 1 (घ) गलत
1. (ड) गलत 1 (च) ठीक

बोध-प्रश्न - 2.

1. (क) गलत 1 (ख) गलत 1 (ग) ठीक 1 (घ) गलत
1. (ड) गलत

26.11 कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

1. घाटे की बजट की व्यवस्था का क्या औचित्य है? क्या भारत में इस औचित्य को भली प्रकार निभाया गया है?
2. भारत सरकार द्वारा अपनाए गए बजटीय घाटे तथा राजकोषीय घाटे में अंतर दर्शाएं। इस अंतर का आर्थिक महत्व क्या है?
3. भारत सरकार के बजटीय घाटे की नीति से संबंधित विभिन्न आयामों पर आलोचनात्मक प्रकाश डाले।